VIDYABHAWAN SANSKRIT GRANTHAMALA 122.

संस्कृत-रचना

'Students' Guide to Sanskrit Composition

Of

VAMAN SHIVARAM APTE, M. A.

TRANSLATOR

UMESHACHANDRA PANDEY.

Usha Satyavrat
21. 4. 83.

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

१२२

(उत्तर प्रदेश बोर्ड, इलाहाबाद, आगरा, गोरखपुर, राजस्थान, पटना, बिहार, सागर आदि सभी विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत)

संस्कृत-रचना

श्री वामन शिवराम आप्टे

के

'द स्टूडेण्ट्स गाइड टू संस्कृत कम्पोजिशन'

का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक :—

डॉ० उमेशचन्द्र पाण्डेय

एम. ए., पी-एच. डी., साहित्यरत्न, डिप्० इन जर्मन

रायसाहब चण्डीप्रसाद मेडलिस्ट, मुंशी बिहारीलाल पुरस्कार एवं काशीभाई गौरीशंकर पुरस्कार विजेता, भूतपूर्व गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया रिसर्च स्कालर (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
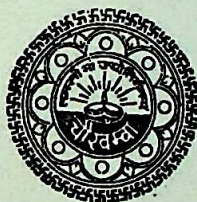
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-२२१००१

प्रकाशक—
चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे),
पो० बा० नं० ६९, वाराणसी–२२१००१

द्वितीय संस्करण १९७७

मूल्य १२-००

अन्य प्राप्तिस्थान—
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन, पो० बा० १२९,
वाराणसी–२२१००१

मुद्रक :—
श्रीजी मुद्रणालय
वाराणसी

THE
VIDYABHAWAN SANSKRIT GRANTHAMALA
122

SANSKRIT RACHANĀ

[The Students' Guide to Sanskrit Composition]

A Treatise on Sanskrit Syntax for the use of
School and Colleges

OF

VAMAN SHIVARAM APTE, M. A.

Translated into Hindi

By

Dr. Umesh Chandra Pandey

M. A., Ph. D., Sahityaratna, Dip. in German.

Formerly Govt. of India Research Scholar, sometimes
Lecturer in Sanskrit, College of Indology,
Banaras Hindu University.
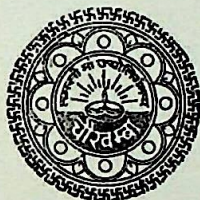
THE

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

संस्कृत के सभी विमलमति एवं देशभक्त प्रेमियों तथा उसके
क्षेत्र में कार्य करने वालों को यह पुस्तक संस्कृत भाषा
के आलोचनात्मक अध्ययन की प्रेरणा
देने योग्य कुछ कार्य करने के प्रथम
तुच्छ प्रयत्न के रूप में
समर्पित है।

—लेखक

वक्तव्य

प्रस्तुत पुस्तक संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान् श्री वामन शिवराम आप्टे की अंग्रेजी पुस्तक **The Students' Guide to Sanskrit Composition** का अनुवाद है। श्री आप्टे महोदय ने संस्कृत रचना की यह पुस्तक अंग्रेजी माध्यम से संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों के लिए लिखी थी; परन्तु इस समय इस पुस्तक की उपयोगिता देखते हुए हिन्दी में इसका अनुवाद एक ऐसी आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति संस्कृत भाषा का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को एक सरल और वैज्ञानिक मार्ग प्रदान करती है। इस पुस्तक की उपादेयता तो इसी से स्पष्ट है कि विद्वान् लेखक ने सभी आवश्यक नियमों को इतने सरल ढंग से और इस क्रम से समझाया है कि संस्कृत व्याकरण को भी दूसरी भाषाओं के व्याकरणों के समान सरलता से समझा और ग्रहण किया जा सकता है। इसमें लौकिक संस्कृत के काव्य, गद्य और नाटक के ग्रन्थों से जो उदाहरण दिये हैं, वे अनायास ही विद्यार्थियों को उच्चकोटि की संस्कृत रचना और संस्कृत के भाषा-सौन्दर्य से परिचित करा देते हैं। वाक्य-विश्लेषण और वाक्य-संश्लेषण के अध्याय इस पुस्तक की अनूठी विशेषताएँ हैं।

आशा है, यह हिन्दी अनुवाद विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

—अनुवादक

विषय-सूची

खण्ड १

समन्वय

खण्ड २

संनियम

खण्ड ३

व्याकरणीय रूपों और शब्दों के प्रयोग तथा अर्थ

पाठ			पृष्ठ

खण्ड ४

वाक्य-विश्लेषण तथा वाक्य-संश्लेषण

(अभ्यास-सहित)

प्रकरण पृष्ठ

पुस्तक में आए हुए संक्षिप्त नामों की सूची

निर्देश :—ग्रन्थ के नाम के साथ जहाँ दो संख्याएँ आई हुई हैं, वहाँ पहली संख्या सर्ग या अध्याय (महाभारत और रामायण में पर्व या काण्ड) सूचित करती है; और दूसरी संख्या श्लोक संख्या का निर्देश करती है। नाटक के नाम के साथ प्रयुक्त केवल एक संख्या उसके अंक का संकेत देती है।

अनर्घ०	अनर्घराघवम्।
उत्तर०	उत्तररामचरितम्।
काद०	कादम्बरी, बाणभट्टः।
का० प्र०	काव्यप्रकाशः।
किरात०	किरातार्जुनीयम्।
कुमार०	कुमारसम्भवम्।
गणरत्न०	गणरत्नमहोदधिः।
गीता०	श्रीमद्भगवद्गीता।
चाण० श०	चाणक्यशतकम्।
दश०	दशकुमारचरितम्—१. से प्रथम भाग से तात्पर्य है और २. से द्वितीय भाग से; इनके अतिरिक्त संख्याएँ कथा की क्रमसंख्या बताती हैं।
नागा०	नागानन्दम्।
पञ्च०	पञ्चतन्त्रम् : पहली संख्या तन्त्र के लिये और दूसरी संख्या उसके अन्तर्गत आयी हुई कथा के लिये प्रयुक्त है।
प्रसन्न०	प्रसन्नराघवम्।
बाल०	बालरामायणम्।
भट्टि०	भट्टिकाव्यम्।
भर्तृ०	भर्तृहरिशतकम्—१. नीतिशतकम् २. वैराग्यशतकम्।
मनु०	मनुस्मृतिः।
म० भाष्य	महाभाष्यम्।
महा०	महाभारतम्।
महावीर०	महावीरचरितम्।
मालती०	मालतीमाधवम्।

मालवि०	मालविकाग्निमित्रम् ।
मुद्रा०	मुद्राराक्षसम् ।
मृच्छ०	मृच्छकटिकम् ।
मेघ०	मेघदूतम् ।
याज्ञ०	याज्ञवल्क्यस्मृति, २. व्यवहाराध्यायः ।
रघु०	रघुवंशम् ।
रत्ना०	रत्नावली ।
रामा०	रामायणम् ।
वासव०	वासवदत्ता ।
वार्त्तिक	वार्त्तिक, कात्यायन ।
विक्रमो०	विक्रमोर्वशीयम् ।
विद्ध०	विद्धशालभञ्जिका ।
वेणी०	वेणीसंहारम् ।
शाकु०	शाकुन्तलम् ।
शं० मोह०	शंकराचार्य का मोहमुद्गरम् ।
शां० भा०	शाङ्करभाष्यम् ।
शिशु०	शिशुपालवधम् ।
सि० कौ०	सिद्धान्तकौमुदी ।
सुभा०	सुभाषितरत्नाकरः ।
हितो०	हितोपदेशः—प्रथम संख्याएँ क्रमशः चार खण्डों को सूचित करती हैं ।

संस्कृत-रचना

(The Students' Guide to Sanskrit Composition)

खण्ड १ : समन्वय | विषय-प्रवेश

१. अंग्रेजी 'वाक्यरचना' में शब्दों के वाक्य में संयोजन की विधि का वर्णन होता है और शब्दों के उचित एवं शुद्ध प्रयोग के नियम दिये जाते हैं। संस्कृत या दूसरी विभक्तिप्रधान भाषाओं में 'वाक्यरचना' का ऐसा कोई निश्चित क्षेत्र नहीं होता। स्वयं विभक्तियुक्त पद ही यह स्पष्ट कर देता है कि एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ क्या सम्बन्ध है और यदि छात्र वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के सामान्य क्रम का ध्यान नहीं रखता, तो भी कोई हानि या अशुद्धि नहीं होती। उदाहरण के लिए अंग्रेजी का वाक्य 'Rama saw Govinda' लीजिए। यदि Rama और Govinda शब्दों का क्रम बदल दिया जाय तो अर्थ में बहुत अधिक अन्तर हो जायगा। वह एकदम भिन्न वाक्य हो जायगा। इसके विपरीत उसी अर्थ को व्यक्त करने वाला संस्कृत वाक्य 'रामो गोविन्दमपश्यत्' लीजिए। इसमें यदि शब्दों का क्रम बदल भी दिया जाय तो अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता। 'रामो गोविन्दमपश्यत्' 'गोविन्दं रामोऽपश्यत्', 'अपश्यद्रामो गोविन्दम्' इत्यादि सभी वाक्यों का अर्थ एक ही है। अतएव संस्कृत वाक्यों में शब्दों का क्रम, कुछ अपवादों को छोड़कर, कोई अधिक महत्व नहीं रखता। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इस विषय में पूरी स्वच्छन्दता बरती जाय। कुछ ऐसे स्थल हैं जिनमें शब्दों को एक विशेष क्रम में रखना आवश्यक होता है। संस्कृत व्याकरणों में शब्दों के समन्वय (Concord) तथा क्रम के विषय में बहुत कम नियम दिये गये हैं। सिद्धान्तकौमुदी के 'कारकप्रकरण' को सामान्यतः संस्कृत वाक्य-रचना का विवेचन समझा जाता है; किन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं है; कारण, उसमें तो वास्तविक 'वाक्यरचना' के केवल एक अङ्ग विभक्तियों के अधिकार (Government) या अन्वय का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। शब्दों को छोड़कर वाक्य बनाते समय अव्यय शब्दों तथा व्याकरणीय रूपों के प्रयोग और अर्थ को भी ध्यान में रखना होता है। व्याकरण के इस अङ्ग का विवेचन अंग्रेजी के व्याकरण में सामान्यतः शब्दव्युत्पत्ति (Etymology) प्रकरण में होता है; किन्तु संस्कृत के व्याकरणों में शब्दों की रचना समझाने

के साथ ही स्वयं उसका प्रयोग भी दे दिया गया है। उदाहरण के लिए "लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे" (पा० ३।२।१२४) सूत्र में यह बताया गया है कि वर्तमानकालिक कृदन्त शतृ और शानच् किस प्रकार बनाये जाते हैं और उनका प्रयोग कहां होता है। इस प्रकार संस्कृत में 'वाक्य-रचना' का विवेचन करते समय मुख्यतः समन्वय और विभक्तियों के अधिकार तथा व्याकरणीय रूपों एवं शब्दों के प्रयोग और अर्थ पर ध्यान देना पड़ता है। अतएव इस ग्रन्थ के पाठों का क्रम भी इसी विचार से रखा गया है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है शब्दों का क्रम संस्कृत में उतना महत्त्व नहीं रखता जितना अंग्रेजी में; किन्तु कुछ ऐसे स्थल भी हैं जिनमें इस पर सावधानी के साथ ध्यान देना होता है। इस सम्बन्ध में खण्ड ४ में कुछ नियम दिये जायेंगे।

२. अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के समान ही संस्कृत में तीन 'पुरुष' और तीन 'लिङ्ग होते हैं। संस्कृत में पुरुषों का प्रयोग अंग्रेजी के प्रयोग से व्यवहारतः भिन्न नहीं है। जहां तक संस्कृत में संज्ञाओं के 'लिङ्गों' का सम्बन्ध है, उनका भेद स्पष्ट करने के लिए कोई निश्चित नियम नहीं बनाये जा सकते। केवल उन स्थलों को छोड़कर जिनमें पुरुष या स्त्री जाति का स्पष्ट निर्देश होता है और लिङ्गभेद स्वाभाविक होता है—लिङ्गों की व्यवस्था बिल्कुल मनमानी है। उदाहरण के लिए 'चटक' (नर गौरैया) और, चटका 'मादा गौरैया,' हंस और हंसी, अजः और अजा में लिङ्ग स्पष्ट और नियमानुकूल है। लिङ्गनिर्णय-सम्बन्धी स्वेच्छाचारिता इसी बात से देखी जा सकती है कि संस्कृत में एक ही वस्तु के लिए तीन भिन्न-भिन्न लिङ्गों वाले तीन अलग-अलग शब्द पाये जाते हैं। 'पत्नी' के लिए संस्कृत में 'दार' (पुंल्लिङ्ग), भार्या (स्त्रीलिङ्ग) और 'कलत्र' (नपुंसकलिङ्ग) शब्द होते हैं; इसी प्रकार 'देह' के लिए 'कायः' (पुंल्लिङ्ग), 'तनु' (स्त्रीलिङ्ग) और 'शरीरम्' (नपुं०) शब्द होते हैं। लिङ्गों का अध्ययन अधिकांशतः कोश से करना चाहिए।

अंग्रेजी या लैटिन के दो वचनों के स्थान पर संस्कृत में तीन वचन होते हैं। उनके प्रयोग की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख नीचे किया जाता है :—

३. संस्कृत के तीन वचन हैं :—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। एकवचन 'एक' या 'एक व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है किन्तु अंग्रेजी के समान ही उनका प्रयोग प्रायः एक समूह या जाति के लिए होता है; जैसे 'नरः' एक पुरुष,

'सिंहः सर्वश्वापदेषु बलिष्ठः' सिंह सभी जङ्गली जानवरों से बलवान होता है। (इन उदाहरणों में 'नरः' में केवल 'एक पुरुष' को सूचित करने के लिए एकवचन का प्रयोग किया गया है परन्तु 'सिंहः' में सम्पूर्ण सिंह जाति के लिए एकवचन का प्रयोग हुआ है)।

टिप्पणी—सम्पूर्ण जाति या वर्ग का बोध कराने के लिए एकवचन या बहुवचन में किसी का भी प्रयोग हो सकता है। 'ब्राह्मणों का आदर किया जाना चाहिए' के लिये 'ब्राह्मणः पूज्यः' या 'ब्राह्मणाः पूज्याः' का प्रयोग किया जा सकता है।

४. द्विवचन से दो का बोध होता है; 'अश्विनौ' का अर्थ हुआ दो अश्विन्, 'दम्पती' का अर्थ हुआ 'जोड़ा' (पति और पत्नी)। किन्तु द्वय, द्वितय, युगल, युग, द्वन्द्व इत्यादि जैसे 'दो' या 'जोड़ा' का अर्थ देने वाले शब्द सदैव एकवचन होते हैं; जैसे—बाहुद्वयं ' एक जोड़ा बाँहें' 'सुकुमारचरणयुगलं' 'कोमल चरणों का जोड़ा; किन्तु जब कई जोड़ों का बोध कराना होता है तो अर्थानुसार द्विवचन या बहुवचन का प्रयोग होता है।

(अ) कभी-कभी द्विवचन का रूप एक ही वर्ग के पुरुष और स्त्री का बोध कराता है और ऐसी दशा में वह रूप एकशेष द्वन्द्वसमास का उदाहरण होता है जैसे :—'जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ' (रघु० १।१) 'मैं संसार के माता-पिता पार्वती और परमेश्वर (शिव) की वन्दना करता हूँ।'

५. कुछ शब्दों का, जिनका अर्थ द्विवचन का होता है और जो अंग्रेजी अथवा हिन्दी में बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं, संस्कृत में द्विवचन में ही अनुवाद करना चाहिए; जैसे उसने अपने हाथों और पैरों को धोया 'हस्तौ पादौ चाक्षालयत्'; उसने अपनी आँखें मूँद लीं 'सा लोचने न्यमीलयत्'।

६. बहुवचन से 'दो से अधिक' का बोध होता है, और एकवचन के समान ही इसका प्रयोग सम्पूर्ण जाति या समूह का अर्थ होगा। किन्तु संस्कृत में कुछ ऐसे शब्द हैं जिनका रूप तो बहुवचन का होता है किन्तु अर्थ एक वचन का; जैसे 'दाराः' का अर्थ है पत्नी; इसी प्रकार अप्, वर्षा, सिकता, अक्षत, असु, प्राण, इत्यादि।

(य) कभी कभी बहुवचन का प्रयोग आदर दिखाने के लिए या किसी व्यक्ति का भक्तिपूर्वक उल्लेख करने के लिए किया जाता है जैसे 'इति श्रीशङ्कराचार्याः' का अर्थ होगा—पूज्य श्री शङ्कराचार्य का ऐसा मत है।

(आ) यदि वक्ता उच्चस्तर का व्यक्ति होता है तो कभी-कभी उत्तम पुरुष में एकवचन के स्थान पर भी बहुवचन का प्रयोग होता है; जैसे--'वयमपि भवत्यौ सखीगतं किमपि पृच्छामः' (शाकु० १) हम भी—अर्थात् मैं—आप दोनों से आपकी सखी के विषय में कुछ पूछते हैं। 'वयमपि स्वकर्मण्यभियुज्यामहे' (मुद्रा० ३) 'हम भी अपने कार्य में लगेंगे।' किन्तु यह नियम सर्वथा अनिवार्य नहीं है, उदाहरणार्थ—किन्त्वरण्यसदो वयमनभ्यस्तरथचर्याः (उत्तर० ५)।

७. संस्कृत में देशों के नामों का प्रयोग सदैव बहुवचन में होता है, क्योंकि वे वहाँ के निवासियों के नाम पर बने होते हैं; जैसे—'अहं गतः कदाचित् कलिङ्गान्' (दश० २.७) एक बार मैं कलिंग देश (कलिंग लोग के देश) गया।

टिप्पणी—जब देशों के नाम के साथ 'देश', 'विषय' आदि शब्दों का प्रयोग होता है, तब एकवचन का ही प्रयोग होना चाहिए; जैसे—**मगधदेशे** 'पाटलिपुत्रं नाम नगरम्' 'मगध देश में (मगधों के देश में) पाटलिपुत्र नाम का एक नगर है।'

८. व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का बहुवचन भी, अंग्रेजी के समान; वंश या कुल का बोध कराता है; जैसे—'रघूणामन्वयं वक्ष्ये' (रघु० १.९) मैं रघु के कुल का वर्णन करूँगा। 'जनकानां रघूणां च संबन्धः कस्य न प्रियः' (उत्तर० १) रघु और जनक के वंशों का संबन्ध किसे प्रिय नहीं होगा ?

पाठ १

९. "जब दो संबद्ध शब्द एक ही लिङ्ग, वचन, पुरुष या काल के होते हैं तब वे एक दूसरे के अन्वयी या परस्पर समन्वित कहे जाते हैं। किसी पुरुष के विषय में कुछ कहते समय हमें उसके लिए 'वह' (पुंल्लिङ्ग 'सः') का प्रयोग करना होता है, किसी स्त्री के लिए 'वह' (स्त्रीलिङ्ग 'सा') का और अनेक व्यक्तियों के लिए 'वे' (ते, ताः) का प्रयोग करना होता है, ये ही शब्दों की संगतियाँ या समन्वय हैं।" —बेन

संस्कृत में तीन प्रकार के समन्वय ध्यान देने योग्य हैं :—

(१) कर्ता और क्रिया का समन्वय, (२) विशेष्य और विशेषण का समन्वय, (३) संबन्धी और संबन्धवाची का समन्वय।

कर्ता और क्रिया का समन्वय

१०. जिसके विषय में कुछ कहा जाता है उसे वाक्य का कर्त्ता कहते हैं और उसे कर्ताकारक में रखते हैं; अंग्रेजी के समान ही क्रिया का 'वचन' और 'पुरुष' उसके कर्ता के अनुसार ही होता है; जैसे—'आसीद्राजा शूद्रको नाम' (काद० ५) 'शूद्रक नाम का राजा था।' 'साधयामो वयम्' (शाकु० १) हम लोग जाते हैं (रास्ता पकड़ते हैं)।

११. 'विधेय' अथवा उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाता है वह, एक प्रधान क्रियापद हो सकता है, जैसा कि ऊपर के उदाहरणों में या तो एक विशेष्य हो सकता है अथवा एक ऐसा विशेषण पद हो सकता है जिसके साथ 'अस्' (होना) धातु का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रयोग हो। ऐसी दशा में विशेष्य पद का प्रयोग अपने स्वाभाविक लिङ्ग में होना चाहिए और केवल उसका कारक ही कर्ता के अनुसार होगा। जैसे—सा कुलपतेरुच्छ्वसितमिव (शाकु० ३) 'वह तो मानो कुलपति का जीवन ही है।' ककुदं वेदविदां (मृच्छ० १) 'जो वेद जानने वालों में श्रेष्ठ हैं।'

द्रष्टव्य—विशेषण का समन्वय पाठ २ में दिया गया है।

(अ) ऐसी दशाओं में प्रयुक्त होने पर क्रिया सदैव कर्ता के अनुसार होती है, जैसे **'तस्मात्सखा त्वमसि'** (उत्तर० ५) इसलिए तुम मित्र हो।

(आ) जब पात्र, आस्पद, स्थान, पद, प्रमाण और भाजन जैसे शब्दों का प्रयोग विधेय के रूप में होता है तो वे सदैव एकवचन और नपुंसकलिङ्ग में होते हैं, चाहे कर्ता किसी भी वचन या लिङ्ग का क्यों न हो; तथा क्रिया चाहे जिस स्थान पर हो कर्ता के अनुसार होती है, विधेयभूत संज्ञा के अनुसार नहीं; जैसे—'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु' (उत्तर०)–गुणियों में गुण ही पूजा की वस्तु होते हैं; 'आर्यमिश्राः प्रमाणं' (मालवि० १) आप ही प्रमाण हैं (आपका विचार मान्य है); 'संपदः पदमापदां' (हितो० १) सम्पत्ति विपत्तियों का घर है, 'त्वमसि महसां भाजनं' (मालती० १) 'तुम्हीं तेज के आश्रय हो, विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानां (मालती० १) अनेक प्रकार से मैं उसकी दृष्टि का लक्ष्य बना। यहां 'गुणाः पूजास्थानमस्ति', 'अहं पात्रमभूत्' कहना गलत होगा, यद्यपि 'स्थान' और 'पात्र' शब्दों को वाक्य में कहीं भी रखा जा सकता है।

१२. 'होना', 'बढ़ना', 'मालूम पड़ना', 'दिखाई पड़ना' जैसी अपूर्ण विधेय वाली क्रियाओं का अर्थ पूरा करने के लिए जिस संज्ञा या विशेषण शब्द का प्रयोग होता है उसे कर्ता कारक (प्रथमा विभक्ति) में रखते हैं। जैसे—'यदि मतं एव ते' (रघु० ३।५१) यदि आपकी यही राय है, प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य (शि० १।४९) 'तीनों लोकों का स्वामी बनने की इच्छा करता हुआ', इसी प्रकार 'भवनक्लिष्टेयमालक्ष्यते' (शाकु० ३)।

(अ) 'पुकारना', 'नाम रखना', 'बनाना', 'समझना', 'सोचना', 'चुनना', 'नियुक्त करना' आदि अपूर्ण विधेयवाली सकर्मक क्रियाओं से कर्मवाच्य बनाने में भी यही नियम लागू होते हैं; जैसे—'कुक्कुरो व्याघ्रः कृतः' (हितो०) 'कुत्ता बाघ बना दिया', 'नायं मूर्खो मन्तव्यः' इसे मूर्ख नहीं समझा जाना चाहिए इत्यादि।

१३. जब कर्ता 'और' (च) से जुड़ी हुई दो या अधिक संज्ञाएँ हों तो क्रिया उन सबके मिले हुए वचन के अनुसार होती है, जैसे—'तयोर्जगृहतुः पादान्राजा राज्ञी च मागधी' (रघु० १।५७) 'राजा और रानी मागधी ने उनके चरण पकड़े।'

(अ) जब संज्ञाओं को एक साथ नहीं लिया जाता, बल्कि प्रत्येक अलग-अलग समझी जाती है अथवा जब वे सभी मिलकर केवल एक विचार का रूप ग्रहण करती हैं तो क्रिया एकवचन में हो सकती है; जैसे—'न मां त्रातुं तातः

प्रभवति न चांबा न भवती' 'पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते' (हितो० १) 'निपुणता और सत्यवादिता बातचीत से ही जानी जाती है।'

(आ) कभी-कभी क्रिया निकटतम कर्ता के अनुसार होती है और अन्य कर्तापदों के साथ उसका संबन्ध जोड़ लिया जाता है; जैसे—'अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मोऽपि जानाति नरस्य वृत्तम्' (पंच० १।४) 'दिन और रात, दोनों सन्ध्याएँ तथा धर्म भी मनुष्य के कर्म को जानता है।'

इसी प्रकार लैटिन में भी (अ) 'Tempus necessitaque *postulat*' समय और आवश्यकता माँग करते हैं, (आ) 'Filia et unuse filiis *captus est*' 'एक पुत्री और पुत्रों में से एक बन्दी बनाया गया।'

१४. 'अथवा' (वा) से जुड़े हुए एकवचन के कर्त्तापदों के साथ एकवचन की क्रिया होती है; जैसे—रामो गोविन्दः कृष्णो वा गच्छतु 'राम गोविन्द या कृष्ण जावे; इसी प्रकार 'शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्याऽसि जगतः' (उत्तर० ४)।

(अ) जब कर्ता शब्द कई भिन्न वचनों के होते हैं तो क्रिया का वचन निकटतम कर्ता के अनुसार होगा; जैसे—ते वाऽयं वा पारितोषिकं गृह्णातु 'वे या यह (व्यक्ति) पुरस्कार ग्रहण करे।'

५५. जब दो या दो से अधिक विभिन्न पुरुषों वाले कर्ता शब्द 'और' (च) द्वारा संयुक्त होते हैं तब क्रिया उन सबके मिले हुए वचन के अनुसार होती है और उसका पुरुष उत्तम, मध्यम तथा अन्य पुरुष के योग में उत्तम पुरुष और मध्यम तथा अन्यपुरुष की कर्ताओं के योग में मध्यमपुरुष होता है जैसे—त्वं चाहं च पचावः (महाभाष्य)—तू और मैं पकाते हैं। इसी प्रकार ते किंकरा अहं च श्वो ग्रामं प्रतिष्ठेमहि 'वे सेवक और मैं कल गाँव को प्रस्थान करेंगे' त्वं चैव सोमदत्तिश्च कर्णश्चैव···तिष्ठत (महा० ७।८७।१२) 'तू, सोमदत्ति और कर्ण रहें।'

इसी प्रकार लैटिन में : 'Si tu et Tullia Iux nostra *valetis*, ego et suavissimus Cicero *valemus*' यदि तू और मेरा प्रिय तुल्लिया अच्छे हैं तो उसी प्रकार मैं हूं और मेरा प्रियतम सिसरो भी।'

१६. जब विभिन्न पुरुषों के दो या दो से अधिक कर्ता पद अथवा ('वा') से जुड़े हों तब क्रिया का वचन तथा पुरुष निकटतम कर्ता के अनुसार होते हैं; जैसे—उसने या तुम लोगों ने यह कार्य किया है—'स वा यूयं वैतत्कर्माकुरुत';

वे या हम इस कठिन कार्य को कर सकते हैं—ते वा वयं वेदं दुष्करं कार्यं संपादयितुं शक्नुमः ।

१७. जब दो या अधिक कर्ता पद किसी सर्वनाम या संज्ञा के समानाधिकरण होते हैं, तब विधेय सर्वनाम या संज्ञा के अनुसार होता है; जैसे—माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्त्रितयं हितम्' (हितो० १) माता, मित्र और पिता, (ये) तीनों स्वभाव से ही हितचिन्तक होते हैं ।

अभ्यास

१. उर्वशी सुकुमारं प्रहरणं महेन्द्रस्य । प्रत्यादेशो रूपगर्वितायाः श्रियः । अलंकारः स्वर्गस्य । (विक्रमो० १)
२. सर्वत्रौदरिकस्याभ्यवहार्यमेव विषयः । (विक्रमो० ३)
३. हा कथं महाराजदशरथस्य धर्मदारः प्रियसखी मे कौसल्या । क एतत्प्रत्येति सैवेयमिति । (उत्तर० ४)
४. सार्थवाहस्यार्थपतेर्विमर्दको बहिश्चराः प्राणाः । (दश० २१२)
५. ममापि दुर्योधनस्य शंकास्थानं पाण्डवाः । (वेणी० २)
६. त्वं चाहं च वृत्रहन्नुभौ संप्रयुज्यावहै । (म० भाष्य)
७. प्रवृद्धं यद्वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभि-
न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम् ॥ (वेणी० १)
८. त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे । (उत्तर० ३)
९. बलवानपि निस्तेजाः कस्य नाभिभवास्पदम् ।
निःशंकं दीयते लोकैः पश्य भस्मचये पदम् ॥ (हितो० २)
१०. तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः । (उत्तर० १)
११. इक्ष्वाकुवंश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत् । (रघु० ६।७१)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. अस्ति तावदेकदा प्रसंगतः कथित एव मया माधवाभिधानः कुमारो यस्त्वमिव मामकीनस्य मनसो द्वितीयं निबन्धनम् । (मालती० ३)
२. एकस्मिञ्जीर्णकोटरे जायया सह निवसतः पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य कथमपि पितुरहमेवैको विधिवशात्सूनुरभवम् । (काद०)

३. देव, काचिच्चण्डालकन्यका शुकमादाय देवं विज्ञापयति । सकलभुवनतल-सर्वरत्नानामुदधिरिवैकभाजनं देवः । विहंगमश्चायमाश्चर्यभूतो निखिलभुवनतल-रत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमागताहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुमिति । (काद० ८)

४. आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥ (हितो० १)

५. रहस्यभेदो याच्ञा न नैष्ठुर्यं चलचित्तता ।
क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतन्मित्रस्य दूषणम् ॥ (हितो० १)

६. अदेयमासीत्त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे । (रघु० ३।१६)

६. निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च । (रघु० ६।२६)

८. व्यतिकरितदिगन्ताः श्वेतमानैर्यशोभिः
सुकृतविलसितानां स्थानमूर्जस्वलानाम् ।
अकलितमहिमानः केतनं मंगलानां
कथमपि भुवनेऽस्मिंस्तादृशाः संभवन्ति ॥ (मालती० २)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१. वंग के राजा ने युद्ध में प्राण त्याग दिये ।
२. जब उस स्त्री ने वह भयंकर दृश्य देखा तो उसके हाथ-पैर काँपने लगे ।
३. हे गोविन्द ! तू मेरा प्राण, मेरा आनन्द, मेरे गौरव का पात्र, और मेरा सम्पूर्ण संसार है ।
४. वे बिना अपने किसी अपराध के सन्देह के पात्र हो गये ।
५. भली पत्नियाँ सभी धार्मिक कर्मों का मुख्य कारण होती हैं ।
६. हे राजा ! भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, आप, शक्तिशाली भोज, शकुनि, द्रौणि और मैं आपकी सेना हूँ ।
७. जब वह अपने घोड़े पर से गिरा तब राम, गोपाल और हम दोनों उपस्थित थे ।
८. तुम और कृष्ण इस कार्य को समाप्त करने की कोशिश क्यों नहीं करते ? क्या यह बहुत कठिन है ?
९. आज्ञापालन, सत्यवादिता, अभिमानशून्यता और अपना कार्य करने में परिश्रमशीलता—ये सेवक के गुण होते हैं ।

१०. तुमने, राम ने और मैंने दण्डकवन में सुखपूर्वक समय बिताया ।

११. सम्पत्ति इस संसार में अनेक विपत्तियों का कारण है ।

१२. हरि का पुत्र परशुराम अपनी कक्षा का रत्न और अपने वंश का भूषण है ।

१३. वह व्यक्ति या ये लड़के इस फल को लें ।

१४. हरि और मैं या तुम और कृष्ण इस कार्य को कर सकते हो; न तो गोपाल और न उसके छोटे भाई इसे कर सकते हैं ।

१५. तुम दोनों, पुष्पमित्र के तीनों नौकरों और दो अन्य व्यक्तियों को राजदरबार में जाना चाहिए ।

पाठ २

विशेष्य और विशेषण का समन्वय

१८. अंग्रेजी भाषा में सभी लिङ्गों, वचनों और कारकों में विशेषण पद का प्रयोग एक ही रूप में बिना किसी परिवर्तन के होता है; जैसे a good man, good tables, I saw a good horse इत्यादि। इसके विपरीत, संस्कृत में सभी विशेषण पद चाहे वे कृत्यप्रत्ययों से बने हों, सार्वनामिक हों या साधारण हों, उसी लिङ्ग, वचन और कारक में रहते हैं जिनमें विशेष्य (जिसकी वे विशेषता बताते हैं) होता है, जैसे--गच्छन्ती नारी, का तृप्तिः, तत्सुखम्, शोभनानि गृहाणि, अच्छे घर, शोभनेभ्यो गृहेभ्यः अच्छे घरों से, शोभनाभ्यो वापीभ्यः अच्छे कुओं से, हरिं पश्यन् मुच्यते इत्यादि। संस्कृत में वस्तुतः विशेषण पद के संज्ञा पद के समान ही सभी कारकों, लिङ्गों और वचनों में रूप चलते हैं।

द्रष्टव्य—संख्यावाचक विशेषण साधारण विशेषणों से भिन्न होते हैं। उनके प्रयोग के विशिष्ट नियम हैं, जिनके लिए व्याकरण की पुस्तकें देखिए।

१९. जब विशेषणों का प्रयोग समानाधिकरण या बहुव्रीहि समासों में होता है, तब वे अपने मौलिक एवं अपरिवर्तित रूप में ही प्रयुक्त होते हैं, जैसे 'कृष्णमृग' 'काला हरिण' रक्तनेत्रा' 'लाल आँखों वाली' (स्त्री०); रूपवद्भार्या 'सुन्दर पत्नी'; गृहीतधनुः ग्रहण किया गया धनुष, 'अन्यसंक्रान्तहृदयो नरः' ऐसा पुरुष जिसका हृदय दूसरी (स्त्री) में आसक्त हो इत्यादि।

(अ) उपर्युक्त नियम के कुछ अपवाद भी हैं। जब स्त्रीलिङ्ग विशेषण अभिधान रूप में व्यवहृत होता है, जब संख्यावाचक स्त्रीलिङ्ग विशेषण पद समास का पूर्वपद हो अथवा जब पूर्वपद किसी जाति का नाम हो तब स्त्रीलिङ्ग सूचक प्रत्यय बना रहता है उसका लोप नहीं होता, जैसे—दत्ताभार्यः, पञ्चमीभार्यः, शूद्राभार्यः इत्यादि; इसी प्रकार सुकेशीभार्यः, स्रोघ्नीभार्यः। इससे अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए सिद्धान्तकौमुदी में पाणिनीय सूत्र ६।३।३४—४१ की व्याख्या देखिए।

२०. जब कृत्प्रत्ययों से बने हुए विशेषण, जैसे क्त, क्तवतु और तव्य, अनीय, यत्, ण्यत् कृदन्त, विधेय के रूप में प्रयुक्त होते हैं और उद्देश्य के बाद विधेय रूप में समानाधिकरण संज्ञा आती है तो कृदन्त का रूप उद्देश्य के अनुसार होता

है (देखिए ऊपर अधिकरण ११); जैसे—मालविकोपायनं प्रेषिता (मालवि० १) मालविका उपहार (रूप में) भेजी गई।

२१. जब एक ही विशेषण दो या दो से अधिक विशेष्यों को विशेषता बतलाता है तब उस विशेषण का वचन उन सभी विशेष्यों के संयुक्त वचन के अनुसार होता है। जहाँ तक ऐसी स्थिति में विशेषण के लिङ्ग का प्रश्न है, जब विशेष्य पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग होते हैं तो विशेषण का रूप पुंलिङ्ग होता है और जब विशेष्य पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग होते हैं तो विशेषण नपुंसकलिङ्ग होगा; जैसे—पक्षपातिनावनयोरहं देवी च (मालवि० १) मैं और रानी (क्रमशः) इन दोनों के पक्षपाती हैं; तस्मिन्सत्यं धृतिर्ज्ञानं तपः शौचं दमः शमः। ध्रुवाणि पुरुषव्याघ्रे लोकपालसमे नृपे॥ (महा० ३।५८।१०), सत्य, धैर्य, ज्ञान, तपस्या, पवित्रता, इन्द्रिय-संयम और शान्ति मनुष्यों में श्रेष्ठ तथा लोकपालों सरीखे उस राजा में कूट-कूट कर भरे हैं।

द्रष्टव्य—यह नियम पाणिनि-सूत्र १।२।७२ 'त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्' के आधार पर बना है; इस सूत्र पर वार्तिक में कहा गया है—त्यदादितः शेषे पुंनपुंसकतो लिंगवचनानि; सा च देवदत्तश्च तौ; तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ता च तानि, तच्च देवदत्तश्च ते।

इसी प्रकार लैटिन में भी :—'Pater mihi et mater *mortui sunt*', मेरे पिता और माता मर गये हैं।

२२. किन्तु संस्कृत में विशेषण शब्द प्रायः अपने निकटतम विशेष्य के अनुसार होता है; जैसे—यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च (उत्तर० १) जिसके पराक्रम से हम और सभी लोक सुखी बना दिये गये हैं (भुवनानि कृतीनि) कामश्च जृम्भितगुणो नवयौवनं च (मालती० १) काम ने अपनी शक्ति दिखाई और नई युवावस्था ने भी। यहां हमें 'लिङ्गविपरिणाम' की विधि को ध्यान में रखना चाहिए; अर्थात् दूसरे विशेष्य के अनुसार विशेषण का लिङ्ग समझ लेना चाहिए।

सम्बन्धवाची और सम्बन्धी का समन्वय

२३—संस्कृत में संबन्धवाचक सर्वनाम और उसके संबन्धी के समन्वय के विषय में कोई विलक्षण विशेषता नहीं है। संबन्धवाचक सर्वनाम का लिङ्ग, वचन और पुरुष उसके संबन्धी के अनुसार ही होते हैं और सम्बन्धवाचक के

कारक का निर्णय इसके उपवाक्य के साथ सम्बन्ध के आधार पर होता है (अर्थात् उसका अपने उपवाक्य के साथ जैसा संबन्ध होगा उसके अनुसार ही उसका कारक होगा ।) संस्कृत के अन्य सर्वनामों के समान यह या तो स्वतन्त्ररूप से रह सकता है या विशेषण के रूप में प्रयुक्त हो सकता है । प्रायः सम्बन्धवाचक सर्वनाम उस संज्ञा के पहले आता है, जिसके साथ यह सम्बन्धवाचक-उपवाक्य में संवद्ध होता है । अथवा सम्बन्धवाचक अकेला भी रह सकता है और ऐसी स्थिति में सम्बन्धी संज्ञा का प्रयोग संकेतवाचक सर्वनाम के साथ होता है; और कभी-कभी सम्बन्धी संज्ञा की बिल्कुल ही विवक्षा नहीं होती है, **अन्तर्यो मृग्यते स स्थाणुर्वो निःश्रेयसायास्तु** (विक्रमो० १) वह स्थाणु जिन्हें अन्तःकरण में ढूँढ़ा जाता है, तुम्हें सर्वोच्च सुख प्रदान करें । **बुद्धिर्यस्य बलं तस्य** (पंच० १।६) जिसके पास बुद्धि है उसी के पास बल है (ज्ञान ही शक्ति है ; **धिगस्मान् सर्वान्ये एकाकिना बटुना सह युध्यामहे** 'हम सब को धिक्कार है जो अकेले बालक के साथ युद्ध कर रहे हैं ।'

२४. जब सम्बन्धवाचक सर्वनाम का विशेष्य कोई ऐसा विशेष्य पद होता है जो सम्बन्धीपद से भिन्न लिङ्ग का हो, तब सम्बन्धवाचक सर्वनाम साधारणतः विधेय के अनुसार होता है; जैसे—**शैत्यं हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य** (रघु० ५।५४) जो शीतलता है वह जल का प्राकृतिक गुण है, इसी प्रकार **मातुस्तु यौतकं यत् स्यात् कुमारीभाग एव सः** (मनु० ६।१३१)

द्रष्टव्य—इन उदाहरणों से यह देखा जा सकता है कि सम्बन्धवाचक सर्वनाम का लिङ्ग उस संज्ञा के अनुसार ही होता है, जिसकी वह विशेषता बताता है । किन्तु पाणिनि ने सूत्र १।४।३२ में **'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्'** में 'स सम्प्रदानम्' प्रयोग किया है 'तत् सम्प्रदानम्' नहीं ।

२५. जब सम्बन्धवाचक सर्वनाम एक पूरे वाक्य के लिये प्रयुक्त होता है जैसा कि अंग्रेजी में 'that', तब इसे सदैव नपुंसकलिङ्ग एकवचन में रखते है (यत्); जैसे—**ननु वज्रिण एव वीर्यमेतद्विजयन्ते द्विषतो यदस्य पक्ष्याः** (विक्रमो० १) 'क्या यह सचमुच इन्द्र का पराक्रम नहीं है कि उसके मित्र लोग अपने शत्रुओं को परास्त कर देते हैं ?' मम तु यदियं याता लोके विलोचनचन्द्रिका । नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः । (मालती० १) किन्तु यह कि वह मेरे नेत्रों की चाँदनी मेरे दृष्टिपथ में आई, मेरे सम्पूर्ण जीवन का एकमेव महान् उत्सव (आनन्द का अवसर) है ।

ऐसी दशाओं में मुख्य वाक्य में संकेतवाचक सर्वनाम का लिङ्ग सम्बन्धी संज्ञा के अनुसार ही होता है (महोत्सवः); 'यत्' नपुंसकलिङ्ग है अतः वह भी नपुंसकलिङ्ग में हो, ऐसी बात नहीं होती।

अभ्यास

१. तयैव देवतया तयोः कुशलवाविति नामनी प्रभावश्चाख्यातः। (उत्तर० २)

२. यदेते चन्द्रसरोरचकार-स्त्वया निःसारितास्तदनुचितं कृतम्। (हितो० ३)

३. यस्मिन्नेवाधिकं चक्षुरारोपयति पार्थिवः।
अकुलीनः कुलीनो वा स श्रियो भाजनं नरः॥ (पंच० १।८)

४. कृताः शरव्यं हरिणा तवासुराः।
शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम्॥ (शाकु० ६)

५. स सुहृद् व्यसने यः स्यात् स पुत्रो यस्तु भक्तिमान्।
स भृत्यो यो विनेयज्ञः सा भार्या यत्र निर्वृतिः॥ (पंच० १।१५)

६. पाण्डवाश्च महात्मानो द्रोपदी च यशस्विनी।
कृतोपवासाः कौरव्य प्रययुः प्राङ्मुखास्ततः॥ (महा० १७।१।२६)

७. धर्मः कामश्च दर्पश्च हर्षः क्रोधः सुखं वयः।
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते न संशयः॥ (रामा० ६।६२।३७)

८. उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ॥ (रघु० ३।२३)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. धन्या सा याऽऽर्यपुत्रेण बहु मन्यसे या चार्यपुत्रं विनोदयन्त्याशानिबन्धनं जाता जीवलोकस्य। (उत्तर० ३)

२. सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता
यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य जातः। (उत्तर० ३।१५)

३. न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः
नाहं न जनको नाग्निर्नानुवृत्तिर्न सन्ततिः॥ (उत्तर० ७।५)

४. यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयुज्यते॥ (उत्तर० १।२)

५. चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्द्धानो रणे हताः ॥ (उत्तर० २।१५)

६. रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी ।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः ॥ (हितो० १)

७. मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः
पात्रं यत् सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद् दुर्लभम् ।
ये चान्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुला-
स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत् ॥ (हितो० १)

८. यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स हि पण्डितः ॥ (हितो० १)

९. हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुत्कल्पितं
व्यालानां पशवस्तृणाङ्कुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः ।
संसारार्णवलंघनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां
यामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः ॥ (भर्तृ० ३।१०)

१०. महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः ।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया ॥ (रघु० १०।३२)

११. यस्मिन् सत्यं च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे ।
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ॥ (महा० ६।६।२६)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१. इस नगर में बहुत से भले आदमी हैं किन्तु कुछ बुरे, दुष्ट और संकीर्ण विचार वाले व्यक्ति उनसे घृणा करते हैं ।

२. पाटलिपुत्र के राजा और उनकी रानी दोनों बड़े उदार हैं ।

३. कल मैंने तीन सुन्दर पोखरे, छः गहरे कुएँ और छप्पन बड़े उपवन देखे ।

४. जो अपने अपराध को छिपाने के लिए झूठ बोलता है वह दो अपराध करता है ।

५. तुम ऐसी बात कहते हो यह निश्चय ही आश्चर्यजनक है ।

६. मनुष्य को सर्वदा सदाचारी होना चाहिए, ऐसा पुराने और अर्वाचीन सभी दार्शनिकों का मत है ।

७. ये मीठे आम मेरे छोटे भाई द्वारा उपहार रूप में भेजे गये हैं (कृत् प्रत्यय से बने विशेषण का प्रयोग कीजिए)।

८. दुष्ट व्यक्ति लोग सदाचारी से घृणा करें, वह तो उनका जन्मजात स्वभाव है।

९. वे व्यक्ति जो प्रत्युत्पन्नमति हैं, कठिनाइयों को पार कर सकते हैं।

१०. इस घटना के कारण मैं उनकी ईर्ष्या का पात्र हो गया। (जन् धातु से विशेषण बनाकर प्रयोग कीजिए)।

११. धैर्य, अध्यवसाय और ईमानदारी सदा श्लाघनीय हैं, किन्तु अधैर्य, तन्द्रा और बेइमानी निन्द्य हैं।

पाठ ३
कर्मकारक

२६. अब हम दूसरे प्रमुख सिद्धान्त 'संनियम' पर आते हैं। 'संनियम' वह सिद्धान्त है जो शब्दों के वाक्यों में व्याकरणीय संयोग का नियमन करता है। 'संनियम' वह शक्ति है जिससे कोई शब्द किसी संज्ञा या सर्वनाम के कारक की व्यवस्था करता है। इस खण्ड के पाठों में इस शक्ति को समझाया जायगा और उनके उदाहरण दिये जायँगे।

२७. वाक्य में किसी संज्ञा पद और क्रिया के बीच जो सम्वन्ध होता है उसे ही 'कारक' कहा गया है। इस प्रकार ऐसे शब्दों के सम्वन्ध को जो क्रिया से सम्वद्ध नहीं हैं, 'कारक' नहीं कहा जायगा। संस्कृत में छः कारक होते हैं :—कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण। 'सम्बन्ध' कारक नहीं होता (कारण इसका सम्बन्ध क्रिया से नहीं होता)। ('कारक' और 'विभक्ति' को पर्यायवाची नहीं समझना चाहिए; कर्तृवाच्य के वाक्य में जिसमें कर्ता प्रधान होता है, कर्ता प्रथमा विभक्ति में होता है, परन्तु कर्मभाववाच्य में कर्ता अप्रधान होता है और तृतीया विभक्ति में रखा जाता है जैसे 'रावणः रामेण हतः' अतः ऐसा समझना कि कर्ता प्रथमा विभक्ति में ही होता है, भ्रम होगा) 'कर्ता' का अर्थ है 'करनेवाला' अर्थात् क्रिया के सम्पादन में प्रधान सहायक। अन्य भाषाओं के समान संस्कृत में भी प्रथमाविभक्ति का प्रयोग नाम का संकेत करने के लिए होता है और इसका सम्बन्ध 'अभिधान' से होता है। पाणिनि सूत्र २।३।४६ (प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा) के के अनुसार प्रथमाविभक्ति का प्रयोग किसी शब्द के मूल (विभक्ति प्रत्यय-रहित) रूप के, लिङ्ग, परिमाण और वचन मात्र को बताने के लिए होता है, जैसे-नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानं, तटः, तटी, तटम्, द्रोणः ब्रीहिः, एकः, द्वौ, बहवः, इत्यादि।

टिप्पणी—अनेक अव्यय पदों के योग में संज्ञा पद में किसी न किसी विभक्ति का प्रयोग होता है, और ऐसी विभक्तियों को **उपपदविभक्ति** अर्थात् अव्यय पदों से सम्बद्ध विभक्ति, कहते हैं। उपपदविभक्ति **कारकविभक्ति** से भिन्न होती है,

क्योंकि कारकविभक्ति क्रिया के साथ सम्बन्ध बताती है, जैसे—नमो नृसिंहाय, मामन्तरा, जहां दोनों विभक्तियाँ सम्भव होती हैं वहाँ कारकविभक्ति का ही प्रयोग होता है। (**उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी**)

२८. जिस व्यक्ति या वस्तु पर किसी क्रिया का फल पड़ता है वह उस क्रिया या व्यापार का कर्म कहलाता है। कर्मवाच्य को छोड़कर शेष सभी दशाओं में 'कर्म' द्वितीया विभक्ति में रखा जाता है, जैसे—स **हरिमपश्यत्** 'उसने हरि को देखा'; ओदनं बुभुक्षुर्विषं भुङ्क्ते 'भात खाने की इच्छा करता हुआ विष खाता है'। यहाँ 'हरि' और 'विष' क्रमशः 'अपश्यत्' और 'भुङ्क्ते' क्रियाओं के कर्म हैं। किन्तु हरिः **सेव्यते** में कर्मवाच्य का रूप 'सेव्यते' 'हरि' और 'सेव' के बीच कर्म और क्रिया के सम्बन्ध को व्यक्त करता है; और इसलिये 'हरि' को द्वितीया विभक्ति में रखने की आवश्यता नहीं; किन्तु 'हरिं सेवते' में कर्मवाच्य का प्रत्यय न होने से संज्ञाशब्द 'हरि' को द्वितीया विभक्ति में रखा गया है।

२९. 'नाम रखना', 'चुनना'; 'बनाना', नियुक्त करना', 'पुकारना', 'जानना' 'समझना' इत्यादि तथा इनके समान अर्थ वाली धातुओं के साथ दो कर्म आते हैं, अर्थात् एक प्रत्यक्ष कर्म तो होता ही है एक अप्रत्यक्ष कर्म और होता है, जैसे—**त्वामामनन्ति प्रकृतिं** (कुमार० २।१३) 'वे तुझे प्रकृति समझते हैं'; **कामपि गणिकामवरोधमकरोत्** (दश० २।६) 'किसी वेश्या को अपनी पत्नी बना लिया'; **जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं** (मेघ० ६) 'मैं तुम्हें प्रधान व्यक्ति (मन्त्री) जानता हूँ।

३०. सभी गत्यर्थक क्रियाओं के योग में द्वितीया विभक्ति होती है; जैसे—**गतोऽहं कामदेवायतनम्** (मालती० १) 'मैं कामदेव के मन्दिर में गया;' **अहमपि महीमटन्** (दशकु० २।२) 'मैं भी पृथ्वी पर घूमता हुआ'; **यमुनाकच्छमवतीर्णः** (पंच० १।१) 'यमुना के किनारे उतरा'; इसी प्रकार **विचचार दावं** (रघु० २।८) किन्तु कभी-कभी गमन की क्रिया वास्तविक नहीं होती, अपितु काल्पनिक होती है; ऐसे स्थलों पर गति के अर्थ को अनेक मुहावरों द्वारा अभिव्यक्त करते हैं, जैसे—**परं विषादमगच्छत्** (पंच० १।१) 'अत्यन्त दुःख को पहुँचा'; **अश्वत्थामा किं न यातः स्मृतिं ते** (वेणी० ३) 'क्या अश्वत्थामा तुम्हारी याद में नहीं आया'?, **पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम** (कुमार० १।२६) 'आगे चलकर उस सुन्दर मुख वाली ने 'उमा' नाम पाया

(अर्थात् उमा नाम से प्रसिद्ध हुई)', इसी प्रकार 'नरपति हितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके' (पंच० १।२); न तृप्तिमाययौ (रघु० ३।३)

(अ) सामान्यत: जब अकर्मक धातुओं के पहले उपसर्ग लग जाते हैं तो उनका अर्थ सकर्मक धातु का हो जाता है और तब उनके योग में द्वितीया विभक्ति आती है; जैसे—वृत् = 'होना, अनुवृत्='किसी के अनुसार कार्य करना'' 'अनुगमन करना'; यथा—**प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते** (शिशु० १५।४१) 'लोग अपने राजा के चित्त का अनुसरण करते हैं', **अचलतुङ्गशिखरमारुरोह**' (काद० १२०) 'पर्वत के ऊँचे शिखर पर चढ़ा'; इसी प्रकार **यन्ता गजस्याभ्यपतद् गजस्थं** (रघु० ७।३७) **नोत्पतति वा दिवं** (काद० १३२); **ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति** (उत्तर० १)

३१. जब[1] **'शी'** (सोना), **'स्था'** (खड़ा होना) और **'आस्'** (बैठना) धातुओं के पहले **'अधि'** उपसर्ग आता है तो जिस स्थान पर ये क्रियाएँ होती हैं उसमें द्वितीया विभक्ति लगती है; जैसे—**चन्द्रापीडो मुक्ताशिलापट्टमधिशिश्ये** (काद० २०६) 'चन्द्रापीड मुक्ताशिला की पटिया पर सो गया'; **अर्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ** (रघु० ६।७३) 'इन्द्र के आधे आसन पर बैठे'; **अध्यास्य पर्णशालां** (रघु० १।६५) 'पत्तियों की बनी कुटिया में बैठकर'।

(अ) [2]अभि और नि उपसर्गों के साथ **'विश्'** धातु के योग में भी आधार में द्वितीयाविभक्ति होती है; जैसे—**अभिनिविशते सन्मार्गम्** (सि० कौ०) 'वह अच्छे मार्ग का आश्रय लेता है'; इसी प्रकार **भयं तावत्सेव्यादभिनिविशते सेवकजनं** (मुद्रा० ५)

३२. जब[3] **'वस्'** (निवास करना, रहना) धातु के पहले **'उप'** अनु **'अधि'** या **'आ'** उपसर्ग लगे होते हैं तो निवासस्थान में कर्मकारक होता है; जैसे—**उपवसति (अनुवसति, आवसति, या अधिवसति) वैकुण्ठं हरिः** (सि० कौ०) 'हरि वैकुण्ठ (स्वर्ग) में निवास करते हैं।'

---

१. अधिशीङ्स्थासां कर्म (१।४।४६)।
२. अभिनिविशश्च। (१।४।४७)।
३. उपान्वध्याङ्वसः। (१।४।४८)।

३३. [1]उभयतः, सर्वतः, धिक् तथा निकटता का अर्थ देने वाले उपर्युपरि, अधोधः, अध्यधि और प्रति '(ओर)' के योग में द्वितीया विभक्ति होती है; जैसे--उभयतः कृष्णम् गोपाः (सि० कौ०) 'कृष्ण के दोनों ओर ग्वाले हैं'; सर्वतः कृष्णं—'कृष्ण के सब ओर'; उपर्युपरि लोकं हरिः (सि० कौ०)--'हरि संसार के ठीक ऊपर हैं', ? अधोऽधो लोकं 'संसार के ठीक नीचे'; धिग्जाल्मान् (उत्तर० ५) 'धूर्तों को धिक्कार है'; न मे संशीतिरस्या दिव्यतां प्रति (काद० १३२) 'उसके अलौकिक होने के विषयमें मुझे सन्देह नहीं है'; इसी प्रकार बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित् (महाभाष्य) । जब निकटता का अर्थ नहीं होता है तो षष्ठी का प्रयोग किया जा सकता है; जैसे--उपर्युपरि सर्वेषामादित्य इव तेजसा (महा०)--अपने तेज से सबके ऊपर सूर्य के समान ।

(अ) धिक् के साथ कभी-कभी प्रथमा विभक्ति या सम्बोधन का भी प्रयोग होता है; जैसे--धिङ् मूढ 'मूर्ख, तुझे धिक्कार है'; धिगियं दरिद्रता (पंच २) 'इस निर्धनता को धिक्कार है ।'

३४. [2]अभितः परितः (दोनों का अर्थ होता है 'चारों ओर'), समया, निकषा (दोनों का अर्थ होता है 'निकट) तथा 'हा' (शोक है'), प्रति (ओर) शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है; जैसे–परिजनो राजानमभितः स्थितः (मालवि० १)—'भृत्य राजा के चारों ओर खड़े हो गये'; रक्षांसि वेदीं परितो निरास्थत (भट्टि० १।१२) वेदी के चारों ओर (बैठे हुए) राक्षसों को नष्ट किया'; ग्रामं समया,—निकषा (सि० कौ०) 'गाँव के पास'; इसी प्रकार निकषा सौधभित्तिं (दश०;) (पयोधिं) विलंघ्य लङ्कां निकषा हनिष्यति (शिशु० १।६८) हा कृष्णाभक्तं 'जो कृष्ण का भक्त नहीं है उसे धिक्कार है ।' कभी-कभी 'हा' के योग में सम्बोधन का प्रयोग होता है; जैसे—हा भगवत्यरुन्धति (उत्तर० १) हा ! देवी अरुन्धति !'

३५. [3]'अन्तरेण' (जिसका अर्थ 'विना', 'छोड़कर', 'सन्दर्भ में', 'विषय में' होता है) के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है; जैसे—कोन्यस्त्वामन्तरेण

---

१. उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु ।
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ।। (वार्तिक)

२. अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि (वार्तिक)

३. अन्तरान्तरेण युक्ते । (२।३।४)

शक्तः प्रतिकर्त्तुं (वेणी० ३) 'तुम्हारे अतिरिक्त और कौन प्रतिकार कर सकता है ? भवन्तमन्तरेण कीदृशोऽस्या दृष्टिरागः (शाकु० २) 'आपके विषय में उसके नेत्रों का प्रेम कैसा है ?'

(अ) इसी प्रकार अन्तरा ('बीच में') के योग में द्वितीया विभक्ति होती है; **अन्तरां त्वां च मां च कमण्डलुः** (महाभाष्य); **पञ्चालास्तव पश्चिमेन त इमे वामा गिरां भाजनास्त्वद्दृष्टेरतिथीभवन्तु यमुनां त्रिस्रोतसं चान्तरा** (बाल० १०)

३६. समय की अवधि या भूमि की दूरी बताने वाले शब्दों को द्वितीया विभक्ति में रखा जाता है; जैसे—**न ववर्ष वर्षाणि द्वादश दशशताक्षः** (दश० २।६) 'सहस्र नेत्रों वाले इन्द्र ने बारह वर्ष तक वृष्टि नहीं की'; **क्रोशं कुटिला नदी** (सि० कौ०) 'नदी एक कोस तक टेढ़े मेढ़े बहती है'; **सभा वैश्रवणी राजन् शतयोजनमायता** (महा० २।१०।१) 'हे राजन्, विश्रवण की सभा १०० योजन लम्बी है ।

३७. कभी-कभी 'अनु' के योग में द्वितीया विभक्ति होती है, जब कि 'अनु' का अर्थ 'पीछे', 'फलस्वरूप' या 'किसी के द्वारा सूचित होना', समान होना' या 'अनुकरण करना' होता है; जैसे—जपमनु प्रावर्षत् (सि० कौ०) 'जप के बाद वर्षा हुई'; 'सर्वं मामनु ते' (विक्रमो० ४) 'तुम्हारी हर एक चीज मेरे जैसी है । (मेरे अनुरूप है) ।'

द्रष्टव्य—पाणिनि ने 'अभि' का 'पहले', 'बिल्कुल निकट', 'में' के अर्थ में; 'उप' का 'पास' होने के अर्थ में; 'अति' का 'बढ़कर' के अर्थ में तथा 'अनु' का 'किनारे', 'साथ-साथ' 'हीन' अर्थ में उन उपसर्गों के वर्ग में उल्लेख किया है जिनका प्रयोग स्वन्तत्र रूप में (अर्थात् विना क्रिया के योग में) होता है और जिनके योग में द्वितीया विभक्ति होती है; जैसे—हरिमभिवर्तते, भक्तो हरिमभि, उप हरिं सुराः, अति देवान् कृष्णः, नदीमन्वसिता सेना, अनु हरिं सुराः, इत्यादि (सि० कौ०) । स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त होने वाले और किसी संज्ञाशब्द के कारक का नियमन करने वाले उसर्गों को **कर्मप्रवचीय** कहते हैं ।

अभ्यास

१. धारिणीभूतधारिण्योर्भव भर्ता शरच्छतम् । (मालवि० १)

२. बिन्दूत्क्षेपान् पिपासुः परिपतति शिखी भ्रान्तिमद्वारियन्त्रम् । (मालवि० २)

३. मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति । (शाकु० १)

४. एषा मे मनोरथप्रियतमा सुकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्य:-मन्वास्यते । (शाकु० ३)

५. सागरं वर्जयित्वा, कुत्र वा महानद्यवतरति । क इदानीं सहकार-मन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते । (शाकु० ३)

६. स राजर्षिरिमानि दिवसानि प्रजागरकृशो लक्ष्यते । (शाकु० ३)

७. धिङ् मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम् । (शाकु० ६)

८. धिगिमां देहभृतामसारताम् । (रघु० ८।५१)

९. इत्थान्देशान् विचर जलद प्रावृषा संभृतश्री: । (मेघ० ११८)

१०. कृतकार्यमिदं दुर्गं वनं व्यालनिषेवितम् ।
यदध्यास्ते महाराजो राम: शस्त्रभृतां वर: ॥ (रामा० २।९८।१३) ।

११. धिक् प्रहसनम् । अयमृष्यश्रृङ्गाश्रमादरुन्धतीपुरस्कृतान् महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान् वसिष्ठ: प्राप्त: । तत्किमेवं प्रलपसि ।
(उत्तर० ४)

१२. तत्र च निखिलधरणितलपर्यटनखिन्नस्य निजबलस्य विश्रामहेतो: कतिपयान् दिवसानतिष्ठत् । (काद० ११९)

१३. अस्यां वेलायां किं नु खलु मामन्तरेण चिन्तयति वैशम्पायन इति चिन्त-यन्नेव स निद्रां ययौ । (काद० १७८)

१४. अमी वेदिं परित: क्लृप्तधिष्ण्या: समिद्वन्त: प्रान्तसंस्तीर्णदर्भा:
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर्वैतानास्त्वां वह्नय: पावयन्तु ॥ (शाकु० ४)

१५. शक्रस्य दिव्या सभा—

विस्तीर्णा योजनशतं शतमध्यर्द्धमायता ।
वैहायसी कामगमा पंचयोजनमुच्छ्रिता ॥ (महा० २।७।३)

१६. रम्यां रघुप्रतिनिधि: स नवोपकार्यां
बाल्यात्परामिव दशां मदनोऽध्युवास । (रघु० ५।६३)

१७. तस्य पुत्रो महातेजा: संप्रत्येष पुरीमिमाम् ।
आवसत्परमप्रख्य: सुमतिर्नाम दुर्जय: ॥ (रामा० २।४७।७)

१८. क्रमेण सुप्तामनु संविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत् । (रघु० २।२४)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः। तदस्या देवीं वसुमतीमन्तरेण महदुपालम्भनं गतोऽस्मि। (शाकु० ५)

२. कथय कथमियन्तं कालमवस्थिता मया विना भवती। (विक्रमो० ४)

३. भावप्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लंकासमरसुहृदो महात्मानः प्लवंगराक्षसा नानादिगन्तागता ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च येषामाराधनायेयतो दिवसानुत्सव आसीत्। (उत्तर० १)

४. विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना
त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम्। (कुमार० ५।८१)

५. धिग्विधातारमसदृशसंयोगकारिणम्। (काद० १२)।

६. आर्य, आर्यं प्रणिपत्य देवश्चन्द्रगुप्तो विज्ञापयति क्रियान्तरान्तरायमन्तरेणार्यं द्रष्टुमिच्छामीति। (मुद्रा० ३)

७. मन्दोप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः।
पङ्कच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः॥ (मालवि० २)

८. भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहम्। (मेघ० १०२);

९. अथाधिशिष्ये प्रयतः प्रदोषे रथं रघुः कल्पितशस्त्रगर्भम् : (रघु० ५।२८)

१०. मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि।
विवेश मञ्चान्तरराजमार्गं पतिंवरा क्लृप्तविवाहवेषा॥ (रघु० ६।१०)

११. अभिन्यविक्षथास्त्वं मे यथैवाव्याहता मनः।
तवाप्यध्यावसन्तं मां मा रौत्सीर्हृदयं तथा॥ (भट्टि० ८।८०)

१२. अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे।
आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः॥ (पञ्च० १।४)

१३. हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।
एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकादालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसृप्तम्॥ (उत्तर० १)

१४. यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम् ।
एतानि तानि बहुनिर्झरकन्दराणि
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि ॥ (उत्तर० ३)

१५. को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम् ।
यद् दंष्ट्रानखलांगुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः ॥ (हितो० १)

१६. धिक् सानुजं कुरुपतिं धिगजातशत्रुं
धिग्भूपतीन्विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान् ।
केशग्रहः खलु तदा द्रुपदात्मजाया
द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यैः ॥ (वेणी० ३)

१७. जलानि सा तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनु राजधानीम् ।
(रघु० १३।६१)

१८. प्रमदामनु संस्थितः शुचा नृपतिः सन्निति वाच्यदर्शनात् ।
न चकार शरीरमग्निसात् सह देव्या न तु जीविताशया ॥
(रघु० ८।७२)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१. पत्नी को सदा अपने पति की इच्छा का अनुगमन करना चाहिए ।
२. यह एक दूसरा व्यक्ति किसी दूसरे काम से हमारी सेवा करने आ रहा है ।
३. तव अधिक अनुरोध करने पर वह तुम्हारी अशिष्टता के विषय में ('अन्तरेण' का प्रयोग कीजिए) उस लड़की द्वारा अवगत कराई गयी ।
४. पुष्पपुर नगर के चारों ओर एक सुन्दर उद्यान है ।
५. हाय (हा !) मेरा दुर्भाग्य ! सुनने में आ रहा है कि मेरा इकलौता बेटा भी मर गया ।
६. उसने तीन वर्ष और पचहत्तर दिनों तक न्याय का अध्ययन किया और अब वह उसमें निपुण हो गया है ।
७. अवन्ती से दो मील तक सभी ओर सुन्दर बगीचे देखने में आते हैं ।

८. क्या वह अभी तक होश में नहीं आई! मेरा विश्वास है कि इससे अच्छी दवा किये विना यह असम्भव है।
९. मणिपुर के लोग उस नगर में मेरे प्राचीन साहसिक कर्मों के विषय में (अन्तरेण) क्या सोचेंगे ?
१०. हम लोगों को यह उचित प्रतीत होता है (प्रति) कि हम अब पुनः अपने विवाद के विषय पर आवें।
११. जो अपने किसी स्वार्थ के बिना दूसरों को कष्ट देना चाहते हैं, उन्हें धिक्कार है।
१२. जो अधर्म के पथ पर चलते हैं उनका नाश हो। (हा !)
१३. राम ने चित्रकूट पर्वत पर कई दिनों तक निवास किया (अधि + वस्)।
१४. सेवक ने रानी को सूचना दी कि महाराज क्रीडा-पर्वत पर बैठे हैं (अधि + आस्) और उन्होंने आपको वहाँ अविलम्ब बुलाया है।
१५. जब वह फिर होश में आई तब उसने अपने मृत भाई का शरीर जला दिया और रात भर एक चटाई पर सोई (अधि + शी)।
१६. वह गाय अब पाताल में रहती है (अधि + स्था) जिसके दरवाजे बड़े-बड़े साँपों से बन्द हैं।
१७. आम की मंजरियों के निकले बिना वसन्त की ऋतु सुहावनी नहीं लगती।
१८. उस युवा ऋषि के जाने के बाद (अनु) तुमने मुझसे जो कहा वह मुझे याद नहीं है।
१९. तुम क्या कहते हो "हमारे सम्राट् को छोड़कर कोई और क्षत्रिय नहीं ?" दुष्टों, तुम्हें धिक्कार है। यह मैं तुम्हारी पताका ले चला; यदि बचा सकते हो तो बचाओ।

पाठ ४

द्विकर्मक क्रियाएँ

३८. संस्कृत में कुछ ऐसी क्रियाएँ हैं जिनके साथ प्रधान कर्म के अतिरिक्त एक और कर्म लगता है, जिसे अकथित कर्म कहते हैं। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, यह वह कर्म होता है जो कथित नहीं होता, जो अन्य कारकों यथा अपादान, अधिकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता हो, परन्तु वक्ता को इन कारकों का प्रयोग अभीष्ट न हो। उसका प्रयोग वैकल्पिक होता है। यदि इस अकथित कर्म से संयुक्त होने वाले संज्ञा शब्द को किसी दूसरे कारक में प्रयुक्त किया जाना अभीष्ट न हो तो उसे इन क्रियाओं के साथ कर्मकारक में ही रखते हैं, जैसे—धेनुं दोग्धि पयः 'वह गाय से (उसका) दूध दुहता है; व्रजमवरुणद्धि गां 'वह गायों को बाड़े में घेरता है'। यहाँ 'धेनुं' और 'व्रजं' अकथित या ऐच्छिक कर्म हैं। यदि वक्ता इस कर्म का प्रयोग करना नहीं चाहता तो शब्दों को उनके स्वाभाविक या सामान्य कारकों में रखा जायगा, जैसे–धेन्वाः (अपादान) पयो दोग्धि; व्रजे (अधिकरण) अवरुणद्धि गाम्।

३९. द्विकर्मक धातुओं का उल्लेख निम्नलिखित कारिका में किया गया है :–

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमंथ्मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

दुह् (दुहना), याच् (माँगना), 'पच्' (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना), रुध् (रोकना या घेरना), प्रच्छ् (पूछना), चि (इकट्ठा करना), ब्रू (कहना), 'शास्' (उपदेश देना, जि (जीतना), 'मन्थ्' (मथना), मुष् (चुराना) और लेना या खींचना अर्थवाली नी, हृ, कृष् तथा वह् धातुओं एवं इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली धातुओं के योग में प्रत्यक्ष कर्म को छोड़कर जो संज्ञा शब्द क्रिया से प्रभावित होता है वह कर्म कारक में रखा जाता है। जैसे—गां दोग्धि पयः (सि० कौ०) 'वह गाय से दूध दुहता है'; बलिं याचते वसुधाम् (वही)–'बलि से पृथ्वी माँगता है'। इसी प्रकार-तण्डुलानोदनं पचति, गर्गान् शतं दण्डयति, व्रजमवरुणद्धि गाम्, माणवकं पन्थानं पृच्छति, वृक्षमवचिनोति फलानि, माणवकं धर्मं ब्रूते-शास्ति, शतं जयति देवदत्तम्, सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति, देवदत्तं शतं मुष्णाति; ग्राममजां नयति–हरति–कर्षति–वहति–वा अन्य

धातुओं के क्रमशः उदाहरण हैं। माणवकं धर्मं भाषते वक्ति वा, बलिं वसुधां भिक्षते, तां त्वां संवरणस्यार्थे वरयामि विभावसो (महा० १।१७१।२१) इस प्रकार के कर्मों के उदाहरण हैं क्योंकि 'भाष्' या 'वच्' तथा 'भिक्ष्' या 'वृ' का वही अर्थ है जो कारिका में दी गई 'ब्रू' और 'याच्' धातुओं का।

द्रष्टव्य—यद्यपि ऊपर की सूची में चि, मुष्, पच्, मन्थ्, रुध्, जि, कृष, हृ और वह धातुएँ दी गईं हैं फिर भी द्विकर्मक धातुओं के रूप में इनका प्रयोग लौकिक संस्कृत साहित्य में बहुत कम हुआ है।

४०. इस प्रकार ऊपर गिनाई गयी धातुएँ तथा इनके समानार्थक धातुएँ द्विकर्मक होती हैं। दोनों कर्मों में एक तो **प्रधान** होता है, दूसरा गौण। 'दुह्' से लेकर 'मुष्' तक की पहली बारह धातुओं के योग में 'पयः', वसुधां, फलानि, सुधां, आदि प्रधान कर्म है और गां, बलिं, वृक्षं, क्षीरनिधिं, आदि गौण कर्म हैं, क्योंकि वक्ता उन्हें चाहे तो दूसरे कारक में रख सकता है। अन्तिम चार धातुओं के योग में 'अजा' प्रधान कर्म है और 'ग्रामं' गौण कर्म है। इस प्रकार क्रिया के अर्थ को पूर्ण करने के लिए जिस संज्ञा शब्द को अनिवार्यतः कर्मकारक में रखा जाय वह **प्रधान कर्म** होता है और जिसे वक्ता अपनी इच्छा से कर्मकारक में रखता है वह **गौण कर्म** होता है।

४१. [1]द्विकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य का रूप बनाते समय प्रथम बारह धातुओं ('दुह' से 'मुष' तक) के गौण कर्म को और अन्तिम चार धातुओं (नी, हृ, कृष्, वह्) के प्रधानकर्म को प्रथमा विभक्ति में रखा जाता है, दूसरा कर्म उसी विभक्ति में रहता है जिस विभक्ति में कर्तृवाच्य में होता है। उदाहरण—

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
१. स धेनुं पयो दोग्धि	१. तेन धेनुः (प्रथमा विमक्ति) पयः (द्वितीया प्रधान कर्म) दुह्यते।
२. देवाः समुद्रं सुधां ममन्थुः	२. देवैः समुद्रः (प्रथमा) सुधां (द्वितीया, कर्म) ममन्थे।
३. सोऽजां ग्रामं नयति, हरति, कर्षति, वहति वा।	३. तेन अजा (प्रथमा) ग्रामं (द्वितीया, कर्म) नीयते, ह्रियते, कृष्यते उह्यते वा।

१. गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्।
लादयो मताः ॥ (सि० कौ०)

अभ्यास

१. आज्ञप्तास्मि देव्या धारिण्या अचिरप्रवृत्तोपदेशं चलितं नाम नाट्यमन्तरेण कीदृशी मालविकेति नाट्याचार्यमार्यगणदासं प्रष्टुम् । (मालवि० १)

२. ह्यस्तत्रभवती इरावती देवी सुखं प्रष्टुमागता । (मालवि० ४)

३. महाश्वेता कादम्बरीमनामयं पप्रच्छ । (काद० १६२)

४. हिमालयं सर्वशैला वत्सं परिकल्प्य
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च
पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् । (कुमार० १।२)

५. संकल्पितार्थे वितृतात्मशक्तिमाखण्डलः काममिदं बभाषे । (कुमार० ३।११)

६. सोऽहं तृष्णातुरैर्वृष्टिं विद्युत्वानिव चातकैः ।
अरिविप्रकृतैर्देवैः प्रसूतिं प्रतियाचितः ॥ (कुमार० ६।२७)

७. किमत्र चित्रं यदि कामसूर्भूर्वृत्ते स्थितस्याधिपतेः प्रजानाम् ।
अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावो मनीषितं द्यौरपि येन दुग्धा ॥ (रघु० ५।३३)

८. तमरण्यसमाश्रयोन्मुखं शिरसा वेष्टनशोभिना सुतः ।
पितरं प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः ॥ (रघु० ८।१२)

९. अथ ज्येष्ठां सुराः सर्वे देवकार्यचिकीर्षया ।
शैलेन्द्रं वरयामासुर्गङ्गां त्रिपथगां नदीम् ॥ (रामा० १।३५।१६)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. तमातिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमम् ।
पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः ॥ (रघु० १।५८)

२. तं क्रमेण जन्मभूमिं जातिं विद्यां कलत्रमपत्यानि विभवं वयः प्रमाणं प्रव्रज्या कारणं च स्वयमेव पप्रच्छ चन्द्रापीडः । (काद० २२८)

३. कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये ।
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ॥ (रघु० ११।१)

४. तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ (गीता २।१)

५. भर्तुस्तथा कलुषितां बहुवल्लभस्य मार्गे कथंचिदवतार्य तनूभवन्तीम् ।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती गङ्गां शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम् ।।
(मुद्रा ०३)

६. तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः ।
अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ।। (मेघ० १०४)

७. सोऽपृच्छल्लक्ष्मणं सीतां याचमानः शिवं सुरान् ।
रामं यथास्थितं सर्वं भ्राता ब्रूते स्म विह्वलः ।।
संदृश्य शरणं शून्यं भिक्षमाणो वनं प्रियाम् ।
प्राणान्दुहन्निवात्मानं शोकं चित्तमवारुधत् ।।
गता स्यादवचिन्वाना कुसुमान्याश्रमद्रुमान् ।
आ यत्र तापसान् धर्मं सुतीक्ष्णः शास्ति तत्र सा ।। (भट्टि० ६।८–१०)

अनुवाद कीजिए :—

१. मैंने उससे दस प्रश्न पूछे, लेकिन उसने उनमें से एक का भी उत्तर नहीं दिया ।
२. भिक्षुक ने एक धनी व्यक्ति से, जो बहुत उदार बताया जाता था, पचास रुपये माँगे ।
३. राजा ने अपराधी को तीन-सौ आठ रुपये का दण्ड दिया ।
४. शिक्षक इन शिष्यों को न्याय और व्याकरण के सिद्धान्त सिखाता है ।
५. मन्त्री द्वारा राजा से सेवक के दोष को क्षमा करने की प्रार्थना की गई ('याच्' का कर्मवाच्य) ।
६. वह मुझसे कहता है (ब्रू) कि गोपाल ने अपनी गाएँ दुह ली हैं ।
७. श्रीमान् ! मेरे द्वारा आपसे आपका नाम और कुल पूछा गया, न कि यह कि आपके पास कितना धन है ।
८. क्षीरसमुद्र से चौदह रत्न मथे गये थे ।
९, गड़ेरिया सभी भेड़ों को बाजार ले गया और उन्हें उसने बेच दिया।
१०. कल गाएँ मेरी सबसे छोटी पुत्री द्वारा दुही गई थीं ।
११. देवता ब्रह्मा के पास गये और उनसे तारक से मुक्ति दिलाने वाले पुरुष को माँगा (वृ) ।

———

पाठ ५

प्रेरणार्थक (णिजन्त)

४२. "किसी धातु का प्रेरणार्थक रूप यह ख्यापित करता है कि कोई व्यक्ति या पदार्थ किसी दूसरे व्यक्ति या पदार्थ से धातु द्वारा व्यक्त किया गया कार्य कराता है या किसी अवस्था में ले जाता है। (डॉ० कीलहोर्न का व्याकरण, अधिकरण ४१६); जैसे—'गम्' (जाना), गच्छति (जाता है), गमयति जाने के लिये प्रेरित करता है); 'अश्' (खाना), अश्नाति (खाता है), आशयति (खिलवाता है)।

४३. सामान्य दशा या कर्तृवाच्य में जो क्रिया का कर्ता होता है उसे प्रेरणार्थक में तृतीया विभक्ति में रखते हैं और कर्म अपरिवर्तित रहता है। जैसे—

सामान्य दशा	प्रेरणार्थक
१. देवदत्त ओदनं पचति। (देवदत्त भात पकाता है)	(स) देवदत्तेन ओदनं पाचयति। (वह) देवदत्त से भात पकवाता है।
२. रामो भार्यां त्यजति। राम (अपनी) पत्नी को छोड़ते हैं।	(सः) रामेण भार्यां त्याजयति। (वह) राम से उनकी पत्नी छोड़वाता है।

४४. [1]ऐसी धातुओं के योग में जिनका अर्थ 'गति', 'बुद्धि' या ज्ञान अथवा किसी प्रकार के 'भक्षण' का हो; इसके समान अर्थ वाले धातुओं के योग में, उन धातुओं के योग में जिनका कर्म 'शब्द' या कोई 'साहित्यिक रचना' हो, तथा अकर्मक धातुओं के योग में जो सामान्य दशा में क्रिया का कर्ता होता है उसे प्रेरणार्थक बनाते समय द्वितीया विभक्ति में रखते हैं और कर्म अपरिवर्तित होता है। जैसे—

---

१. गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ। (१।४।५२)

१. [1]शत्रवः स्वर्गमगच्छन्
२ स्वे वेदार्थमविदुः
३. देवा अमृतमाश्नन्
४. विधिर्वेदमध्यैत
५. पृथ्वी सलिले आस्त

१. शत्रून् स्वर्गमगमयत् ।
२. स्वान् वेदार्थमवेदयत् ।
३. देवानमृतमाशयत् ।
४ विधिम् वेदमध्यापयत् ।
५. पृथ्वीं सलिले आसयत् ।

किन्तु **गमयति रामो गोविन्दम्** (राम गोविन्द को जाने को प्रेरित करता है) में यदि कोई दूसरा व्यक्ति (विष्णुमित्र) राम को ऐसा करने की प्रेरणा दे तो हमें कहना होगा 'विष्णुमित्रो रामेण गोविन्दं गमयति' (विष्णुमित्र राम से गोविन्द को भेजवाता है)। यहाँ 'राम' को कर्मकारक में नहीं रखा गया है, क्योंकि यह प्रेरणार्थक क्रिया का कर्ता है, सामान्य क्रिया का नहीं ।

टिप्पणी :—अपने महाभाष्य में पतञ्जलि ने 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्द-कर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ' (१।४।५२) सूत्र में 'शब्दकर्म' के अर्थ में यह व्याख्या दी है। शब्दकर्म का अर्थ 'शब्दा येषां क्रिया' और 'शब्दो येषां कर्म" दोनों ही हो सकता है। जब हम पहला अर्थ लेते हैं तो ह्वयति, (ह्वे) क्रन्द-ति (क्रन्द्) तथा शब्दायते (शब्द से नामधातु) धातुओं को इस नियम-से अलग कर देना होगा; जैसे ह्वयति देवदत्तः, ह्वाययति देवदत्तेन; क्रन्दति–शब्दायते–देवदत्तः, क्रन्दयति=शब्दाययति–देवदत्तेन। और 'श्रु', वि उपसर्ग-पूर्वक 'ज्ञा' तथा उपसर्गपूर्वक 'लभ' धातुएँ इस नियम के अन्तर्गत रखनी होगी; जैसे— श्रृणोति–विजानाति–उपलभते–देवदत्तः, श्रावयति–विज्ञापयति–उपलम्भ-यति–देवदत्तम्। जब हम दूसरे अर्थ (शब्दो येषां कर्म) को मानते हैं तो 'जल्प', आ उपसर्गपूर्वक 'भाष्' तथा वि उपसर्गपूर्वक 'लप्' धातुएँ इस नियम के अन्तर्गत आवेंगी; जल्पति–विलपति–आभाषते–देवदत्तः, जल्पयति–विलापयति–आभाषयति–देवदत्तम्।

४५. उपर्युक्त नियम के अनेक अपवाद और अपवादों के भी अपवाद हैं जो महत्वपूर्ण हैं :—

---

१ ये सभी उदाहरण इस श्लोक में एक साथ दिये गये हैं :—

शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत् ।
आशयच्चामृतं देवान्वेदमध्यापयद्विधिम् ।
आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः ॥

(क) [1]'नी' (ले जाना) तथा 'वह्' (ढोना) धातुओं के प्रेरणार्थक रूप के योग में द्वितीया विभक्ति नहीं होती अपितु तृतीया विभक्ति (करण कारक) होती है। जैसे—

भृत्यो भारं नयति वहति वा (सेवक बोझ ले जाता है)	भृत्येन भारं नाययति वाहयति वा। (सि० कौ०) (वह) एक सेवक से बोझ ढोवाता है:

किन्तु प्रेरणार्थक दशा में जब 'वह्' का कर्ता कोई ऐसा शब्द हो जिसका अर्थ 'वाहक' हो तो सामान्य नियम ही लागू होता है; जैसे—

वाहा रथं वहन्ति (घोड़े रथ खींचते हैं)	सूतो वाहान् रथं वाहयति (सि० कौ०) सारथि घोड़ों को रथ खींचने के लिये प्रेरित करता है।
वहन्ति यवान् बलीवर्दाः।	वाहयति यवान् बलीवर्दान् (महाभाष्य)

(ख) [2]अद् और 'खाद्' (खाना) धातुओं के प्रेरणार्थक के कर्ता के साथ तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—

बटुरन्नमत्ति खादति वा बालक अन्न खाता है।	बटुनाऽन्नमादयति खादयति वा (वह) बालक से अन्न खिलवाता है।

(ग) [3]जब 'भक्ष्' धातु का अर्थ हिंसा अर्थात् किसी जीवित प्राणी को आघात पहुँचाना नहीं होता तब उसके कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—भक्षयति पिण्डीं देवदत्तः, भक्षयति पिण्डीं देवदत्तेन; किन्तु भक्षयति यवान् बलीवर्दाः; भक्षयति बलीवर्दान् यवान् (महाभाष्य)।

(घ) 'स्मृ' और 'घ्रा' धातुएँ जो विशेष प्रकार के 'ज्ञान' या 'अनुभव' का अर्थ रखती हैं द्वितीया विभक्ति के साथ प्रयुक्त नहीं होतीं। जैसे—स्मरति देवदत्तः, जिघ्रति देवदत्तः, स्मारयति देवदत्तेन, घ्रापयति देवदत्तेन।

किन्तु कभी-कभी 'स्मृ' धातु के योग में भी द्वितीया का प्रयोग होता है, विशेषतः जब इसका अर्थ पश्चात्ताप के साथ सोचना या याद करना' होता है। जैसे—अपि चन्द्रगुप्तदोषा अतिक्रान्तपार्थिवगुणान् स्मारयन्ति प्रकृतिः (मुद्रा० १) देखिए शिशु० ६।५६।

---

१. नीवह्योर्न (वार्तिक), नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः (वार्तिक)

२. आदिखाद्योर्न (वार्तिक) ३. भक्षेरहिंसार्थस्य न। (वार्तिक)

(ङ) [1]प्रेरणार्थक दशा में 'दृश' के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—भक्ता हरिं पश्यन्ति, दर्शयति भक्तान् हरिम् (सि० कौ०)।

द्रष्टव्य—लौकिक संस्कृत साहित्य में 'दृश्' धातु कभी कभी कर्मकारक के बदले सम्प्रदान कारक के साथ प्रयुक्त पायी जाती है। जैसे—प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामायादर्शयत् कृती (रघु० १२।६४)।

(च) [2]हृ और कृ तथा आत्मनेपद में प्रयुक्त अभिवद् और 'दृश्' धातुओं की सामान्य दशा में जो कर्ता होता है उसे प्रेरणार्थक बनाते समय या तो द्वितीया विभक्ति में रखते हैं या तृतीया में जैसे—

भृत्यः कटं करोति हरति वा (सेवक एक चटाई बनाता है, या लेता है)	भृत्यं भृत्येन वा कटं कारयति हारयति वा (सि० कौ०) (वह) सेवक से एक चटाई बनवाता है या ले जाने को प्रेरित करता है।

इसी प्रकार **अभिवादयते-दर्शयते-देवं भक्तं-भक्तेन वा।** (सि० कौ०)। (वह) भक्त से देव को नमस्कार करवाता है या दिखवाता है।

४६. अधिकरण ४४. में उल्लिखित 'अकर्मक' धातुओं से ऐसी धातुओं से तात्पर्य है जिनका कर्म स्वभावतः 'काल' या 'स्थान' आदि के अतिरिक्त कोई दूसरा संज्ञापद नहीं होता; ऐसी धातुओं से तात्पर्य नहीं है जो सकर्मक होते हुए भी वक्ता की इच्छा से या उनका अर्थ बिल्कुल स्पष्ट होने पर अकर्मक रूप में प्रयुक्त की जा सकती हैं। जैसे—किङ्करः पचति। यद्यपि 'पचति' सकर्मक क्रिया है फिर भी यहाँ उसका प्रयोग विना कर्म के हुआ है, क्योंकि इसे सरलता से समझा जा सकता है; अतएव किङ्करेण **पाचयति** होगा किंकरम्' नहीं, किन्तु 'मासमासयति देवदत्तम्'।

४७. [3]प्रेरणार्थक क्रियाओं से कर्मवाच्य बनाते समय प्रेरणार्थक दशा के प्रधान कर्म को, जो सामान्य दशा में क्रिया का कर्ता होता है, कर्ताकारक में रखा जाता है और दूसरा कर्म अपरिवर्तित रहता है। जैसे—

---

१. दृशेश्च। (वार्तिक)
२. हृक्रोरन्यतरस्याम्। (१।४।५३) अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम्।
३. बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मणां च निजेच्छया।
प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः॥ (सि० कौ०)

सामान्य	प्रेरणार्थक कर्तृवाच्य	प्रेरणार्थक कर्मवाच्य
१. रामो ग्रामं गच्छति (राम गाँव जाता है)।	१. रामं ग्रामं गमयति (वह राम को गाँव भेजवाता है)।	१. रामो ग्रामं गम्यते (राम गाँव जाने के लिये प्रेरित किया जाता है)।
२. भृत्यः कटं करोति।	२. भृत्येन भृत्यं वा कटं कारयति। (वह सेवक से एक चटाई बनवाता है)।	२. भृत्यः कटं कार्यते (सेवक चटाई बनाने के लिये प्रेरित किया जाता है)।
३, गोविन्दो मासमास्ते (गोविन्द एक मास तक बैठता है)।	३. गोविन्दं मासमासयति (वह गोविन्द को एक मास बैठाता है)।	३. गोविन्दो मासमास्यते (गोविन्द एक मास बैठाया जाता है)।

(अ) किन्तु 'ज्ञान' तथा 'भक्षण' अर्थवाली धातुओं तथा उन धातुओं के योग में जिनका कर्म साहित्यिक रचना हो, प्रमुख कर्म को कर्ताकारक में और गौणकर्म को कर्मकारक में रखा जाता है अथवा इसके विपरीत भी होता है अर्थात् प्रधान कर्म द्वितीया विभक्ति में और गौणकर्म प्रथमा विभक्ति में रखा जाता है। जैसे—

'माणवकं धर्मं बोधयति' (वह माणवक को धर्म का बोध कराता है); माणवकं धर्मं बोध्यते या 'माणवकं धर्मो बोध्यते (माणवक को धर्म समझाया जाता है अथवा धर्म माणवक को समझाया जाता है); बटुमोदनं भोजयति (वह बालक को भोजन कराता है); 'बटुरोदनं भोज्यते' या 'बटुमोदनो भोज्यते' (सि० कौ०)।

४८. दसवें अर्थात् चुरादि गण की धातुओं के प्रेरणार्थक रूप वही होते हैं जो सामान्य दशा में और अर्थ का निर्धारण सन्दर्भ के अनुसार किया जाता है; जैसे—रामो धनं चोरयति (राम धन चुराता है), रामो गोविन्देन धनं चोरयति (राम गोविन्द को धन चुराने को प्रेरित करता है)। दूसरे वाक्य में क्रिया प्रेरणार्थक है।

४९. द्विकर्मक धातुओं के संबन्ध में अधिकरण ४३ और ४४ में बताये गये नियम केवल द्विकर्मक धातुओं के साथ ही लागू होते हैं अर्थात् गति इत्यादि अर्थ वाली धातुओं के साथ सामान्यदशा के कर्ता में द्वितीया रखा जाता है और अन्य

धातुओं के योग में अधिकरण ४५ के नियम के अनुसार साधारण क्रिया का कर्ता तृतीया विभक्ति में रखा जाता है; जैसे—वामनो बलिं वसुधां याचते; (ईश्वरो) वामनेन बलिं वसुधां याचयति (ईश्वर वामन द्वारा बलि से पृथ्वी मँगवाते हैं। गोपोऽजां नगरं हरति; (स्वामी) गोपं गोपेन वा अजां नगरं हारयति (स्वामी गोप द्वारा बकरी को नगर में पहुँचवाता है)।

अभ्यास

१. अभिमन्युतनयं परीक्षितमुदरादुपरतमेव निर्गतमुत्तराप्रलापोपजनितकृपो भगवान् वासुदेवो दुर्लभानसून् प्रापितवान्। (काद० १७५)

२. अयं शिशुर्न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम्। तदेहि गृहाणेममवतारय सलिल-समीपमित्यभिधाय तेनर्षिकुमारेण मां सरस्तीरमनाययत्। उपसृत्य च जलसमीपं स्वयं मामादाय मुक्तप्रयत्नमुत्तानितमुखमङ्गुल्या कतिचित्सलिल विन्दूनपातयत्। (काद० ३८)

३. काम इदानीं सकामो भवतु येनासत्यसन्धे जने सखी पदं कारिता (शाकु० ४)

४. महेन्द्रभवनं गच्छतोपाध्यायेन त्वमासनं प्रतिग्राहितः। (विक्रमो० ३)

५. तौ कुशलवौ भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्मवस्तुतः परिगृह्य पोतौ परिरक्षितौ च। वृत्तचूडौ च त्रयीवर्जमितरा विद्याः सावधानेन परिपाठितौ। समनन्तरं च गर्भादेकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय गुरुणा त्रयीविद्यामध्यापितौ। (उत्तर० २)

६. नलिनिके पायय कमलमधुरसं कलहंसान्। पल्लविके भोजय परि चाग्रपल्लव-दलानि भवनहारीतान्। (काद० १८४)

७. आर्यो दापयतु मे वैशंपायनानयनाय गमनाभ्यनुज्ञां तातेन। नान्यथा मे दोषशुद्धिर्भवति। (काद० २०२)

८. तौ दंपती स्वां प्रति राजधानीं
प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः॥ (रघु० १।७०)

९. ततो द्रोणोऽर्जुनं भूयो रणशिक्षामशिक्षयत्। (महा० १।१३०।२५)

१०. तौ दंपती बहु विलप्य शिशोः प्रहर्त्रा
शल्यं निखातमुदहारयतामुरस्तः। (रघु० ६।७८)

११. वाल्मीकिस्तौ कुशलवौ
साङ्गं च वेदमध्याप्य किंचिदुत्क्रान्तशैशवौ।
स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम्। (रघु० १५।३३)

१२. स सेतुं बन्धयामास प्लवगैर्लवणांभसि ।
तेनोत्तीर्य पथा लङ्कां रोधयामास पिंगलैः
द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरैः ॥ (रघु० १२।७०)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. एवं क्रियते युष्मदादेशः । किंतु यस्य युज्यते भूमिका तां तथैव भावेन सर्वे वर्ग्याः पाठिताः । (मालती० १)

२. स कार्तान्तिकस्तां विलोक्य स्निग्धदृष्टिराचष्ट । भद्रे, अस्ति कौशलं शालिप्रस्थेनानेन संपन्नमाहारमस्मानभ्यवहारयितुमिति । (दशकु० २।६)

३. ततो मया पाटलिपुत्रं गत्वा श्रावितोऽमात्यसन्देशं वैतालिकः स्तनकलशः । (मुद्रा० ४)

४. रजनीतिमिरावगुण्ठिते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवाः ।
वसतिं प्रियकामिनां प्रियास्त्वदृते प्रापयितुं क ईश्वरः ॥ (कुमार० ४।११)

५. तामर्चिताभ्यः कुलदेवताभ्यः कुलप्रतिष्ठां प्रणमय्य माता ।
अकारयत् कारयितव्यदक्षा क्रमेण पादग्रहणं सतीनाम् ॥ (कुमार० ७।२७)

६. प्रियागुणसहस्राणामेकोन्मीलनपेशलः ।
य एव दुःस्मरः कालस्तमेव स्मारिता वयम् ॥ (उत्तर० ६)

७. शरैरुत्सवसंकेतान् स कृत्वा विरतोत्सवान् ।
जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान् ॥ (रघु० ४।७८)

८. अथानाथाः प्रकृतयो मातृबन्धुनिवासिनम् ।
मौलैरानाययामासुर्भरतं स्तम्भिताश्रुभिः ॥ (रघु० १२।१२)

९. त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे ।
अदर्शयन् वक्तुमशक्नुवन्त्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः ॥ (रघु० १३।२४)

१०. गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः ।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारयेन्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ॥ (किरात० १।३१)

११. यः पयो दोग्धि पाषाणं स रामाद्भूतिमाप्नुयात् ।
रावणं गमय प्रीतिं बोधयन्तं हिताहितम् ॥
प्रीतोऽहं भोजयिष्यामि भवतीं भुवनत्रयम् ।
किं विलापयसेऽत्यर्थं पार्श्वे शायय रावणम् ॥
आज्ञां कारय रक्षोभिर्मा प्रियाण्युपहारय ।
कः शक्रेण कृतं नेच्छेदधिमूर्धानमञ्जलिम् ॥ (भट्टि० ८।८२–८४)

१२. विद्यामथैनं विजयां जयां च रक्षोगणं क्षिप्नुमविक्षतात्मा ।
अध्यापयद् गाधिसुतो यथावन्निघातयिष्यन्युधि यातुधानान् ॥ (भट्टि० २।२१)

अनुवाद कीजिए :—

१. उसने उसे उसका धर्म समझाया। (विद्) और उसे घर भेजवाया (प्र पूर्वक 'स्था' से प्रेरणार्थक)।
२. जब किसी मन्त्री के मन में स्वतन्त्रता की इच्छा प्रवेश कर जायगी तब वह राजा को स्वयं अपना प्राण त्याग देने (त्यज्) के लिए प्रेरित करेगा।
३. अपने शत्रुओं को युद्ध में पराजित कर उसने अपने चारणों से अपने वीरतापूर्ण कर्मों का यशगान कराया (गै)।
४. उसने अपने सेवकों से बाजार से इंधन मँगवाया ('नी' या 'हृ')।
५. इसमें आश्चर्य नहीं कि सम्राट् करद राजाओं से अपने आदेशों का पालन करवाता है।
६. ये व्यक्ति उन दासियों से मालाएँ बनवाने के लिये कहे गये थे।
७. जब किसी छात्र को किसी विषय का सिद्धान्त समझा दिया जाता है तब उसे उसका अभ्यास करना बताया जाता है।
८. अपने शत्रुओं को जीतो और उनसे कर दिलवाओ (दा)।
९. उसने अपने पुत्र के विवाह के लिए सेवकों द्वारा एक विशाल मण्डप बनवाया (कृ)।
१०. उसने लड़के को उसकी इच्छा के विपरीत भोजन खिलाया ('अद्' या 'खाद्')।
११. मैंने अपने प्रतिष्ठित अतिथि को अपना पुस्तकालय दिखाया (दृश् से प्रेरणा०)।
१२. वह राम द्वारा यात्रियों से बनारस का मार्ग पुछवाता है।
१३. भेड़ें स्वामी द्वारा अपने नौकर से गांव ले जायी गईं (वह्)
१४. स्वामी सेवक द्वारा उसकी इच्छानुसार चलकर पुरस्कार देने के लिये प्रेरित किया जाना चाहिए।
१५. मैंने उन लोगों को राजा के चारों ओर खड़ा करवाया और उनको नमस्कार कराया (अभि पूर्वक 'वद' से प्रेरणा०)।

पाठ ६

करण कारक

५०. संस्कृत में करणकारक (तृतीया विभक्ति) का प्रयोग दो प्रमुख अर्थों में होता है; वह या तो किसी कार्य के कर्ता को बताता है या उस साधन या माध्यम को बताता है जिसके द्वारा कार्य का सम्पादन होता है[1]। जैसे—**ततो देव्या किमभिहितम्** (वेणी. १) 'तब देवी द्वारा क्या कहा गया ?' **संचूर्णयामि** गदया न सुयोधनोरू (वेणी. १) 'क्या मैं सुयोधन की जाँघ को गदा से चूर-चूर नहीं कर दूँगा ? (इन दोनों उदाहरणों में प्रथम में तृतीया विभक्ति कर्ता 'देवी' में और दूसरे उदाहरण में 'संचूर्णयामि' क्रिया के साधन 'गदा' में हुई है)। तामेव दिव्ययोषितं चक्षुषा **पुनर्निरूपयामास** (काद० १३१) 'फिर उस दिव्य स्त्री को अपनी आँखों से देखा।'

५१. यह कारक अनेक सम्बन्धों द्वारा करणत्व को व्यक्त करता है :—

(क) किसी कार्य को करने की विधि या किसी संज्ञा की विशेषता अथवा गुण जैसे **आत्मानुरूपां विधिनोपयेमे** (कुमार० १।१८) उसने विधि के अनुसार (उससे) विवाह किया, जो उसके योग्य थी; **प्रकृत्या दर्शनीयः** (महाभाष्य) स्वभाव से सुन्दर; **'माठरोऽस्मि गोत्रेण'** (वही) में गोत्र से माठर हूँ; **विषमेण धावति** (वही) विषम गति से चलता है; इसी प्रकार द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति, सहस्रेण पशून् क्रीणाति, शतेन शतेन पाययति वत्सान्, आदि।

(ख) जिस मूल्य पर कोई वस्तु खरीदी जाती है; जैसे—कियता मूल्येन क्रीतं पुस्तकम् 'कितने मूल्य पर पुस्तक खरीदी गई ?'

(ग) 'गति' अर्थ वाली क्रियाओं के साथ 'वाहन' करणकारक में होता है; जैसे—आत्मनः पदं **विमानेन** विगाहमानः (रघु० १३।१) (अपने निवास-स्थान–आकाश–से एक विमान द्वारा होते हुए।)

(घ) 'ले जाना' या 'रखना' अर्थ की क्रियाओं के योग में जिस वस्तु पर रखकर ले जाया जाता है या जिस पर रखा जाता है उसमें तृतीया विभक्ति होती है; जैसे–स श्वानं **स्कन्धेनोवाह** (हितो० ४) वह कुत्ते को कन्धे पर ले चला, भर्तुराज्ञां **मूर्ध्ना** आदाय (कुमार० ३।२२) स्वामी की आज्ञा को सिर पर रखकर।

---

१. कर्तृकरणयोस्तृतीया (२।३।१८)।

(ङ) शपथबोधक शब्दों के साथ जिसकी शपथ ली जाती है उसमें तृतीया होती है; जैसे जीवितेनैव शपामि ते (काद० २३३) मैं अपने जीवन की तुम्हें सौगन्ध देता हूँ।

(च) किसी विशिष्ट स्थान को जाने के लिये ग्रहण किये जाने वाले मार्ग की दिशा में तृतीया होती है; जैसे—कतमेन दिग्भागेन गतः स जाल्मः (वेणी० १) 'वह धोखेबाज किधर गया ?'

५२. 'बढ़कर' या 'समान होना' अर्थ वाली क्रियाओं के योग में जिन गुणों का उत्कर्ष होता है या समानता के विषय अथवा बातों में तृतीया विभक्ति होती है जैसे—पूर्वान्महाभाग **तयातिशेषे** (रघु० ५।१४) 'हे सौभाग्यशाली उस (भक्ति) में तुम अपने पूर्वजों से भी बढ़कर हो; **स्वरेण** रामभद्रमनुहरति (उत्तर० ४) वाणी से राम के समान लगता है।

द्रष्टव्य—कभी-कभी उसी अर्थ में सप्तमी का प्रयोग होता है, जैसे—धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः (रामा० १।१९) 'त्याग में कुबेर के समान और सत्य में दूसरे धर्म के समान।'

(क) 'किसी से अलग होने' का अर्थ बताने वाले शब्दों के योग में सामान्यतः तृतीयाविभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे—अयमेकपदे **तया** वियोग उपनतः (वेणी० ४) यह उससे वियोग सहसा मुझपर आ पड़ा है। इसी प्रकार 'मा भूदेवं क्षणमपि च ते **विद्युता** विप्रयोगः' (मेघ० ११८)।

(ख) 'सादृश्य' या 'समानता' बताने वाले शब्दों के योग में भी तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है; जैसे—**धनदेन** समस्त्यागे (त्याग में कुबेर के समान) अस्य मुखं सीताया **मुखचन्द्रेण** संवदति (उत्तर० ४) 'इसका मुख सीता के मुखचन्द्र के अनुरूप है।' सम्बन्धकारक के अन्तर्गत भी देखिए।

५३. [1]जब अभीष्ट फल की सिद्धि बतानी होती है तब 'काल' या 'स्थान' वाचक शब्दों में तृतीया विभक्ति लगती है। जैसे—**द्वादशवर्षैर्व्याकरणं** श्रूयते (पंच० १) बारह वर्षों में व्याकरण पढ़ा जाता है; **क्रोशेन** पाठस्तेनाधीतं, (सि० कौ०) उससे एक कोस में (अर्थात् एक कोश तक चलते-चलते) पाठ पढ़ा गया।

५४. [2]जब कोई संज्ञा शब्द किसी कार्य के साधन या करण से भिन्न उसका कारण या हेतु बतलाये तो उसे तृतीया विभक्ति में रखा जाता है। जैसे—

---

१. अपवर्गे तृतीया (२।३।६) २. हेतौ (२।३।२३)।

गुरौ भक्त्या प्रीतास्मि ते (रघु० २।६३) 'मैं तुझपर तुम्हारी गुरु के प्रति भक्ति से (के कारण) प्रसन्न हूँ।' अतिदवीयस्तया च तस्य प्रदेशस्य न किंचिद्दर्शं (काद० १२६) वह स्थान दूर होने से वह कुछ भी देख न सका।

(क) 'फल' या 'प्रयोजन' भी तृतीया विभक्ति में रखा जाता है। जैसे—अध्ययनेन वसति (सि० कौ०) 'पढ़ने के लिये (प्रयोजन से) रहता है।'

द्रष्टव्य—'सन्तुष्ट होना', 'आनन्द मनाना' 'चकित होना' 'लज्जित होना' अर्थ की धातुओं के योग में जो तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है वह इसी नियम द्वारा विहित है। जैसे—कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति (पंच० १।१) 'नीच पुरुष थोड़े से ही सन्तुष्ट हो जाता है', उभयोर्न तथा लोकः प्रावीण्येन विसिष्मिये (रघु० १५।६८) 'लोगों ने उन दोनों की प्रवीणता पर आश्चर्य नहीं किया'; अनेन प्रागल्भ्येन लज्जे (काद० १९३) मैं इस प्रगल्भता से लज्जित हूँ।

५५, [1]शरीर के किसी अंग में विकार बताने वाले विशेषण के योग में जिस अंग में विकार होता है उसमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—अक्ष्णा काणः (सि० कौ०) एक आँख से काना; इसी प्रकार—पादेन खञ्जः, कर्णेन बधिरः इत्यादि।

५६. [2]किसी विशेष दशा या अवस्था को बताने वाले शब्द को तृतीया विभक्ति में रखा जाता है; जैसे—जटाभिस्तापसः (सि० कौ०) जटाओं से वह तपस्वी है।

५७. 'पर्याप्त' का अर्थ देने वाले 'अलं' और 'कृतं' शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है; जैसे—अलमतिविस्तरेण (वेणी० १) विस्तार की आवश्यकता नहीं है। कृतमश्वेन (उत्तर० ४) घोड़े को लेकर हट जाओ; तस्मात्कृतं चरणपातविडंबनाभिः (पंच० ४।१)।

(अ) इस अर्थ में 'अलं' का प्रयोग प्रायः क्त्वा प्रत्यय-निष्पन्न शब्द के साथ होता है, जैसे—अलमन्यथा गृहीत्वा (मालवि० १) अन्यथा समझने की आवश्यकता नहीं (अन्यथा मत समझें) ऐसी दशाओं में इसका अर्थ निषेधात्मक होता है।

५८. [3]सह, साकं, सार्धं, समं, आदि 'साथ' अर्थवाले शब्दों के योग में

---

१. येनाङ्गविकारः (२।३।२०) २. इत्थंभूतलक्षणे (२।३।२१)।
३. सहयुक्तेऽप्रधाने (२।३।१९)।

जो प्रधान कर्ता का साथ देता है उसमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु (उत्तर० २) 'तुम्हारे साथ मैं वनों में निवास करूँगा'। अमरसिन्धुः सार्धमस्मद्विधाभिः (उत्तर० ३) 'हम जैसों के साथ स्वर्ग की नदी।' आस्स्व साकं मया सौधे (भट्टि० ८।७६) 'मेरे साथ प्रासाद पर बैठो।'

५६. 'उपयोग' या आवश्यकता' बताने वाले शब्दों जैसे किम्, कार्यः, अर्थः, प्रयोजनं, गुणः, इत्यादि के योग में तथा इस अर्थ में प्रयुक्त 'किं' पूर्वक 'कृ' धातु के योग में जिसका उपयोग या जिसकी आवश्यकता होती है उसमें तृतीया और जो उपयोग करता है या जिसे आवश्यकता होती है उसमें षष्ठी विभक्ति लगती है। जैसे—देवपादानां सेवकैर्न प्रयोजनम् (हितो० १), आप को सेवकों की आवश्यकता नहीं। तृणेन कार्यं भवतीश्वराणाम् (पंच० १।१) तृण से भी धनी व्यक्ति कुछ लाभ प्राप्त कर लेते हैं। किं तया क्रियते धेन्वा (पंच० १) 'उस गाय से क्या करना ?' किं तया दृष्टया (शाकु० २) उसे देखने से क्या लाभ ?' अप्राज्ञेन सानुरागेण भृत्येन को गुणः (मुद्रा० १) स्वामिभक्त किन्तु मूर्ख सेवक से क्या प्रयोजन ?

द्रष्टव्य—पाणिनि ने **'दिवः कर्म च'** (१।४।४३) सूत्र दिया है, अर्थात् 'दिव्' (खेलना) धातु के योग में द्वितीया या तृतीया विभक्ति होती है; जैसे—अक्षैरक्षान्वा दीव्यति (जुआ खेलता है); इसी प्रकार 'संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि' (२।३।२२) सूत्र दिया है; 'पित्रा पितरं वा संजानीते' (अपने पिता के साथ मेल से रहता है)।

अभ्यास

१. अलमलं बहु विकत्थ्य। राज्ञः समक्षमेवावयोरधरोत्तरव्यक्तिर्भविष्यति। (मालवि० १)

२. देवेन देव्या च परिगृहीतोऽहममुना हरदत्तेन प्रधानपुरुषसमक्षमयं न मे पादरजसा तुल्य इत्यधिक्षिप्तः। (मालवि० १)

३. शापितासि मम लवंगिकावलोकितयोर्जीवितेन यदि वाचा न कथयसि। (मालती० ८)

४. आगन्तुकतयाऽश्रुतपूर्वं आवाभ्यामेष वृत्तान्तः। (शाकु० ६)

५. भगवति तमसे अयं (करिकलभकः) तावदीदृशः संपन्नः। तौ पुनर्न जाने कुशलवावेतावता कालेन कीदृशाविव भवतः। (उत्तर० ३)

६. चन्द्रापीडस्य सहपांशुक्रीडितया सहसंवृद्धतया च सर्वविश्रंभस्थानं द्वितीयमिव हृदयं वैशम्पायन: परं मित्रमासीत् । (काद० ७६) ।
७. अलमतियन्त्रणया । कृतमतिप्रसादेन । भगवति प्रसीद विमुच्यतामयमत्यादर इति तामब्रवीत् । (काद० १३३) ।
८. उषसि चोत्थाय तस्य जरद्द्रविडधार्मिकस्येच्छया निसृष्टैर्धनविसरै: पूरयित्वा मनोरथमभिमतभिरमणीयेषु प्रदेशेषु निवसन्नल्पैरेवाहोभिरुज्जयनीमाजगाम । (काद० २२९)
९. अलमुपालभ्य । आर्य दैवेनेदमनुष्ठितं किमत्रार्यस्य । (मुद्रा० ३)
१०. अयि पांचालतनये अलं विषादेन । किं बहुना । यत्करिष्ये तच्छ्रूयताम् । अचिरेणैव कालेन सुयोधनशोणितशोणपाणिस्तव कचान् भीम उत्तंसयिष्यति । (वेणी० १)
११. स्वहृदयेनापि विदितवृत्तान्तेनामुना जिह्रेमि । (काद० २३३)
१२. प्रवातशयने निषण्णा देवी परिजनहस्तगृहीतेन चरणेन परिव्राजकया कथाभिर्विनोद्यमाना तिष्ठति । (मृच्छ० ४)
१३. मदनमपि गुणैर्विशेषयन्ती
रतिरिव मूर्तिमती विभाति सेयम् । (मृच्छ० ४)
१४. शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य ।
दूरीकृता: खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभि: ।। (शाकु० १)
१५. शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपाण्डुना ।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ।। (रघु० ३।२)
१६. यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढ: स मर्त्येषु सर्वपापै: प्रमुच्यते ।। (गीता १०।३)
१७. किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा ।
कोऽर्थ: पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान् ।। (पंच० १)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. अधुनाऽन्या गतिर्नास्ति । अकथ्यमाने च महाननर्थोपनिपातो जायते प्राणपरित्यागेनापि रक्षणीया: सुहृदसव इति कथयामि । (काद० १५२)
२. तेषु तेषु रम्यतरेषु स्थानेषु तया सह तानि तान्यपरिसमाप्तान्यपुनरुक्तानि न केवलं चन्द्रमा: कादम्बर्या सह कादंबरी महाश्वेतया सह महाश्वेता तु

पुण्डरीकेण सह पुण्डरीकोऽपि चन्द्रमसा सह परस्परवियोगेन सर्व एव सर्वकालं सर्वसुखान्यनुभवन्तः परां कोटिमानन्दस्याध्यगच्छन् । (काद० ३६६)

३. अवधूतप्रणिपाताः पश्चात्संतप्यमानमनसोऽपि ।
निभृतैर्व्यपत्रपन्ते दयितानुनयैर्मनस्विन्यः ॥ (विक्रमो० ३)

४. कष्टं जनः कुलधनैरनुरञ्जनीयस्तन्नो यदुक्तमशिवं न हि तत्क्षणं ते ।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ॥
(उत्तर० १)

५. अथ दुर्लङ्घ्यशासनतया भगवतो मनोभुवो मदजननतया च मधुमासस्यातिरमणीयतया च तस्य प्रदेशस्याविनयबहुलतया चाभिनवयौवनस्य चंचलप्रकृतितया चेन्द्रियाणां दुर्निवारतया च विषयाभिलाषाणां तथा भवितव्यतया च तस्य तस्य वस्तुनस्तमपि तरलतामनयदनंगः । (काद० १४३),

६. विनाऽप्यर्थैर्वीर स्पृशति बहुमानोन्नतिपदं
समायुक्तोऽप्यर्थैः परिभवपदं याति कृपणः ।
स्वभावादुद्भूतां गुणसमुदयावाप्तिविषयां
द्युतिं सैंहीं किं श्वा धृतकनकमालोऽपि लभते ॥ (हितो० १)

७. अलं महीपाल तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ।
न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥ (रघु० २।३४)

८. कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः ।
त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ॥ (रघु० ६।७९)

९. लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्यं यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥ (भर्तृ० २।५५),

१०. अयमार्यचाणक्यस्तिष्ठति—
यो नन्दमौर्यनृपयोः परिभूय लोक—
मस्तोदयौ प्रतिदिशन्न विभिन्नकालम् ।
पर्यायपातितहिमोष्णमसर्वगामि
धाम्नाऽतिशाययति धाम सहस्रधाम्नः ॥ (मुद्रा० ३)

११. भूषणाद्युपचारेण प्रभुर्भवति न प्रभुः ।
परैरपरिभूताज्ञस्त्वमिव प्रभुरुच्यते ॥ (मुद्रा० ३)

१२. आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां ज्ञानं भोगो मित्रसंरक्षणं च।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः कोर्थंस्तेषां पार्थिवोंपाश्रयेण ॥
(भर्तृ० २१४८)

१३. न तेन सज्जं क्वचिदुद्यतं धनुः कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम्।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ॥
(किरात० ११२१)

१४. समुद्र इव गाम्भीर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव।
विष्णुना सदृशो वीर्ये क्षमया पृथिवीसमः ॥ (रामा० ११११७-१८)

१५. स बाल आसीद्वपुषा चतुर्भुजो मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः।
युवा कराक्रान्तमहीभृदुच्चकैरसंशयं संप्रति तेजसा रविः ॥
(शिशु० ११७०)

अनुवाद कीजिए :—

१. राजा को मनु द्वारा विहित नियमों के अनुसार अपनी प्रजा का पालन करना चाहिए।
२. सदाचार का कथन है कि अपने मित्र के जीवन की रक्षा अपने जीवन के मूल्य पर भी करनी चाहिए।
३. यह मनुष्य लोभ का मूर्त्तरूप है; वह धनसंचय से कभी भी सन्तुष्ट नहीं होगा।
४. क्या तुम अपने अज्ञान पर लज्जित नहीं हो और क्या तुम अपने विद्याविहीन उच्चकुल पर अभिमान करते हो ?
५. यह राजा वीरता, विद्या और अपनी प्रजा को सन्तुष्ट रखने की इच्छा में सभी दूसरे राजाओं से बढ़कर है।
६. आपकी आज्ञा दूसरे राजाओं द्वारा सिर पर धारण की जाती है, यह आपकी सम्प्रभुता का एक महान् चिह्न है।
७. उस पुरुष ने भेड़ के बच्चे को कन्धे पर रखा और इस मार्ग से वध-स्थान को गया।
८. मैं अपने इष्टदेव की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैंने पहले कभी तुम्हारी अँगूठी नहीं देखी है।
९. मैं जानता हूँ कि मेरे सेवक पन्द्रह दिन में लौट आवेंगे, क्योंकि उनके वहाँ ठहरने की क्या जरूरत ?

१०. केवल एक बार उत्कट भक्ति से 'ओम्' अक्षर का उच्चारण करने से पापी भी अपने सभी पापों से मुक्त ह' जाता है।

११. इस पुरुष के साथ चलने से क्या लाभ? वह दाहिने पैर से लंगड़ा है और तेज नहीं चल सकता।

१२ इस विषय में शका करने की आवश्यकता नहीं। मेरी बहन के पति ने इस बात को माना ही नहीं।

१३. मूर्ख! तुझे धिक्कार है। यदि तुम इन पुस्तकों को नहीं पढ़ते तो इनके बोझ का क्या लाभ?

१४. मुझे दोष न दो (अलम्); यह मेरे द्वारा नहीं किया गया था।

१५. बच्चे, रोओ मत (अलम्); जब तेरी माँ यहाँ आवेगी तो मैं तुझे उससे भोजन खिलवाऊँगा।

१६. शकुन्तला ने अपने प्रेमी के विषय में सोचने के कारण दुर्वासा का आगमन नहीं जाना।

१७. हे अन्धे पुरुष! तुम्हें इस दीपक से क्या प्रयोजन?

पाठ ७

सम्प्रदान कारक

६०. जिस व्यक्ति को कोई वस्तु दी जाती है उसे सम्प्रदान कहते हैं। सम्प्रदान को द्योतित करने वाले संज्ञापद को चतुर्थी विभक्ति में रखते हैं। जैसे—किं वस्तु विद्वन् गुरवे प्रदेयम् (रघु० ५।१८) विद्वान्। गुरु को कौन वस्तु दी जाय ? जिस व्यक्ति के लिये या जिस वस्तु को लक्ष्य में रखकर कोई कार्य किया जाता है; वह भी सम्प्रदान होता है, जैसे—युद्धाय संनह्यते (महाभाष्य) वह युद्ध के लिए तैयारी करता है'; तां नन्दनाय प्रार्थयते (मालती०) वह उसे नन्दन के लिए मांगता है।'

(क) [1]यज् ('यज्ञ करना' या 'यज्ञ में दिए गये दान के रूप में देना') धातु के योग में जिस व्यक्ति को यज्ञ अर्पित किया जाता है उसमें द्वितीया विभक्ति और जिस वस्तु या साधन द्वारा यज्ञ किया जाता है उसमें तृतीया विभक्ति होती है; जैसे—'पशुना रुद्रं यजते' (सि० कौ०) 'वह रुद्र के लिए एक पशु का यज्ञ करता है।'

६१. [2]'रुच्' (अच्छा लगना) और उसी अर्थ की अन्य धातुओं के योग में जिस व्यक्ति या वस्तु को अच्छा लगता है या जो सन्तुष्ट होता है उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे—यत्प्रभविष्णवे रोचते (शाकु० २ जो श्रीमान् को अच्छा लगे। यज्ञदत्ताय स्वदतेऽपूप: (काशिका) 'यज्ञदत्त' को अपूप (पूआ) पसन्द है।

६२ [3]धृ (दशवें गण चुरादि गण की धातु—'कर्जदार होना') धातु के योग में जिस व्यक्ति का कर्ज होता है उसमें और 'स्पृह्' धातु के योग में जिस वस्तु की स्पृहा की जाय उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे—वृक्षसेचने द्वे धारयसि मे (शाकु० १) तुम पर दो वृक्षों को सींचने का मेरा कर्ज है। परिक्षीणो यवानां प्रसृतये स्पृहयति' (भर्तृ० ३।४५) निर्धन व्यक्ति एक मुट्ठी जौ की ही इच्छा करता है।

द्र०—'स्पृह' धातु से प्रत्यय लगा कर बनाये गये शब्दों के योग में कभी-

---

१. यजे: कर्मण: करणसंज्ञा सम्प्रदानयस्य च कर्मसंज्ञा। (वार्तिक)

२. रुच्यर्थानां प्रीयमाण: (१।४।३३)

३. धारेरुत्तमर्ण:। स्पृहेरीप्सित:। (१।४।३५-६)

कभी चतुर्थी विभक्ति होती है, जैसे—भोगेभ्यः स्पृह्यालवः, (भर्तृ० ३।६४) 'भोगों के स्पृह्यालु'। कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहां (वेणी० ३); किन्तु सामान्यतः 'स्पृह' धातु से प्रत्यय द्वारा बने शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है :—स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी (रघु० ३।५)।

६३. [1]'क्रुध्' द्रुह' ईर्ष्य, असूय और इसी अर्थ वाली अन्य धातुओं के योग में जिसके प्रति क्रोध, द्रोह या ईर्ष्या के भाव होते हैं उस व्यक्ति में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे—हरये क्रुध्यति–द्रुह्यति–ईर्ष्यति–असूयति वा (सि० कौ०) वह हरि पर क्रुद्ध है, हरि से द्रोह रखता है ईर्ष्या रखता है, आदि। किन्तु जब 'क्रुध्' और 'द्रुह्' धातुओं के पहले उपसर्ग लगे होते हैं तो उनके योग में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—**मच्छरीरमभिद्रोग्धुम्** (मुद्रा० १) 'मेरे शरीर को आघात पहुँचाने के लिए'; न खलु तामभिक्रुद्धो गुरुः (विक्रमो० ३) क्या गुरु उससे क्रुद्ध नहीं हुए ?

६४. [2]प्रतिज्ञा करना अर्थ वाली 'प्रति' या 'आ' 'उपसर्गपूर्वक 'श्रु' धातु के योग में जिस व्यक्ति के लिए किसी वस्तु की प्रतिज्ञा की जाती है या वचन दिया जाता है उसे चतुर्थी विभक्ति में रखा जाता है; जैसे—प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियां (रघु० १५।४) 'काकुत्स्थ ने उनसे विघ्नों को दूर करने की प्रतिज्ञा की (उन्हें वचन दिया)।

६५. [3]जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है, या जिसको बनाने के लिए दूसरी वस्तु होती है या (किसी शिष्ट प्रयोजन के लिए बनाई गई वस्तु के रूप में) प्रयुक्त की जाती है उसे चतुर्थी विभक्ति में रखा जाता है; जैसे—काव्यं यशसे (का० प्र० १) काव्य यश के लिए (रचा जाता है); यूपाय दारु (महाभाष्य) दारु यूप बनाने के लिये होता है; कुण्डलाय हिरण्यम् (वही) सोने का प्रयोग कुण्डल आभूषण के लिए होता है, अवहनाय उलूखलम् (वही) कूटने के लिए ओखल।'

(क) [4]जब किसी प्रयोजनबोधक 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द का भाव वाक्य

---

१. क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः। क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म। (१।४।-३७–८) २. प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता। (१।४।४०)

३. तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या। (वार्तिक)

४. क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः (२।३।१४)

में छिपा होता है, तब इस तुमुन् प्रत्ययान्त धातु के कर्म को चतुर्थी विभक्ति में रखा जाता है; जैसे—फलेभ्यो याति=फलान्याहर्तुं याति 'फलों के लिए जाता है, फल लाने जाता है; वनाय गां मुमोच = वनं गन्तुं गां मुमोच 'वन (को जाने) के लिए गाय को खोलता है।' यहां 'फल' और 'वन' क्रमशः 'आहर्तुं' और 'गन्तुं' के कर्म चतुर्थी विभक्ति में रखे गये हैं।

(ख) [1]प्रायः भाववाचक संज्ञा में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग उस धातु से 'तुमुन्' प्रत्यय के प्रयोजनवाचक अर्थ को व्यक्त करने के लिये किया जाता है। जैसे—यागाय याति = यष्टुं याति 'वह यज्ञ करने जाता है'; इसी प्रकार समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम् (शाकु० १), यतिष्ये वः सखीप्रत्यानयनाय (विक्रमो० १)।

६६. [2]क्लृप् धातु जिसका अर्थ 'समर्थ होना' 'सम्पादन करना' 'उत्पन्न करना' होता है, और इसके समान अर्थवाली धातुओं, जैसे—'संपद्', 'भू', 'जन्' के योग में जो फल उत्पन्न होता है अथवा जिस परिणाम पर कोई वस्तु पहुँचाती है, उसमें' चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे—कल्पसे रक्षणाय (शाकु० ५) 'तुम हमारी रक्षा करने में समर्थ हो।' मूत्राय कल्पते—जायते संपद्यते यवागूः (महाभाष्य) माँड से मूत्र उत्पन्न होता है; जैसे—यस्ततौ स्वल्पदुःखाय (पंच० १) क्योंकि वे दोनों स्वल्प कष्ट देते हैं।

(क) जिससे किसी उत्पात के होने की पूर्वसूचना मिलती है उसे भी चतुर्थी विभक्ति में रखा जाता है[3]; जैसे—वाताय कपिला विद्युत् (महाभाष्य), कपिला रंग की बिजली तूफान आने की सूचना देती है। मांसौदनाय व्याहरति मृगः (वही) 'हिरण की ध्वनि मांसाहार के प्रति की सूचना देती है।

(ख) 'हित' और 'सुख' शब्दों के योग में चतुर्थी होती है, जैसे—ब्राह्मणाय हितं, ब्राह्मणाय सुखं (सि० कौ०) 'ब्राह्मण का कल्याण हो'[4] हितमामयाविने (महाभाष्य) 'रोगी का भला हो।

द्रष्टव्यः—'किसी पर या किसी के प्रति भला' के अर्थ में 'हित' के योग में सप्तमी या षष्ठी विभक्ति भी होती है।

---

१. तुमर्थाच्च भाववचनात् (२।३।१५)
२. क्लृपि संपद्यमाने च। (वार्तिक)
३. उत्पातेन ज्ञापिते च। (वार्तिक)
४. नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च। (२।३।१६)

६७. नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा और 'वषट्' (देवताओं आदि को आहुति देते समय कहे जाने वाले शब्द) तथा 'जोड़ होना', या 'पर्याप्त होना' अर्थ वाले शब्द 'अलं' के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे—नमो विश्वसृजे तुभ्यं (रघु० १०।१६) विश्व की सृष्टि करने वाले आपको प्रणाम। स्वस्ति भवते (मालवि० २) आपका कल्याण हो। 'अग्नये स्वाहा' (सि० कौ०), अग्नि को यह आहुति। इसी प्रकार 'पितृभ्यः स्वधा, इन्द्राय वषट्, दैत्येभ्यो हरिरलं (सि० कौ०) हरि दैत्यों के लिये पर्याप्त हैं; अलमेषा क्षुधितस्य (मे) तृप्त्यै (रघु० २।३६) 'यह (गाय) मुझ भूखे को सन्तुष्ट करने के लिये काफी है।'

(क) 'पर्याप्त होना' 'समर्थ होना' अर्थवाले 'अलं' के पर्यायवाची शब्दों यथा 'प्रभु', 'शक्त' और प्र+भू धातु के योग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे—प्रभुर्मल्लो मल्लाय, शक्तो मल्लो मल्लाय, प्रभवति मल्लो मल्लाय (महाभाष्य) 'एक पहलवान दूसरे पहलवान का जोड़ है'। विधिरपि न येभ्यः प्रभवति (भर्तृ० २।६४) जिनके ऊपर विधाता का भी प्रभाव नहीं है।

(ख) 'नमः' पूर्वक 'कृ' धातु के योग में सामान्यतः द्वितीया विभक्ति होती है किन्तु कभी-कभी चतुर्थी भी होती है। जैसे—**मुनित्रयं नमस्कृत्य** (सि० कौ०) 'तीन मुनियों को नमस्कार करके, किन्तु—**नमस्कुर्मो नृसिंहाय** (वही) हम नृसिंह को नमस्कार करते हैं।'

(ग) 'प्रणिपत्' 'प्रणम्' जैसे 'नमस्कार करना' अर्थवाली धातुओं के योग में चतुर्थी या द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—'धातारं प्रणिपत्य' (कुमार० २।३) विधाता को प्रणाम करके; तस्मै प्रणिपत्य नन्दी (कुमार० ३।६०), आर्यं प्रणिपत्य (मुद्रा० १), इसी प्रकार—तां भक्तिप्रवणेन चेतसा प्रणनाम (काद० २२८); तां कुलदेवताभ्यः प्रणमय्य (कुमार० ७।२७); प्रणम्य त्रिलोचनाय (काद० १३१)।

टिप्पणी—लौकिक संस्कृत के लेखकों ने समय-समय पर इन धातुओं से बने संज्ञाशब्दों के योग में भी चतुर्थी विभक्ति का व्यवहार किया है। जैसे—मूर्ध्ना प्रणामं वृषभध्वजाय चकार (कुमार० ३।६२), अस्मै प्रणाममकरवम् (काद० १४२), तस्मै दण्डप्रणाममकरवम् (दशकु० १।२)।

(घ) अभिवादन करने और आशीर्वाद देने में 'स्वागतं', कुशलं' जैसे शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे—देवदत्ताय कुशलम् (महाभाष्य); स्वागतं देव्यै (मालवि० १) 'रानी का स्वागत है।' कुशलं, भद्रं, सुखं आदि

जैसे शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति का भी प्रयोग होता है। देखिए पाठ १०।

६८. कथ् ख्या, शंस् और चक्ष् धातुओं के योग में जिन सबका अर्थ 'कहना' होता है (दुह्याच्पच्० के विपरीत), 'नि'पूर्वक 'विद्' धातु के प्रेरणार्थ रूप के योग में (अधिकरण ४४ के विपरीत) और इसी अर्थ की अन्य धातुओं के योग में जिस व्यक्ति से कुछ कहा है उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे—**आर्ये कथयामि ते भूतार्थं** (शाकु०) 'आर्या ! मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ। **एहि इमां वनस्पतिसेवां काश्यपाय निवेदयावहः** (शाकु० ४) आओ, इन वृक्षों की सेवा के विषय में काश्यप से निवेदन करें; इसी प्रकार 'यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ' (उत्तर० ४) जिसको उन्होंने वेद का ज्ञान प्रकाशित किया।' यस्मै मुनिर्ब्रह्म परं विवव्रे (महावीर० २)।

६९. 'भेजना' अर्थवाली क्रियाओं के योग में जिसके पास कोई वस्तु भेजी जाती है उसमें चतुर्थी और जिस स्थान को भेजी जाती है उसमें द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः (रघु० ५।३९) भोज द्वारा एक दूत रघु के पास भेजा गया। माधवं पद्मावतीं प्रहिण्वता देवरातेन (मालती० १) माधव को पद्मावती के पास भेजते हुए देवरात द्वारा।'

७०. [1]'मन्' समझना अर्थवाली चतुर्थ अर्थात् दिवादिगण की धातु का गौण कर्म यदि पशु न हो तो अनादर-प्रदर्शन के अर्थ में उसमें द्वितीया या चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे—न त्वां तृणाय तृणं वा मन्ये (सि० कौ०) मैं तुम्हें एक तिनके के बराबर भी नहीं समझता।'

द्रष्टव्य—जब निषेध या अनादर का भाव नहीं होता अपितु केवल 'तुलना' का अर्थ होता है, तो केवल द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है; जैसे—त्वां तृणं मन्ये (महाभाष्य) मैं तुम्हें तिनके के समान समझता हूँ, किन्तु **हरिमप्यमंसत तृणाय** शिशु० १५।६१)।

७१. [2]गत्यर्थक धातुओं के योग में जिस दिशा की ओर गति होती है उसे चतुर्थी विभक्ति में रखते हैं अथवा जब शारीरिक गति का निर्देश होता है तो द्वितीया विभक्ति भी होती है; जैसे—ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति; किन्तु 'मनसा हरिं व्रजति') मन से हरि के पास जाता है अर्थात् उनका ध्यान करता है)।

द्रष्टव्य—(१) **राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः** (१।४।३९) अर्थात् जिस व्यक्ति के

---

१. मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु। (२।३।१७)

२. गत्यर्थकर्मणि द्वितीया चतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि। (२।३।१२)

विषय में उसकी समृद्धि या कुशल के विषय में प्रश्न पूछा जाता है उसे 'राध्' (प्रसन्न करना) और 'ईक्ष' (किसी के कल्याण की कामना करना) धाराओं के योग में चतुर्थी विभक्ति में रखा जाता है। जैसे—कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा गर्गः (अर्थात् 'पृष्टो गर्गः शुभाशुभं पर्यालोचयति')।

(२) **परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्** (१।४।४४) अर्थात् जितनी मजदूरी पर किसी व्यक्ति को सेवा में लगाया जाता है उस मूल्य को तृतीया या चतुर्थी विभक्ति में रखते हैं। जैसे—शतेन शताय वा परिक्रीतोऽयं दासः।

अभ्यास

१. नैतन्न्याय्यम्। सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमो दोषाय। (मालवि० १)

२. चपलोऽयं बटुः कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्तःपुरेभ्यः कथयेत्। (शाकु० २)

३. अहमपि वैतानिकं शांत्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि। (शाकु० ३)

४. स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै। मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पते। (शाकु० ७)

५. मूर्ख, नैष तव दोषः। साधोः शिक्षा गुणाय संपद्यते नासाधोः। (पंच० १।१८)

६. प्रसीद भगवति वसुंधरे शरीरमसि संसारस्य। तत्किमसंविदानेव जामात्रे कुप्यसि। (उत्तर० ७)

७. मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भरा न प्रणमन्ति देवताभ्यो, न मानयन्ति मान्यानात्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने। (काद० १०८)

८. प्रतिश्रुतं तेन तस्मै स्वसुरवन्तिसुन्दर्याः प्रदानम्। (दश० २।१)

९. चंद्रापीडः समुपसृत्य पूर्ववदेव तां महाश्वेताप्रणामपुरःसुरं दर्शितविनयः प्रणनाम। (काद० २२६)

१०. प्रणिपत्य सुरास्तस्मै शमयित्रे सुरद्विषाम्।
अथैनं तुष्टुवुः स्तुत्यमवाङ्मनसगोचरम्॥ (रघु० १०।१५)

११. रविमावसते सतां क्रियायै सुधया तर्पयते सुरान् पितॄंश्च।
तमसां निशि मूर्च्छतां निहंत्रे हरचूडानिहितात्मने नमस्ते॥ (विक्रमो० ३)

१२. उमा वधूर्भवान् दाता याचितार इमे वयम्।
वरः शंभुरलं ह्येष त्वत्कुलोद्भूतये विधिः॥ (कुमार० ६।८२)

१३. चरतः किल दुश्चरं तपस्तृणबिंदोः परिशङ्कितः पुरा।
प्रजिघाय समाधिभेदिनीं हरिरस्मै हरिणीं सुरांगनाम्॥ (रघु० ८।७९)

१४. वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी ।
पीता भवति सस्याय दुर्भिक्षाय सिता भवेत् ॥ (महाभाष्य)

१५. स्वस्त्यस्तु ते निर्गलितांबुगर्भम्
शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि ॥ (रघु० ५।१७)

१६. ताभ्यां तथागतमुपेत्य तमेकपुत्र-
मज्ञानतः स्वचरितं नृपतिः शशंस । (रघु० ६।७७)

१७. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥ (गीता ४।८)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. तदाकर्ण्य तामहं दण्डवत्प्रणम्य तस्यै मदुदंतमखिलमाख्याय विस्मयविकसिताक्षं जनकमदर्शयम् । (दशकु० १।४)

२. सखि वासन्ति, दुःखायेदानीं रामस्य दर्शनं सुहृदाम् । तत्कियच्चिरं त्वां रोदयिष्यामि तदनुजानीहि मां गमनाय । (उत्तर० ६)

३. स्वयमेवोत्पद्यंत एवं विधाः कुलपांशवो निःस्नेहाः पशवो येषां क्षुद्राणां प्रज्ञा पराभिसन्धानाय न ज्ञानाय । पराक्रमः प्राणिनामुपघाताय नोपकाराय धन-परित्यागः कामाय न धर्माय । किं बहुना सर्वमेव येषां दोषाय न गुणाय । (काद० २८८)

४. श्रोत्रियाभ्यागताय वत्सतरी महोक्षं वा निर्वपन्ति गृहमेधिनः (उत्तर० ४)

५. दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम् ।
संपद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम् ॥ (रघु० १।२६)

६. नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ॥ (कुमार० २।४)

७. स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः । (विक्रमो० १)

८. सर्वः कल्ये वयसि यतते लब्धुमर्थान्कुटुम्बी ।
पश्चात् पुत्रैरपहृतभरः कल्पते विश्रमाय ॥ (विक्रमो० २)

९. यदेवोपननं दुःखात्सुखं तद्रसवत्तरम् ।
निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः ॥ (विक्रमो० ३)

१०. शुद्धान्तसंभोगनितान्ततुष्टे न नैषधे कार्यमिदं निगाद्यम् ।
अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगंधिः स्वदते तुषारा ॥ (नैषध०४।६५)

११. किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्द्धकशोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते (कुमार० ५।४४)

१२. पुंसामसमर्थानामुपद्रवायात्मनो भवेत्कोपः ।
पिठरं क्वथितमात्रं निजपार्श्वानेव दहतितराम् ।। (पंच० १।१४)

१३. पयः पानं भुजंगानां केवलं विषवर्द्धनम् ।
उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ।। (हितो० ३)

१४. प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय न चेदिभूभुजे ।
अनुहुंकुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी ।। (शिशु० १६।२५)

१५. संतानकामाय तथेति कामं राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा ।
दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयं पुत्रोपभुंक्ष्वेति तमादिदेश ।। (रघु० २।६५)

१६. तस्याः प्रसन्नेन्दुमुखः प्रसादं गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य ।
प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै शशंस वाचा पुनरुक्तयेव ।। (रघु० २।६८)

१७. ततो यथावद्विहिताध्वराय तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय ।
वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी विचक्षणः प्रस्तुतमाचचक्षे ।। (रघु० ५।१९)

१८. वसन् स तस्यां वसतौ रघूणां पुराणशोभामधिरोपितायाम् ।
न मैथिलेयः स्पृहयांबभूव भर्त्रे दिवो नाप्यलकेश्वराय ।। (रघु० १६।४२)

१९. तस्य स्पृहयमाणोऽसौ बहुप्रियमभाषत ।
सानुनीतिश्च सीतायै नाक्रुध्यन्नाप्यसूयत ।।
संक्रुध्यसि मृषां किं त्वं दिदृक्षुः मां मृगेक्षणे ।
ईक्षितव्यं परस्त्रीभ्यः स्वधर्मो रक्षसामयम् ।।
रावणाय नमस्कुर्याः स्यात् सीते स्वस्ति ते ध्रुवम् ।
अन्यथा प्रातराशाय कुर्याम त्वामलं म् ।। (भट्टि० ८।७६, ७८, ९८)

अनुवाद कीजिए :—

१. अरे नीच पुरुष, क्या तुम एक चाण्डाल के घर सेवा करना पसन्द करते हो ?
२. देवी, मुझे अन्यथा न समझें और मुझ पर व्यर्थ में क्रोध न करें ।
३. मैं धन की इच्छा नहीं करता (स्पृह्) अपितु अक्षय यश (चाहता हूँ) ।
४. लक्ष्मण से उसके साथ जाने का वादा करके तुम उससे क्यों नहीं कह देते कि तुम ऐसा करने में असमर्थ हो ।

५. इस विवरण को सुनने पर अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने उससे अपने रहस्य बता दिये ('नि' पूर्वक 'विद्') ।
६. इन धर्मात्माओं का एक दर्शन भी मेरी शुद्धि के लिये पर्याप्त है, अतएव, अपने अभीष्ट फल की सिद्धि के लिए मैं उनकी सेवा करूँगा ।
७. मैंने अपने भाई द्वारा उसे कहला दिया (आ + ख्या) कि मुझे उसके दर्शन से कोई प्रयोजन नही ।
८. हे वृद्धे, ऐसे दुःखमय विचार केवल और अधिक शोक उत्पन्न करेंगे, अतएव, कुछ समय तक धैर्य रखो ।
९. इस संसार में विषय सुखों का भोग केवल खेद को ही पहुँचाता है ।
१०. मेरी प्रजाएँ मुझसे घृणा करती हैं (असूय) और मेरे जीवन से द्रोह करती हैं (द्रुह्) ।
११. पहले अपने गुरु को प्रणाम करो (प्रणम्) और तब अपना पाठ पढ़ना प्रारम्भ करो ।
१२. उस त्रिनेत्र भगवान को प्रणाम है जिन्होंने अपनी तीसरी आंख की अग्नि से कामदेव को भस्म कर दिया ।
१३. जब किसी मनुष्य को पुत्र होता है तब वह अपने पितरों का ऋण चुका देता है ।
१४. तुम स्वयं ही शत्रु के सम्पूर्ण दल को परास्त करने के लिए पर्याप्त हो (अलम्) ।
१५. जब मनुष्य दुर्भाग्यग्रस्त होता है तब एक छोटा कारण भी उसका नाश करने के लिए पर्याप्त होता है (अलम्) ।
१६. मैं विदेह के राजा के पास एक दूत भेजूँगा और उन्हें यह खुशी का समाचार सूचित करूँगा ।

पाठ ८

अपादान कारक

७२. पञ्चमी विभक्ति का मुख्य अर्थ है 'अपादान'। जिससे कोई वास्तविक या कल्पित वियोग (अलग होना) पाया जाता है, वह 'अपादान' कहलाता है और उसे पञ्चमी विभक्ति में रखते हैं। जैसे—**ग्रामादायाति** 'वह गाँव से आता है' में जिससे अलग होना पाया जाता है वह है—'ग्राम'। इस प्रकार इसका अर्थ अंग्रेजी के from (से) का होता है।

७३. [1]पञ्चमी विभक्ति से युक्त संज्ञा शब्द प्रायः किसी क्रिया या घटना का कारण बताता है और उसका अर्थ 'कारण से', 'लिये' आदि होता है; जैसे—सौहृदादपृथगाश्रयां (उत्तर० १) 'प्रेम के कारण अलग न रहते हुए' (जिनका आश्रय स्थान अलग न था)। ऐसा संज्ञा शब्द, जो स्त्रीलिङ्ग न हो और किसी कार्य का कारण बताता हो, तृतीया या पञ्चमी विभक्ति में रखा जाता है। जैसे—**जाड्येन जाड्यात् वा बद्धः** (सि० कौ०) अपनी जड़ता के कारण वह पकड़ा गया। **बुद्ध्या मुक्तः** (सि० कौ०) अपनी बुद्धि के कारण वह मुक्त कर दिया गया। **भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च प्रीतास्मि ते** (रघु० २।६३) मैं तुम्हारी गुरु के प्रति भक्ति और मेरे प्रति दया के कारण तुम पर प्रसन्न हूँ।'

द्र०—कभी-कभी स्त्रीलिङ्ग संज्ञा शब्द भी इस अर्थ में पञ्चमी विभक्ति में प्रयुक्त होता है। जैसे—नास्ति घटोनुपलब्धेः' (सि० कौ०)।

(क) वादविवाद में तर्कों का उत्तर देने के लिये या तर्क प्रस्तुत करने के लिए प्रायः पञ्चमी का प्रयोग सम्पूर्ण कारणबोधक कथन को व्यक्त कर देता है। जैसे—पर्वतो वह्निमान् धूमात् (तर्क०) पर्वत में अग्नि है क्योंकि उसमें धुँआ है। नेश्वरो जगतः कारणमुपपद्यते। कुतः वैषम्यनैर्घृण्यप्रसंगात् (शा० भा०)—(प्रतिपक्षी का कहना है) ईश्वर जगत् का निमित्त कारण नहीं हो सकता। क्यों ? (क्योंकि) वह पक्षपातपूर्ण और क्रूर होने (के दो दोषों) का अपराधी हो सकता है।'

७४. 'तरप्' और 'ईयसुन्' प्रत्यय लगाकर बनाये गये शब्दों अथवा तुलना

---

१. विभाषागुणेऽस्त्रियाम्। (२।३।२५)

बोधक शब्दों के योग में जिससे तुलना की जाती है उसमें पंचमी विभक्ति लगती हैं, जैसे—सत्यादप्यनृतं श्रेयः (वेणी० २) सत्य से असत्य बढ़कर है।' मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः (रघु० १४।५६) चेतना मूर्च्छा से भी अधिक कष्टकर हुई'; चैत्ररथादनूने वृन्दावने (रघु० ६।५०) वृन्दावन में जो चैत्ररथ से कम नहीं है। अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते (हितो० ४) सत्य एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ से भी बढ़कर होता है', श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते (मनु० ३।२७८। श्राद्ध कर्म के लिए पूर्वाह्ण की अपेक्षा अपराह्ण अच्छा होता है।

७५. [1]जब किसी वाक्य में पूर्वकालिक क्रिया ('ल्यप्' अथवा 'क्त्वा' प्रत्ययान्त) का भाव छिपा होता है तो उसके कर्म को पञ्चमी विभक्ति में रखते हैं; जैसे—प्रासादात्प्रेक्षते (सि० कौ०)=प्रासादमारुह्य प्रेक्षते "प्रासाद से देखता है। इसी प्रकार श्वसुराज्जिह्रेति (सि० कौ०)=श्वसुरं वीक्ष्य जिह्रेति।

(क) इन्हीं स्थितियों में जिस स्थान पर कोई क्रिया होती है उसे भी पंचमी विभक्ति में रखते हैं। जैसे—आसनात्प्रेक्षते अर्थात् 'आसने उपविश्य प्रेक्षते' आसन पर से देखता है।

(ख) प्रश्नों और उत्तरों में भी पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—कुतो भवान् ? पाटलिपुत्रात् (महाभाष्य)।

७६. [2]जुगुप्सा (घृणा), विराम (रुकना, परहेज करना) प्रमाद (अनवधानता, भूल करना) को सूचित करने वाले शब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे—पापाज्जुगुप्सते (महाभाष्य) 'वह पाप से घृणा करता है'; वत्सैतस्माद्विरम् (उत्तर० १) हे वत्स, ऐसा मत करो, इससे दूर रहो; स्वाधिकारात्प्रमत्तः; (मेघ० १) अपने कर्त्तव्य में अनवधान होकर, इसी प्रकार—प्राणाघातान्निवृत्तिः (भर्तृ० २।२६) प्राणघात से दूर रहकर। धर्मान्मुह्यति (महाभाष्य)।

द्र०—'किसी के विषय में अनवधान होना' अर्थ में 'प्रमद' के योग में सामान्यतया सप्तमी विभक्ति होती है, जैसे—न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः (मनु २।२१३) 'बुद्धिमान् लोग स्त्रियों के विषय में अनवधान नहीं रहते।'

७७. [3]जिस गुरु से कोई चीज पढ़ी जाती है उसमें पञ्चमी होती है। इसी

---

१. ल्यब्लोपे कर्मण्युपसंख्यानम्। अधिकरणे च। प्रश्नख्यानयोश्च।

२. जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्। (वार्तिक)

३. आख्यातोपयोगे। जनिकर्तुः प्रकृतिः। भुवः प्रभवः (१।४।२९।३०-१)

प्रकार 'जन्' (उत्पन्न होना) धातु के योग में प्रमुख कारण में और 'भू' धातु के योग में उत्पत्तिस्थान में पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे—उपाध्यायादधीते (सि० कौ०) गुरु से पढ़ता है; इसी प्रकार 'मयातीर्थादभिनयविद्या शिक्षिता (मालवि० १) मैंने एक गुरु से अभिनय की विद्या सीखी है। गोमयाद्वृश्चिको जायते (महाभाष्य) बिच्छू गाय के गोबर से उत्पन्न होता है; प्राणाद्वायुरजायत (ऋग्वेद १०।९०) वायु प्राण से उत्पन्न हुआ;' हिमवतो गङ्गा प्रभवति (महाभाष्य) गंगा हिमवान् से निकलती है; लोभात् क्रोधः प्रभवति (हितो० १) लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है।

द्र०—'उत्पन्न होना' अर्थवाली क्रियाओं के योग में जिससे कुछ उत्पन्न हो उस स्रोत में सप्तमी विभक्ति होती है जैसे—परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ (मनु० ३।१७४), जातोपि दास्यां शूद्रेण (याज्ञ० २।१३३); शुकनासस्यापि मनोरमायां तनयो जातः (काद० ७३); सा तस्यामुदपादि (कुमार० १।२२)।

७८. [1]भयार्थक और त्राणार्थक शब्दों के योग में जिससे भय उत्पन्न होता है उसे पञ्चमी विभक्ति में रखा जाता है; जैसे—न भीतो मरणादस्मि (मृच्छ०) मैं मृत्यु से नहीं डरता हूँ' कपेरत्रासिषुर्नादात् (भट्टि० ९।११) वानरों की ध्वनि से भयभीत थे; तीक्ष्णादुद्विजते (मुद्रा० ३) तीक्ष्ण व्यक्ति से डरता है (दूर भागता है)। भीमाद्दुःशासनं त्रातुं (वेणी० ३) भीम से दुःशासन को बचाने के लिये; इसी प्रकार-'लोकापवादाद्भयं' (भर्तृ० २।६२) तृणबिन्दोः परिशङ्कितः (रघु० ८।७९)।

(अ) [2]जिससे कोई व्यक्ति दूर किया जाय और निषेध किया जाय उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे—पापान्निवारयति (भर्तृ० १।७२) पाप से दूर करता है।

७९. [3]'परा' उपसर्गपूर्वक 'जि' धातु के योग में जो असह्य होता है उसे पंचमी विभक्ति में रखा जाता है। जैसे—अध्ययनात्पराजयते (महाभाष्य) अध्ययन को असह्य पाता है।'

८०. [4]जिस समय या स्थान से समय या स्थान की दूरी नापी जाती है

---

१. भीत्रार्थानां भयहेतुः (१।४।२५)। २. वारणार्थानामीप्सितः (१।४।२७)।
३. पराजेरसोढः। (१।४।२६)
४. यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पंचमी तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ कालात् सप्तमी च वक्तव्या। (वार्तिक)

उसे पञ्चमी विभक्ति में रखते हैं; 'स्थान की दूरी' बताने वाले शब्द को प्रथमा विभक्ति या सप्तमी विभक्ति में रखते हैं और 'समय का अन्तर' बताने वाले शब्द में सप्तमी विभक्ति में रखते हैं: जैसे—गवीधुमतः सांकाश्यं चत्वारि योजनानि चतुर्षु योजनेषु वा (महाभाष्य) गवीधुमान् से साकाश्य चार योजन है; कार्तिक्या आग्रहायणी मासे (वही) आग्रहायणी कार्तिक्या से एक मास के अन्तर पर पड़ती है। इसी प्रकार-समुद्रात्पुरी क्रोशौ या क्रोशयोः।

८१. [1]'उसके अतिरिक्त' या 'उससे भिन्न' अर्थ वाले शब्दों जैसे अन्य, पर, इतरः, आरात् (निकट या 'दूर') ऋते (विना) दिशावोधक शब्द जो उस दिशा से सम्बद्ध 'समय' का भी निर्देश करते हों, 'अंच्' से व्युत्पन्न दिशावाची शब्द जैसे 'प्राक्' 'प्रत्यक्' और 'आ' तथा 'आहि' से अन्त होने वाले शब्द—इन सबके योग में पञ्चमी विभक्ति होती है; जैसे—कृष्णादन्यो भिन्न इतरो वा (सि० कौ०) 'कृष्ण से भिन्न या दूसरा'; आराद्वनात् (सि० कौ०) 'वन के निकट या वनसे दूर'; विविक्तादृतेऽन्यच्छरणं नास्ति (विक्रमो०) एकान्त स्थान के अतिरिक्त कोई और आश्रय नहीं है; ग्रामात्पूर्वं उत्तरो वा 'गाँव से पूर्व या उत्तर' चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः (सि० कौ०) फाल्गुन का महीना चैत्र से पहले पड़ता है। प्राक्प्रत्यग्वा ग्रामात् (वही) गाँव के पूर्व या पश्चिम में, दक्षिणा दक्षिणाहि वा ग्रामात् (वही) गाँव के दक्षिणा या गाँव से दक्षिणदिशा में, आङ्नाभिवर्धनात् (मनु० २।२९) नाभि काटने से पहले।

८२. प्रभृति, आरभ्य, बहिः, अनन्तरं, परं, उर्ध्वं के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे—**शैशवात्प्रभृति पोषिता** (उत्तर० १) बचपन से पाली गई; **मालत्या प्रथमावलोकदिवसादारभ्य** (मालती० ६) मालती को पहली बार देखने के दिन स लेकर; **निवसन्नावसथे पुराद्बहिः** (रघु० ८।१४) नगर के बाहर एक घर में निवास करते हुए; **पाणिपीडनविधेरनन्तरम्** (कुमार० ८।१) उसके पाणिग्रहण की विधि के बाद; अस्मात्परम् (शकु० ६) इस व्यक्ति के बाद'; ऊर्ध्वं म्रियेे मुहूर्तार्द्धं (भट्टि० १८।१६) 'मैं एक क्षण के बाद मर जाऊँगा।'

द्र०—(क) इसी अर्थ में 'प्रभृति' और 'आरभ्य' शब्द प्रायः कालवाचक विशेषण के साथ प्रयुक्त होते हैं। जैसे—यतः प्रभृति, ततः प्रभृति (शाकु० ३); अद्यप्रभृति तवास्मि दासः (कुमार० ५।८६)

१. अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते। (२।३।२९)

(ख) कभी-कभी 'अनन्तरं' 'परं' आदि का अर्थ छिपा रहता है जैसे—बह्वोर्दृष्टं कालात् (उत्तर० २) बहुत दिनों के बाद देखा गया।'

८३. [1]"पृथक्' (अलग) 'विना' और 'नाना' शब्दों के योग में द्वितीया और तृतीया विभक्तियों के अतिरिक्त पंचमी विभक्ति भी लगती है। जैसे—रामात् रामेण रामं वा विना पृथग् नाना वा (सि० कौ०) राम के विना या राम से भिन्न; नाना नारी निष्फला लोकयात्रा (वोपदेव)

८४. "तक" "जहाँतक" और 'से' अर्थ में प्रयुक्त 'आ' उपसर्ग के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है; जैसे—आपरितोषाद्विदुषां (शाकु० १) 'विद्वानों को सन्तोष मिलने तक'; 'आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि' (शाकु० १) 'मैं प्रारम्भ से सुनना चाहता हूँ'; 'आकैलासात्' (मेघ० ११) कैलास तक। कभी-कभी संज्ञाओं के साथ 'आ' जोड़कर अव्ययीभाव समास बनाया जाता है; जैसे—आमेखलं संचरतां घनानां (कुमार० १।५) मेखला (मध्यभाग) तक विचरण करने वाले बादलों का।'

८५. [2]जब 'छिपने' का अर्थ हो तो जिस व्यक्ति की दृष्टि बचाने की इच्छा की जाती है उसे पंचमी विभक्ति में रखा जाता है। जैसे—मातुर्निलीयते कृष्णः (सि० कौ०) कृष्ण अपनी माता से छिपता है।

८६. [3]'प्रतिनिधि होना' या बदले में 'होना' के अर्थ में 'प्रति' उपसर्ग के योग में पंचमी विभक्ति होती है, जैसे—प्रद्युम्नः कृष्णात्प्रति (सि० कौ०) प्रद्युम्न कृष्ण का प्रतिनिधि है; तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान् (सि० कौ०) तिलों के बदले में उड़द देता है।

अभ्यास

१. अनुष्ठितनिदेशोऽपि सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये। (शाकु० ७)

२. अलमलमाक्रन्दितेन। सूर्योपस्थानात्प्रतिनिवृत्तं पुरुरवसं मामुपेत्य कथ्यतां कुतो भवत्याः परित्रातव्या इति। (विक्रमो० १)

३. रामः—एवमेतत्। एते हि हृदयमर्मभिदः संसारभावा येभ्यो बीभत्समानाः सन्त्यज्य सर्वान् कामान्मनीषिणोऽरण्ये विश्राम्यन्ति। (उत्तर० १)

---

१. पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्। (२।३।३२)

२. अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति। (१।४।२८)

३. प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्। (२।३।११)

४. नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम् । (काद० ३५)

५. नैव जानासि तं देवमैक्ष्वाकं यदेवं वदसि । तद्विरम्यतामतिप्रसंगात् । (उत्तर० ५)

६. कृतातिथ्यया महाश्वेतया परिपृष्टो दिग्विजयादारभ्य किन्नरमिथुनानुसरण-प्रसंगेनागमनमात्मनः सर्वमाचचक्षे । (काद० १३४)

७. वत्से मालति जन्मनः प्रभृति वल्लभा ते लवंगिका । तत्किमुज्जिहानजीवितां वराकीं नानुकम्पसे । (मालती० १०)

८. चाणक्यः—वृषल वृषल अलमुत्तरोत्तरेण । यद्यस्मत्तो वरीयान् राक्षसोऽवगम्यते तदिदं शस्त्रं तस्मै दीयताम् । (मुद्रा० ३)

९. तासां चतुर्दश कुलानि । एकं भगवतः कमलयोनेर्मनसः समुत्पन्नम् । अन्यद्वेदेभ्यः संभूतम् । अन्यदग्नेरुद्भूतम् । अन्यत् पवनात्प्रसूतम् । अन्यदमृतादुन्मथ्यमानादुत्थितम् । अन्यज्जलाज्जातम् । अन्यदर्ककिरणेभ्यो निर्गतम् । अन्यत्सौदामिनीतः प्रवृत्तम् । (काद० १३६)

१०. मां तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्त्या
स्वार्थात्सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव । (विक्रमो० ४)

११. निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां सुतां गिरीशप्रतिसक्तमानसाम् ।
उवाचमेना परिरभ्य वक्षसा निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात् ॥
(कुमार० ५।३)

१२. प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्धयति पार्थिवम् ।
वर्धनाद्रक्षणं श्रेयस्तदभावे सदप्यसत् ॥ (हितो० ३)

१३. त्वचं स मेध्यां परिधाय रौरवी—
मशिक्षतास्त्रं पितुरेव मन्त्रवत् । (रघु० ३।३१)

१४. अनम्राणां समुद्धर्तुंस्तस्मात्सिन्धुरयादिव ।
आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम् ॥ (रघु० ४।३५)

१५. ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ (गीता २।६२–'३)

१६. हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥ (मनु० २।१२)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. जन्मकर्मतो मलिनतरजनं जनतो निस्त्रिंशतरलोकहृदयं लोकहृदयेभ्यो निर्घृणतरसर्वस्वं व्यवहारमपुण्यकर्मैकापणं पक्कणमपश्यम् । (काद० ३५६)

२. सा कुसुमघटितशिलीमुखमनोहरान्मदनचापादिव प्रमदवनात्त्रस्यति जानकीव पीतरक्तेभ्यो रजनिचरेभ्य इव चंपकाशोकेभ्यो बिभेति । (काद० २२५)

३. तं नृपं वसुरक्षितो नाम मन्त्रिवृद्ध एकदाऽभाषत । तात अत्रभवति सर्वैवात्मसंपदभिजनात्प्रभृत्यन्नूनैव लक्ष्यते । बुद्धिश्च निसर्गपट्वी तवेतरेभ्यः प्रतिविशिष्यते । (दशकु० २।८)

४. अहो दुराराध्या राजलक्ष्मीरात्मविद्भिरपि राजभिः—
तीक्ष्णादुद्विजते मृदौ परिभवत्रासान्न संतिष्ठते
मूर्खान्द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यन्तविद्वत्स्वपि ।
शूरेभ्योऽप्यधिकं बिभेत्युपहसत्येकान्तभीरूनहो
श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भृशम् । (मुद्रा० ३)

५. सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ।। (हितो० १)

६. प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ।। (रघु० १।२४)

७. न नवः प्रभुराफलोदयात्स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः ।
न च योगविधेर्नवेतरः स्थिरधीरापरमात्मदर्शनात् ।। (रघु० ८।२२)

८. रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ।। (भर्तृ० २।८०)

९. श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।। (गीता० ३।३५)

१०. लोभान्मोहाद्भयान्मैत्र्यात् कामात्क्रोधात्तथैव च ।
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ।। (मनु० ८।१८८)

११. वृक्षाद्वृक्षं परिक्रामन्रावणाद्बिभ्यतीं भृशम् ।
शत्रोस्त्राणमपश्यन्तीमदृश्यो जनकात्मजाम् ।।

१२. तां पराजयमानां स प्रीते रक्ष्यां दशाननात् ।
अन्तर्दधानां रक्षोभ्यो मलिनां श्याममूर्धजाम् ।। (अपश्यत्)

१३. पूर्वस्मादन्यवद्भाति भावाद्दाशरथिं स्तुवन् । (भट्टि० ७०-१)

ऋते क्रौर्यात्समायातो मां विश्वासयितुं नु किम् ॥
इतरो रावणादेष राघवानुचरो यदि ।
सफलानि निमित्तानि प्राक् प्राभातात्ततो मम ॥ (भट्टि० ८।१०५-६)

१४. एतोद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः ।
एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥ (मनु० १।५९)

१५. एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परं तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥ (मनु० २।८३)

अनुवाद कीजिए :—

१. गृहिणी के विना घर वीराने में वन को भी मात कर देता है ।

२. इस वृक्ष से उत्तर दिशा को जाओ (उत्तर) और मैं अभी तुम्हारे पीछे आऊंगा ।

३. तुमने एक बार जो कार्य करने का वचन दिया है उससे विरत मत होओ ।

४. मैं वाल्मीकि के आश्रम से इस स्थान तक मुनियों से वेद पढ़ने के लिये आया हूं ।

५. उस लड़की की भय से रक्षा करने के लिये उसने अपने को घोर संकट में डाल दिया ।

६. जो अपने मित्र के मन को पाप से हटाकर उसे सत्कर्म में लगाता है, वह सच्चा मित्र कहलाता है ।

७. क्या तुम नहीं जानते कि दुष्टों के पदचिह्न पर चलने से अनेक विपत्तियां उत्पन्न होती हैं ?

८. तुम्हारी यह अस्वस्थता तुम्हारे कल के कठोर परिश्रम से हुई है (जन्) । क्या इस समय कोई सुधार है ?

९. इस शक्तिशाली राजा को छोड़कर इस हिमालय की शृंखला तक के राज्य की कौन रक्षा कर सकता है ?

१०. अपना अध्ययन प्रारम्भ करने के पहले वह व्याकरण की पुस्तक तथा शब्द-कोश अपने निकट रख लेता है ।

११. पाँच वर्ष हुए मैंने यह मनोहर वन देखा था, किन्तु अब इसमें बहुत परिवर्तन हो गये हैं ।

१२. जिस दिन मैंने उसे संयोगवश देखा उस दिन से मेरा मन व्याकुल है, और निरन्तर उसके विषय में सोचते रहने के कारण मैं भोजन करने का भी ध्यान नहीं रखता ।

१३. कल अध्यक्ष के भाषण के बाद ('ऊर्ध्वं' या 'अनन्तर') तुमने जो वक्तव्य दिया उससे मैं सहमत नहीं हूँ।

१४. सीता राम को (षष्ठी) अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय थे।

१५. ईमानदारी सभी दूसरे गुणों से बढ़कर होती है; इसके बिना मनुष्य किसी दूसरे में विश्वास नहीं उत्पन्न कर सकता।

१६. उस दुष्ट व्याध ने शुकशावक का, उसके अंगों के भय से सिकुड़ जाने के कारण नहीं देखा।

१७. पूज्य श्रीमन्, हम इस शुक का इतिहास प्रारम्भ से (आ) सुनने की इच्छा करते थे।

१८. बम्बई पूना से एक सौ बीस मील दूर है।

पाठ ९

अधिकरण कारक

८७. जिस स्थान में या जिस स्थान पर किसी कार्य के होने का उल्लेख किया जाता है उसे अधिकरण कहते हैं और उसे सप्तमी विभक्ति में रखते हैं।

जैसे—**स्थाल्यामोदनं पचति** 'पतीली में भात पकाता है, **आसने उपविशति**' आसन पर बैठता है।

(क) जिस समय में कोई कार्य होता है उसे बताने के लिए सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—**आषाढस्य प्रथमदिवसे** (मेघ० २) आषाढ के पहले दिन; इसी प्रकार '**शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्**' (रघु० १८)।

८८. प्रायः सप्तमी विभक्ति से 'ओर' 'पर' 'विषय में' इत्यादि का अर्थ निकलता है; जैसे—**मयि मा भूरकरुणा** (मालती० ६) मेरे प्रति अकरुण मत होइए, **विषयेषु विनाशधर्मसु निःस्पृहोऽभवत्** (रघु० ८।१०) क्षणभङ्गुर विषयों के प्रति निःस्पृह हो गये।

८९. [1]'तमप्' प्रत्यय लगाकर बनाये गये श्रेष्ठतासूचक विशेषण शब्दों के योग में और जहाँ पूरे समूह में किसी एक की विशिष्टता बताई जाती है (जिसे अंग्रेजी में प्रायः 'of' 'का' या 'among' 'बीच में' द्वारा व्यक्त करते हैं) वहाँ जिन संज्ञा शब्दों से श्रेष्ठता या विशिष्टता बताई जाती है उन्हें षष्ठी या सप्तमी विभक्ति में रखते हैं; जैसे—**गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा** (सि० कौ०) गायों में काले रंग की गाय सबसे अधिक दूध वाली होती है। इसी प्रकार—**नृणां नृषु वा द्विजः श्रेष्ठः** (वही)।

९० [2]समय या मार्ग का अन्तर बताने वाले शब्दों के योग में पंचमी या सप्तमी विभक्ति होती है; जैसे—**अस्मिन्दिने भुक्त्वाऽयं त्र्यहात् त्र्यहे वा भोक्ता** (सि० कौ०) आज खाकर यह फिर तीन दिन (के अन्तर) के बाद खाएगा। **इहस्थोऽयं क्रोशात्क्रोशे वा लक्ष्यं विध्येत्** (सि० कौ०) यहां खड़ा होकर वह एक कोस (की दूरी) पर लक्ष्य को विद्ध करेगा।

---

१. यतश्च निर्धारणम्। (२।३।४१)

२. सप्तमीपंचम्यौ कारकमध्ये। (२।३।७)

६१. सप्तमी विभक्ति का प्रयोग शब्दकोश में 'अर्थ में' का भाव बताने के लिये होता है; जैसे— **बाणो बलिसुते शरे** (अमर) बाण का प्रयोग बलि के पुत्र और तीर के अर्थों में होता है।

६२. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति का प्रयोग उस 'लक्ष्य' या 'प्रयोजन' को बताने के लिये किया जाता है, जिसके लिये कोई कार्य किया जाता है, जैसे—चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्। केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः। (महाभाष्य); मनुष्य चमड़े के लिए बाघ को मारता है, दातों के लिए हाथी को, बालों के लिए चमरी को, और कस्तूरी के लिए कृष्ण मृग को मारता है।'

६३. 'कार्य करना' 'व्यवहार करना' 'वृत्ति रखना' अर्थ वाले शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे—आर्योऽस्मिन्विनयेन वर्तताम् (उत्तर० ६) आर्य इससे कोमलता के साथ व्यवहार करें।' **कथं कार्यविनिमयेन व्यवहरति मय्यनात्मज्ञः** (मालवि० १) अरे ! क्या वह मूर्ख मेरे साथ कार्य का विनिमय करके व्यवहार कर रहा है? **कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने** (शाकु० ४) सपत्नियों के साथ प्रिय सखी का व्यवहार रखो।'

६४. प्रेम, अनुराग और आदर बताने वाले शब्दों जैसे 'स्निह्' 'अभिलष्', 'अनुरंज्' आदि के योग में उस व्यक्ति या वस्तु में सप्तमी विभक्ति होती है जिसके प्रति 'प्रेम' इत्यादि प्रदर्शित किया जाता है। जैसे— **किं नु खलु बालेऽस्मिन् स्निह्यति मे मनः** (शाकु० ७) मेरा मन इस बच्चे को क्यों स्नेह करता है ? **न तापसकन्यकायां शकुन्तलायां ममाभिलाषः** (शाकु० २) मुनि की कन्या शकुन्तला के प्रति मेरा प्रेम नहीं है। **स्वयोषिति रतिः** (भर्तृ० २।६२) अपनी पत्नी से प्रेम; **दण्डनीत्यां नात्यादृतोऽभूत्** (दशकु० २।८) दण्डनीति के प्रति आदर नहीं रखता था; **देवे चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ताः प्रकृतयः** (मुद्रा० १) प्रजाएँ देव चन्द्रगुप्त के प्रति दृढ़ अनुराग (राजभक्ति) रखती हैं, अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु (शाकु० १) मैं उनके लिए बहन जैसा स्नेह रखती हूँ।

द्र०—कभी-कभी 'अनुरञ्ज्' से प्रत्यय लगाकर बनाये गये शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—एषा भवन्तमनुरक्ता (शाकु० ६); अपि वृषलमनुरक्ताः प्रकृतयः (मुद्रा० १)। ऐसी स्थितियों में 'अनु' को अलग समझना चाहिए और उसे **कर्मप्रवचनीय** जानना चाहिए, जिसके योग में द्वितीया विभक्ति होती है। देखिए अधिकरण ३७.

६५ जब 'कारण' बताने वाले शब्द का प्रयोग होता है तो 'कार्य' या 'परिणाम' में सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे—दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् (भर्तृ० २।८४) केवल भाग्य ही मनुष्य की समृद्धि और विपत्ति (उत्थान और पतन) का कारण होता है।'

६६. 'युज' धातु और उससे व्युत्पन्न शब्दों के योग में उस वस्तु में सप्तमी विभक्ति होती है 'जिसमें लगाने' का उल्लेख किया जाता है। जैसे—असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यपो य इमामाश्रमधर्मे नियुक्ते (शाकु० १) पूज्य काश्यप बुद्धिमान् नहीं हैं क्योंकि उसे उन्होंने आश्रम के कार्यों में लगा रखा है।'

(क) 'योग्यता' या 'उपयुक्तता' आदि बताने वाले शब्दों के योग में उस संज्ञा शब्द में सप्तमी विभक्ति होती है जिसे योग्य बताया जाता है। जैसे—**युक्तरूपमिदं त्वयि** (शाकु० २) यह तुम्हारे ही योग्य है; **त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं तस्मिन्युज्यते** (हितो० ३) तीनों लोकों का प्रभुत्व उसके लिये योग्य है; **अथवोपपन्नमेतदृषिकल्पेऽस्मिन्राजनि** (शाकु० २) अथवा यह इस मुनि तुल्य राजा के लिये उचित है। **ते गुणाः परस्मिन् ब्रह्मण्युपपद्यन्ते** (शां० भा० १९०) ये गुण परब्रह्म के लिये उपयुक्त है।

द्र०—षष्ठी विभक्ति का प्रयोग भी प्रायः इसी अर्थ में होता है; जैसे—उपपन्नमिदं विशेषणं वायोः (विक्रमो० २) यह विशेषण वायु के लिये उपयुक्त है।

६७: कठोर अर्थों में सप्तमी विभक्ति से 'स्थान' का बोध होता है किन्तु अनेक स्थलों पर इसका प्रयोग उस वस्तु या व्यक्ति में होता है जिसको कुछ सौंपा जाय या दिया जाय; जैसे—शुकनासनाम्नि मन्त्रिणि राज्यभारमारोप्य यौवनसुखमनुबभूव (काद० ५७) राज्य के दायित्वको अपने मन्त्री शुकनास को सौंपकर उन्होंने युवावस्था के सुखों का भोग किया। वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे (उत्तर० २) 'गुरु जैसे बुद्धिमान् को विद्या प्रदान करता है, वैसे ही मन्दबुद्धि वाले को भी।' इसी प्रकार—**योग्यसचिवे न्यस्त समस्तो भरः** (रत्ना० १)।

टिप्पणी—'वि' उपसर्ग पूर्वक 'तृ' धातु के योग में भी चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है; जैसे मह्यं तं व्यतरन् (दशकु० १।१) उसे मुझको दिया; इसी प्रकार—मारीचस्ते दर्शनं वितरति (शाकु० ७)।

(क) 'पकड़ना' या 'मारना' अर्थवाली धातुओं के योग में जिसे पकड़ा जाता है या जिसपर प्रहार किया जाता है उसमें सप्तमी विभक्ति होती है'

जैसे—आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि (शाकु० १) आपके शस्त्र दुःखियों की रक्षा करने के लिये हैं, निर्दोषों पर प्रहार करने के लिए नहीं; केशेषु गृहीत्वा 'केशों को पकड़कर'।

९८. 'फेंकना' या 'छीनना' अर्थवाले शब्दों जैसे 'क्षिप्', 'मुच्', 'अस्' के योग में जिसकी ओर कुछ फेंका जाता है उसमें सप्तमी लगती है। जैसे—मृगेषु शरान्मुमुक्षोः (रघु० ९।५८) 'मृग पर वा फेंकने की इच्छा करने वाले का', न बाणः सन्निपात्योऽस्मिन्मृगशरीरे (शाकु० १) इस मृग के शरीर पर बाण नहीं छोड़ना चाहिए।'

(अ) 'विश्वास' अर्थ वाले शब्दों के योग में जिसमें विश्वास किया जाता है उसमें सामान्यतः सप्तमी विभक्ति होती है; जैसे—पुंसि विश्वसिति कुत्र कुमारी (नैषध० ५।१००) एक कुमारी किसी पुरुष में विश्वास कहाँ रखती है ?

द्रष्ट०—'श्रद्धा' के योग में द्वितीया विभक्ति होती है, जैसे—कः श्रद्धास्यति भूतार्थं (मृच्छ०) 'सच्ची बात में कौन विश्वास करेगा ?'

९९. [1]अधीतिन् (जिसने पढ़ा है), गृहीतिन् (जिसने समझा है) जैसे शब्दों के योग में जो इनका कर्म होता है उसमें सप्तमी विभक्ति होती है; 'साधु' और 'असाधु' शब्दों के योग में जिनके प्रति भलाई या बुराई का भाव होता है उसमें सप्तमी होती है; जैसे—अधीती चतुर्ष्वाम्नायेषु (दशकु० २।५) 'चार वेदों का अध्ययन कर चुका होने वाला'; गृहीती षट्स्वङ्गेषु (वही), छः अंगों को ग्रहण कर चुका होने वाला; मातरि साधुरसाधुर्वा (सि० कौ०) अपनी माता के प्रति भला या बुरा।

१००. 'लगा होना', 'तत्पर होना' अर्थ वाले शब्दों जैसे 'व्यापृत', आसक्तः', 'व्यग्र', 'तत्पर', चतुर अर्थ वाले 'कुशल' 'निपुण', शौण्ड, पटु, प्रवीण, पण्डित, शब्दों तथा 'धूर्त' और 'कितव' के योग में सप्तमी विभक्ति होती है; जैसे—गृहकर्मणि व्यापृता, व्यग्रा वा (पंच० २) 'घर के कामों में लगी हुई'; रामोक्षद्यूते निपुणः प्रवीणः (सि० कौ०) राम जुआ खेलने में निपुण है।

(अ) [2]'अत्यन्त इच्छुक' अर्थ वाले 'प्रसित' और 'उत्सुक शब्दों के योग में सप्तमी या तृतीया विभक्ति होती है, जैसे—निद्रायां निद्रया वा उत्सुकः'

---

१. क्तस्येन्विषय कर्मण्युपसंख्यानम्। साध्वसाधुप्रयोगे च। (वार्तिक)।

२. प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च। (२।३।४४)

(सि० कौ०) सोने का इच्छुक; इसी प्रकार--मनो नियोगक्रिययोत्सुकं में (रघु० ५।११)।

टिप्पणी—अप + राध् (अपराध करना) धातु के साथ सामान्यत: द्वितीया विभक्ति के अर्थ में सप्तमी का प्रयोग होता है और कभी कभी चतुर्थी होती है, जैसे--**कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला'** (शकु० ४) शकुन्तला ने किसी पूज्य व्यक्ति का अपराध कर दिया है; इसी प्रकार--**अपराद्धोऽस्मि तत्रभवत: कण्वस्य** (शाकु० ७)।

अभ्यास

१. प्रथितयशसां भासकविसौमिल्लकविमिश्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवे: कालिदासस्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमान: । (मालवि० १)

२. य: पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्त: सोऽहमविघ्नक्रियोपलंभाय धर्मारण्यमिदमायात: । (शाकु० १)

३. दृढं त्वयि बद्धभावोर्वशी । न सेतोगतमनुरागं शिथिलयति । (विक्रमो० २)

४. एष देवो रघुपतिस्तिष्ठति । स च स्निह्यत्यावयोरुत्कण्ठयते च युष्मत्सन्निकर्षस्य । (उत्तर० ६)

५. दुर्जनत्वं च भवतो वाक्यादेव विज्ञानं यदनयोर्भूपालयोर्विग्रहे भवद्वचनमेव निदानम् । (हितो० ३)

६. एष धृष्टद्युम्नेन द्रोण: केशेष्वाकृष्यासिपत्रेण व्यापाद्यते । (वेणी० ३)

७. न जानामि केनापि कारणेनापहस्तितसकलसखीजनं त्वयि विश्वसिति मे हृदयम् । (काद० २३३)

८. उपकारिषु य: साधु साधुत्वे तस्य को गुण: ।
अपकारिषु य: साधु: स साधु: सद्भिरुच्यते ।। (हितो० २)

९. न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मनि ।
विश्वासस्तादृश: पुंसां यावन्मित्रे स्वभावजे ।। (हितो० १)

१०. क्षमा शत्रौ च मित्रे च यतीनामेव भूषणम् ।
अपराधिषु सत्त्वेषु नृपाणां सैव दूषणम् ।। (हितो० २)

११. वाञ्छा सज्जनसंगमे गुणिगणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम् ।

भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले—
ष्वेते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥ (भर्तृ० २।६२)

१२. संतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता ।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे ॥ (रघु० १।३४)

१३. भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ (मनु० १।९६)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. अबैमि ते सारमतः खलु त्वां कार्ये गुरुण्यात्मसमं नियोक्ष्ये ।
व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः ॥ (कुमार० ३।१३)

२. अशुद्धप्रकृतौ राज्ञि जनता नानुरज्यते । (पंच० १।११)

३. जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम् ।
तस्मिन्नकरुणे पापे वृथा वः करुणा मयि ॥ (उत्तर० ६)

४. निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि ॥ (हिता० १)

५. इत्युक्तवन्तं जनकात्मजायां नितान्तरूक्षाभिनिवेशमीशम् ।
न कश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तो निषेद्धुमासीदनुमोदितुं वा ॥ (रघु० १४।४३)

६. परकर्मापहः सोऽभूदुद्यतः स्वेषु कर्मसु ।
आवृणोदात्मनो रंध्रं रंध्रेषु प्रहरन् रिपून् ॥ (रघु० १७।६१)

७. भगवति कमलालये भृशमगुणज्ञासि ।
आनन्दहेतुमपि देवमपास्य नन्दं
रक्तासि किं कथय वैरिणि मौर्यपुत्रे ॥ (मुद्रा० २)

८. साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं
चित्रार्पितां मुहुरिमां बहु मन्यमानः ।
स्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य
जातः सखे प्रणयवान्मृगतृष्णिकायाम् ॥ (शाकु० ६)

९. पोतो दुस्तरवारिराशितरणे दीपोऽन्धकारागमे
निर्वाते व्यजनं मदान्धकरिणां दर्पोपशान्त्यै शृणिः ।
इत्थं तद्भुवि नास्ति यस्य विधिना नोपायचिन्ता कृता ।
मन्ये दुर्जनचित्तवृत्तिहरणे धातापि भग्नोद्यमः ॥ (हितो० २)

१०. चिरेणानुगुणं प्रोक्ता प्रतिपत्तिपराङ्मुखो ।
न मासे प्रतिपत्तासे मां चेन्मर्तासि मैथिलि ॥ (भट्टि० ८।६५)

११. एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा ।
मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी भूः ॥ (मेघ० ११५)

१२. एवमाप्तवचनात्स पौरुषं काकपक्षधरेऽपि राघवे ।
श्रद्दधे त्रिदशगोपमात्रके दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि ॥ (रघु० ११।४२)

अनुवाद कीजिए :—

१. इस राजा की सभो प्रजाएँ इसमें अनुरक्त (अनु + रंज्) हैं ।

२. जो असहाय मनुष्यों के प्रति दया दिखाता है और जो देवों के लिये यज्ञ करता है, वे दोनों पुण्य में समान समझे जाते हैं ।

३. मेरे पति मुझसे प्रेम नहीं करते (स्निह्), जो कुछ मैं कहती हूँ उसमें विश्वास नहीं रखते, और मुझे अयोग्य कार्यों में लगाते हैं; मेरी सखो ? क्या तुम मुझे बताओगी कि इन परिस्थितियों में क्या करूँ ?

४. मुनि इस सांसारिक जीवन के सुख और दुःख के प्रति उदासीन (निःस्पृह) रहता है ।

५. इस बच्चे की शिक्षा के विषय में कोई भी चिन्ता न रखें ।

६. उसने अपने परिवार का भार अपने बड़े पुत्र को सौंप दिया और अपने सभी मित्रों तथा सम्बन्धियों से विदा लेकर वनवास का आश्रय लिया ।

७. वह केशों से पकड़ा गया और गिरा दिया गया; और तब सभी दर्शकों ने उस पर पत्थर फेंके ('क्षिप्' या 'मुच्') ।

८. शून्य बुद्धि वाली स्त्री ने उसके निकट जो कुछ हो रहा था उस पर एक दृष्टि तक नहीं डाली ।

९. यह समाचार सभी जगह फैल गया । क्या यह बात तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँची है कि राजा ने सागरिका पर अपना प्रेम बढ़ाया है ।

१०. कैकेयी राम के चौदह वर्षों के वनवास का मुख्य कारण थी ।

११. वह सदैव अपना समय द्यूतक्रीड़ा में निपुण लोगों के साथ जुआ खेलने में बिताता है ।

१२. इस बगीचे में यह सभी पेड़ों में लम्बा पेड़ है।
१३. सभी व्यक्तियों में जो दूसरों का कल्याण करने में तत्पर होता है वह अधिक स्तुत्य होता है।
१४. भारतीय कवियों में कालिदास और भारवि सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।
१५. राक्षस अपना परिवार ऐसे लोगों को नहीं सौंपेगा जो प्रतिष्ठा में उसके समकक्ष नहीं हैं।

पाठ १०

संबन्ध (षष्ठी)

१०१. जैसा कि पाठ ३ में देखा जा चुका है 'सम्बन्ध' या षष्ठी विभक्ति कारक नहीं है। वस्तुतः षष्ठी विभक्ति वाक्य में एक संज्ञा शब्द का दूसरे संज्ञा शब्द से सम्बन्ध बताती है। इस पाठ में दिये गये नियमों में षष्ठी विभक्ति का एक मुख्य अर्थ है और वह है 'सम्बन्ध' और जिन स्थलों पर क्रियाओं का प्रयोग षष्ठी विभक्ति के साथ होता है वहां इसका अर्थ केवल 'सम्बन्ध' का समझना चाहिए। किन्तु अनेक स्थलों पर इस विभक्ति का शिथिल प्रयोग प्रायः लौकिक संस्कृत के लेखकों ने अन्य कारकों के साथ सम्बन्धों को व्यक्त करने के लिये किया है; जैसे—तं च व्यसृजद्भरतस्य (उत्तर० ४) उसे भरत के पास भेजा'। (यहाँ 'भरताय' के लिये 'भरतस्य' का प्रयोग हुआ है), जयसेनायास्तावत्संवेद्य गच्छ (मालवि० ४) यहाँ 'जयसेनायै' के लिये 'जयसेनायाः' है। स्त्रीणां विश्वासो नैव कर्त्तव्यः (हितो० १) यहाँ 'स्त्रीषु' के लिए 'स्त्रीणां' आया है। इस प्रकार के रूपों को सामान्य नियम का उल्लंघन समझना चाहिए और इसका अनुकरण नहीं करना चाहिए।

१०२. सामान्यतः षष्ठी विभक्ति से एक विशेष्य पद या सर्वनाम शब्द की किसी ऐसे दूसरे शब्द पर अधीनता बताती है, जो प्रायः एक विशेष्य या विशेषण पद होता है, किन्तु कभी-कभी क्रियापद भी होता है।

(क) इस प्रकार इसका प्रयोग 'का' (अंग्रेजी के Of) का अर्थ व्यक्त करने के लिए होता है; किन्तु अनेक स्थलों पर षष्ठी विभक्ति के स्थान पर समास का प्रयोग होता है। उदाहरण—दशरथस्य पुत्रः या दशरथपुत्रः।

द्र०—यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'का' (अंग्रेजी के Of) द्वारा व्यक्त किये जाने वाले सभी सम्बन्धों को संस्कृत की षष्ठीविभक्ति द्वारा नहीं व्यक्त किया जा सकता; उदाहरण के लिए—**विशेषण** का अर्थ और **समानाधिकरण** अर्थ; जैसे—सोने का बर्तन ('a pot of gold') का अनुवाद सामान्यतः समास द्वारा ('हेमपात्रम्') या प्रत्यय-निष्पन्न शब्द द्वारा (हैमं पात्रम्) किया जाता है, किन्तु 'हेम्नः पात्रम्' अनुवाद नहीं होगा। 'मिट्टी का पात्र'–मृद्भाण्डम् या मृण्मयं भाण्डम्; 'अधिक मूल्य का मुक्ताफल'–

महार्घं मुक्ताफलम्; 'बलवाला पुरुष' सबलो नरः, न कि 'बलस्य नरः'। इसी प्रकार 'वैशाख के महीने में' 'वैशाखे मासे' 'वैशाखमासे'; बम्बई का शहर—मुम्बापुरी या मुंबानाम पुरी ।

१०३. षष्ठी विभक्ति 'स्वामी' को या उस व्यक्ति को सूचित करती है, जो कोई वस्तु रखता है, या स्वामी होता है, जो वस्तु संबद्ध होती है या रखी जाती है उसे प्रथमा विभक्ति मे रखते हैं; जैसे—'यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा' (पंच० १) जिसके पास स्वयं प्रतिभा नहीं है।' 'इमे नो गृहाः' (मृच्छ० २) यह हमारा घर है; 'गल्ती करना मनुष्य का स्वभाव है' स्खलनं मनुष्याणां धर्मः।'

द्र०—यह अर्थ प्रायः प्रत्ययनिष्पन्न शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है। जैसे—'पैत्रिकं रिक्थम् 'पूर्वजों की सम्पत्ति' इसी प्रकार 'अस्मदीयं गृहम्' इत्यादि ।

१०४. षष्ठी का प्रयोग विशेष्यों और विशेष्यों के रूप में प्रयुक्त शब्दों के योग में उस सम्पूर्ण या समूह का बोध कराने के लिये होता है और ऐसी अवस्था में उसे 'अंशवाचक षष्ठी' कहते हैं; जैसे—जलस्य बिन्दुः जल की बूंद; अयुतं शरदां ययौ (रघु० ६।१) 'वर्षों का एक लाख (एक लाख वर्ष) बीत गये; इसी प्रकार 'गवां शतसहस्राणि' (गायों के सैकड़, सैकड़ों गायें) ।

शक्तिशाली पुरुषों का एक सहस्र अर्थात् एक सहस्र शक्तिशाली पुरुष ।

(क) अंशवाची षष्ठी का प्रयोग संख्याओं और संख्याबोधक सर्वनामों या विशेषणों के साथ भी होता है; जैसे—त्वं मे कल्याणि तयोस्तृतीया (रघु० ६।२६ कल्याणि, तुम्हीं उनमें तीसरी हो' गृह्यतामनयोरन्यतरा (मालवि० ५) इन दोनों में एक को स्वीकार किया जाय'; तासामन्यतमा (मालती० १) उन लड़कियों में एक ।

(ख) 'अंशवाची षष्ठी का प्रयोग 'तमप्' और 'ईष्ठन्' प्रत्ययान्त विशेषणों और उनका अर्थ व्यक्त करने वाले शब्दों के योग में होता है। जैसे—द्विजानां ब्राह्मणः श्रेष्ठः, धौरेयः साहसिकानाम् अग्रणी विदग्धानाम् (काद० ५) साहसियों में सर्वप्रमुख और विद्वानों में अगुआ ।'

द्र०—षष्ठी विभक्ति के उपर्युक्त प्रयोग का विवेचन पहले ही अधिकरण ८९ में किया जा चुका है ।

(ग) कभी कभी 'का', 'बीच में' के अर्थ में 'मध्ये' के प्रयोग के योग

में षष्ठी विभक्ति होती है, जैसे—**एतेषां मध्ये केचिदरेः कोषदण्डाभ्यामर्थिनः** (मुद्रा० ५) इनमें कुछ शत्रु के कोष और सेना के इच्छुक हैं।'

१०५. जब किसी कार्य के किये जाने के उपरान्त कुछ समय बीतने का उल्लेख किया जाता है तब उस कार्य-घटना को व्यक्त करने वाले शब्द को षष्ठी विभक्ति में रखते हैं; जैसे—अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य (मुद्रा० ६) मेरे पिता की मृत्यु से आज दस महीने हो गये।' कतिपये संवत्सरास्तस्य तपस्तप्यमानस्य (उत्तर० ४) उनके तपस्या करते हुए कई वर्ष बीत गये हैं।

१०६ 'प्रिय होना' या 'अप्रिय होना' अर्थवाले शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है; जैसे—प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीत् (उत्तर० ६) सीता स्वभाव से ही राम को प्रिय थीं। **कायः कस्य न वल्लभः** (पंच० १) १) शरीर किसे प्रिय नहीं होता ?'

(क) 'अन्तर' का बोध कराने वाले शब्दों जैसे 'विशेषः', 'अन्तरः' के योग में षष्ठी विभक्ति होती है, जैसे—एतावानेवायुष्मतः शतक्रतोश्च विशेषः, (शाकु० ७) 'चिरंजीवी आप में और इन्द्र में यही एक अन्तर है; अत्र भवतो मम च समुद्रपल्लवयोरिवान्तरं (मालवि० १) इस धर्मात्मा मनुष्य और मुझमें उतना महान् अन्तर है, जितना समुद्र और बावली में।'

१०७. [1]कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों के योगमें, क्रिया के कर्ता को षष्ठी या तृतीया विभक्ति में रखा जाता है; जैसे—नास्ति असाध्यं नाम मनोभुवः (काद० १५७) 'वस्तुतः, ऐसी कोई बात नहीं है जो मनोभुव (कामदेव) के लिये असाध्य हो। इसी प्रकार—न वयमनुग्राह्याः प्रायो देवतानां (काद० ६१) न वंचनीयाः प्रभवोनुजीविभिः (किरात० १।४); राक्षसेन्द्रस्य संरक्ष्य मया लब्धमिदं वनं (भट्टि० ८।१२९), राक्षसों के स्वामी द्वारा सुरक्षित रखा जाने योग्य यह वन मेरे द्वारा काट डाला जाना चाहिए।'

१०८. [2]'कारण' 'के लिए' 'हेतु' अर्थवाले शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है; जैसे—अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् (रघु० २।४७) छोटी वस्तु के लिये अधिक त्यागने की इच्छा करता हुआ'; विस्मृतं कस्य हेतोः (मुद्रा० १) किस कारण से यह भुलाया गया है ?'

द्र०—पतंजलि का कथन है कि 'निमित्त' 'कारण' 'हेतु' जैसे कारण या हेतु अर्थ वाले शब्दों को सर्वनाम के अनुसार किसी भी विभक्ति में रख सकते हैं।

---

१. कृत्यानां कर्तरि वा (२।३।७१)। २. षष्ठी हेतुप्रयोगे (२।३।२६)।

किन्तु लौकिक संस्कृत के लेखकों के प्रयोगों से यह कथन पूर्णतः पुष्ट नहीं होता। केन निमित्तेन, केन कारणेन, केन हेतुना, और 'कस्मान्निमित्तात्' 'कस्मात् कारणात्' 'कस्मात् हेतोः' आदि इस अर्थ में सामान्यतः प्रयुक्त होते हैं। हम सभी अर्थ में यह नहीं कहते "को हेतुः वससि', या 'कं हेतुं वससि और न 'कस्मै हेतवे वससि' कहते हैं जिसका अर्थ होता है 'किस प्रयोजन से (को ध्यान में रखकर) तुम निवास करते हो ? किं निमित्तम्, किं प्रयोजनम्, किं कारणम्, किम् अर्थं भी प्रयोग में आता है। अतएव पतञ्जलि के नियम का अर्थ सीमित क्षेत्र में समझना चाहिए।

१०६. [1]"ति', तृ, अ, अन, आदि जैसे कृत् प्रत्यय लगाकर धातुओं से व्युत्पन्न संज्ञाओं के योग में उस संज्ञा द्वारा निर्दिष्ट क्रिया के 'कर्ता' और 'कर्म' के अर्थ में षष्ठीविभक्ति का प्रयोग होता है। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि संस्कृत में षष्ठीविभक्ति कर्तृबोधक भी होती है और 'कर्मबोधक' भी। जैसे—क्रियामिमां कालिदासस्य (विक्रमो० १) कालिदास की यह रचना, भर्तुः प्रणाशात् (रघु० १४।१) अपने स्वामी की मृत्यु के कारण; शास्त्राणां परिचयः (काद० १८) शास्त्रों का ज्ञान; आहर्ता क्रतूनां (का० ५) यज्ञों को करने वाला।

(आहरण क्रिया के कर्म 'क्रतु' में षष्ठी हुई है); दुःखायेदानीं रामस्य सुहृदां दर्शनं (उत्तर० ३) राम का इस समय अपने मित्रों को देखना उसके दुःख को बढ़ाता है। यहाँ 'दर्शन' के कर्ता 'राम' में और कर्म 'सुहृद' में षष्ठी हुई है।

द्र०—द्विकर्मक धातुओं के योग में गौणकर्म को षष्ठी या द्वितीया विभक्ति में रखा जाता है; जैसे—**नेता अश्वस्य स्रुघ्नं स्रुघ्नस्य वा** (महाभाष्य) स्रुघ्न के पास घोड़े को ले जाने वाला।' इस प्रकार का प्रयोग बहुत कम मिलता है; प्रायः दोनों कर्मों (प्रधान और गौण) में षष्ठी विभक्ति होती है; गवां दुग्धस्य दोहनं, सागरस्य अमृतस्य मन्थनं यहाँ पहली षष्ठी विभक्ति (गवां) का भाव पञ्चमी विभक्ति का है।

११०. [2]जब 'कृत्' प्रत्यय लगाकर बनाये गये संज्ञाशब्दों से व्यक्त क्रिया

---

१. कर्तृकर्मणोः कृति (२।३।६५)।
२. उभयप्राप्तौ कर्मणि (२।३।६६)।

के कर्ता और कर्म दोनों का प्रयोग किसी वाक्य में किया गया हो, तब 'कर्म' में षष्ठी होती है, कर्ता में नहीं। जैसे—आश्चर्यं गवां दोहोऽगोपेन (सि० कौ०) 'बिना दुहनेवाले गोप के गायों का दुहा जांना आश्चर्य की बात है' (यहाँ 'दोह' के द्वारा व्यक्त दुहना क्रिया के कर्म गो (गवां—में षष्ठी हुई है)।

(क) [1]कुछ वैयाकरणों के अनुसार जब 'कृत् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग हो और उपर्युक्त स्थिति हो अर्थात् कर्ता और कर्म दोनों वाक्य में प्रयुक्त हुए हों तो कर्ता को विकल्प से तृतीया या षष्ठी विभक्ति में रखते हैं किन्तु कुछ अन्य वैयाकरणों का मत है कि कृत् प्रत्यय चाहे किसी भी लिङ्ग का हो जब कृत्प्रत्ययशब्द से व्यक्त क्रिया के कर्ता और कर्म वाच्य में साथ आवेंगे तो कर्ता में विकल्प से तृतीया या षष्ठी होगी। जैसे = विचित्रा जगतः कृतिर्हरेर्हरिणा वा (सि० कौ०) हरि द्वारा संसार की सृष्टि अद्भुत है; शब्दानामनुशासनमाचार्येण आचार्यस्य वा (सि० कौ०); इसी प्रकार—शोभना खलु पाणिनेः (या पाणिनिना) सूत्रस्य कृति (महाभाष्य)।

१११. [2]जब आशीर्वाद देने का भाव हो तो 'आयुष्यं'; मद्रं, 'भद्रं' 'कुशलं' 'सुखं' 'अर्थः' शब्दों के योग में चतुर्थी या षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे—कृष्णस्य कृष्णाय कुशलम्, हितं, भद्रं भूयात् (सि० कौ०) कृष्ण को सुख प्राप्त हो, कृष्ण का कल्याण हो।

११२. [3]दिशावाचक 'तस्' (अतसुच्) प्रत्ययान्त शब्दों और तस् (अतसुच्) प्रत्ययान्त शब्दों के अर्थ में प्रयुक्त शब्दों यथा, उपरि, 'अधः', 'पुरः' 'पश्चात्' 'अग्रे' 'पुरस्तात्' आदि के योग में जिसको संकेत करके दिशा बताई जाती है उसमें षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे—ग्रामस्य दक्षिणतः–उत्तरतः (सि० कौ०) गाँव के दक्षिण या उत्तर; 'गतमुपरि घनानां' (शाकु० ७) बादलों के ऊपर चलते हुए; तरूणामधः (शाकु० १) वृक्षों के नीचे; तिष्ठन् भाति पितुः पुरो भुवि यथा (नागा० १) उस व्यक्ति के समान जो अपने पिता के सम्मुख पृथ्वी पर सुशोभित होता है। यः पुरस्ताद्यतीनां (मालवि० १) जो मुनियों में सर्वश्रेष्ठ है (शीर्षस्थ है)।

---

१. शेषे विभाषा। स्त्रीप्रत्यय इत्येके। केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति। (वार्तिक)।

२. चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः (२।३।७३)।

३. षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन (२।३।३०)।

द्र०—'उपरि' प्रायः समास में संयुक्त होता है, जैसे—प्रत्यारोपय रथोपरि राजपुत्रं (उत्तर० ५); चाणक्योपरि प्रद्वेषपक्षपातः (मुद्रा० ३)।

(क) [1]'एनप्' प्रत्ययान्त दिशावाचक शब्दों जैसे दक्षिणेन, उत्तरेण आदि के योग में जिस स्थान को संकेत करके दिशा बताई जाती है उसमें षष्ठी या द्वितीया विभक्ति होती है; जैसे—दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु (महाभारत ६।८।२) 'श्वेत से दक्षिण और निषध से उत्तर। दक्षिणेन वृक्षवाटिकां (शाकु० १) वृक्षवाटिका से दक्षिण की ओर; धनपतिगृहानुत्तरेण (मेघ० ७८) कुबेर के घर से उत्तर को।

(ख) [2]'दूर' तथा 'अन्तिक' (निकट) अर्थ वाले शब्दों के योग में षष्ठी या द्वितीया विभक्ति होती है; जैसे—ग्रामात् ग्रामस्य वा वनं दूरं, निकटं, समीपं इत्यादि (सि० कौ०) वन गाँव से दूर है या निकट है।

द्र०—इस षष्ठी का प्रयोग अधिक सामान्य रूपमें होता है, जैसे—तस्याश्रमपदस्य नातिदूरे (काद० २२), अतः समीपे परिणेतुरिष्यते (शाकु० ५); प्रयामि तस्याः सकाशं (काद० १५८)।

११३. [3]'स्वामी होना' 'शासन करना' अर्थ वाली 'ईश्' 'प्र+भू' जैसी क्रियाओं, 'दय्' (दया करना, करुणा दिखाना), धातु तथा (शोक के साथ) 'याद करना' 'सोचना' अर्थ वाली 'स्मृ', अधि+इ, जैसी धातुओं के योग में इन क्रियाओं का कर्म षष्ठी विभक्ति में होता है। जैसे—ननु प्रभवत्यार्यः शिष्यजनस्य (मालवि० १) श्रीमान् ने अपने शिष्यों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया है। प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः (मालती०) यदि प्रभविष्यामि आत्मनः (शाकु० १); नायं गात्राणामीष्टे (काद० ३१२) वह अपने अङ्गों पर नियन्त्रण नहीं कर सकता (भट्टि० ८।११६) रामस्य दयमानोऽसावध्येति तव लक्ष्मणः 'राम पर दया प्रकट करते हुए लक्ष्मण आपका स्मरण करते हैं।' स्मर्तुं दिशन्ति न दिवः सुरसुन्दरीभ्यः (किरात० ५।२८) देवलोक की अप्सराओं को स्वर्ग के विषय में स्मरण करने को प्रेरित नहीं करते हैं, इसी प्रकार अस्मार्षीज्जलनिधिमंथनस्य शौरिः (शिशु० ८।६४)।

---

१. एनपा द्वितीया (२।३।३१)।
२. दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् (२।३।३४)।
३. अधीगर्थदयेशां कर्मणि (२।३।५२)।

द्र०—(क) 'समर्थ होना' अर्थ में प्र उपसर्ग पूर्वक 'भू' धातु का प्रयोग 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द के साथ होता है (देखिए पाठ १६) और 'पर्याप्त होना' अर्थ में प्र + भू के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। ६७ (क)

(ख) 'याद करने' के साधारण अर्थ में 'स्मृ' धातु के साथ द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—स्मरसि तान्यहानि स्मरसि गोदावरीं वा (उत्तर० १) ऐसी दशा में 'कर्म' का प्रयोग करना अभीष्ट होता है (यदा कर्म विवक्षितं भवति तदा षष्ठी न भवति —महाभाष्य)।

(ग) 'सचेत' या 'अवगत' 'सावधान' तथा उनके विपरीत अर्थ वाले विशेषणों के योग में 'कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे—अनभिज्ञो गुणानां यः स भृत्यैर्नानुगम्यते (पंच १।१) जो गुणों पर ध्यान नहीं देता उसका अनुगमन सेवक नहीं करते हैं, इसीप्रकार अनभ्यन्तरे आवां मदनगतस्य वृत्तान्तस्य (शाकु० ३)। कभी-कभी सप्तमी का भी प्रयोग होता है। जैसे—यदि त्वमीदृशः कथायामभिज्ञः (उत्तर० ४) तत्राप्यभिज्ञो जन, (उत्तर० ६)।

११४. [1]"इतनी बार" का अर्थ देने वाले शब्दों या बार के अर्थ में प्रयुक्त संख्यावाचक शब्दों जैसे द्विः, त्रिः, 'अष्टकृत्वः शतकृत्वः' आदि के योग में 'समय-वाचक' शब्द में सप्तमी के ही अर्थ में षष्ठो विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे—**द्विरह्नो भोजनम्** (सि० कौ०) दिन में दो बार भोजन करते हुए। शतकृत्वस्त-वैकस्याः स्मरत्यह्नो रघूत्तमः (भट्टि० ८।१२२) रघुओं में श्रेष्ठ अकेले तुम्हारा ही दिन में सैकड़ों बार स्मरण करते हैं।

११५. [2]जब 'क्त' प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग वर्तमानकाल के अर्थ में होता है तो उनके योग में षष्ठी विभक्ति होती; जैसे—अहमेव मतो महीपतेः (रघु० ८।६) केवल मुझे ही राजा मानते हैं। 'विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम्' (रघु० १०।३६) 'मैं जानता हूँ कि तीनों लोक उसके द्वारा तपाये जा रहे है'; राज्ञां पूजितः (सि० कौ०) राजाओं द्वारा आदृत है।

(क) जब भूतकाल बताना अभीष्ट होता है तो केवल तृतीया विभक्ति होती है; जैसे—न खलु विदितास्ते चाणक्यहतकेन (मुद्रा० २) 'क्या धूर्त चाणक्य द्वारा वे ढूँढ़ नहीं लिये गये थे ?'

---

१. कृत्वोर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे (२।३।६४)।

२. क्तस्य च वर्तमाने (२।३।६७)

(ख) जब भूतकालीन 'क्त' प्रत्ययान्त शब्द भाववाचक नपुंसक लिङ्ग संज्ञा होता है तो उसके योग में षष्ठी विभक्ति होती है; जैसे—मयूरस्य नृत्तं (महाभाष्य) मोरों का नृत्य; कोकिलस्य व्याहृतं, नटस्य भुक्तं, छात्रस्य हसितं (वही)।

११६. 'कृते' (लिए के लिये) और 'समक्षं' (सामने, उपस्थिति में) के योग में षष्ठी विभक्ति होती है; जैसे—अमीषां प्राणानां कृते (भर्तृ० ३।३६)। 'इस जीवन के लिए'; राज्ञः समक्षमेव (मालवि० १) स्वयं राजा की उपस्थिति में।

द्र०—प्रायः 'कृते' अन्य शब्दों के साथ संयुक्त रहता है; जैसे—काव्यमर्थकृते (का० प्र० १)।

११७. [1]'तुल्य', सदृश', 'सम', सकाश आदि 'समान' 'जैसा'—का अर्थ देने वाले शब्दों के योग में जिसके साथ किसी की तुलना की जाती है उसमें षष्ठी या तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—कृष्णस्य तुल्यः–सदृशः, इत्यादि (सि० कौ०) तृतीया विभक्ति के लिए ५२ (ख) देखिए।

द्र०—पाणिनि का कथन है कि 'तुला' और 'उपमा' शब्दों का प्रयोग तृतीया विभक्ति के साथ नहीं हो सकता। किन्तु यह अच्छे प्रयोगों के विपरीत जा पड़ता है; जैसे—तुलां यदारोहति दन्तवाससा (कुमार० ५।३४); नभसा तुला समारुरोह (रघु० ८।१५); स्फुटोपमं भूतिसितेन शंभुना (शिशु० १।४)। मल्लिनाथ इन उदाहरणों की पाणिनि के सूत्रों के साथ संगति बैठाने का प्रयत्न करते हैं परन्तु उनका तर्क सबल नहीं।

(क) 'योग्य', 'उचित' 'शोभा देना' अर्थ वाले विशेषणों के योग में सामान्यतः षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे—सखे पुण्डरीक, नैतदनुरूपं भवतः (काद० १४६) 'मित्र पुण्डरीक यह तुम्हारे योग्य नहीं हैं'। सदृशमेवैतत्स्नेहस्यानवलेपस्य (शाकु० ६) निश्चय ही यह अभिमान रहित प्रेम के अनुरूप है। ६६ (क) भी देखिए।

११८. जब 'आदत' या 'स्वभाव' बताना होता है तो 'तृ' प्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है; जैसे—'पितरमाराधयिता भव' (विक्रमो० ५), 'सदैव पिता को प्रसन्न रखो'; संभावयिता बुधान् न्यग्भाविता शत्रून् (दशकु० २।८) 'जिसका स्वभाव विद्वानों का आदर करना और शत्रुओं को परास्त करना है।' किन्तु जगतो निर्माता, घटस्य कर्ता, आदि।

---

१. तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् (२।३।७२),

(क) 'अनु' पूर्वक 'कृ' (अनुकरण करना, समान होना) धातु के योग में प्राय: कर्म में षष्ठी या द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है; जैसे—ततोऽनुकुर्यात्तस्या: स्मितस्य (कुमार० १।४४) तब यह उसकी मुसकान की नकल कर सकता है। श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीं (काद० १०) श्यामता में मानों भगवान् हरि का अनुकरण करती हुई। सर्वाभिरन्याभि: कलाभिरनुचकार तं वैशम्पायन: (काद० ७६) वैशम्पायन ने उनका सभी दूसरी कलाओं में अनुकरण किया, इसी प्रकार 'शैलाधिपस्यानुचकार लक्ष्मी' (भट्टि० २।८)

११९. [1]'व्यापार करना' 'जुए में लगाना' अर्थ की 'व्यवहृ' तथा 'पण्' (भ्वादिगण आत्मनेपद) धातुओं के योग में कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है, जैसे—शतस्य व्यवहरणं–पणनं (सि० कौ०) सौ रुपये का व्यापार, या सौ की बाजी। इसी प्रकार–प्राणानामपणिष्टासौ (भट्टि० ८।१२१)। किन्तु द्वितीया विभक्ति का प्रयोग अधिक पाया जाता है। जैसे—पणस्व कृष्णां पांचालीं (महाभारत २।६५।३२)।

(क) इसी अर्थ (जुआ खेलना) में दिव्' धातु का भी ऐसा ही प्रयोग होता है। जैसे—शतस्य दीव्यति (सि० कौ०) किन्तु जब इस धातु के पहले कोई उपसर्ग लगा होता है तब द्वितीया या षष्ठी होती है। जैसे—शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति (सि० कौ०)।

अभ्यास

१. तस्या पण्डितकौशिक्या सहितायाः समक्षमेव न्याय्यो व्यवहार:। (मालवि० १)

२. श्वापदानुसरणैर्मम गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत:। (शाकु० २)

३. कथं मामेकाकिनीं त्यक्त्वार्यपुत्रो गत:। भवतु कोपिष्यामि यदि तं प्रेक्षमाणात्मन: प्रभविष्यामि। (उत्तर० १)

४. अयि भागीरथीप्रसादाद्वनदेवतानामाप्य दृश्यामि संवृत्ता। (उत्तर० ३)

५. हा देवि स्मरसि वा तस्य प्रदेशस्य तत्समयविश्रंभातिशयप्रसंगसाक्षिण:। (उत्तर०)

६. एवमस्थिते यदत्रावसरप्राप्तमीदृशस्य चानुरागस्य सदृशमस्मदागमनस्य

---

१. व्यवहृपणो: समर्थयो:। दिवस्तदर्थस्य। विभाषोपसर्गे (२।३।५७,५८,५९)।

चानुरूपमात्मनो वा समुचितं तत्र प्रभवति देवीत्यभिधाय मन्मुखासक्तदृष्टिः कपिंजलस्तूष्णीमासीत् । (काद० १५८)

७. धिङ्मां दुष्कृतकारिणीं यस्याः कृते तवेयमीदृशी दशा वर्तते (काद० १६७)

८. हा दयित माधव परलोकगतोऽपि स्मर्तव्यो युष्माभिरयं जनः । न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति । (मालती० ५)

९. कापि महती वेला वर्तते तवादृष्टस्य । तदनया सहैवागच्छ । (काद० २४१)

१०. अलं हि संमतो राज्ञो य एव मन्यते कुधीः ।
बलीवर्दः स विज्ञेयो विषाणपरिवर्जितः ॥ (पंच० १।१०)

११. शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम् ।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः ॥ (हितो० १)

१२. अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामीश्महे यावदर्थम् । (भर्तृ० ३।३०)

१३. समरशिरसि चंचत्पंचचूडश्चमूना—
मुपरि शरतुषारं कोऽप्ययं वीरपोतः ॥ (किरति) । (उत्तर० ५)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. स राजा मनसि धर्मेण कोपे यमेन प्रतापे वह्निना मुखे शशिना प्रज्ञायां सुरगुरुणा तेजसि सवित्रा च वसता सर्वदेवमयस्य प्रकटितविश्वरूपाकृतेरनुकरोति भगवतो नारायणस्य । (काद० ३)

२. नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थितिना भगवता परिभूतकलिकालविलसितेन धर्मेण न स्मर्यते कृतयुगस्य । (काद० ४४)

३. उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः ।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रमस्तव प्रसादस्य पुरस्तु संपदः ॥ (शाकु० ७)

४. शंबूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः ।
शीर्षच्छेद्यः स ते राम तं हत्वा जीवय द्विजम् ॥ (उत्तर० १)

५. अपीप्सितं क्षत्रकुलाङ्गनानां ।
न वीरसूशब्दमकामयेतरम् ॥ (रघु० १४।४)

६. वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम् ।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य ॥ (रघु० १४।६१)

७. देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः ।
प्रनष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति ॥ (उत्तर० ३)

८. अयं मैथिल्यभिज्ञानं काकुत्स्थस्यांगुलीयकः ।
भवत्याः स्मरतात्यर्थमर्पितः सादरं मम ॥ (भट्टि० ८।११८)

९. पुनः प्रवेशमाश्चर्यं बुद्ध्वा शाखामृगेण सा ।
चूडामणिमभिज्ञानं ददौ रामस्य संमतम् ॥
रामस्य शयितं भुक्तं जल्पितं हसितं स्थितम् ।
प्रक्रान्तं च मुहुः पृष्ट्वा हनूमन्तं व्यसर्जयत् ॥ (वही १२४–५)

१०. तं दृष्ट्वाऽचिन्तयत्सीता हेतोः कस्यैष रावणः ।
अवरुह्य तरोरारादेति वानरविग्रहः ॥
उत्तराहि वसन् रामः समुद्राद्रक्षसां पुरम् ।
अवैल्लवणतोयस्य स्थितां दक्षिणतः कथम् ॥ (वही १०४, १०७)

अनुवाद कीजिए :—

१. युवकों की ओर स्पृहा से देखती हुईं स्त्रियाँ अपने ऊपर बड़ी कठिनाई से नियन्त्रण रख सकीं (ईश्)

२. यदि मनुष्य पशुओं के कार्यों का अनुकरण करते हैं (अनु + कृ) तो उनमें क्या अन्तर है ?

३. मित्र ! निराश न होओ, जिस स्त्री के लिए तुम इतना अधिक व्याकुल हो वह स्वयं ही तुम्हारे पास आवेगी ।

४. उस आनन्द के बराबर कोई आनन्द नहीं है जिसे अपने गृहकर्मों को पुत्रों को सौंपकर वन में निवास करने वाले पाते हैं ।

५. तुम्हारा यह कार्य तुम्हारे उच्च वंश की मर्यादा के योग्य है जिसमें तुम उत्पन्न हुए हो ?

६. मेरे गुरुजनों का आदेश केवल मेरे शरीर पर प्रभुत्व रख सकेगा (प्र + भू) मेरे मन और उसकी क्रियाओं पर नहीं ।

७. अपनी माता से बहुत दिन से दूर रखे जाने से बालक उसको बार-बार याद करता है ।

८. इस पर्वत के उत्तर (उत्तरतः) चारों ओर हरी घास से ढका हुआ मैदान है जो दर्शकों की आँख लुभा लेता है ।

९. सेवक ने राजा से उसके सभी मन्त्रियों के सामने (समक्षं) जो कथा सुनाई; वह उसके मन में बैठ गई ।

१०. यहाँ मैं अपने सामने (पुरः) हड्डियों का एक विशाल ढेर देखता हूँ; वहाँ पेड़ों के नीचे (अधः) मांस के कई टुकड़े हैं। यह क्या हो सकता है ?
११. सुषेण के राज्य में उसकी प्रजाओं में प्रत्येक व्यक्ति सोचता था कि मैं राजा द्वारा आदृत (पूज्) और मान्य (मन्) हूँ।
१२. प्रजाओं को मान्य गुणों द्वारा आप अपने पिता के अनुरूप होंवे।
१३. जब से देवी मालविका को देखने गई तब से बहुत समय बीत गया।
१४. यह राजा सेवकों द्वारा सेवा किया जाने योग्य (सेव्य) है और 'नृपाल' विशेषण उसके लिये नितान्त युक्त है।
१५. सज्जनों से मित्रता के समान (सदृश) इस संसार में कुछ भी नहीं है।
१६. चतुर विद्यार्थियों को अच्छी पुस्तक सुन्दर कपड़ों की अपेक्षा अधिक प्रिय होती है।
१७. धर्मपरायण ब्राह्मण को दिन में तीन बार सन्ध्या करनी चाहिए और केवल एक बार सूर्यास्त से पहले खाना चाहिए।
१८. राम सीता को प्राणों से भी अधिक प्रिय थे।

पाठ ११

भावे षष्ठी तथा सप्तमी

१२६. "जब 'शतृ' या 'शानच्' प्रत्ययान्त शब्द क्रिया के कर्ता के अतिरिक्त किसी अन्य कर्ता के अनुरूप हो तब वह वाक्यांश 'भावे' कहलाता है।"
—वेन।

ऐसा वाक्यांश उस उपवाक्य से असंबद्ध रहता है जिस उपवाक्य में वह वाक्यांश (Phrase) आता है। जैसे—वायु अनुकूल होने पर जहाज आगे बढ़ी।' (यहाँ 'अनुकूल होने पर' स्वतन्त्र वाक्यांश 'भावे' है और उसका उपवाक्य से सम्बन्ध नहीं)। विभिन्न भाषाओं में 'भावे' कारक भिन्न-भिन्न होता है। अंग्रेजी में कर्ता कारक, लैटिन में अपादान और संस्कृत में षष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियाँ 'भावे' प्रयुक्त होती हैं, यदि ऐसी बात पाई जाती हो कि आश्रित उपवाक्य का कर्ता ऐसी संज्ञा न हो जो मुख्य उपवाक्य में आई हो, अथवा ऐसी संज्ञा को व्यक्त करने वाला सर्वनाम न हो तो वहाँ 'भावे' का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए यह वाक्य लीजिए:—लंका को ले लेने के बाद राम अयोध्या को लौटे। यहाँ दोनों उपवाक्यों का कर्ता एक ही 'राम' है अतएव 'भावे' का प्रयोग नहीं हो सकता। इस वाक्य का अनुवाद इस प्रकार हो सकता है—लङ्कां गृहीत्वा (या गृहीतलङ्कः) रामोऽयोध्यां निववृते। किन्तु इस वाक्य का वानरों के लंका ले लेने पर, राम अयोध्या को लौटे' अनुवाद होगा—कपिभिर्गृहीतायां लंकायां (या कपिषु लंकां गृहीतवत्सु) रामोऽयोध्यां निववृते।

टिप्पणी—इन 'भावे' प्रयोग की रचना करने के लिए 'शतृ' या 'शानच्' प्रत्ययान्त का कर्ता षष्ठी या सप्तमी विभक्ति में रखा जाता है और लिंग तथा वचन में 'शतृ' या शानच् प्रत्ययान्त शब्द उस कर्ता के अनुसार रखा जाता है।

१२१. [1]जब कोई संज्ञा या सर्वनाम शब्द किसी ऐसी वस्तु, का बोध कराता है जिसके द्वारा की गई या भोगी गई क्रिया दूसरी क्रिया का 'समय' बताती

---

१. यस्य च भावेन भावलक्षणम् (२।३।३७)।

है, तब उस संज्ञा या सर्वनाम पद को सप्तमी विभक्ति में रखते हैं अर्थात् पहली क्रिया का समय ज्ञात माना जाता है और दूसरी क्रिया के अज्ञात समय का निर्धारण उसी (प्रथम क्रिया के समय) के आधार पर किया जाता है; जैसे— **कः पौरवे वसुमतीं शासति अविनयमाचरति** (शाकु० ६) पौरव के पृथ्वी पर शासन करते रहने पर कौन उद्दण्डता कर रहा है? क एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छति (मुद्रा० १) मेरे जीवित रहते चन्द्रगुप्त को कौन परास्त करने की इच्छा करता है।

द्र०—संस्कृत में 'भावे सप्तमी' का प्रयोग अंग्रेजी के भावे कर्ता (Nominative Alsolute) के समान होता है।

१२२. जब 'घृणा' या 'अनादर' व्यक्त करना होता है तो 'भावे षष्ठी' का प्रयोग होता है; जैसे—नन्दाः पशव इव हताः पश्यतो राक्षसस्य (मुद्रा० ३) राक्षस के देखते-देखते नन्द कुल वाले पशुओं के समान मार डाले गये इसी प्रकार तथापि, 'बावजूद भी', 'इन सबके होते हुए भी' आदि का भाव व्यक्त करने के लिए भी 'भावे षष्ठी' का प्रयोग होता है। जैसे—मेरे देखते रहने के बावजूद भी बालक एक बाज द्वारा झपट लिया गया 'पश्यतोऽपि मे श्येनेनापहृतः शिशुः' (पंच० १।२१)।

१२३. 'भावे सप्तमी' के समान ही 'भावे षष्ठी' का प्रयोग भी अंग्रेजी के अव्यय शब्द When (जब) while (जबकि) का भाव व्यक्त करने के लिए होता है ऐसी दशा में इन शब्दों का सामान्य अर्थ लागू नहीं होता हैं। जैसे—एवं तयोः परस्परं वदतोः स राजा शयनमासाद्य प्रसुप्तः (पंच० १।६) जब वे दोनों इस प्रकार बातें कर रहे थे राजा अपनी शय्या पर आकर सो गया।

द्र०—जब 'भावे' कृदन्त का अर्थ 'रहते' 'होते हुए' अर्थ वाला होता है तो संस्कृत में उसका लोप कर दिया जाता है और उसकी जगह पर दो विशेष्य अथवा एक विशेष्य और एक विशेषण एक साथ 'भावे विभक्ति' में रखे जाते हैं, जैसे—**नाथे कृतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम्** (रघु० ५।१३) आपके स्वामी रहते प्रजाओं का कोई अहित कैसे हो सकता है?

१२४. कभी-कभी 'अनादर' 'होते हुए भी' आदि अर्थ में भावे षष्ठी और सप्तमी दोनों का ही प्रयोग होता है। जैसे—रुदति पुत्रे रुदतो वा पुत्रस्य पिता प्रव्राजीत् (सि० कौ०) अपने पुत्रों के रोते रहने पर भी पिता परिव्राजक हो गया।'

(क) 'जैसे ही' 'ज्यों ही' 'जिस क्षण' इत्यादि का भाव व्यक्त करने के लिये भावे सप्तमी का प्रयोग होता है; सप्तमी के साथ 'एव' शब्द जोड़ा जाता है या कृदन्त शब्द के साथ मात्र लगाया जाता है और समास को सप्तमी विभक्ति में रखा जाता है और उसमें 'एव' जोड़ा भी जाता है और नहीं भी जोड़ा जाता। जैसे—अनवसित वचन एव मयि महानाशीविष उदैरयाच्छिर: (दशकु० २।४) जिस समय मैंने अपना वक्तव्य समाप्त किया (मैंने अपना कथन समाप्त ही किया था कि) एक बड़े सर्प ने अपना फण उठाया। अप्रभाता-यामेव रजन्यां (मुद्रा० १) सवेरा होते ही होते (अभी मुश्किल से सवेरा हुआ था); प्रविष्टमात्र एव तत्रभवति निरुपप्लवानि न कर्माणि संवृतानि (शाकु० ३) उस महानुभाव ने भीतर पैर रखा ही था कि हमारे कार्य विना विघ्न के ही छूट गये।'

टिप्पणी—जब 'एव' के साथ या विना 'एव' के 'मात्र' शब्द अन्य विभक्तियों के साथ जोड़ा जाता है तो उसका भी वही अर्थ होता है। जैसे—जात-मात्रं न यः शत्रुं व्याधिं च प्रशमं नयेत् (पंच० :।१) जो शत्रु के या रोग के उत्पन्न होते ही शान्त नहीं कर देता।

(ख) कभी कभी कृदन्त के अनुसार होने वाला शब्द अव्यय शब्द होता है जैसे—'एवं', 'इत्थं', 'तथा', 'इति' इत्यादि। उदाहरण—एवं गते (शाकु० ४) ऐसी बात होने पर; तथानुष्ठिते (हितो० ३) 'ऐसा करने पर' इत्यादि।

१२५. 'भावे' वाक्यांश के 'कर्ता' या 'कर्म' की आवृत्ति प्रमुख उपवाक्य में षष्ठी विभक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य विभक्ति में नहीं होती। इस प्रकार के 'कर्ता' या 'कर्म' की आवृत्ति न तो अपने मौलिक रूप में होगी और न वह संकेतवाचक सर्वनाम द्वारा ही व्यक्त किया जा सकता है। जब ऐसे उदाहरण आते हैं जिनमें कर्ता या कर्म का अथवा इनके लिये प्रयुक्त सर्वनाम का मुख्य उपवाक्य में प्रयोग करना होता है तो वहाँ 'भावे' का प्रयोग नहीं करना चाहिए; अपितु समूचे को एक वाक्य समझना चाहिए और उसका अनुवाद कृदन्तों के प्रयोग द्वारा करना चाहिए। जैसे—'गोषु दुह्यमानासु ता जलमपाययत्' कहने के स्थान पर हमें 'दुह्यमाना गा जलमपाययत्' कहना चाहिए। इसी प्रकार—'आगतेषु विप्रेषु तेभ्यो दक्षिणां देहि' की अपेक्षा 'आगतेभ्यो विप्रेभ्य···' अधिक मुहावरेदार है। अथवा 'आपणात्पात्रे समानीते तस्मिन्नन्नं पचामि' की अपेक्षा 'आपणात् समानीते पात्रेऽन्नं पचामि' अधिक अच्छा लगता है। इसी प्रकार—

सारंगे एवं विचारयति स (सारंगः) व्याधेन हतः' उतना मुहावरेदार नहीं है जितना 'एवं विचारयन् सारंगो व्याधेन हतः'। 'ताडयतोऽपि स्वामिनस्तस्मै भृत्या न कुप्यन्ति' में उतना सौष्ठव नहीं है जितना 'ताडयतेऽपि स्वामिने भृत्या न कुप्यन्ति' में। किन्तु 'मदने हरणे दग्धे तस्य पत्नी विवशा बभूव' या 'मृतेऽस्मिन् राज्ञि तस्य पुत्रो राज्यमधिगमिष्यति' दोष रहित और पूर्णतः सुष्ठु प्रयोग हैं।[1]

---

१. इस विषय पर व्याकरण के आचार्य मौन हैं, तथापि मेरा विचार है कि हम इसे निम्न बातों से निर्विवाद मान सकते हैं (१) स्वयं 'भावे की परिभाषा द्वारा, (२) श्रेष्ठ संस्कृत कवियों और लेखकों की रचनाओं में अनगिनत प्रयोगों द्वारा, (३) अन्य प्राचीन भाषाओं जैसे—लैटिन के साथ तुलना द्वारा। इसकी परिभाषा में यह बात स्पष्टतः अन्तर्निहित है कि 'भावे वाक्यांश' का कर्ता ऐसा संज्ञापद नहीं होना चाहिए जो मुख्य उपवाक्य में आता हो अतएव किसी भी स्थिति में इसकी (भावे वाक्यांश के कर्ता की) आवृत्ति नहीं हो सकती (उसका दो बार प्रयोग नहीं हो सकता) दूसरे, संस्कृत के लेखकों की रचनाओं में 'भावे' के अन्तर्गत आने वाले जो असंख्य उदाहरण हम पाते हैं उनमें बहुत कम या शायद ही कोई स्थल ऐसा है जिनमें षष्ठी के अतिरिक्त किसी अन्य विभक्ति में कर्ता या कर्म की आवृत्ति मुख्य उपवाक्य में की गई हो। जिस प्रकार 'अधिक शक्तिवाला' अर्थ में हमें 'महाबली' नहीं कहना चाहिए अपितु 'महाबलः' कहना चाहिए, क्योंकि वही अर्थ इस शब्द द्वारा अधिक सुष्ठु रूप में व्यक्त होता है, उसी प्रकार 'दुह्यमाना गां जलमपाययत्' वाक्य 'गोषु दुह्यमानासु' आदि की अपेक्षा अधिक सौष्ठवयुक्त है और अतएव अधिक मुहावरेदार है। तीसरे, लैटिन में 'भावे' विभक्ति का स्वरूप भी ठीक वही है जो संस्कृत में "जब कोई विशेष्य पद या सर्वनाम किसी कृदन्त (पार्टिसिपिल) या किसी विशेषण के साथ मिलकर एक स्वतन्त्र वाक्यांश बनाता है, और किसी दूसरे शब्दों के सनियम के अन्तर्गत नहीं होता, उनसे प्रभावित नहीं होता तो उन्हें 'भावे पंचमी' में रखते हैं।" जैसे—**Pythagoras Tarquinio Superbo seguste iu Aaliam venit.**

इस प्रकार यद्यपि संस्कृत वैयाकरण इस विषय पर मौन हैं फिर भी ऊपर निर्दिष्ट ये तीन स्थितियाँ इस निष्कर्ष पर पहुँचाती हैं कि जो अधिक सुष्ठु और मुहावरेदार होता है वह उससे अधिक शुद्ध है जिसे वैयाकरण शान्त होने

अभ्यास

१. अलमलमुपालम्भेन । पत्तने विद्यमानेऽपि ग्रामे रत्नपरीक्षा । (मालवि० १)
२. इदमवस्थान्तरं गते तादृशेऽनुरागे किं वा स्मारितेन । (शाकु० ५)
३. मा तावदनात्मज्ञे । देवेन प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सवे त्वमाम्रकलिकाभंगं किमारभसे । (शाकु० ६)
४. अभिव्यक्तायां चन्द्रिकायां किं दीपिकापौनरुक्त्येन । (विक्रमो०३)
५. आर्ये आत्रेयि अथ तस्मादरण्यात्परित्यज्य गते लक्ष्मणे सीतादेव्याः किं वृत्तमित्यस्ति काचित्प्रवृत्तिः । (उत्तर० २)
६. हा कष्टमरुन्धतीवसिष्ठाधिष्ठितेषु रघुकदंबकेषु जीवन्तीषु च प्रवृद्धासु राज्ञीषु कथमिदमापतितम् । (उत्तर० २)
७. अत्रान्तरे शक्तिखण्डामर्षितेन गाण्डीविनैवं भणितम् । अरे दुर्योधनप्रमुखाः कुरुबलसेनाप्रभव, अरे अविनयनदीकर्णधार कर्ण युष्माभिर्मम परोक्ष एकाकी पुत्रकोऽभिमन्युर्व्यापादितः । अहं पुनर्युष्माकं प्रेक्षमाणानामेनं कुमारवृषसेनं स्मर्तव्यशेषं नयामि । (वेणी० ४)
८. कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि ।
तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ।। (शाकु० ५)
९. मनोरथस्य यद्बीजं तद्दैवेनादितो हृतम् ।
लतायां पूर्वलूनायां प्रसूनस्यागमः कुतः ।। (उत्तर० ५)
१०. सा सीतामंकमारोप्य भर्तृप्रणिहितेक्षणम् ।
मामेति व्याहरत्येव तस्मिन्पातालमभ्यगात् ।। (रघु० १५।८४)

अभ्यास के अतिरिक्त वाक्य

१. राजा देवीमुखेन दुहितरमुवाच । पुत्रि त्वयि दुहितरि स्थितायां किमेवं युज्यते यत्सर्वे पार्थिवाः मया सह विग्रहं कुर्वन्ति । (पंच० १।५)

से अशुद्ध नहीं ठहराते हैं । दक्षिण के मेरे एक मित्र ने मेरा ध्यान 'नारायणीयम्'—श्रीमद्भागवत पुराण के संक्षिप्त रूप की ओर आकृष्ट किया है, जिसमें लेखक ने कहीं भी उपर्युक्त नियम का पालन नहीं किया है । अपने कथन की पुष्टि के लिये मेरे मित्र ने दो या तीन उद्धरण भी दिये है । मैं ऐसे उदाहरणों को यदि गलत नहीं तो सौष्ठवरहित और भद्दा मानता हूँ किन्तु अपर्याप्त प्रमाणों के आधार पर नियम में परिवर्तन करना उचित नहीं समझता ।

२. अथ कदाचिदवसन्नायां रात्रावस्ताचलचूडावलंबिनि भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि लघुपतनको नाम वायसो व्याधमपश्यत् ।

३. विकारहेतौ सति विक्रियन्ते,
येषां न चेतांसि त एव धीराः । (कुमार० १।५६)

४. अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी । (कुमार० ४।३१)

५. यस्मिञ्जीवति जीवन्ति बहवः सोऽत्र जीवति ॥
वयांसि किं न कुर्वन्ति चंच्वा स्वोदरपूरणम् । (पंच० १।१)

६. दर्शितभयेऽपि धातरि धैर्यध्वंसो भवेन्न धीराणाम् ॥
शोषितसरसि निदाघे नितरामेवोद्धतः सिन्धुः ॥ (पंच० १।११)

७. गुणवत्तरपात्रेण छाद्यंते गुणिनां गुणा ।
रात्रौ दीपशिखाकान्तिर्न भानावुदिते सति ॥ (पंच० १।१६)

८. सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां दुःखानि सद्बन्धुवियोगजानि ।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि स्रोतः सहस्रैरिव संप्लवन्ते ॥ (उत्तर० ४)

९. पंचभिर्निर्मिते देहे पंचत्वं च पुनर्गते ।
स्वां स्वां योनिमनुप्राप्ते तत्र का परिदेवना ॥ (हितो० ४)

१०. सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन्नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम् ।
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ॥ (रघु० ५।१३)

११. तस्मिन् ह्रदः संहितमात्र एव क्षोभात्समाविद्धतरंगहस्तः ।
रोधांसि निघ्नन्नवपातमग्नः करीव वन्यः परुषं ररास ॥
(रघु० १६।७८)

१२. जीवत्सु तातपादेषु नवे दारपरिग्रहे ।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः ॥ (उत्तर० १)

१३. त्वय्युत्कृष्टबलेऽभियोक्तरि नृपे नंदानुरक्ते पुरे
चाणक्ये चलिताधिकारविमुखे मौर्ये नवे राजनि ।
स्वाधीने मयि मार्गमात्रकथनव्यापारयोगोद्यमे
त्वद्वांछान्तरितानि संप्रति विभो तिष्ठन्ति साध्यानि वः ॥ (मुद्रा० ४)

१४. अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरंतरौर्वायमाणे
सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम् ।
कर्णालं संभ्रमेण व्रज कृप समरं मुंच हार्दिक्य शंकां
ताते चापद्वितीये वहति रणधुरां को भयस्यावकाशः ॥ (वेणी० ३)

अनुवाद कीजिए :—

[ध्यानार्ह—निम्नलिखित वाक्यों का अनुवाद 'भावे षष्ठी' या 'भावे सप्तमी' का प्रयोग करके कीजिए ।]

१. देवताओं के देखते रहने पर भी मनुष्य दुष्कर्म करते हैं ।
२. स्वाभिमान के वृक्ष के निर्धनता रूप हाथी द्वारा काटे जाने पर सद्गुणों के सभी पक्षी उड़ जाते हैं ।
३. विपत्तियों के ऊपर आ जाने पर मित्र भी शत्रु हो जाते हैं ।
४. चित्रकार द्वारा चित्र बनाये जाते ही मुझे बुलाने आग्रो ।
५. मुनि के इन वचनों के कहते ही सुन्दर अप्सरा एक क्षण में शिला में परिवर्तित हो गई ।
६. भय का कारण इतना दूर रहते तुम बीमारी के बहाने ऐसा क्यों कहते हो कि मेरे साथ नहीं चल सकोगे ?
७. इस दुःखद समाचार के उनके कानों तक पहुँचाने पर वे अत्यन्त दुःखी हुए ।
८. मैं नहीं जानता कि माता द्वारा निर्दयतापूर्वक छोड़ जाने पर उस बालक का क्या हुआ ।
९. उसका मन इस प्रकार के व्याकुलतापूर्ण विचारों में उलझे रहने पर उसने विना निद्रा के रात बिताई ।
१०. लक्ष्य पर बाण छोड़ते ही उसने उस दिशा में एक करुण क्रन्दन सुना ।
११. दिव्य लोकपालों के होते हुए भी, दमयन्ती नल को अपना पति बनाना चाहती है ।
१२. डींग हांकने वाले नीचों ! तुम्हें धिक्कार है । हम नौ भाइयों के जीवित रहते मेरे भाई की छाया को भी लांधने में कौन समर्थ है ?
१३. उगते हुए सूर्य द्वारा अन्धकार पुंज के नष्ट किये जाने पर पूर्व दिशा मेरी दृष्टि को खींच लेती है ।
१४. बन्दी के जीवन की रक्षा के लिये मेरी प्रार्थनाओं के बावजूद भी राजा ने उसे दण्ड देने का आदेश दिया ।
१५. मृत्यु निश्चित होने पर, तुम पलायन करके अपने यश में कलङ्क क्यों लगाते हो ?

—:०:—

खण्ड ३ : व्याकरणीय रूपों और शब्दों का प्रयोग तथा अर्थ	पाठ १२ सर्वनाम

पुरुषवाचक सर्वनाम

१२६. पुरुषवाचक सर्वनामों के प्रयोगमें कोई असाधारण बात नहीं है। जब ये पुरुषवाचक सर्वनाम क्रियाओं और उपसर्गों के योग में आते हैं तो इनमें भी वे ही नियम लागू होते हैं जो संज्ञाओं में लगते हैं। जैसे—अहं त्वां प्रार्थये—मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ। त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत्।
(वेणी० १)

१२७. [1]किन्तु 'अस्मद्' और 'युष्मद्' पुरुषवाचक सर्वनामों के लघुरूप जैसे—मा, मे, नौ, नः, त्वा, ते, वां और वः ध्यान देने योग्य हैं। उनका प्रयोग कभी भी किसी वाक्य के आरम्भ में, च, वा, एव और हा (कभी-कभी अह या ह) अव्यय शब्दों के ठीक पहले और किसी छन्द के चरण के आरम्भ में नहीं होता है। जैसे—'मे मित्रं'; 'नः पाहि', 'वां सख्यं' इत्यादि अशुद्ध हैं; तस्य च मम ('मे' नहीं) 'च वैरमस्ति' उसमें और मुझमें शत्रुता है। 'तस्य मम वा गृहम्' ('मे वा' नहीं); इदं पुस्तकं ममैव' ('मे एव' नहीं); हा मम मन्दभाग्यं ('मे' नहीं) वेदैरशेषैः संवेद्योऽस्मान् ('नः' नहीं); 'कृष्णः सर्वदाऽवतु' (सि० कौ०) सभी वेदों द्वारा ज्ञेय कृष्ण हमारी रक्षा करें।

(क) जब उपर्युक्त 'च', 'वा', 'एव' इत्यादि अव्यय शब्द 'अस्मद्' और 'युष्मद्' के लघुरूपों को एक साथ जोड़ते नहीं हैं तब उनके योग में इन लघुरूपों का प्रयोग हो सकता है; जैसे—हरो हरिश्च मे स्वामी (सि० कौ०) 'हर और हरि मेरे स्वामी हैं'; किं वा मे पुत्री करोतु 'मेरी बेटी क्या करेगी ?'

(ख) इसी प्रकार इन लघुरूपों का प्रयोग सम्बोधन के तुरत बाद नहीं

---

१. न चवाहाहैवयुक्ते। (८।१।२४); पदात्। अपादादौ। युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ। (८।१।१७, १८, २०)

होता; जैसे--वयस्य मम गृहमेतत् ('मे' नहीं); देवास्मान् ('नः' नहीं) पाहि सर्वदा (सि० कौ०) हे देव, हमारी सदैव रक्षा करो।' वस्तुतः सम्बोधन एक छोटा वाक्य होता है।

(ग) यदि सम्बोधन के बाद उसकी विशेषता बताने वाला कोई विशेषण आवे तो इन लघु रूपों का प्रयोग किया जाता है; जैसे—हरे दयालो न पाहि (सि० कौ०) हे दयालु हरि, हमारी रक्षा करो।

१२८. 'भवत्' शब्द का प्रयोग जिस व्यक्ति से बातचीत की जाती है उसके लिए होता है; यह एक शिष्टाचार का शब्द है और इसमें अनिवार्यतः आदर की भावना नहीं होती; इसे अन्यपुरुष का सर्वनाम समझना चाहिए और क्रिया भी अन्यपुरुष (प्रथमपुरुष) की होनी चाहिए। जैसे—**अथवा कथं भवान्मन्यते** (मालवि० १) अथवा आपका क्या विचार है? **वयमपि भवत्यौ किमपि पृच्छामः** 'मैं भी आप दोनों से कुछ पूछता हूँ।

१२९. जब आदर दिखाना होता है तो भवत् (स्त्री०-भवती) के पहले 'अत्र' और 'तत्र' अथवा स[1] जोड़ दिया जाता है। जो वक्ता के निकट होता है उसके विषय में कहना हो तो 'भवत्' (या भवती) के आगे 'अत्र' लगाया जाता है, जो वक्ता से दूर हो या उसके सामने न हो उसके लिए 'तत्रभवान्' या 'तत्रभवती' (स्त्री०) का व्यवहार होता है। जैसे—**क्व तत्रभवती कामन्दकी** 'पूजनीया देवी कामन्दकी कहाँ हैं' ? **आदिष्टोस्मि तत्र भवता काश्यपेन** (शाकु० ४) पूज्य काश्यपने मुझे आदेश दिया है; **अपेहि रे अत्र भवान्प्रकृतिमापन्नः** (शाकु० २) दूर रहो, ये श्रीमान् होश में आ गये हैं (शाकु० २), मां सभवान् नियुंक्ते (मालती० १) उन श्रीमान् ने मुझे नियुक्त किया है।'

संकेतवाचक सर्वनाम

१३०. संकेतवाचक सर्वनाम तीन हैं; 'इदम्' या 'एतद्' 'तद्' (वह) और 'अदस्' (यह या वह); इनका प्रयोग उन संज्ञाओं के साथ होता है जिसके लिए ये व्यवहृत होते हैं, अथवा उनके बिना भी स्वन्त्रत रूप में इनका

---

१. यह प्रयोग अशुद्ध प्रतीत होता है। 'अत्र' या 'तत्र' के समान 'स' 'भवत्' के पहले नहीं जोड़ा जाता। हम 'सभवता' इत्यादि जैसे रूप कहीं भी प्रयोग में नहीं पाते हैं। ऊपर के उदाहरण में इसका भिन्न पाठ होना चाहिए।

प्रयोग होता है जैसे—एष नृपः, स पुरुषः; तद् गृहं; स आह; एष मे किंकरः, इदं नो गृहं, असौ विद्याधरः' ।

१३१. 'इदम्' और 'एतद्' के रूपों का प्रयोग कभी कभी 'यह' के अर्थ में भी होता हैं जैसे--'यह मैं आता हूँ', 'यह लो वह बालक आ रहा है । ऐसा प्रयोग सामान्यतः उत्तम पुरुष या अन्यपुरुष (प्रथमपुरुष) के योग में होता है और यह संकेतवाचक सर्वनाम शब्द एक साधारण विशेषण पद के समान वाक्य के कर्ता के अनुसार होता हैं; जैसे--**आर्यपुत्र इयमस्मि** (शाकु० १) स्वामी यह मैं हूँ, **इयमहमारोहामि** (उत्तर० १) यह मैं चढ़ता हूँ; **अयमागच्छामि** (शाकु० ३) यह मैं आता हूँ; इयं सा जातिः परित्यक्ता (वेणी० ३) ।

१३२. 'तद्' का प्रयोग प्रायः 'प्रतिष्ठित' या 'प्रसिद्ध' के अर्थ में होता है । जैसे--**सा रम्या नगरी** (भर्तृ० ३।३७) वह प्रसिद्ध सुन्दर नगरी । 'सामन्तचक्रं च तत्' (वही) वह प्रख्यात सामन्तों का समूह ।

(क) 'तद्' का प्रयोग बहुधा 'वही' 'वैसा ही' के अर्थ में 'एव' के साथ होता है और सामान्यतः सन्दर्भ में यह अभिव्यक्त या लुप्त रहता है । जैसे—**तानीन्द्रियाणि सकलानि** (भर्तृ० २।४०) सभी इन्द्रियाँ वे ही हैं; **तदेव नाम** (वही) नाम भी वही है; एते त एव गिरयः (उत्तर० ३) ये वे ही पर्वत हैं । **तदेव पंचवटीवनं**-(उ० ३) पंचवटी वन भी वही है ।

(ख) जब 'तद्' की आवृत्ति होती है तो इसका अर्थ 'अनेक' 'विविध' होता है । जैसे—तेषु तेषु स्थानेषु (काद० ३६६) अनेक स्थानों पर ।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम

११३. जब संबन्धवाचक सर्वनाम की पुनरुक्ति होती है तो उसका अर्थ 'सम्पूर्ण' 'जो कुछ' का होता है और जिस सर्वनाम से उसका संबन्ध होता है उसे भी दुहराया जाता है । जैसे—क्रियते यद्यदेषा कथयति (उत्तर० १) वह जो कुछ कहती है उसे मैं करूँगा । यो यः शस्त्रं बिभर्ति····क्रोधांस्तस्य तस्य स्वयमिह जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम् (वेणी० ३) जो-जो शस्त्र धारण करते हैं, चाहे वह लोकों का नाश करने वाले यमराज ही क्यों न हों, मैं उन सबका नाश करने वाला हो जाता हूँ । इसी प्रकार—यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः (भर्तृ० २।५१) जिस-जिस को देखते हो उसके (अर्थात् सभी के) आगे दीन वचन मत बोलो ।

(क) कभी-कभी 'अपि' 'चित्' या 'चन' अव्ययों द्वारा संबन्धवाचक सर्वनाम के साथ प्रश्नवाचक सर्वनाम जोड़कर 'जो कुछ' या 'जो कोई' का भाव व्यक्त किया जाता है। जैसे—एतादृशी रूपवती कन्या **यस्मै कस्मैचिन्न** दातव्या 'इस प्रकार की सुन्दर कन्या जिस किसी को नहीं दे देनी चाहिए। **यो वा को वा** भवाम्यहम् (वेणी ३) मैं जो कोई होऊँ; **यत्र कुत्रापि** स्वपिति जहाँ-कहीं सो जाता है।

प्रश्नवाचक अनिश्चयवाचक और निजवाचक सर्वनाम

१३४. प्रश्नवाचक सर्वनाम और उससे बने हुए रूपों का प्रयोग प्रश्न पूछने में किया जाता है। जैसे—कः पुनरसौ जामाता (उत्तर० १) यह जामाता कौन है? कतमेन दिग्भागेन गतः स जाल्मः (वेणी० १) वह दुष्ट किस दिशा को गया है? **किं करोमि, क्व गच्छामि** (उत्तर० १) क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?

१३५. प्रश्नवाचक सर्वनामों और क्रियाविशेषणों के साथ 'चित्' 'चन', 'अपि' और कभी-कभी 'स्विद्' जोड़कर उनसे अनिश्चयवाचक सर्वनाम का अर्थ व्यक्त किया जाता है। जैसे—**कश्चिद्यक्षो वसतिं चक्रे** (मेघ० १) किसी यक्ष ने निवासस्थान बनाया; **कदाचित्-चन-अपि** किसी समय; कास्विदवगुंठनवती नारी (शाकु० ५) कोई घूंघटवाली स्त्री।

(क) कभी-कभी 'अपि' का अर्थ 'अवर्णनीय' (अनिर्वाच्य) होता है; जैसे—कोपि हेतुः (उत्तर० ६) कोई अवर्णनीय कारण; इसी प्रकार—तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः (उत्तर० २)

(ख) 'कहीं—कहीं' (यहाँ—वहाँ) और 'कभी—कभी' (कभी तो कभी) के अर्थ में 'क्वचित्—क्वचित्', 'कदाचित्—कदाचित्', का प्रयोग होता है। जैसे—क्वचिद्वीणावाद्यं क्वचिदपि च हाहेति रुदतं (भर्तृ० ३।१२) कहीं (एक जगह) वीणा बज रही है, कहीं (दूसरी जगह) हाहाकार के साथ रुदन हो रहा है; यहाँ तुम वीणा की ध्वनि सुन रहे हो—वहाँ हा हा का आर्त्तनाद सुन रहे हो।' **कदाचित्काननं** जगाहे **कदाचित् कमलवनेषु** रेमे (काद० ५८) कभी वह वन में प्रवेश करता था तो कभी कमलवनों में विहार करता था।

(ग) 'क्वचित्–क्वचित्' का अर्थ स्वल्पप्रयोगों में समय वाचक भी होता है जैसे—क्वचिद् घनानां पततां क्वचिच्च (रघु० १३।१६) कभी बादलों का तो कभी पक्षियों का।

१३६. 'अन्य–अन्य', 'पर–पर' सर्वनामों का प्रयोग 'एक दूसरा' के अर्थ में किया जाता है; जैसे—अन्यः करोति अन्यो भुंक्तो 'एक करता है दूसरा भोगता है'; मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कार्यमन्यद्दुरात्मनां (पंच० १) दुष्टों के मन में एक बात होती है, वाणी में दूसरी और कर्म में दूसरी ही बात होती है।

१३७. सामान्यतः ऐसे दो पदार्थों के लिए जिनका प्रयोग पहले हो चुका होता है 'एक–दूसरा' के अर्थ में 'एक–अपर' या 'अन्य' का प्रयोग होता है। जैसे—एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान् सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान् (रघु० ५।६०) 'एक चैत्ररथ प्रदेश को गया, दूसरा विदर्भ देश को गया, जो गुणी राजा द्वारा शासित होने से सुखी राज्य था।

१३८. जब 'एक–अपर' या 'अन्य' का प्रयोग बहुवचन में होता है तो इसका अर्थ होता है 'कुछ—दूसरे'; जैसे—विधवानां पुनरुद्वाहः शास्त्रप्रतिषिद्ध इत्येके मन्यन्ते शास्त्रविहित इत्यपरे (या अन्ये) कुछ लोगों का मत है कि विधवाओं का पुनर्विवाह शास्त्र में निषिद्ध है, दूसरों का विचार है कि यह शास्त्र द्वारा विहित है।

(क) उपर्युक्त अर्थ में कभी-कभी 'एके' के स्थान पर 'केचित्' होता है। जैसे—मदुक्तं केचिदन्वमन्यंत। अपरे पुनर्निनिन्दुः (दशकु० २१४) 'कुछ लोग तो मेरे वक्तव्य से सहमत हुए दूसरों ने उसकी निन्दा की।

१३९. 'स्व' 'स्वकीय', आत्मीय और 'निज' 'अपना' का बोध कराने के लिये प्रयुक्त होते हैं। जैसे—स्वं नाम कथय अपना नाम बताओ; निजं धैर्यंसदर्शयत् उसने अपना धैर्य दिखाया।

(क) स्वयं (अपना) एक निजवाचक क्रियाविशेषण है। जैसे—सा स्वयमेव तत्र जगाम 'वह खुद ही वहाँ गई।'

१४०. जिस शब्द का निजवाचक सर्वनाम के रूप में अधिक प्रयोग होता है वह है 'आत्मन्'। इसका प्रयोग सर्वत्र पुंल्लिङ्ग, एकवचन मे होता है, चाहे इससे निर्दिष्ट संज्ञा किसी लिङ्ग या वचन की हो; जैसे—का स्त्री अनेन प्रार्थ्यमानमात्मानं विकत्थते (विक्रमो० २) कौन स्त्री अपने को इसके द्वारा प्रार्थित होने का गर्व करती हैं? आत्मानं बहु मन्यामहे वयं (कुमार० ६।२०) 'हम

अपने को बड़ा मानते हैं'; इसीप्रकार—गुप्तं ददृशुरात्मानं सर्वा: स्वप्नेषु वामनै: (रघु० १०।३०)

अभ्यास

१. तस्य च मम पौरधूर्तैर्वैरमुदपाद्यत (दशकु० २।२)

२. न नः कुतूहलमस्ति सर्पदर्शने (मुद्रा० २)

३. श्रीशस्त्वाऽवतु माऽपीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म स: !
स्वामी ते मेऽपि स हरि: पातु वामपि नौ विभु: ॥
सुखं वां नौ ददात्वीश: पतिर्वामपि नौ हरि: ।
सोऽव्याद् वो न: शिवं वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र व: स न: । (सि० कौ०)

४. एवमत्रभवन्तो विदांकुर्वन्तु । अस्ति तत्रभवान् काश्यप: श्रीकण्ठपदलांछनो भवभूतिर्नाम जातुकर्णीपुत्र: । (उत्तर० १)

५. एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यिकस्तदानींतनश्च संवृत्त: । (उत्तर० १)

६. तदेव पञ्चवटीवनम् । सैव प्रियसखी वासन्ती । त एव जातनिर्विशेषा: पादपा: । मम पुनर्मन्दभाग्याया: सर्वमेवैतद् दृश्यमानमपि नास्ति ।
(उत्तर० ३)

७. आयुष्मन्नेष वाग्विषयीभूत: स वीर: । (उत्तर० ५)

८. राजा—आर्य बहु प्रष्टव्यमत्र । चा०—वृषल, विश्रब्धं ब्रूहि ममापि बह्वाख्येयमत्र । रा०—एष पृच्छाभि । चा—अहमप्येष कथयामि । (मुद्रा० ३)

९. अमुना व्यतिकरेण कृतापराधमिव त्वय्यात्मानमवगच्छति कादम्बरी ।
(काद० २०३) ।

१०. केचित् संपद्भि: प्रलोभ्यमाना रागावेशेन बाध्यमाना विह्वलतामुपयान्ति । अपरे तु धूर्तै: प्रतार्यमाणा- सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति ।
(काद० १०८)

११. साहसकारिण्यस्ता: कुमार्यो या: स्वयं सन्दिशन्ति समुपसर्पन्ति वा ।
(काद० २३७)

१२. अनत्यप्रभुशक्तिसम्पदा वशमेको नृपतीननंतरान् ।
अपर: प्रणिधानयोग्यया मरुत: पंच शरीरगोचरान् ॥ (रघु० ८।१९)

१३. कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना: प्रपद्यन्तेऽन्यदेवता: ।
तं तं नियमास्थाय प्रकृत्या नियता: स्वया ॥ (गीता ७।२०)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. अयमसौ मम ज्यायानार्यः कुशो नाम भरताश्रमात् प्रतिनिवृत्तः। (उत्तर ६)

२. लक्ष्म्योन्मादिता व्यसनशतशरव्यतामुपगता वल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानः नावगच्छन्ति। (काद० १०७)

३. तस्य तरुषण्डस्य मध्ये मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः क्वचित् त्र्यम्बकवृषमविषाणकोटिखंडिततटशिलाखण्डं क्वचिदैरावतदशनमुसलखण्डितकुमुददण्डमच्छोदं नाम सरो दृष्टवान्। (काद० १२३)

४. इति नरपतिरस्त्रं यद्यदाविश्चकार।
क्रमविदथ मुरारिः प्रत्यहस्तत्तदाशु॥ (शिशु० २०।७६)

५. तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव नाम,
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्॥ (भर्तृ० २।४०)

६. एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा-
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।
आमंजु–वंजुल–लतानि च तान्यमूनि
नीरन्ध्रनीलनिचुलानि सरित्तटानि॥ (उत्तर० २)

७. योऽत्ति यस्य यदा मांसमुभयोः पश्यतान्तरम्।
एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्यः प्राणैर्विमुच्यते॥ (हितो० १)

८. वज्रं च राजतेजश्च द्वयमेवातिभीषणम्।
एकमेकत्र पतति पतत्यन्यत् समन्ततः॥ (हितो० १)

९. विश्वम्भरात्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने।
प्राप्तप्रसवमात्मानं गङ्गादेव्यां विमुंचति॥ (उत्तर० ७)

१०. काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्रा चन्द्रमसोरिव॥ (रघु० १।४६)

११. कोऽप्येष एव पिशुनोग्रमनुष्यधर्मः।
कर्णे परं स्पृशति हन्ति परं समूलम्॥ (पंच० १।११)

१२. रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यम्
तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम्।

न कारणात् स्वाद् विभिदे कुमार;
प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात् ॥ (रघु० ५।३७)

अनुवाद कीजिए:—

१. पूज्य गौतम ने मुझे यह कार्य करने का आदेश दिया है।
२. आप इस शुभ अवसर पर क्या कहना चाहते हैं ?
३. प्रिय गोपाल, रोओ मत। जिन्हें तुम मृत समझते हो वे तुम्हारे दोनों भाई यह आ रहे हैं।
४. यह इस बच्चे की माँ, हाथों में फल लिये हुए आ रही हैं।
५. विद्वानों की सङ्गति में एक अनोखा आनन्द होता है।
६. उस सङ्कटकाल में उन्होंने बड़ी कठिनाई से अपने को बचाया।
७. ये दोनों बालक अपने ही बेटों के समान मेरे द्वारा पाले गये हैं; एक बहुत चतुर था किन्तु दूसरा बहुत मूर्ख था।
८. उस समाचार को सुनकर उसने स्वयं को सबसे अधिक भाग्यहीन माना।
९. ऐसी बात सुनायी पड़ती है कि भद्रकाली के मन्दिर में एक वृद्धा रहती है। कभी तो वह व्यर्थ बक-बक करती है और कभी ढङ्ग से बातें करती हैं।
१०. कुछ दार्शनिकों का विश्वास है कि ईश्वर ने सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि की, दूसरों का कहना है कि यह स्वयं ही उत्पन्न हुआ।
११. कुछ लोग अपना हित साधते हैं, कुछ जनहित की ही साधना करते हैं; जब कि दूसरे लोग दोनों को साधने का प्रयत्न करते हैं।
१२. यज्ञदत्त के पुत्र अनेक कलाओं और शास्त्रों में निपुण हो गये हैं।
१३. यह वही व्यक्ति है जिसे मैंने सड़क पर फटे हुए चीथड़े पहने हुए देखा था।
१४. वह जहाँ कहीं पढ़ता है, जिस-किसी के साथ जाता है, जिस किसी के घर में खा लेता है और जहां कहीं सो लेता है।
१५. जो कोई दृढ़ विचार वाला होगा वह अपने किसी भी अपमान का बदला लेने का प्रयत्न करेगा।
१६. जो तुम्हारे घर आते हैं उन सबके साथ नम्रतापूर्वक बातें करो।

—:o:—

पाठ १३

कृदन्त

१४१. संस्कृत में तथाकथित अव्ययार्थक भूतकालिक कृत् प्रत्ययों (क्त्वा, ल्यप्) से बने शब्दों को छोड़कर सभी कृदन्त विशेषण के समान माने जाते हैं और उनका लिङ्ग, वचन तथा कारक वही होता है जो उस संज्ञा शब्द का होता है, जिसकी वे विशेषता बताते हैं। अंग्रेजी में उन्हे पार्टिसिपिल (Participle) इसलिये कहा जाता है कि ये क्रिया, विशेषण और संज्ञा के कार्यों में भाग लेते हैं, हिस्सा बँटाते हैं। संस्कृत में मुख्य रूप से कृदन्त निम्न प्रकार के होते हैं:—वर्तमानकालिक, भूतकालिक, भविष्यत्कालिक, लिडर्थ (परोक्षभूत), कृत्यप्रत्यय, भाववाच्य तथा कर्मवाच्य प्रत्यय, तथा अव्ययार्थक प्रत्यय (इन प्रत्ययों से कृदन्त बनाने के नियम व्याकरण ग्रन्थ में देखिए) 'इन कृदन्तों के योग में वही विभक्ति लगती है जो उन धातुओं के योग में लगती है, जिनसे ये कृदन्त बने होते हैं। इस पाठ में वर्तमानकालिक प्रत्यय (शतृ, शानच्) भविष्यत्कालिक प्रत्यय (स्यतृ, स्यमान) और लिडर्थ (परोक्षभूत् प्रत्यय-'क्वसु' 'कानच्') का विवेचन किया जायगा।

वर्तमानकालिक प्रत्यय (शतृ, शानच्)

१४२. संस्कृत के वर्तमानकालिक कृदन्त (इउ कृदन्त को बनाने के नियमों के लिये डॉ० कीलहोर्न का व्याकरण-अधिकरण ४९८—५०० देखिए) अंग्रेजी में क्रिया के साथ ing जोड़कर बनायी गयी पूर्वकालिक क्रिया के रूपों के समकक्ष होते हैं। इसका प्रयोग उस समय होता है जब क्रिया का एक साथ होना पाया जाता है। जैसे—**इति विचारयन्नेव तुरगादवततार** (काद० १६५) इस प्रकार विचार करते हुए ही वह घोड़े से उतर गया। **विवाहकौतुकं बिभ्रत एव तस्य वसुधां हस्तगामिनीमकरोत्** (रघु० ८।१) विवाह का मंगलसूत्र धारण करते रहने पर ही पृथिवी को उसके हाथ में सौंप दिया; **व्रजंश्च समर्थयामास** (काद० १४१) जाते हुए उसने सोचा।

इस प्रकार इस कृदन्त (शतृ और शानच् प्रत्ययान्त) में 'जबकि' 'जिस

समय' का भाव होता है, जो अंग्रेजी में एक समूचे वाक्य में कहीं किये जाने वाली बात को अभिव्यक्त करता है।

द्र०—(क) संस्कृत के वर्तमानकालिक (शतृ और शानच् से बने) कृदन्तों को अंग्रेजी मे ing जोड़ने से बने हुए विशेष्यपदों या Ceruud के समान नहीं समझ लेना चाहिए।

(ख) जब कार्य के एक साथ होने का भाव नहीं होता तब इस प्रत्यय का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। जैसे—पर्वत पर चढ़कर उन्होंने कुछ समय विश्राम किया 'पर्वतामारुह्य ते कंचित् कालं व्यश्राम्यन्' न कि 'पर्वतमारोहन्तः'; जबतक कि इस वाक्य का यह अभिप्राय न हो कि दोनों कार्य एक ही साथ होते हैं।

(ग) वर्तमानकालिक कृदन्त (शतृ, शानच् प्रत्ययान्त) का प्रयोग कर्ता कारक में विधेयस्थानीय विशेषण के रूप में नहीं होता।

१४३. [1]'वर्तमानकालिक आत्मनेपदीय कृदन्त ('शानच्' प्रत्ययान्त) का प्रयोग प्रायः 'प्रकृति', 'स्वभाव' 'अवस्था का मापदण्ड' या 'कोई कार्य करने की क्षमता या योग्यता' बताने के लिए होता है। जैसे—**भोगं भुंजानः** (सि० कौ०) भोगों में लगा रहने वाला; **कवचं बिभ्राणः** (वही) कवच धारण किए हुए (उस अवस्था का जब कवच धारण किया जा सकता है); **शत्रुं निघ्नानः** (वही) अपने शत्रु को मारने में समर्थ।'

ऊपर के दूसरे उदाहरण के साथ निम्नलिखित उदाहरण की तुलना कीजिए :—सम्यग्विनीतमथ वर्महरं कुमारं (रघु० ८।९४) इसमें वर्महरः = कवचधारणार्हवयस्कः।

१४४. वर्तमानकालिक शतृ और शानच् प्रत्ययों का प्रयोग किसी सहायक परिस्थिति या गुण और क्रिया का हेतु बताने के लिए होता है। जैसे—**शयाना भुञ्जते यवनाः** (सि० कौ०) यवन सोए-सोए भोजन करते हैं; इसी प्रकार **तिष्ठन् मूत्रयति** (महाभाष्य०), गच्छन् भक्षयति (वही); हरिं **पश्यन् मुच्यते** (सि० कौ०) हरि को देखने से वह मुक्ति प्राप्त करता है। पहला वाक्य 'शयाना भुञ्जते यवनाः' 'कथं भुञ्जते' का उत्तर है और अन्तिम वाक्य 'हरिं पश्यन् मुच्यते' 'केन मुच्यते' का उत्तर है।

---

१. लक्षणहेत्वोः क्रियायाः। (३।२।१२६)।

(क) वर्तमानकालिक कृदन्त भी क्रिया के कर्ता की विवक्षा करता है; जैसे—योऽधीयान आस्ते स देवदत्तः जो पढ़ता हुआ बैठा है, वह देवदत्त है। इसी प्रकार-य आसीनोऽधीते स देवदत्तः (वही)।

द्र०—इसका प्रयोग अंग्रेजी में Participle के 'सीमित करने की क्रिया से युक्त' प्रयोग के समान ही है। 'अपना पाठ तैयार करने वाले छात्र पुरस्कृत होंगे (Students preparing their lessons, will be rewarded) पाठानधीयानाः शिष्याः पारितोषिकाणि लप्स्यन्ते। (यहां प्रयोग छात्रों की संख्या को सीमित कर रहा है—केवल 'पाठानधीयानाः' शिष्य, दूसरे नहीं।)

(ख) इन प्रत्ययों का प्रयोग सामान्य सत्य का कथन करने के लिए भी होता है। जैसे—शयाना वर्धते दूर्वा (महाभाष्य) भूमि पर पड़ी-पड़ी दूर्वा घास बढ़ती है। आसीनं वर्धते विसं', कमल का डंठल खड़ा-खड़ा ही बढ़ता है।'

१४५. 'आस्' (बैठना) 'स्था' (खड़ा होना) और कभी-कभी 'भू' तथा 'अस्' धातुओं के योग में धातुओं के वर्तमानकालिक कृदन्तों का प्रयोग उनके द्वारा बताई जाने वाली कार्य की निरन्तरता प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है। जैसे—वल्मीकाग्राणि विदारयन्प्रगर्जंश्चास्ते (पंच० १।१) चीटियों की बाबियों को गिराता रहा और गरजता रहा। गीतसमाप्त्यवसरं प्रतीक्षमाणस्तस्थौ (काद० १३२) गीत समाप्त होने के समय की प्रतीक्षा करता हुआ खड़ा रहा।

१४६. 'लज्जित होना' अर्थवाली क्रियाएँ जैसे—'लज्ज्' 'ह्री', 'त्रप्' के योग में धातुओं से 'शतृ, 'शानच्' प्रत्यय लगाकर प्रयोग किया जाता है और तब इसका भाव वही होता है जो अंग्रेजी में क्रिया के साथ 'to' लगाने पर होता है; एवं निर्घृणं प्रहरन्न लज्जसे (काद० २४७) इस प्रकार निर्दयतापूर्वक प्रहार करते तुम्हें लज्जा नहीं आती ? स्वयं साहसं सन्दिशन्ती बाला जिह्रेमि (काद० २३७) मैं बाला स्वयं साहसपूर्ण बात कहने में लज्जित हो रही हूँ।

१४७. कभी कभी वर्तमानकालिक कृदन्तों का प्रयोग निषेधवाचक 'मा' के योग में 'शाप' या धिक्कार के अर्थ में होता है। जैसे—मा जीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति (शिशु० २।४५) 'उसको धिक्कार है (वह न जीवे) जो दूसरों द्वारा अपमान के कष्ट से पीड़ित होने पर भी जीवित रहता है।'

भविष्यत्कालिक प्रत्यय (स्यतृ, स्यमान)

१४८. भविष्यत्कालिक कृदन्त, जिनके अन्त में स्यतृ (या ष्यतृ) अथवा

'स्यमान' आते हैं, यह बताते हैं कि कोई व्यक्ति या वस्तु कोई कार्य करने जा रहा है या करने वाला है अथवा धातु द्वारा अभिव्यक्त दशा को प्राप्त होनेवाला है। जैसे--'करिष्यन्' करने जाता हुआ--जा रहा है, करने को, मोक्ष्यन्-छोड़ने जा रहा है, करिष्यमाण-किया जाने वाला है।

(क) सामान्य भविष्यत्काल को प्रदर्शित करने के अतिरिक्त भविष्यत्कालिक कृदन्त 'अभिप्राय' या 'प्रयोजन' भी व्यक्त करता है; जैसे--वन्यान्विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान्स दावं विचचार (रघु० २।८) उसने वन में इस प्रकार विचरण किया मानों जङ्गली पशुओं को सिखाने का विचार कर रहा था। करिष्यमाणः सशरं शरासनं (रघु० ३।५२) 'अपने धनुष पर बाण चढाने का विचार करते हुए।' इस प्रकार यह कृदन्त अंग्रेजी के संभावनार्थक रूपों के समान है।

टिप्पणी—'प्रस्थान करने के पूर्व उसने थोड़ा पानी पिया' इस प्रकार के वाक्यों का अनुवाद भविष्यत्कालीन कृदन्त को कर्ता का विशेषण बनाकर किया जाता है। जैसे—प्रयाणं करिष्यन् स किंचिज्जलं पपौ, प्रस्थान करने के पूर्व···· (Before taking his departure he drank a little water) में पूर्व का यहाँ अर्थ हैं जाते हुए, going to take, 'about to take'

लिडर्थ (परोक्षभूत) प्रत्यय-क्वसु, कानच्

१४९. परोक्षभूतकालिक कृदन्त (जिनके अन्त में 'वस्' या 'आन्' आता है--अर्थात् 'क्वसु' और 'कानच्' आते हैं) कम प्रयोग में आते हैं। इसका अर्थ 'जो कर चुका है' या 'जो किया जा चुका है' होना है। जैसे—श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते (रघु० ५।३४) आपका जिन्होंने सभी उत्तम वस्तुएँ प्राप्त कर ली हैं; निषेदुषीमासनबन्धधीरः (रघु० २।६) उसके बैठने पर स्थिर होकर आसन पर बैठते हुए।

अभ्यास

१. सा टिट्टिभी स्वांडभंगाभिभूता प्रलापान् कुर्वाणा न कथंचिदतिष्ठत्।

(पंच० १।१५)

२. अथ द्वावपि तौ पुष्पितपलाशप्रतिमौ परस्परवधाकांक्षिणौ दृष्ट्वा करटको दमनकमाह। भो मूढमते, अनयोर्विरोधं वितन्वता त्वया न साधु कृतम्।

(पंच० १।१६)

३. राजा विस्फारितेन स्निग्धेन चक्षुषा पिबन्निवालपन्निव स्पृशन्निव मनोरथ-सहस्रप्राप्तदर्शनं सस्पृहमीक्षमाणस्तनयाननं मुमुदे कृतकृत्यं चात्मानं मेने। (काद० ७२)

४. साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्॥ (भर्तृ० २।१२)

५. सज्जीभूतं साधनम्। प्रयाणाभिमुखः सकलः स्कंधावारस्त्वां प्रतिपालयन्नास्ते। तत्किमद्यापि विलंबितेन। (काद० २७७)

६. राजाधिराजनन्दन नगरन्ध्रगतएव ते गतिं ज्ञास्यन्नहं च गतः कदाचित्कलिंगान्। (दशकु० २।७)

७. अनुयास्यन्मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः।
स्थानादुच्चलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः॥ (शाकु० १)

८. वामनाश्रमपदं ततः परं पावनं श्रुतमृषेरुपेयिवान्।
उन्मनाः प्रथमजन्मचेष्टितान्यस्मरन्नपि बभूव राघवः॥ (रघु० ११।२२)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. आसीच्च मे मनसि। शान्तात्मनि अन्यस्मिन् जने मां निक्षिपता किमिद-मनार्येण सदृशमारब्धं मनसिजेन। (काद० १४२)

२. अग्रजन्माऽब्रवीत्। महाभाग सुतानेतान् मातृहीनाननेकैरुपायै रक्षन्निदानी-मस्मिन् कुदेशे भैक्ष्यं सम्पाद्य ददतेभ्यो वसामि शिवालयेऽस्मिन्निति। (दशकु० १।३)

३. विवादे दर्शयिष्यन्तं क्रियासंक्रान्तिमात्मनः।
यदि मां नानुजानासि परित्यक्तोऽस्म्यहं त्वया॥ (मालवि० १)

४. अविदित्वाऽत्मनः शक्तिं परस्य च समुत्सुकः।
गच्छन्नभिमुखे वह्नौ नाशं याति पतंगवत्॥ (पंच० १।८)

५. अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः।
उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम्॥ (उत्तर० ३)

६. आदिदेशाथ शत्रुघ्नं तेषां क्षेमाय राघवः।
करिष्यन्निव नामास्य यथार्थमरिनिग्रहात्॥ (रघु० १५।६)

७. कदा वाराणस्याममरतटिनी रोधसि वसन्
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोंजलिपुटम् ।
अये गौरीनाथ, त्रिपुरहर, शम्भो त्रिनयन
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ।। (भर्तृ० ३।१०)

८. तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे तदागमारूढगुरुप्रहर्षः ।
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रश्चन्द्र प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली ।। (रघु० ५।६१)

अनुवाद कीजिएः—

(वर्तमान, भविष्यत् तथा परोक्षभूत कृदन्तों का यथास्थान प्रयोग करते हुए अनुवाद कीजिए)

१. अपने सिर पर अनाज का बोझ ढोते हुए, धीरे-धीरे चलते हुए और आपस में बातचीत करते हुए अनेक पुरुषों को मैंने सड़क पर देखा ।

२. जहाज में इंगलैण्ड जाते हुए आदमी अनेक सुन्दर दृश्य देख सकता है ।

३. अहा, यह चित्र कितना सुन्दर है ! विभिन्न अंगों को नेत्रों के लिये आकर्षक बनाने में चित्रकार ने अपनी निपुणता पूरी तरह प्रदर्शित की है ।

४. क्या तुम्हारे द्वारा ऐसा सन्देश भेजते वह लज्जित (ह्री) नहीं है ।

५. अपने पति के मृत शरीर पर देखती हुई और उसके अनेक सद्‌गुणों की याद करती हुई रति देरतक रोती रही (स्था) ।

६. जब चन्द्रापीड का युवराज पद पर अभिषेक होने जा रहा था तब शुकनास ने अनेक महत्वपूर्ण बातों की ओर उसका ध्यान खींचते हुए उसे उपदेश दिया ।

७. न्यायशास्त्रमें प्रवीण होने की इच्छा करते हुए, वह बनारस गया और वहाँ उसने अनेक वर्षों तक अध्ययन किया ।

८. गोपाल को जो पारितोषिक देने का मैंने वचन दिया था उसे देने (दा) के पूर्व मैंने उससे पूछा कि क्या आप इसे अपने परिश्रम के अनुपयुक्त समझते हैं ।

९. अधिक बलशाली शत्रु के समक्ष झुक जाने के कारण बेत बच जाते हैं जब कि गर्व से खड़े हुए विशाल सिन्दूर वृक्ष जल की प्रखर धाराओं द्वारा बहा दिये जाते हैं ।

१०. सिंह वन के पशुओं को एक-एक करके मारता रहा।

११. तुम्हें इस ब्राह्मण से द्रोह नहीं रखना चाहिए (द्रुह्), जिसने चारों वेदों का अध्ययन कर लिया है (अधि + इ), छहों अंगों पर पूरा अधिकार पा लिया है और चार शास्त्रों में पारङ्गत है।

१२. शिव के धनुष को तोड़ने वाले, और दर्शकों के मन को अपनी असाधारण शक्ति और दक्षता से खींच लेने वाले रामको जनक ने अपनी पुत्री सीता दे दी।

पाठ १४

भूतकालिक प्रत्यय (क्त, क्तवतु)

१५०. भूतकालिक कृदन्त दो प्रकार के होते हैं : एक तो कर्मवाच्य कृदन्त होते हैं, जिन्हें धातु के साथ 'त' या 'न' जोड़कर बनाया जाता है, (क्त प्रत्ययान्त) दूसरे—कर्तृवाच्य होते हैं जिन्हें कर्मवाच्य प्रत्यय के बाद 'वत्' जोड़कर बनाया जाता है (क्तवतु), जैसे—तेनेदमुक्तं ऐसा उसके द्वारा कहा गया, स इदमुक्तवान्, उसने ऐसा कहा। इन दोनों प्रत्ययों (क्त, क्तवतु) का प्रयोग भूतकाल के अर्थ में होता है। परवर्ती संस्कृत में क्रियाओं की अपेक्षा कृदन्तों का प्रयोग अधिक होने लगा। 'अहं तदकरवम्' के स्थानपर हम प्रायः 'मया तत्कृतम्' या 'अहं तत्कृतवान्' का प्रयोग सामान्यतः पाते हैं। और इस कृदन्त (क्त, क्तवतु प्रत्ययान्त) से विधेय (क्रिया) के अनेक काम चलते हैं।

१५१. अनेक अकर्मक क्रियाओं से भूतकालिक कर्मवाच्य (क्त लगाकर) कृदन्त बनते हैं और इन धातुओं तथा अकर्मक धातु के रूप में प्रयुक्त सकर्मक धातुओं के भूतकालिक कृदन्तों का प्रयोग प्रायः तृतीया विभक्ति के साथ होता है। जैसे—प्रतिबुद्धमिदानीं मकरन्दपूर्णचन्द्रेण (मालती० ४) पूर्ण चन्द्र जैसे मकरन्द ने चेतना प्राप्त कर ली। 'जितमपत्यस्नेहेन' (उत्तर० ७) सन्तान-प्रेम द्वारा जीता गया।

द्र०—इस प्रकार का प्रयोग केवल भूतकालिक कृदन्तों तक ही सीमित नहीं है। यह क्रियाओं के लकारों के कर्मवाच्य के रूप में मिलता है जैसे—मध्याह्नेपि वनराजिषु आहिण्डयते (शाकु० २) मध्याह्न में भी वन की पंक्तियों में घूमा जाता है। (मैं घूमता हूँ)।

आपदां कथितः पंथा इन्द्रियाणामसंगमः।
तज्जयः संपदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥ (चाण० ७४)

इन्द्रियों को वश में न रखना आपत्तियों का मार्ग बताया जाता है, उन पर विजय, समृद्धि का मार्ग है; जिस मार्ग से चाहो उससे जाओ।

१५२. [1]गति अर्थ वाली धातु में सामान्य अकर्मक धातुओं, तथा श्लिष्

---

१. गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च। (३।४।७२)

(आलिंगन करना) शी, स्था, आस् , (रहना) जन्, रुह् और 'जॄ' (बूढ़ा होना–दिवादिगण) धातुओं के भूतकालिक कृदन्त का अर्थ कर्तृवाच्य का होता है; जैसे—गतोऽहं कलिगान् (दशकु० २) 'मैं कलिंग गया'; जलं पातुं यमुनाकच्छमवतीर्णः (पंच० १।१) वह यमुना के तट पर पानी पीने के लिये उतरा; लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः (सि० कौ०) हरि ने लक्ष्मी का आलिङ्गन किया, शेषमधिशयितः शेष पर बैठे; शिवमुपासितः (शिव की उपासना की) विश्वमनुजीर्ण 'संसार के पीछे वृद्ध हुआ'; उपरते भर्तरि (काद० १७३) पति के मरने पर; इसी प्रकार—वैकुण्ठमधिष्ठितः, हरिदिनमुपोषितः, वृक्षमारूढः, सुतो जातः इत्यादि।

द्र०—कालिदास 'स्मृ' के भूतकालिक कर्मवाच्य कृदन्त को कर्तृवाच्य के अर्थ में लेते हैं, जैसे—मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथं (शाकु० ५); अन्यसंगात् पूर्ववृत्तं विस्मृतो भवान् (वही); अहो विस्मृतं मे हृदयं (विक्रमो० २)।

१५३. [1]क्त प्रत्ययान्त भूतकालिक कर्मवाच्य कृदन्तों का कभी कभी नपुंसकलिंग भाववाच्य संज्ञाओं का अर्थ होता है; जैसे—'जल्पितं' कथन, 'शयितं' सोना, 'हंसितं' हँसना। इसी प्रकार—गतं, स्थितं, कस्येदमलिखितं 'यह चित्र किसका है?'

द्र०—ऐसे प्रयोगों में कृदन्तों की कर्मवाच्य की शक्ति समाप्त हो जाती है और उनके योग में तृतीया विभक्ति नहीं होती। जैसे—उसकी चाल आकर्षक है तस्या (तया, नहीं) गतं सविलासं; नृत्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तं (मालवि० २) उसकी निश्चल मुद्रा उसके नृत्य से अधिक आकर्षक है।

१४५. 'मन्' (सोचना, इच्छा करना) बुध् (जानना) और 'पूज्' (पूजा करना) तथा इसी अर्थ की अन्य धातुओं के भूतकालिक कर्मवाच्य (क्त प्रत्यय से बने) कृदन्त का प्रयोग वर्तमानकाल के अर्थ में होता हैं और तब उनके योग में षष्ठी विभक्ति होती है। देखिए अधिकरण ११५.

द्र०—अन्य शब्द भी हैं जिनका ऊपर के समान ही प्रयोग होता है। वे इन श्लोकों में दिये गये हैं:—

शीलितो रक्षितः चान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि।
रुष्टश्च रुषितश्चोभावभिव्याहृत इत्यपि॥

---

१. नपुंसके भावे क्तः (३।३।११४)

हृष्टतुष्टौ तथा कान्तस्तथोभौ संयतोद्यतौ ।
कष्टं भविष्यतीत्याहुरमृताः पूर्ववत्स्मृताः ॥ (महाभाष्य)

कृत्य प्रत्यय (तव्यत् , अनीयर् , यत् , ण्यत्)

१५५. संस्कृत में कृत्य प्रत्ययान्त शब्द तीन प्रकार से बनते हैं (१) तव्यत् (२) अनीयर् (३) यत्, ण्यत् प्रत्ययों को लगाकर (नियमों के लिए डॉ० कीलहोर्न का व्याकरण देखिए अधिकरण ५२९-५३८), जैसे--कर्तव्य, करणीय और कार्य। संस्कृत भाषा के शब्दलाघव में ये प्रत्यय बहुत उपयोगी हैं और इनकी बदौलत अंग्रेजी या हिन्दी में जिस बात को कई शब्दों में कहा जाता है उसे संस्कृत में एक ही शब्द में व्यक्त किया जा सकता है जैसे—He should be killed वह मार डाला जाना चाहिए = हन्तव्यः। कृत्यप्रत्ययान्त शब्द यह बताते हैं कि धातु या धातु से प्रत्यय लगाकर बनाये गये धातुरूप द्वारा अभिव्यक्त कार्य अवश्य किया जाना चाहिए या उसके द्वारा अभिव्यक्त दशा प्राप्त की जानी चाहिए। जैसे--वक्तव्यं, वाच्यं, वचनीयं, जो कहा जाना चाहिए। इस प्रकार ये प्रत्यय 'योग्यता', 'कर्तव्य' या आवश्यकता का भाव प्रकट करते हैं, जैसे—मुझे वहाँ जाना है—मया तत्र गन्तव्यं, मुझे यह अवश्य करना चाहिए--मया तत्कर्तव्यम् ।

१५६. वाक्य में इन कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों का उन धातुओं के, जिनसे ये बने होते हैं, कर्मवाच्य रूप के समान ही प्रयोग होता है; जैसे--मद्वचनात्स राजा त्वयेदं वाच्यः' मेरी ओर से राजा से यह कहा जाना चाहिए। अजा ग्रामं नेतव्या 'बकरी गाँव ले जाई जानी चाहिए; असौ दुहितुः पत्या परिग्रहप्रियस्माभिः श्रावयितव्यः (शाकु० ७), 'उसकी पुत्री के पति द्वारा स्वीकार किये जाने का शुभ समाचार उसे सुना दिया जाना चाहिए।' इनके योग में इनके द्वारा सूचित क्रिया के कर्ता में तृतीया या षष्ठी विभक्ति होती है। देखिए १०७।

१५७. कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों के क्रियास्थानीय (अपुरुषवाचक) प्रयोग में कोई विशेषता नहीं है। इसका प्रयोग नपुंसकलिंग, एकवचन में होता है और यह क्रिया का स्थान ग्रहण करता है। जैसे--अभिज्ञानशकुन्तलाख्येन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः (शाकु० १) हमें श्रोताओं के समक्ष 'अभिज्ञान शाकुन्तल'

नामक नाटक प्रस्तुत करना चाहिए, तत्र भवता तपोवनं गन्तव्यं (विक्रमो० ५) उन्हें तपोवन जाना चाहिए ।

(क) 'भवितव्यं' और 'भाव्य' के स्वतन्त्र क्रियास्थानीय प्रयोग ध्यान देने योग्य हैं । उनका क्रियास्थानीय प्रयोग 'होना' या 'होना चाहिए' 'बहुत संभव है' के अर्थ में होता है; ये किसी अनिश्चितता आदि का संकेत करते हैं और दोनों (भवितव्यं, और भाव्यं) के साथ इनके बाद आने वाला संज्ञा या विशेषण शब्द सामान्य विशेषण के समान कर्ता के अनुकूल होना चाहिए; जैसे—स्वेषु स्वेषु पाठेष्वसंमूढैर्भवितव्यं युष्माभिः (विक्रमो० १) अपने-अपने कार्य में तुम लोगों को सावधान होना चाहिए; तयाऽस्मिँल्लतामण्डपे सन्निहितया भवितव्यम् पराक्रमेण भाव्यं (भवितव्यम्) (पंच० १।१) इसकी शक्ति भी इसकी ध्वनि के अनुसार ही होनो चाहिए ।

(ख) कभी-कभी कृत्यप्रत्ययान्त का प्रयोग भविष्यत् काल में निश्चित बात को सूचित करने के लिए होता है; जैसे—लुब्धकेन मृगमांसार्थिना गन्तव्यम् (हितो० १) बहेलिया निश्चय ही मृग का मांस लेने जायगा । ततस्तेनापि शब्दः कर्तव्यः (हितो० ३) तब वह भी निश्चय ही शब्द करेगा ।

(ग) कभी-कभी कृत्यप्रत्ययान्त शब्द केवल भविष्यत् काल को सूचित करता है; जैसे—युवयोः पक्षबलेन मयापि सुखेन गन्तव्यम् (हितो० ४) आप दोनों की पंखों की शक्ति से मैं भी सुखपूर्वक चला जाऊँगा ।

अभ्यास

१. अत्रभवतोः परस्परेण ज्ञानसंघर्षो जातः । तदत्रभवत्या प्राश्निकपदमध्यासितव्यम् । (मालवि० १)

२. तयोर्बद्धयोः किंनिमित्तोऽयं मोक्षः, किं देव्या परिजनमतिक्रम्य भवान् संदिष्ट इत्येवमनया प्रष्टव्यम् । (मालवि० ४)

३. विश्रान्तेन भवता ममाप्येकस्मिन्ननायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम् । (शाकु० २)

४. नास्मि भवत्योरीश्वरनियोगप्रत्यर्थी । स्मर्तव्यस्त्वयं जनः । (विक्रमो० २)

५. तत्किं मन्यसे, राजपुत्रि, मृषोद्यं तदिति । न हीदं सुक्षत्रियेऽन्यथा मन्तव्यम् । भवितव्यमेव तेन । (उत्तर० ४)

६. सर्वथा निष्प्रतीकारेयमापदुपस्थिता । किमिदानीं कर्तव्यं, कां दिशं गन्तव्यमित्येते चान्ये च विषण्णहृदयस्य मे संकल्पाः प्रादुरासन् । (काद० १५७)

७. सततमतिगर्हितेनाकृत्येनापि परिरक्षणीयान्मन्यते सुहृदसून्साधवः । तदतिकृपणमकर्तव्यमप्येतदस्माकमवश्यकर्तव्यतामापतितम् । (काद० १५८)

८. चाणक्यः—भद्र प्रथमं तावद्वध्यस्थानं गत्वा घातकाः सरोषं दक्षिणाक्षिसंकोचसंज्ञां ग्राहयितव्याः । तेषु गृहीतसंज्ञेषु भयापदेशादितस्ततः प्रद्रुतेषु शकटदासो वध्यस्थानादपनीय राक्षसं प्रापयितव्यः । (मुद्रा० १)

९. आः क्षुद्राः, समरभीरव, कथमेवं प्रलपतां वः सहस्रधा न दीर्णमनया जिह्वया । (वेणी० ३)

१०. आपदि येनोपकृतं येन च हसितं दशासु विषमासु ।
उपकृदपकृदपि च तयोर्यस्ते पुरुषं परं मन्ये ॥ (पंच० १।१५)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. आपन्नस्य विषयवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यमित्येष वो धर्मः । (शाकु० ३)

२. अन्तरिते तस्मिन् शबरसेनापतौ स जीर्णशबरस्तं वनस्पतिमामूलादपश्यत् । उत्क्रान्तमिव तस्मिन् क्षणे तदालोकभीतानां शुककुलानामसुभिः । (काद० ३३)

३. अहं तच्छ्रुत्वा चेतस्यकरवम् । मयाधुना म्लेच्छजातिभिरपि दूरतः परिहृतप्रवेशं पक्वणं द्रष्टव्यम् । चण्डालैः सहैकत्र स्थातव्यम् । चाण्डालबालकजदनस्य च क्रीडनीयेन भवितव्यमिति । (काद० ३५५)

४. कार्यव्यग्रत्वात् मनसः प्रभूतत्वाच्च प्रणिधीनां कोऽयमिति विस्मृतम् । इदानीं स्मृतिरुपलब्धा । व्यक्तमाहितुण्डिकच्छद्मना कुसुमपुरादागतेन विराधगुप्तेन भवितव्यम् । (मुद्रा० २)

५. आः दुरात्मन्, कुरुकुलपांसुल, एनमतिक्रान्तमर्यादे त्वयि निमित्तमात्रेण पाण्डवक्रोधेन भवितव्यम् । (वेणी० १)

६. वत्से, साम्प्रतिकमेवैतत् । कर्तव्यानि दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि । (उत्तर० ३)

७. पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया ।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ॥ (उत्तर० ३।२९)

८. तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ।
येनाशाः पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यमवलम्बितम् ॥ (हितो० १)

९. आरूढमद्रीनुदधीन् वितीर्णम् भुजंगमानां वसतिं प्रविष्टम् ।
ऊर्ध्वंगतं यस्य न चानुबन्धि, यशः परिच्छेत्तुमियत्तयालम् ॥
(रघु० ६।७७)

१०. अवसितं हसितं प्रसितं मुदा विलसितं ह्रसितं स्मरभासितम् ।
न समदाः प्रमदा हतसंमदाः पुरहितं विहितं न समीहितम् ॥
(भट्टि० १०।६)

११. शार्ङ्गरव, त्वया मद्वचनात् स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः—
अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मनः
त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहाप्रवृत्तिं च ताम् ।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः ॥ (शाकु० ४)

१२. त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि नः शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया ।
समानयस्तुल्यगुणं वधूवरं, चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः ॥
(शाकु० ५)

अनुवाद कीजिए :—

(बड़े अक्षरों में अङ्कित शब्दों के लिये इस पाठ में विवेचित प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों का प्रयोग कीजिए ।)

१. शक्तिशाली सेना द्वारा सुरक्षित होने पर भी तारक को कार्तिकेय ने **पराजित कर दिया** ।

२. प्रिय बेटे, ऐसा करके तुमने जामदग्न्य का **अपराध किया है**, उनका **उपकार नहीं किया है** ।

३. उनकी सेना के पूर्णतः शत्रु द्वारा पराजित किये जाने पर, उसके कुछ सैनिक पर्वतों पर चढ़ गये (अधि + रुह्) कुछ समुद्र में **उतर गये**, जबकि दूसरों ने एकान्त गुफाओं में **प्रवेश किया** ।

४. यदि तुम अपने अन्तरंग मित्र का अपमान करते हो, तो तुम **निश्चय ही अनादर के पात्र बनोगे** ।

५. यह कौन हो सकता है जो मुझे नाम लेकर पुकार रहा है। अरे वह शायद मेरा पुराना मित्र मित्रवर्मा है।
६. मेरे लिये थोड़ी देर प्रतीक्षा करो, मुझे भी सभा में चलना है।
७. ज्यों ही वह उठता है, वह अपना अध्ययन प्रारम्भ करने के बदले खेलने निकल जाता है।
८. चिन्ता मत करो, इस समय तक तुम्हारा पुत्र सीधे घर आ गया होगा।
९. मैंने अनेक कष्ट सहते हुए कई देशों का भ्रमण किया है किन्तु अपना अभीष्ट लक्ष्य नहीं प्राप्त किया है (लभ् या आसद् प्रेरणा०)
१०. वह तुम्हारा नाश करने के लिए तत्पर दिखाई पड़ता है, किन्तु मैं तुमसे बताता हूँ कि वह अपने प्रयत्न में निश्चित विफल होगा।
११. यदि तुम उसकी सहायता नहीं करते तो वह देश में किस प्रकार जीवन धारण करेगा ?
१२. ये वस्तुएँ तुम्हारे द्वारा उस विशाल प्रसाद के स्वामी के पास ले जायी जानी चाहिये (प्रापय्)।
१३. मुझे अभी बहुत सी पुस्तकें पढ़नी हैं (वाचय्), इसलिये मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकूँगा।
१४. यह बड़ा पारितोषिक यह सूचित करता है कि अँगूठी राजा द्वारा बहुत पसन्द की जाती होगी।
१५. बुद्धिमानों द्वारा कुछ भी किया जाना असंभव नहीं है (दुःसाध्य)।
१६. चूँकि उसके पास बहुत धन था। इसलिये उसकी बहुत सी पत्नियाँ रही होंगी।
१७. हम लोग अपनी सेनाओं के साथ युद्ध के लिये कितनी देर तक तैयार रहें।

———

पाठ १५

विभाग १

अव्ययार्थक भूतकालिक प्रत्यय (क्त्वा, ल्यप्)

१५८. संस्कृत में अव्ययार्थक भूतकालिक कृदन्त, जिसे सामान्यतः स्वतन्त्र प्रत्यय (absolutive) या अंग्रेजी में gerund कहते हैं, सदैव पहले पूर्ण की गई क्रिया को सूचित करता है और अंग्रेजी में परोक्षभूतार्थ रूपों या उनके अर्थ में क्रिया से ing जोड़कर बनाये जाने वाले शब्दों के समान होते हैं। जैसे—प्रतीहारी समुपसृत्य सविनयमब्रवीत् (काद० ८) प्रतीहारी ने निकट आकर विनय के साथ कहा। वैशंपायनो मुहूर्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत् (काद० ८) मानो थोड़ी देर सोचते हुए वैशम्पायन ने आदर से कहा।'

किन्तु 'गाँव जाते हुए रास्ते में तिनका छूता है' का अनुवाद 'ग्रामं गच्छन् पथि तृणं स्पृशति' करना होगा।

१५९. संस्कृत में अव्ययार्थक भूतकालिक कृदन्त धातुओं के आगे 'त्वा' जोड़कर या जिन धातुओं में उपसर्ग लगे होते हैं उनके साथ 'ल्यप्' (य, जो 'त्य' भी हो जाता है) जोड़कर बनाये जाते हैं। (नियमों के लिए डॉ० कीलहोर्न का व्याकरण अधिकरण ५१३–५२५ देखिए)। जैसा पहले कहा जा चुका है, 'क्त्वा' और 'ल्यप्' का प्रयोग बीते हुए या पहले सम्पादित किये गये कार्य को सूचित करने के लिए होता है और इन प्रत्ययों से बने कृदन्त का कर्ता वही होता है जो मुख्य क्रिया का। जैसे—तुरासाहं पुरोधाय धाम स्वायंभुवं ययुः (कुमार० २।१) इन्द्र को आगे करके वे ब्रह्मा के निवासस्थान को गये; यहाँ 'आगे करने' और 'जाने' का कर्ता एक ही है अतः पूर्वकालिक क्रिया (क्त्वा, ल्यप्) का प्रयोग हुआ है। किन्तु 'स तं हत्वाहमागच्छम्' गलत है। ऐसी स्थितियों में 'क्त्वा' या 'ल्यप्' प्रत्यय का प्रयोग नहीं किया जा सकता; इसी अर्थ को व्यक्त करने के लिए 'भावे सप्तमी' का प्रयोग करना पड़ेगा। जैसे—तस्मिंस्तेन हतेऽहमागच्छम्। इसी प्रकार—सर्वैः पशुभिर्मिलित्वा सिंहो विज्ञप्तः (हितो० २) 'सभी पशुओं ने मिलकर सिंह से निवेदन किया।' स एवं दैयं प्रख्याप्य नगरा-

न्निर्वास्यताम् (मुद्रा० १) 'इस अपराध की घोषणा करके उसे नगर से निकाल दीजिए।'

१६०. घटनाओं का वर्णन करने में समुच्चयबोधक अव्ययों और क्रिया के रूपों के प्रयोग में लाघव उत्पन्न करने के कारण संस्कृत के 'क्त्वा', और 'ल्यप्' प्रत्यय बहुत उपयोगी हैं। अनुवाद करते समय 'करके', 'जब', 'बाद' से प्रारम्भ होने वाले वाक्यखण्डों का अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं होती, केवल उस वाक्य से आई हुई क्रिया से 'क्त्वा' या 'ल्यप्' प्रत्यय जोड़कर काम चला लिया जाता है। जैसे—रावणं हत्वा 'रावण को मारने के बाद'; जब वह वहाँ गया तो उसने वहाँ कुछ भी नहीं पाया—स तत्र गत्वा न किमपि लेभे।

एक ऐसा अंग्रेजी वाक्य जिसमें कई उपवाक्य having (करके) से प्रारम्भ होते हैं, भद्दा लगता है; किन्तु संस्कृत में उन भावों को व्यक्त करने के लिए, जिन्हें अंग्रेजी में क्रिया के किसी काल के रूपों और समुच्चयबोधक अव्ययों द्वारा व्यक्त किया जाता है, अनेक 'क्त्वा' या 'ल्यप्' प्रत्ययान्त शब्दों को एक साथ रखा जा सकता है। जैसे—मां रुधिरेणालिप्य वृक्षस्याधः प्रक्षिप्य गम्यतां पर्वतमृष्यमूकं प्रति (पंच० ३) मुझे खून से पोतकर, और पेड़ के नीचे फेंककर, ऋष्यमूक पर्वत को जाइए = मुझे खून से पोतिए तब पेड़ के नीचे फेंकिए, उसके बाद ऋष्यमूक पर्वत को जाइए। अथ स ब्राह्मणस्तं पशुं राक्षसं मत्वा भयाद् भूमौ प्रक्षिप्य दैवं निर्भर्त्स्य गृहमुद्दिश्य प्रस्थितः (हितो० ४) तब ब्राह्मण ने उस राक्षस को पशु समझकर, भय से पृथ्वी पर गिरकर और दैव की भर्त्सना करके घर की ओर चल पड़ा। जब अंग्रेजी में संयोजक अव्ययों द्वारा कोई बात जोर देकर कही गई हो तो उसका संस्कृत में अनुवाद करते समय 'क्त्वा' या 'ल्यप्' का प्रयोग सुविधापूर्वक किया जा सकता है।

द्र०—इन प्रत्ययों का प्रयोग करते समय घटनाओं के स्वाभाविक क्रम का ध्यान रखना चाहिए, जैसे—पक्त्वा भुक्त्वा स्वपिति, 'पकाकर, खाकर सोता है', होगा 'भुक्त्वा पक्त्वा स्वपिति', नहीं कहा जायगा।

१६१. कभी-कभी कुछ संस्कृत 'क्त्वा' या 'ल्यप्' प्रत्ययान्त शब्दों का वही अर्थ होता है जो उपसर्गों या उपसर्गतुल्य वाक्यांशों का होता है; जैसे—पक्त्वा (अतिरिक्त) अदाय (साथ) उद्दिश्य (ओर) अधिकृत्य (सन्दर्भ में)।

विभाग २

'णमुल्' अथवा 'अम्' से अन्त होनेवाले प्रत्ययान्त शब्द

१६२. संस्कृत में धातु के बाद या धातु से व्युत्पन्न धातुरूप के साथ 'अम्' जोड़कर एक और प्रकार की पूर्वकालिक क्रिया (gerund) होती है। सामान्य-भूतकालिक कर्मवाच्य क्रिया की 'इ' के पूर्व जो परिवर्तन होते हैं वे ही परिवर्तन इस प्रत्यय के लगने पर होते हैं। (देखिए डॉ० कीलहोर्न का व्याकरण, अधिकरण ५२६) जैसे--'क्षिप्' से 'क्षेपं' (फेंककर) वादं—कहकर (वद् से) 'भोजं'—खाकर (भुज् से)।

१६३. जब 'अम्' प्रत्ययान्त शब्द को दुहराया जाता है तब धातु द्वारा व्यक्त कार्य या दशा का बार-बार होना या आवृत्ति प्रकट करता है; जैसे—स्मारं स्मारं नमति शिवं (सि० कौ०) बार-बार शिव का स्मरण करके उन्हें प्रणाम करता है; कलिंगनाथो मयि बद्धवैर इति श्रावं श्रावं चंडवर्मा युद्धायोद्धृतो बभूव (दशकु० २।३) बार-बार यह सुनकर कि कलिंगराजा मुझसे शत्रुता रखते हैं चण्डवर्मा युद्ध के लिये तैयार हो गये। इसी प्रकार पायं पायं, दर्शं दर्शं बारबार पीकर, या बार-बार देखकर।

१६४. [1]अग्रे, प्रथमं, और पूर्वं के साथ 'अम्' प्रत्ययान्त या साधारण 'क्त्वा' प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग होता है—जैसे अग्रे, प्रथमं, पूर्वं वा भोजं भुक्त्वा स व्रजति (पहले भोजन करके वह जाता है)।

(क) [2]'अन्यथा', 'एवं', 'कथं' और 'इत्थं' के साथ 'कृ' (करना) धातु से 'णमुल्' प्रत्यय ऐसी स्थिति में लगता है जब इस प्रकार निष्पन्न सम्पूर्ण शब्द का वही अर्थ हो जो कि 'अन्यथा' आदि शब्दों का होता है। जैसे—एवंकारं भुंक्ते (सि० कौ०) वह इस प्रकार खाता है; 'कथंकारं भुंक्ते' वह किस प्रकार खाता है, किन्तु—शिरोऽन्यथा कृत्वा भुंक्ते।

(ख) [3]जब क्रोध के साथ उत्तर दिया जाय, तब 'यथा' और 'तथा' के

---

१. विभाषाग्रे प्रथमपूर्वेषु (३।४।२४)।

२. अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् (३।४।२७)।

३. यथातथयोरसूयाप्रतिवचने (३।४।२८)।

साथ भी कृ + णमुल् = कारं का प्रयोग होता है। जैसे—तथाकारं भोक्ष्ये किं तवानेन (सि० कौ०) मैं वैसे ही खाऊँगा, तुम्हें इससे क्या ?

१६५. [1]'मधुर' या 'स्वादिष्ट' अर्थ वाले शब्दों के साथ कृ + णमुल् = कारं का प्रयोग होता है; जैसे स्वादुंकारं–लवणंकारं भुंक्ते, अपना भोजन मधुर या स्वादिष्ट बनाकर खाता है।

१६६. [2]'दृश्' और 'विद्' (जानना) धातुओं के साथ, कर्म के सम्पूर्ण या 'समूह' का बोध कराने के लिए उक्त धातुओं के कर्म में 'णमुल्' प्रत्यय लगता है। जैसे—कन्यादर्शं वरयति (सि० कौ०) जितनी युवतियों को देखता है, उन सबका वरण करता है, अर्थात् सभी देखी गई युवतियों को। ब्राह्मणवेदं भोजयति जितने ब्राह्मणों को जानता है उन्हें भोजन खिलाता है अर्थात् सबको भोजन कराता है।

(क) [3]इसी अर्थ में 'विद्' (पाना) और 'जीव्' (जीना) धातु के 'णमुल्' प्रत्यय से बने रूप 'यावत्' के साथ संयुक्त करके प्रयोग में लाये जाते हैं; जैसे—यावद्वेदं भुंक्ते जितना पाता है उतना खाता है; यावज्जीवमधीते जब तक जीता है तब तक पढ़ता है, अर्थात् जीवन भर पढ़ता है।

(ख) [4]'चर्मन्' और 'उदर' शब्दों के साथ पूर् + णमुल् का प्रयोग कर्म में होता है, जैसे—उदरपूरं भुंक्ते पेट भर खाता है। चर्मपूरं स्तृणाति चमड़े को ढकने भर के लिए फैलाता है।

१६७. [5]'शुष्क', 'चूर्ण' और 'रूक्ष' के साथ 'पिष्' के णमुल्प्रत्ययान्त रूप का प्रयोग होता है और ऐसी दशा में धातु से बना णमुल्प्रत्ययान्त शब्द और स्वयं धातु का प्रयोग धातु द्वारा बताये गये अर्थ को व्यक्त करने के लिए होता है। जैसे—चूर्णपेषं पिनष्टि जब तक चूर्ण नहीं हो जाता है तब तक पीसता है। अर्थात् उसे पीसकर चूर्ण बना देता है। इसी प्रकार शुष्कपेषं पिनष्टि, रूक्षपेषं पिनष्टि।

---

१. स्वादुमि णमुल् (३।४।२६)।
२. कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये (३।४।२९)।
३. यावति विंदजीवोः (३।४।३०)।
४. चर्मोदरयोः पूरेः (३।४।३१)।
५. शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः (३।४।३५)।

(क) [1]'समूल', 'अकृत', 'जीव' शब्दों के साथ क्रमशः 'हन्' 'कृ' और 'ग्रह्' धातुओं के 'णमुल्' प्रत्ययनिष्पन्न शब्द क्रियानिर्मित कर्म के रूप में प्रयुक्त होते हैं; जैसे—**समूलघातं हन्ति**—जड़ से उखाड़ने वाली मार मारता है अर्थात् जड़ से उखाड़ देता है। **अकृतकारं करोति** जो पहले कभी नहीं किया गया था वही वह कर रहा है; **तं जीवग्राहं गृह्णाति** उसे जीवित रखने वाली पकड़ पकड़ता है अर्थात् ऐसा पकड़ता है कि वह जीवित रहे।

(ख) इसी प्रकार 'हन्' और 'पिष्' से 'णमुल्' प्रत्यय लगाकर बनाये गये रूपों का प्रयोग संज्ञा के साथ यह प्रदर्शित करने के लिए होता है कि वह संज्ञा शब्द क्रिया का करण है; जैसे—पादघातं हन्ति = पादेन हन्ति 'वह पैर से मारता है।' उदपेषं पिनष्टि = उदकेन पिनष्टि 'पानी से पीसता है।' इसी प्रकार 'तं हस्त-ग्राहं गृह्णाति' (उसे हाथ से पकड़ता है), पाणिग्राहं, करग्राहं इत्यादि। **हस्तवर्तं वर्तयति** = हस्तेन वर्तयति। अन्य उदाहरण हैं :—**जीवनाशं नश्यति** ऐसा नष्ट करता है कि उसका जीवन ही नष्ट हो जाता है अर्थात् मर जाता है। **ऊर्ध्वंशोषं शुष्यति वृक्षः** खड़ा-खड़ा ही पेड़ सूखता है; इसी प्रकार—ऊर्ध्वंपूरं पूर्यते।

१६८. [2]कभी-कभी 'णमुल्' प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग इस प्रकार की 'समानता' या 'सादृश्य' बताने के लिये होता है जिसे हम साधारणतः 'इव' द्वारा व्यक्त करते हैं; जैसे—अजनाशं नष्टः 'बकरे की तरह मरा, **पार्थसंचारं चरति** पार्थ की चाल चलता है, घृतनिधायं निहितं जलं' जल घी के समान रखा गया।

१६९. [3]'हिंस्' (चोट पहुँचाना) अर्थवाली धातुओं जैसे—हन्, तड् आदि के णमुल्प्रत्ययान्त रूप का प्रयोग संज्ञा शब्दों के साथ उस समय होता है जब इस णमुल्प्रत्ययान्त रूप का कर्म वही हो जो मुख्य क्रिया का कर्म हो और जब जिस संज्ञा के साथ णमुल्प्रत्ययान्त शब्द संयुक्त हो वह ऐसा हो कि साधारण 'क्त' प्रत्यय का प्रयोग करने पर उसमें तृतीया विभक्ति होती हो; जैसे—**दण्डोपघातं गाः कालयति** गायों को डंडे से मारता हुआ इकट्ठा करता है।

(क) इसी प्रकार **व्रजोपरोधं गाः स्थापयति**—गायों को इस प्रकार रखता है कि वे सभी एक बाड़े में आ जाती हैं। पार्श्वोपपीडं शेते = पार्श्वाभ्यामुप-पीडयन् इत्यादि।

---

१. समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः (३।४।३६)।
२. उपमाने कर्मणि च (३।४।४५)।
३. हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् (३।४।४८)।

(ख) जब तात्कालिक सन्निकर्ष सूचित करना हो तो ग्रह का णमुल् प्रत्ययान्त रूप 'हस्त' 'केश' और इसी अर्थ वाले शब्दों के साथ प्रयुक्त किया जाता है; जैसे—केशग्राहं युध्यन्ते (एक दूसरे के) केश जोर से पकड़कर युद्ध करते हैं (=केशेषु गृहीत्वा)। हस्तग्राहं = हस्तेन गृहीत्वा, यष्टिग्राहं = डंडा लेकर (यष्टि गृहीत्वा) इसी प्रकार लोष्टग्राहं।

१७०. [1]'किसी के अपने शरीर के अङ्ग' को बोध कराने वाले शब्दों के साथ जब अङ्ग स्थिर नहीं रखे जाने का भाव होता है, तब णमुल्प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग किया जाता है; जैसे—**भ्रूविक्षेपं कथयति** (वृत्तान्तं) अपनी आँखें इधर उधर फेंकते हुए कथा कहता है।

(क) [2]इसी प्रकार जब शरीर का कोई अवयव कोई कार्य करते समय पूरी तरह क्षत हो जाय या पीडित हो जाय तो इस भाव को व्यक्त करने के लिए उस अवयव में णमुल् प्रत्ययान्त शब्द कर्म के अर्थ में जोड़ा जाता है; जैसे—**उरः प्रतिपेषं युध्यते** 'वे इस प्रकार युद्ध करते हैं कि सम्पूर्ण वक्षस्थल पीडित होता है' + (कृत्स्नमुरः पीडयन्तः); स्तनसंबाधमुरो जघान च (कुमार० ४।२६) उसने उसकी छाती पर ऐसा प्रहार किया कि स्तनों पर चोट लगे।

१७१. [3]आ + दिश् तथा 'ग्रह्' धातुएँ 'नामन्' के साथ कर्म के अर्थ में णमुल् प्रत्यय से युक्त होकर प्रयुक्त होती हैं; जैसे—**नामादेशमाचष्टे** (अपना नाम बताते हुए इसका उल्लेख करता है; **नामग्राहं मामाह्वयति** 'वह मेरा नाम लेकर मुझे पुकारता है।'

द्र०—इस प्रत्यय से बने रूपों को संज्ञाओं के साथ जोड़ देते हैं जिससे समास युक्त शब्द बन जाते हैं; जैसे—'ब्राह्मणवेदं' न कि 'ब्राह्मणान् वेदं'; 'जीव-ग्राहं' न कि 'जीवं ग्राहं'।

अभ्यास

१. स दुष्टाशयो बकः क्रमेण तान्पृष्ठमारोप्य जलाशयस्य नातिदूरे शिलां समासाद्य तस्यामाक्षिप्य स्वेच्छया भक्षयित्वा भूयोऽपि जलाशयं समासाद्य जलचराणां मिथ्यावार्तासन्देशकैर्मनांसि रंजयन्नाहारवृत्तिमकरोत्। (पंच० १।७)

---

१. स्वांगेऽध्रुवे (३।४।५४)।

२. परिक्लिश्यमाने च (३।४।५५)।

३. नाम्न्यादिशिग्रहोः (३।४।५८)।

२. ततो भ्रातृशरीरमग्निसात्कृत्वा पुनर्नवीकृतवैधव्यदुःखया मया त्वदीयं देशमवतीर्येमे काषाये गृहीते । (मालवि० ५)

३. प्रवृत्ते प्रदोषसमये चन्द्रापीडश्चरणाभ्यामेव राजकुलं गत्वा पितुः समीपे मुहूर्तं स्थित्वा दृष्ट्वा च विलासवतीमागत्य स्वभवनं शयनतलमधिशिश्ये ।
(काद० ६८)

४. ते हिमालयमामन्त्र्य पुनः प्राप्य च शूलिनम् ।
सिद्धं चास्मै निवेद्यार्थं तद्विसृष्टाः खमुद्ययुः ।। (कुमार० ६।१४)

५. अहं येनेष्टिपशुमारं मारितः सोऽनेन स्वागतेनाभिनंद्यते । (शाकु० ६)

६. सा कुबेरभवनान्निवर्तमाना समापत्तिदृष्टेन केशिना दानवेन चित्रलेखाद्वितीया वंदीग्राहं गृहीता । (विक्रमो० १)

७. मगधराजः प्रक्षीणसकलसैन्यमण्डलं मालवराजं जीवग्राहमभिगृह्य दयालुतया पुनरपि स्वराज्यं प्रतिष्ठापयामास । (दशकु० १।१)

८. मत्तकालो नाम लाटेश्वरो वीरकेतोस्तनयां वामलोचनां नाम तरुणीरत्नसामान्यलावण्यं श्रावं श्रावमवधूतदुहितृप्रार्थनस्य तस्य पाटलीनाम्नीं नगरीमरौत्सीत् । (दशकु० १।३)

९. अनन्तरं सूत्रधारो दारुवर्मा वैरोधकपुरःसरैः पदातिलोकैर्लोष्ठघातं हतः ।
(मुद्रा० २)

१०. संप्राप्य राक्षससभां चक्रंद क्रोधविह्वला ।
नामग्राहमरोदीत्सा भ्रातरौ रावणान्तिके ।। (भट्टि० ५।५)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. लतानुपातं कुसुमान्यगृह्णात् स नद्यवस्कन्दमुपास्पृशच्च ।
कुतूहलाच्चारुशिलोपवेशं काकुत्स्थ ईषत्स्मयमान आस्त ।। (भट्टि० २।११)

२. स्नेहात् समाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि
नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान् ।
देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय
धर्मासनाद् विशति वासगृहं नरेन्द्रः ।। (उत्तर० १।७)

३. विश्वासप्रतिपन्नानां वञ्चने का विदग्धता ।
अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हत्वा किन्नाम पौरुषम् ।। (हितो० ४)

४. तामिदुसुन्दरमुखीं सुचिरं विभाव्य
चेत: कथं कथमपि व्यापवर्तते मे।
लज्जां विजित्य विनयं विनिवार्य धैर्य-
मुन्मथ्य मन्थरविवेकमकाण्ड एव ॥ (मालती० १)

५. श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
शापस्यान्तं सदयहृदयः संविधायास्तकोपः।
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती दृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानविरतसुखान् प्रापयामास शश्वत् ॥ (मेघ० ११६)

६. निमित्तानि च पश्यामि विपरीतासि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ (गीता १।३१)

७. राजवाहनो रसालतरुषु कोकिलादीनां पक्षिणामालापान् श्रावं श्रावं विकसितानि सरांसि दर्शं दर्शम् अमन्दलीलया ललना समीपमवाप। (दशकु० ११५)

८. तेनैव दीपदर्शितेन विलपथेन गत्वा स्थितेऽर्धरात्रे वासगृहं प्रविष्टो विश्रब्धप्रसुप्तं सिंहघोषं जीवग्राहमग्रहीषम्। (दशकु० २१४)

९. तं विप्रदर्शं कृतघातयत्ना यान्तं वने रात्रिचरी डुठौके।
जिघांसुवेदं धृतभासुरस्त्रस्तां ताडकाख्यां निजघान रामः ॥ (भट्टि० ३।१४)

१०. विद्युत्प्रणाशं स वरं प्रणष्टो यद्वोर्ध्वशोषं तृणवद् विशुष्कः।
अर्थे दुरापे किमुत प्रवासे न शासनेऽवास्थित यो गुरूणाम् ॥ (भट्टि० ३।१४)

११. यो नष्टानपि जीवनाशमधुना शुश्रूषते स्वामिन-
स्तेषां वैरिभिरक्षतः कथमसौ संधास्यते राक्षसः।
इत्थं वस्तुविवेकमूढमतिना म्लेच्छेन नालोचितम्।
दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा पूर्वं विपर्यस्यति ॥ (मुद्रा० ६)

अनुवाद कीजिए :—

(द्र०—बड़े अक्षरों से अङ्कित शब्दों के लिए कृदन्तों का प्रयोग कीजिए।)

१. व्याध को अपनी ओर आता हुआ देखकर, सभी पशु भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये।

२. वंग देश के राजा को इस समाचार से **अवगत कराके** तुम कब लौटे?

३. एकाग्रचित्त होकर और प्रारम्भ किये गये कार्य से विरत न होने का दृढ़ **निश्चय करके** अपना कार्य प्रारम्भ करो।

४. किसी नगर के आस-पास घूमता हुआ एक सियार संयोगवश एक नील के भाड़ में गिर पड़ा और उसमें से निकलने में असमर्थ होकर अपने को मरा हुआ सा दिखाकर पड़ा रहा।

५. ब्राह्मण ने धूर्त के वचन को सुनकर बकरे को पृथ्वी पर रख दिया, इसको ओर बार-बार देखा, इसे फिर अपने कन्धे पर रखा और धूर्त के वचन पर विचार करता हुआ घर की ओर चल पड़ा।

६. तब उसे राजदरबार में बुलाकर, उचित उपहार से सम्मानित करके और उसे राजा का सन्देश सुनाकर वह मन्त्री द्वारा आदर के साथ विदा कर दिया गया।

(द्र०—आगे के वाक्यों में बड़े अक्षरों में अङ्कित शब्दों के लिये 'णमुल्' प्रत्ययान्त रूपों का प्रयोग कीजिए)

७. उसने उतनी कन्याओं का वरण किया जितने को उसने अपने योग्य देखा (दृश्)।

८. उसने दवा को पीस कर चूर्ण बना दिया (पिष्) और उसे अग्नि पर रखकर गरम करके पी गया।

९. वह राजा के अनुयायियों द्वारा उनके स्वामी का वध करने के कारण पत्थरों से मार डाला गया (हन्)।

१०. मैं अपने शत्रु पर तुरन्त टूट पड़ा और उसके सभी अनुयायियों को परास्तकर उसे जीवित पकड़ लिया (ग्रह्)।

११. पाटलिपुत्र के राजा ने वसुदुर्ग नगर को जीत लिया और उसके निवासियों को बन्दी बना लिया।

१२. कौन मेरा नाम लेकर पुकार रहा है।

—:०:—

पाठ १६

'तुमुन्' प्रत्यय

१७२. जब एक क्रिया दूसरी क्रिया के लिए की जाती है तब दूसरी क्रिया के लिए संस्कृत में धातु के आगे 'तुमुन्' (तुम्) प्रत्यय जोड़ा जाता है और इसका रूप इसी प्रकार बनता है जिस प्रकार अनद्यतन भविष्यत्काल के प्रथमपुरुष एक वचन का रूप। इसका अर्थ 'के लिए' के प्रयोजन से होता है और इस प्रकार यह अंग्रेजी के प्रयोजन बोधक क्रिया रूप (Infinitive of purpose) या gerund के समकक्ष होता है। संस्कृत में तुमुन् प्रत्ययान्त का अर्थ चतुर्थी विभक्ति का होता है और आवश्यकता पड़ने पर इसके स्थान पर धातु से व्युत्पन्न संज्ञाशब्द का चतुर्थी विभक्ति में प्रयोग किया जा सकता है; जैसे—**पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे** (रघु० ४।६०) तब वह पारसियों को जीतने के लिए चल पड़ा अर्थात् उन्हें जीतने के प्रयोजन से; यहाँ जेतुं = जयाय; और यह वाक्य इस प्रकार भी हो सकता है—पारसीकानां जयाय प्रतस्थे; इसी प्रकार स्वेदसलिलस्नातापि पुनः स्नातुमवातरम् (काद० १४७), यहाँ स्नातुं = स्नानाय।

द्र० (क) अंग्रेजी के 'इन्फिनिटिव के समान ही संस्कृत का तुमुन् प्रत्ययान्त शब्दरूप प्राचीन धातुरूप का अवशेष है। वैदिककाल में 'तु' प्रत्यय जोड़कर बनाये जाने वाले क्रियाओं से बने संज्ञाशब्दों के नियमित रूप चलाये जाते थे (गंतुं, यातुं)। हमें इस प्रकार के रूप मिलते हैं जैसे गन्तुं, गन्तवे, गतोः, मानो 'गंतुं' एक नियमित संज्ञा पद हो। समय बीतने के साथ ही 'गंतोः' 'गन्तवे' जैसे रूपों का प्रयोग उत्तरोत्तर कम होता गया और इसके जिस रूप का मुख्यतः प्रयोग होता था वह था द्वितीया विभक्ति का रूप। आगे चलकर इसका अर्थ चतुर्थी विभक्ति का समझा जाने लगा और इस कारण संस्कृत के वर्तमान 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्दों का अर्थ सदैव चतुर्थी विभक्ति का होता है।

१७३. उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत में 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द क्रिया के कर्ता या कर्म के रूप में प्रयुक्त नहीं किये जा सकते। वाक्य में किसी शब्द से इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता; हां, जहाँ संभव होता

है वहाँ इसके योग में वही विभक्ति होती है जो विभक्ति उन धातुओं के जिनसे 'तुमुन्' प्रत्यय लगाकर रूप बना होता है, योग में होती है। जिस स्थल पर अंग्रेजी में 'इन्फिनिटिव' का क्रिया के कर्ता या कर्म के रूप में प्रयोग होता है, उस स्थलपर संस्कृत में धातु से भाववाचक संज्ञा बनाकर रखी जाती हैं; जैसे—to get up early in the morning is wholesome (सवेरे उठना स्वास्थ्यकर होता है)—प्रातरेव उत्थानं (न कि उत्थातुं) आरोग्यावहं; I learn to sing (मैं गाना सीखता हूँ) अहं गानम् अधीये (न कि 'गातुं')।

(क) लैटिन की तरह 'seeing' (देखना), 'hearing' (सुनना) क्रियाओं के बाद आये हुए 'इन्फिनिटिव' का अनुवाद संस्कृत में वर्तमानकालिक कृदन्त द्वारा किया जाता है; जैसे—I heard him *speak* (मैंने उसे बोलते हुए सुना) भाषमाणं तमश्रौषं; इसी प्रकार—अधीयानं ददर्श तं, उसने उसे पढ़ते हुए देखा He saw him *study*।

१७४. संस्कृत 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द का वास्तविक अर्थ किसी कार्य के अभिप्राय या 'प्रयोजन' का होता है। किन्तु अंग्रेजी के समान कुछ ऐसे भी स्थल हैं जहाँ तुमुन् प्रत्ययान्त का प्रयोग संज्ञाओं और विशेषणों के साथ भी होता है। जैसे—fit to do (करने के लिये योग्य) able to go, time to read इस प्रकार के प्रयोग कुछ संस्कृत मुहावरों तक ही सीमित हैं। इस प्रकार के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग नीचे दिये जाते हैं :—

१७५. [1]जब तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द और क्रिया का कर्ता एक ही होता है, तब तुमुन्प्रत्ययान्तशब्द का प्रयोग ऐसी धातुओं और विशेष्यपदों के साथ होता है कि जिनका अर्थ 'चाहना' या 'इच्छा करना' होता है; जैसे–पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति (कुमार० ५।५३) पति के रूप में पिनाकधारी भगवान् शिव को प्राप्त करने की इच्छा करती है। इसी प्रकार 'अत्तुं वाञ्छति शांभवो गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी' (पंच० १।३); किन्तु 'त्वां गन्तुमहमिच्छामि' (मैं तुम्हें भेजना चाहता हूँ) नहीं होगा क्योंकि यहाँ 'गम्' (जाना) और 'इष्' (इच्छा करना) दोनों का कर्ता एक नहीं है।

---

१. समानकर्तृकेषु तुमुन्। (३।३।१५८)

१७६. [1]'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग निम्नलिखित अर्थ वाली धातुओं के योग में होता है; समर्थ होना (शक्), साहस करना (धृष्), जानना (ज्ञा), ऊबना (ग्ला), प्रयत्न करना (घट्), आरम्भ करना (रभ्), पाना (लभ्), यत्न करना (क्रम्), सहन करना (सह्), प्रसन्न होना, (अर्ह्) और होना (अस्)। जैसे—न शक्नोमि हृदयमवस्थापयितुं (उत्तर० ४)—मैं हृदय को संभालने में समर्थ नहीं हूँ; वक्तुं मिथः प्राक्रमतैवमेनं (कुमार० ३।२) इस प्रकार उससे एकान्त में कहना प्रारम्भ किया, जानासि देवीं विनोदयितुम् (उत्तर० १) तुम मेरी देवी का मनोरंजन करना जानते हो; अस्ति, भवति, विद्यते वा भोक्तुमन्नं (सि० कौ०) खाने के लिए अन्न है, न विषहे विपत्तिमवलोकयितुं (वेणी० ३) मैं विपत्ति देखना नहीं सहन कर सकता।

१७७. [2]'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग 'पर्याप्त', 'समर्थ', 'योग्य' अर्थ-वाले शब्दों और 'योग्यता' 'शक्ति' या 'दक्षता' अर्थ वाले विशेष्यपदों के योग में होता है। जैसे—लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः (हितो० १) ललाट

---

१. शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् (३।४।६५) यह सूत्र एक विवादास्पद विषय प्रस्तुत करता है—भट्टोजि दीक्षित का कथन है अर्थ-ग्रहणमस्ति नैव सम्बध्यते अन्तरत्वात्—अर्थात् इस सूत्र में 'शक्' से लेकर 'अर्ह्' तक की धातुएँ तथा अस् (होना) अर्थवाली धातुएँ उल्लिखित हैं। किन्तु असंख्य प्रयोगों से उपर्युक्त कथन कथमपि संगत नहीं बैठता। दीक्षित की व्याख्या के अनुसार 'पारय' (योग्य होना) का प्रयोग 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द के साथ नहीं हो सकता किन्तु हमें इसके उदाहरण मिलते हैं, जैसे—न पारयामि निवेदयितुं (शिशु० ४), पारयिष्यस्यत्रभवत्या अपराद्धुं (मालवि० ३) ये श्रेष्ठ लेखकों के वाक्य हैं; इसी प्रकार 'विद्' (जानना) का प्रयोग 'तुमुन्' प्रत्ययान्त के साथ नहीं हो सकता किन्तु—न च वेद सम्यग्द्रष्टुं न सा (रघु० ६।३०) एक उत्तम प्रयोग है। अतएव हमें मानना होगा कि इस सूत्र के साथ एक ऐसी व्याख्या भी थी जो सभी पहले आई हुई धातुओं के साथ अर्थग्रहण का सम्बन्ध जोड़ती थी, नहीं तो हमें ऊपर दिये गये उदाहरणों जैसे प्रयोगों को गलत कहना पड़ेगा। इस विचार से मैंने अर्थग्रहण का धातुओं के साथ सम्बन्ध जोड़कर इस सूत्र की व्याख्या की है।

२. पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु। (३।४।६६)

में (भाग्य में) लिखे हुए को मिटाने के लिए कौन समर्थ है ? लोकानलं दग्धुं हि तत्तपः (कुमार० २।५६) उसकी तपस्या तीनों लोकों को जलाने में समर्थ है, 'अस्ति मे विभवः सर्वं परिज्ञातुं' (विक्रमो० २), मैं सब कुछ जानने की शक्ति रखता हूँ; कोऽन्यो हुतवहाद्दग्धुं प्रभविष्यति (शाकु० ४) अग्नि को छोड़कर दूसरा कौन जलाने में समर्थ हो सकता है ? भोक्तुं प्रवीणः कुशलः पटुर्वा (सि० कौ०) भोजन करने में पटु (भोजन करना जानने वाला)।

१७८. [1]'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग किसी समय के कार्य के सन्दर्भ में 'समय' का बोध कराने वाले शब्दों के योग में होता है; जैसे—'अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुं' यह स्वयं को प्रकट करने का समय है। समयः खलु स्नान-भोजने सेवितुं (विक्रमो० २) यह स्नान और भोजन करने का समय है।

टिप्पणी—लैटिन की भाँति संस्कृत में भी कुछ क्रियाएँ ऐसी हैं जिनका स्वरूप तो कर्मवाच्य का होता है पर अर्थ कर्तृवाच्य का; जैसे—शक्, युज्, अर्ह् और उनसे व्युत्पन्न शब्द; उदाहरण—न शक्यास्ते दोषाः समाधातुं (हितो० ३) वे दोष सुधारे नहीं जा सकते; न युक्तं अशोको वामपादेन ताडयितुं (मालवि० ३) अशोक वृक्ष को बाएँ पैर से मारना ठीक नहीं।

१७९. संस्कृत में 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्दों का कर्मवाक्य का रूप नहीं होता; एक ही रूप का प्रयोग कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य दोनों ही अर्थों में किया जाता है। तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द से युक्त वाक्य को कर्मवाच्य में बदलते समय 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द के योग में आए हुए शब्दों में परिवर्तन नहीं होता; जैसे—स मित्राय द्रोग्धुमिच्छति, तेन मित्राय द्रोग्धुमिष्यते; रामो ग्रामं गन्तुमारेभे, रामेण ग्रामं गन्तुमारेभे। जब 'तुमुन्' प्रत्ययान्त का और क्रिया का कर्म एक ही होता है तो कर्मवाच्य बनाते समय उसे प्रथमा विभक्ति में रखते हैं और उसे 'तुमुन्' प्रत्ययान्त के साथ समझने के लिए छोड़ दिया जाता है; जैसे—स ग्रन्थं पठितुमिच्छति; तेन ग्रन्थः पठितुमिष्यते, यदि आवश्यक होगा तो 'पठितुं' का कर्म 'तं' होगा। ऐसी दशा में 'ग्रन्थ पठितुमिष्यते' नहीं कहा जायेगा क्योंकि यह एक 'भावे' का प्रयोग हो जायेगा, जब कि 'इष्' अकर्मक क्रिया नहीं है।

---

१. कालसमयवेलासु तुमुन्। (३।३।१६७)

अधिकरण १७८ की टिप्पणी में उल्लिखित धातुओं (शक्, युज्, अर्ह्) के योग में दोनों प्रकार के प्रयोग शुद्ध होंगे :—'पवनमालिगितुं शक्यते' या 'पवनः आलिगितुं शक्यते' यद्यपि दूसरा प्रयोग अधिक सुन्दर प्रतीत होता है ।

१८०. अर्ह् (योग्य होना) धातु का प्रयोग विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है । 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द के योग में इस धातु का प्रयोग प्रायः 'प्रार्थना' या 'आदरपूर्वक निवेदन' के अर्थ में होता है अथवा उन वाक्यों में इसका प्रयोग होता है, जिनमें अंग्रेजी में 'be pleased', 'I pray' 'beg' (याचना करना) का प्रयोग होता है और इस अर्थ में इसका व्यवहार सामान्यतः मध्यम और अन्य पुरुषों के साथ होता है; जैसे—न मां परं संप्रतिपत्तुमर्हसि (कुमार०५।३६) कृपया मुझे दूसरा न समझें । अवहितस्तावच्छ्रोतुमर्हति कुमारः (मुद्रा० ४) हे कुमार, इसे ध्यान पूर्वक सुनने की कृपा करें (मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप····); प्रिये जानकि ! न मामेवंविधं परित्यक्तुमर्हसि (उत्तर० ३) प्रिये जानकि ! इस दशा में पड़े हुए मुझको मत छोड़ो ।

१८१. 'तुमुन्' प्रत्यय के 'म' का लोप करके धातु के साथ जोड़कर 'काम' और 'मनः' शब्दों के योग में उस समय प्रयुक्त किया जाता है जब धातु द्वारा व्यक्त कार्य को करने की 'इच्छा' या 'विचार रखने' का भाव हो; जैसे—पुनरपि वक्तुकाम इवार्यो लक्ष्यते (शाकु० १) ऐसा लगता है कि आप पुनः कुछ बोलना चाहते हैं (बोलने की इच्छा रखते हैं) ।

अभ्यास

१. मध्यस्था भवती नौ गुणदोषतः परिच्छेत्तुमर्हति । (मालवि० १)

२. न युक्तं ते तथा पुराश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं जनं समयपूर्वं प्रतार्येदृशैरक्षरैः प्रत्याचष्टुम् । (शाकु० ५)

३. नार्हति तातो गजपुंगवधारितायां धुरि दम्यं नियोजयितुम् । (विक्रमो० ५)

४. न शक्यं दैवमन्यथा कर्तुमभियुक्तेनापि । यावत्तु मानुष्यके शक्यमुपपादयितुं तावत्सर्वमुपपाद्यताम् । (काद० ६२)

५. का गणना सचेतनेषु । अपगतचेतनान्यपि संघट्टयितुमलमयं मदनः । (काद० १५)

६. अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात् नवसंरोहणशिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम् ॥ (मालवि० १)

७. घातयितुमेव नीचः परकार्यं वेत्ति न प्रसाधयितुम् ।
पातयितुमेव शक्तिर्नाखोरुद्धर्तुमन्नपिटम् ॥ (पंच० १।१५)

८. शब्दादीन्विषयान् भोक्तुं चरितुं दुश्चरं तपः ।
पर्याप्तोऽसि प्रजाः पातुमौदासीन्येन वर्तितुम् ॥ (रघु० १०।२५)

९. वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किन्नरस्वनौ ।
किं तद्येन मनो हर्तुमलं स्यातां न शृण्वताम् ॥ (रघु० १५।६४)

१०. व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम् । (शाकु० ५)

११. व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
छेत्तुं वज्रमणीञ् शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते ।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षीरांबुधेरीहते
नेतुं वाञ्छति यः खलान् पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः ॥ (भर्तृ० २।६)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. अलमनया कथया । संह्रियतामियम् । अहमप्यसमर्थः श्रोतुम् । अतिक्रान्तान्यपि संकीर्त्यमानान्यनुभवसमां वेदनामुपजनयन्ति सुहृज्जनस्य दुःखानि । तन्नार्हसि कथं कथमपि विधृतानिमानसुलभानसून् पुनः पुनः स्मरणशोकानलेन्धनतामुपनेतुम् । (काद० १६८)

२. अमात्यकुमारो विज्ञापयति । यद्यपि स्वामिगुणा न शक्यन्ते विस्मर्तुं, तथापि मद्विज्ञापनां मानयितुमर्हत्यार्यः । (मुद्रा० २)

३. न खलु न खल्वमंगलानि चिन्तयितुमर्हन्ति भवन्तः कौरवाणाम् । सन्धेयास्ते भ्रातरो युष्माकम् । (वेणी० १)

४. शमयति गजानन्यान् गन्धद्विपः कलभोऽपि सन्
भवति सुतरां वेगोदग्रं भुजंगशिशोर्विषम् ।
भुवमधिपतिर्बालावस्थोऽप्यलं परिरक्षितुं
न खलु वयसा जात्यैवायं स्वकार्यो भरः ॥ (विक्रमो० ५)

५. अतोऽत्र किंचिद् भवतीं बहुक्षमां द्विजातिभावादुपपन्नचापलः ।
अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि ॥ (कुमार० ५।४०)

६. तमर्थमिव भारत्या सुतया योक्तुमर्हसि ।
अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता ॥ (कुमार० ६।७९)

७. न पृथग्जनवच्छुचो वशं वशिनामुत्तमं गन्तुमर्हसि ।
द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः ॥ (रघु० ८।९०)

८. अयि सुतपराक्रमानभिज्ञे—
धर्मात्मजं प्रति यमौ च कथैव नास्ति, मध्ये वृकोदर किरीटभृतोर्बलेन ।
एकोऽपि विस्फुरितमण्डलचापचक्रं, कः सिन्धुराजमभिषेणयितुं समर्थः ॥
(वेणी० २)

अनुवाद कीजिए :—

१. अपने देशवासियों की भलाई के लिये जहाँ तक सम्भव हो सका उसने प्रयत्न किया ।
२. तुम अपने भाई का धन स्वयं अपने नाम करने की इच्छा क्यों करते हो ?
३. मैंने उसे काम करने के लिए कहा, जिसे उसने अत्यन्त उपेक्षा से किया ।
४. बदला लेना पहले तो मनुष्य को सुखकर लगता है परन्तु अन्त में वह स्वयं उसी का नाश कर देता है ।
५. मैं गरीब व्यक्तियों के प्रति भी अनादर पूर्वक व्यवहार किया जाना सहन नहीं कर सकता ।
६. हे कृष्ण ! इस सन्देह को दूर करने (छिद्) के लिए प्रसन्न होइए ।
७. तुम्हारे लिये यह अपना पाठ पढ़ना प्रारम्भ करने का समय है ।
८. एक तुच्छ व्यक्ति भी उपेक्षा किये जाने योग्य (अर्ह) नहीं होता ।
९. मैं चाहता था कि वे बम्बई जाँय, किन्तु उन्होंने वैसा करना नहीं चाहा ।
१०. तुम्हें यहाँ अकेले छोड़कर दूसरे देश को जाना कैसे संभव हो सकता है (शक्य) ?
११. अकाल के समय में गरीबों की तो बात ही क्या धनी व्यक्तियों के लिए भी सम्मानपूर्वक जीवन बिताना कठिन हो जाता है ।
१२. यह दुष्ट अपने अपराध के कारण दण्ड के योग्य है (युज्) ।
१३. इस मंगलमय दिन को सभी बन्दी मुक्त कर दिये जायँ ।
१४. कभी-कभी विपत्तियों के थपेड़े खाते हुए घर में आलसी बनकर पड़े रहने से स्वयं को संकट में डालना वरणीय होता है ।
१५. अलका में भव्य प्रासाद इन सभी विशेषताओं में तुम्हारी तुलना करने में (तुल्) समर्थ होंगे (अलं) ।
१६. वह दूसरों के प्रति उपकार करने का बहुत इच्छुक था, किन्तु अपना लक्ष्य किसी भी सीमा तक सिद्ध करने में समर्थ न हो सका ।
१७. मैं आपसे इस प्रार्थना को स्वीकार करने के लिये निवेदन करता हूँ, इसे कृतज्ञता के साथ स्मरण करना मेरा कर्तव्य होगा ।

पाठ १७

काल और वृत्तियाँ

१८२. संस्कृत में कुल मिलाकर दस काल और वृत्तियाँ हैं :--

१—वर्तमान काल (Present), २–अनद्यतनभूत (Imperfect); ३. परोक्षभूत (Perfect), ४–सामान्यभूत (Aorist), ५–अनद्यतनभविष्यत्, (Periphrastic Fututre), ६–सामान्य भविष्यत् (Simple Future); ७–आज्ञा (Imperative Mood), ८–विधि (Potential Mood), ९–क्रियातिपत्ति (Conditional Mood), १०–आशी: (Benedictive), पाणिनि ने जो दस लकार दिये हैं, वे ये हैं—१–लट्, २–लङ्, ३–लिट्, ४–लुङ्, ५–लुट्, ६–लृट्, ७–लोट्, ८–लिङ्, ९–लृङ् और १०–लेट्[1] इनमें अन्तिम लेट् का व्यवहार केवल वेद में ही होता है और इसका अर्थ क्रियातिपत्ति (अनिश्चयसूचक रूप) का होता है, इसे सामान्यत: 'वैदिक सब्जंक्टिव' कहते हैं। शेष नौ लकार उपर्युक्त कालों और वृत्तियों को अभिव्यक्त करते हैं। आशी: (Benedictive) को संस्कृत में आशीर्लिङ् कहते हैं, जो विधिलिङ् (Potential) से भिन्न होता है।

इस प्रकार—

१. वर्तमानकाल	लट्	Present tense
२. अनद्यतनभूत	लङ्	Imperfect
३. परोक्षभूत	लिट्	Perfect
४. सामान्यभूत	लुङ्	Aorist

---

१. पाणिनि के ये नाम कृत्रिम हैं और किसी खास सिद्धान्त पर आधारित नहीं हैं। अन्य वैयाकरणों ने अपेक्षतया कुछ अधिक विवेकपूर्ण नाम अपनाए हैं। उनके अनुसार विविध कालों और वृत्तियों के नाम ऊपर के क्रम में ही इस प्रकार हैं :—भवन्ती (वर्तमाना), ह्यस्तनी, परोक्षा, अद्यतनी, श्वस्तनी, भविष्यन्ति, पंचमी, सप्तमी (केवल ये ही दोनों नाम नितान्त कृत्रिम हैं), 'क्रियातिपत्ति:' और 'आशी:'। इनका प्रयोग स्त्रीलिंग में इसलिए किया गया है कि इनके साथ 'वृत्ति' शब्द छिपा हुआ है।

५. अनद्यतनभविष्यत्	लुट्	Periphratic (First) Future
६. सामान्यभविष्यत्	लृट्	Simple Future Tense
७. आज्ञा	लोट्	Imperative Mood
८. विधि	विधिलिङ्	Potential Mood
९. क्रियातिपत्ति	लृङ्	Conditional Mood
१०. आशीः	आशीर्लिङ्	Benedictive

१८३. संस्कृत में प्रत्येक क्रिया के, चाहे वह मूलरूप में हो, चाहे प्रेरणार्थक (णिजन्त), सन्नन्त या यङन्त हो, दसों कालों और वृत्तियों में रूप चलते हैं, यद्यपि सन्नन्त और यङन्त के वर्तमान काल के अतिरिक्त अन्य कालों या वृत्तियों के रूप बहुत कम प्रयोग में आते हैं। उनके द्वारा प्रकट किया जाने वाला भाव प्रायः अन्य रूपों या शब्दों के मेल द्वारा व्यक्त किया जाता है; जैसे—जिगमिषति = गन्तुमिच्छति; आटाटचते = भृषं अटति।

१८४. संस्कृत के कुछ काल और वृत्तियाँ दूसरी भाषाओं के कालों और वृत्तियों से ठीक-ठीक मिलती हैं और कुछ संस्कृत भाषा की निजी विशेषता है। इस पाठ में और आगे के तीन पाठों में इनके प्रयोगों और अर्थों का विवेचन किया जायेगा। इस पाठ में वर्तमानकाल, आज्ञा और आशीर्लिङ् को समझाया गया है।

वर्तमानकाल

१८५. वर्तमानकाल का प्रयोग वर्तमान समय में होने वाले कार्य या वर्तमान काल के किसी तथ्य को बताने के लिए किया जाता है; जैसे—जगतः पितरौ वन्दे (रघु० १।१) मैं विश्व के माता-पिता को प्रणाम करता हूँ।

द्रष्टव्य—वस्तुतः संस्कृत का वर्तमानकाल लगातार होते रहने वाले कार्य को बताने वाले अपूर्ण वर्तमान काल (Present progressive I mperfect) या अपूर्ण रूपों के समकक्ष होता है, जो प्रारम्भ किये गये कार्य का होते रहने का भाव व्यक्त करते हैं। पतंजलि का कथन है—'प्रवृत्तस्याविरामे शासितव्या भवन्ती' जिससे प्रकट होता है कि वर्तमान काल की क्रिया द्वारा सूचित कार्य चल रहा है, हो रहा है, अभी समाप्त नहीं हुआ है; जैसे—वहति जलमियं, पिनष्टि गंधानियं (मुद्रा० १) 'यह पानी ले जा रही है, यह गन्धयुक्त पदार्थों को पीस रही है।' एतास्तपस्विकन्यका इत एवाभिवर्तते (शाकु० १)

ये तपस्विकन्याएँ इस ओर ही आ रही हैं। इस चलते रहने वाले कार्य को बताने के लिए संस्कृत में कोई भिन्न रूप नहीं होता अतएव इसका सामान्य अर्थ चलता है।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि केवल किसी विशेष क्रियाविशेषण द्वारा या सन्दर्भ द्वारा ही वर्तमान काल ठीक वर्तमान काल में होते रहने वाले कार्य को अभिव्यक्त कर सकता है; जैसे—देवदत्तो गच्छति (अधुना) या संप्रत्यधीयावहे। जैसा कि वेन ने (व्याकरण० पृ० १८५ में) कहा है—सामान्य वर्तमान काल का मुख्यकार्य 'सभी समयों में सत्य अर्थात् शाश्वत सत्य को व्यक्त करना है। यह वर्तमान काल को भी शाश्वत काल के रूप में व्यक्त करता है। प्रकृति की स्थायी व्यवस्थाएँ और नियम, जीवित प्राणियों की विशेषताएँ एवं सहज गुण, और जो कुछ भी स्थायी, नियमित और एकरूप होता है, वह सभी सामान्य वर्तमान काल द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। जैसे—सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसां (भर्तृ० २।२३) कहो, 'सत्संगति मनुष्यों का कौन सा कल्याण नहीं करती' 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः' (कुमार० १।१) उत्तर दिशा में हिमालय नाम का विशाल पर्वत है; इसी प्रकार—नास्ति जीविता-दन्यदभिमततरमिह सर्वजन्तूनां (काद० २५); ऋषीणां पुनराधानं वाचमर्थोऽ-नुधावति (उत्तर० १); न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते (मालती० १)

१८६. इन सामान्य भावों के अतिरिक्त अंग्रेजी के वर्तमानकाल के समान ही संस्कृत का वर्तमानकाल निम्नलिखित अर्थों में भी प्रयुक्त होता है :—

(क) कभी-कभी **तात्कालिक भविष्यत्** का बोध कराने के लिए इसका प्रयोग होता है—अयमहमागच्छामि (शाकु० ३) यह मैं आई (आऊँगी); कदा गमिष्यसि—एष गच्छामि (सि० कौ०) नन्वयं न भवसि (मालती० ५)।

(ख) जब कोई कार्य तुरत हुआ हो उस **तात्कालिक अतीत** के कार्य का बोध कराने के लिए वर्तमानकाल का प्रयोग किया जा सकता है; जैसे—कदा त्वं नगरादागतोऽसि ?—अयमागच्छामि (सि० कौ०) तुम शहर से कब आये हो ? यह अभी आ रहा हूँ (मैं अभी आया हूँ)।

(ग) **कथाओं** में और भूतकाल की घटनाओं का वर्णन करते समय वर्तमानकाल का प्रयोग किया जाता है, मानों कथा कहने वाले ने अपनी आँखों से उन घटनाओं को होते देखा हो; जैसे—हस्ती ब्रूते कस्त्वं (हितो० २) हाथी पूछता है कि तुम कौन हो ?

(घ) जब 'तक', 'जहाँ तक', 'पहले' 'जब' इत्यादि अर्थ वाले शब्दों के योग में वर्तमानकाल पूर्ण भविष्यत् काल का अर्थ रखता है; जैसे—तद्यावन्न परापतति तावदसर्पतानेन तरुगहनेन (उत्तर० ४) 'अतएव जब तक वह लौटता है, जब तक वह नहीं लौट चुका होगा तब तक इन वृक्षों के कुंज से चले जाओ।'

(ङ) कभी-कभी वर्तमानकाल 'आदत' या प्रतिदिन के कार्य का बोध कराने के लिये प्रयुक्त होता है जिसे अंग्रेजी में 'used to' या 'would' द्वारा (हिन्दी में 'करता था' 'करता' द्वारा) व्यक्त किया जाता है जैसे **पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं** (शाकु० ७) जो पहले जल पीने की बात नहीं सोचा करती थी); इसी प्रकार—**हिरण्यको भोजनं कृत्वा विले स्वपिति** (हितो० १)।

१८७. कभी-कभी हेतुहेतुमद्भाव वाले वाक्यों में वर्तमानकाल का प्रयोग भविष्यत्काल के अर्थ में होता है; जैसे—**योऽन्नं ददाति** (दाता दास्यति वा) **स स्वर्गं याति** (याता, यास्यति वा)—सि० कौ०। जो अन्न देता है (देगा) वह स्वर्ग जाता है (जायगा)।

१८८. जब वर्तमान काल के रूप के साथ 'स्म' जोड़ दिया जाता है तब इसका अर्थ भूतकाल का हो जाता है; जैसे—**कस्मिश्चिद्वने भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसति स्म** (पंच० १।८) किसी वन में भासुरक नाम का एक सिंह रहता था; **क्रीणंति स्म प्राणमूल्यैर्यशांसि** (शिशु० १७।१५) अपने प्राणों के मूल्य पर यश खरीदा।

१८९. प्रश्नवाचक शब्दों के साथ जब वर्तमान काल का प्रयोग होता है तब वह इच्छा करने के अर्थ में भविष्यत्काल का बोध कराता है, जैसे—**किं करोमि, क्व गच्छामि** (उत्तर० १) मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? **कं भोजयसि** (सि० कौ०); इसी प्रकार—**किं गच्छामि तपोवनं** (मुद्रा० ६)।

(क) जब किसी प्रश्न का उत्तर दिया जाता है तब 'ननु' शब्द के साथ वर्तमानकाल का प्रयोग भूतकाल के अर्थ में होता है; जैसे—**कटमकार्षीः किम्—ननु करोमि भोः** (सि० कौ०)।

१९०. [1]जब 'पुरा' और 'यावत्' शब्दों का प्रयोग क्रिया-विशेषण के रूप में होता है और 'निश्चितता' का बोध कराना होता है, तब वर्तमान काल भविष्यत्

---

१. यावत्पुरानिपातयोर्लट्। (३।३।४)

काल का अर्थ देता है; जैसे—आलोके ते निपतति पुरा (मेघ० ८८) निश्चय ही तुम्हारी दृष्टि के अन्दर आयेगा; यावदस्य दुरात्मनः समन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि (उत्तर० १) मैं शत्रुघ्न को इस दुष्ट की जड़ उखाड़ने के लिए भेजूँगा।

द्र०—'निश्चितता' का भाव होना अनिवार्य नहीं होता।

आज्ञा (लोट् लकार)

१६१. अंग्रेजी के समान संस्कृत में भी इस वृत्ति (Mood) का प्रयोग मध्यमपुरुष में आज्ञा, प्रार्थना या उपदेश देने के अर्थ में होता है; जैसे—शृणुत रे पौराः (मृच्छ १०) पुरवासियों सुनो। परित्रायध्वं परित्रायध्वं (बचाओ ! बचाओ) हा प्रिय सखि ! क्वासि देहि मे प्रतिवचनं (उत्तर० १), हाय प्रिय सखी ! तुम कहाँ हो, उत्तर दो। तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं (भर्तृ० २) तृष्णा छोड़ो, क्षमा धारण करो और गर्व का त्याग करो।

(क) कर्मवाच्य में लोट् लकार का प्रयोग प्रायः नम्रता सूचक अर्थ में होता है; जैसे—एतदासनमास्यतां (विक्रमो० २) यह आसन है, कृपया बैठें।

१६२. लोट् लकार के मध्यमपुरुष और अन्यपुरुष (प्रथम पुरुष) के रूपों का प्रयोग प्रायः आशीर्वाद देने या शुभाशंसा में होता है, जैसे—**प्रत्यक्षाभिप्रपन्नस्तुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः** (शाकु० १) उन आठ प्रत्यक्ष रूपों से युक्त शिव आप लोगों की रक्षा करें ! **पर्जन्यः कालवर्षी भवतु जनमनो नन्दिनो वान्तु वाताः** (मृच्छ० १०) वर्षा समय से होवे और वायु लोगों का मन प्रसन्न करे। **पुत्रमेवं गुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि** (शाकु० १) इन गुणों से युक्त चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त करो। पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपं (रघु० ५।३४) अपने अनुरूप पुत्र प्राप्त करो। तात मे चिरंजीव (उत्तर० ४) इत्यादि।

१६३. लोट् लकार का प्रयोग भविष्यत्काल और वर्तमान काल से संबद्ध आज्ञाओं और उपदेशों के लिये किया जाता है और सामान्यतः नियम बनाने और उपदेशवचन में इसका प्रयोग उसी प्रकार होता है जिस प्रकार विधि लिङ् का। देखिए पाठ १८।

१६४. मध्यमपुरुष लोट् लकार का एक प्रयोग ध्यान देने योग्य है। जब किसी कार्य के 'बार-बार होने' या 'आवृत्ति' का बोध कराना होता है तब मध्यमपुरुष लोट् लकार (परस्मै० और आत्मने०) की आवृत्ति की जाती है, चाहे मुख्य क्रिया का कर्ता भिन्न हो और क्रिया किसी काल की हो; जैसे—याहि

याहीति याति (सि० कौ०) वह बार-बार जाता है। इसी प्रकार यात यातेति याथ; अधीष्व अधीष्वेति अधीते।

द्र०--यह मराठी और संस्कृत से निकली हुई अन्य भाषाओं की आज्ञार्थक वृत्ति से मिलता-जुलता है; जैसे--हा गृहस्थ खा खा खातो, बोल बोल बोलतो, पंतोजीनें मुलाना मार मार मारि लें।

(क) इसी प्रकार (बिना आवृत्ति) के आज्ञार्थक 'लोट्' का प्रयोग उस समय होता है जब कई कार्यों के एक व्यक्ति द्वारा किये जाने का उल्लेख होता है; जैसे—सक्तून् पिब धाना: खादेत्यभ्यवहरति (सि० कौ०) वह सत्तू पीते हुए और धान का लावा खाते हुए भोजन करता है।

मराठी से तुलना कीजिए :—शेंगा खा, दाणे चाव, पाणी पी, अशा रीतीनें हा सकाएडीं चरत असतो; कुठें झाडेंच उपट, कुंड्याच फोड, फुलेंच तोड, फांद्याच मोड़, असा त्या दुष्टानें बागेचा अगदीं नाश करून सोडिला।

आशीर्लिङ्

१६५. आशीर्लिङ् (भूयात्-भविषीष्ट) का भी प्रयोग आशीर्वाद देने में किया जाता है और उत्तमपुरुष का रूप वक्ता की इच्छा को व्यक्त करता है; जैसे—तत्किमन्यदाशास्महे केवलं वीरप्रसवा भूया: (उत्तर० १) मैं आशीर्वाद के रूप में और क्या कहूँ? वीर पुत्र को जन्म देने वाली होओ, विधेयासुर्देवा: परमरमणीयां परिणति (मालती० ६) देवतागण अन्त को सुखकारक बनावें; कृतार्था भूयासं (वही) मैं सफल होऊँ।

अभ्यास

१. क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञात: श्रमक्लान्तमात्मानं विनोदयामि। (शाकु० ३)

२. किमधुना करोमि? क्व गच्छामि? कथं मे शान्तिर्भविष्यति? अथवा पिंगलकं गच्छामि, कदाचिच्छरणागतं मां रक्षति, न प्राणैर्वियोजयति। (पंच० १।१६)

३. ततो दिनेषु गच्छत्सु पक्षिशावकानाक्रम्य कोटरमानीय प्रत्यहं खादति स मार्जार:। (हितो० १)

४. तारापीडो देवीमवदत् । अफलमिवाखिलं पश्यामि जीवितं राज्यं च । अप्रतिविधेये धातरि किं करोमि । तन्मुच्यतां देवि, शोकानुबन्धः । आधीयतां धैर्ये च धर्मे च धीः । (काद० ६५)

५. शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ (शाकु० ४)

६. पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ (शाकु० ४)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. अये, उदितभूयिष्ठ एष भगवानशेषभुवनद्वीपदीपकस्तपनः । तमुपतिष्ठे । (मालती० १)

२. अनन्यभाजं पतिमाप्नुहीति, सा तथ्यमेवाभिहिता हरेण ।
न हीश्वरव्याहृतयः कदाचित्, पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् ॥
(कुमार० ३।६३)

३. पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामरांगनाः ।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ॥
(शिशु० १।५१)

४. सन्तः सन्तु निरन्तरं सुकृतिनो विध्वस्तपापोदया
राजानः परिपालयन्तु वसुधां धर्मे स्थिताः सर्वदा ।
काले सन्ततवर्षिणो जलमुचः सन्तु स्थिरः पुण्यतो
मोदन्तां धनबद्धबान्धवसुहृद्गोष्ठीप्रमोदाः प्रजाः ॥

५. तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ।
मान्यान् मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रच्छादय स्वान् गुणान् ।
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयाम् एतत्सतां चेष्टितम् ॥ (भर्तृ० २।७७)

६. कश्चैकान्तं सुखमुपगतो दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमि क्रमेण । (मेघ० ११२)

७. जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्
तत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ (भर्तृ० २२३)

अनुवाद कीजिए :—

१. सर्प पेड़ पर चढ़कर कौओं के बच्चों को खा जाया करता था ।

२. अपना धनुष चढ़ाकर अर्जुन कर्ण से कहते हैं—'क्या तुम अब मुझसे युद्ध करने के लिए तैयार हो ?'

३. एक कछुआ दो चिड़ियों द्वारा कन्धों पर ले जाया जा रहा है ।

४. तुम मुझे यहाँ क्यों छोड़ते हो ? मैं क्या करूँगा ? किसके पास रक्षा के लिए जाऊँ ?

५. अभी मैं इस वृक्ष की छाया में बैठकर उसकी प्रतीक्षा करूँगा । ('यावत्' का प्रयोग कीजिए ?)

६. मैं अभी एक लम्बी यात्रा से लौटा हूँ और क्या तुम मुझे इतना जल्दी कार्य करने के लिए कह रहे हो ?

७. तुम दोनों सभी सद्गुणों में अपने समान पुत्र प्राप्त करो ।

८. अपने माता पिताकी आज्ञा का पालन करो, बड़ों का सम्मान करो; कभी परनिन्दा का एक शब्द मत कहो; और अपनी स्थिति से सन्तोष रखो ।

९. गायें अधिक दूध देवें ('दा' का आशीः) । समय पर बरसने वाले बादलों से पृथ्वी सभी प्रकारके अन्नों से परिपूर्ण होवे ।

१०. अपने राज्य की वास्तविक दशा का पता लगाने के लिए तपस्वियों के वेश में गुप्तचरों को सब जगह भेजे ।

११. घरों को गिराकर, लोगों को निकालकर और उनकी सम्पत्ति को फूँक कर उसने सारे देश को वीरान बना दिया ।

पाठ ८

विधिलिङ्

१६६. संस्कृत का विधिलिङ् अंग्रेजी और लैटिन के सब्जंकटिव मूड (Subjunctive mood) के समान होता है, किन्तु अंग्रेजी के 'सब्जंकटिव' के सभी अर्थ और प्रयोग नहीं होते और न लैटिन के 'सब्जंकटिव' के समान इसका क्षेत्र ही विस्तृत होता है। अंग्रेजी Subjunctive mood का प्रयोग स्वतन्त्र उपवाक्यों में नहीं होता, लैटिन में किसी इच्छार्थक क्रिया को पहले रखे विना इसका प्रयोग होता है किन्तु यह सामान्यत: किसी दूसरे कथन पर आश्रित कथनों में व्यवहृत होता है; इसके विपरीत, संस्कृत में आशीर्लिङ् का प्रयोग 'स्वतन्त्र' और 'आश्रित' दोनों ही प्रकार के वाक्यों में होता है; जैसे—नीचैराख्यं गिरिमधिवसेः (मेघ० २६) कृत्यं घटेत सुहृदो यदि तत्कृतं स्यात् (मालती० १) अब हम यह देखेंगे कि संस्कृत में इसका प्रयोग किन अर्थों में होता है।

१६७. विधिलिङ् निम्नलिखित अर्थों को व्यक्त करता है:—(क) सम्भावना, आज्ञा, इच्छा, प्रार्थना, आशा और योग्यता। (ख) यह उन आश्रित उपवाक्यों में प्रयुक्त होता है जिनमें उपर्युक्त भाव होते हैं और (ग) उसका प्रयोग हेतु-हेतुमद्भावात्मक वाक्यों में होता है, जिनमें एक कथन दूसरे कथन पर उसके कारण या हेतु के रूप में आश्रित रहता है।

(क)

१६८. विधिलिङ् में 'सम्भावना', 'आज्ञा' आदि के जो भाव व्यक्त किये जाते हैं उनके लिये अंग्रेजी में साधारण वाक्यों में 'may', 'shall', 'should' और प्राय: will, would could, might का प्रयोग होता है। जैसे—लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन् (भर्तृ० २।५) यत्न के (मृत) साथ पीसने पर बालू के कणों से भी तेल निकाला जा सकता है; मौर्यं भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम सम्भावयेत् (मुद्रा० ५) इस बात को कौन सही मानेगा कि मौर्य राजा भी भूषणों को बेच सकते हैं। जेतारं कार्तिकेयस्य विजयेय (महावीर० ३) मैं कार्तिकेय को जीतने वाले को जीत लूँ। मनसिजतरुः कुर्यान्मां फलस्य रसज्ञं (मालवि०) प्रेम का वृक्ष मुझे अपना फल चखावे; कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणे-र्धैर्यच्युतिं (कुमार० ३।१०) मैं पिनाक धारण करने वाले भगवान् शिव

के मन के धीरज को भी नष्ट कर सकता हूँ। 'भो भोजनं लभेय' (सि० कौ०) मैं प्रार्थना करता हूँ कि मुझे भोजन मिले।

(क) विधिलिङ् का सार्वधिक प्रयोग आज्ञा देने, उपदेश देने, पथप्रदर्शन के लिए नियम बनाने और कर्तव्य का भाव प्रदर्शित करने के लिये होता है, जिसे अंग्रेजीमें shall या should (चाहिए) द्वारा व्यक्त किया जाता है। जैसे—ऊनद्विवर्षं निखनेत् (याज्ञ० ३।१) दो वर्ष से कम आयु के बच्चे को पृथ्वी में गाड़ना चाहिए; आपदर्थे धनं रक्षेत् (चाण० २६) बुरे दिनों के लिए धन बचाना चाहिए; सहसा विदधीत न क्रियां (किरात० २।३०) विना विचारे कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

द्र०—पाणिनि के नियम के अनुसार विधिलिङ् और लोट का प्रयोग (अपने अधीनस्थ और कम उम्र वालों को) आदेश देने, निमन्त्रण देने, में (कोई कार्य करने की) अनुमति देने, किसी सम्मानपूर्ण पद या अवैतनिक कार्य के विषय में उल्लेख करने, प्रश्न पूछने और प्रार्थना करने में होता है। (विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ३।३।१६१) और निर्देश, अनुमति और उचित (विशेष) समय का भाव होने पर विधिलिङ्, लोट् और विधिलिङ् कर्मवाच्य (कृत्य) प्रत्ययों का समान रूप से प्रयोग होता है। प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च (३।३।१६३) जैसे—इह भुंजीत, भुंक्तां भवान्; 'इहासीत भवान्' या 'इहास्यतां आसितव्यं भवता' (आप यहाँ बैठें) नीचैराख्यं गिरिमधिवसेः (मेघ० २६) आप नीचैः नाम के पर्वत पर निवास कर सकते हैं; पुत्रमध्यापयेद् भवान् (आप अवैतनिक रूप में मेरे पुत्र को पढ़ावें); किं भो वेदमधीयीय उत तर्कं; 'श्रीमन्, मैं क्या पढ़ूँ वेद या तर्कशास्त्र?' भोजनं लभेय या लभैः (सि० कौ०)।

इन अर्थों में विधिलिङ् का प्रयोग लोट् लकार या कृत्यप्रत्यय की अपेक्षा अधिक होता है।

१६६. जब योग्यता या उपयुक्तता का भाव होता है तो कृत्यप्रत्यय या इस वृत्ति (विधिलिङ्) का प्रयोग हो सकता है और कभी-कभी 'तृ' से अन्त होने वाले संज्ञा शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। जैसे—त्वं कन्यां वहेः, त्वं कन्याया वोढा, त्वया कन्या वोढव्या (सि० कौ०) तुम कन्या का विवाह करने योग्य हो।

(क) जब 'योग्यता' या 'क्षमता' का अर्थ होता है तब विधिलिङ् या कृत्य

प्रत्यय का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे—'भारं त्वं वहेः' या 'भारस्त्वया वोढव्यः' (सि० कौ०) तुम बोझ को ढो सकते हो।

२००. [1]किं, कतर इत्यादि प्रश्नवाचक शब्दों के योग में निन्दा के अर्थ में विधिलिङ् या सामान्य भविष्यत् का प्रयोग होता है, जैसे—'कः कतरो वा हरिं निन्देत् निन्दिष्यति वा' कौन हरि की निन्दा करेगा ?

(क) [2]जब आश्चर्य का भाव होता है और 'यदि का प्रयोग नहीं हुआ रहता है, तब विधिलिङ् की अपेक्षा सामान्य भविष्यत् का प्रयोग होता है, जैसे—आश्चर्यमन्धो नाम कृष्णं द्रक्ष्यति (सि० कौ०) अन्धा व्यक्ति कृष्ण को देखे, यह आश्चर्य की बात है। किन्तु—'आश्चर्यं यदि सोऽधीयीत' यदि वह अध्ययन करता है तो आश्चर्य की बात है।

(ख)

२०१. 'आशा' और 'प्रार्थना' इत्यादि १६७ के अन्तर्गत बताये गये अर्थों में आश्रित उपवाक्यों में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। जैसे—आशंसेऽधीयीय (सि० कौ०) मैं आशा करता हूँ कि मैं पढ़ूँगा; आशंसा न हि नः प्रेते जीवेम दशमूर्धनि (भट्टि० १६।५) हमें यह आशा नहीं थी कि हम रावण के मरने पर जीवित रहेंगे। इत्यादि।

(क) 'इच्छा' अर्थ वाले शब्दों के साथ विधिलिङ् का प्रयोग तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द के अर्थ में उस समय होता है जब दोनों क्रियाओं का कर्ता एक हो; जैसे—भुंजीयेति इच्छति (सि० कौ०)=भोक्तुमिच्छति (इच्छा करता है कि खाऊँ) या खाने की इच्छा करता है।

२०२. 'आश्रित वाक्यों में विधिलिङ् का प्रयोग प्रायः संबन्धवाचक शब्दों के योग में 'परिणाम या प्रयोजन' बताने के लिये होता है; जैसे—दोषं तु मे कंचित्कथय येन स प्रतिविधीयेत (उत्तर० १) 'किन्तु मेरा कोई अपराध बताइए जिससे उसकी शुद्धि की जा सके।'

२०३. [3]जब 'कच्चित्' के अतिरिक्त किसी अन्य शब्द द्वारा 'आशा' का भाव व्यक्त किया जाता है तब आमतौर से विधिलिङ् का प्रयोग होता है;

---

१. किंवृत्ते (गर्हायां) लिङ्लृटौ। (३।३।१४४)

२. (चित्रीकरणे) शेषे लृड्यदौ। (३।३।१५१)

३. कामप्रवेदनेऽकच्चिति। (३।३।१५३)

जैसे—'कामो मे भुंजीत भवान्' मेरी आशा है कि आप भोजन करेंगे; किन्तु 'कच्चिद्भर्तुः स्मरति रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति' (मेघ० ८८) हे मोहक-पक्षी, मैं आशा करती हूँ कि अपने स्वामी को याद करती हो, क्योंकि तुम उन्हें प्रिय हो।

(क) [1]जब 'संभावय' 'अपि' या 'अपि नाम' जैसे शब्दों द्वारा संभावना व्यक्त की जाय तो विधिलिङ् या सामान्य भविष्यत्काल का प्रयोग होता है, किन्तु 'यद्' के योग में ऐसा नहीं होता। जैसे—'सम्भावयामि भुंजीत भोक्ष्यते वा भवान् (सि० कौ०) आशा करता हूँ कि आप भोजन करेंगे; अपि नाम भगवतीनीतिर्विजेष्यते (मालती० ७) क्या मै आशा करूँ की आपकी योजनायें सफल होंगी ?' 'अपि जीवेत् स ब्राह्मणशिशुः' (उत्तर० २) क्या मैं आशा करूँ कि ब्राह्मण का पुत्र जीवित हो जायगा ?' (काश, वह जीवित हो जाता) किन्तु सम्भावयामि यद् भुंजीथास्त्वम् मैं आशा करता हूँ कि तुम खाओगे।

(ख) [2]जब 'इच्छा' व्यक्त करने वाले शब्दों जैसे—इष, कम्, 'प्राथ्' इत्यादि आते हैं तो विधिलिङ् या लोट् का प्रयोग होता है; जैसे—इच्छामि सोमं पिबेत् पिबतु वा भवान् (सि० कौ०) मैं चाहता हूँ कि आप सोम का पान करें।

२०४. [3]जब वाक्य में 'यद्' आता है तब 'काल', 'वेला' 'समय' शब्दों के योग में विधिलिङ् का प्रयोग होता है; जैसे—कालः–समयो–वेला वा यद् भवान्भुंजीत यह समय है जब आपको भोजन करना चाहिए।

(ग)

२०५. हेतुहेतुमद्भाव वाले वाक्यों में जिनमें एक कथन दूसरे कथन पर उसके 'हेतु' के रूप में आश्रित रहता है विधिलिङ् का प्रयोग 'पूर्ववर्ती' और 'परवर्ती' दोनों ही उपवाक्यों में होता है। पहले उपवाक्य में तर्क का हेतु या शर्त दिया गया होता है और दूसरे उपवाक्य में उस तर्क पर आधारित निर्णय दिया जाता है। 'if' (अगर) के स्थान पर, चाहे उसका भाव छिपा हो या व्यक्त हो 'यदि' या 'चेद्' होता है; जैसे—यद्यत्र तातः सन्निहितो भवेत् ततः किं

---

१. विभाषा धातौ सम्भावनवचनेऽयदि। (३।३।१५५)

२. इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ (३।३।१५७)

३. (कालसमयवेलासु) लिङ्यदि। (३।३।१६८)

भवेत् (शाकु० १) यदि पिताजी आज यहाँ होते तो क्या होता ? दैवात्पश्येर्जगति विचरन्निच्छया मत्प्रियां चेद्, आश्वास्यादौ तदनु कथयेर्माधवीयामवस्थां (मालती० ६) यदि तुम संसार में अपनी इच्छानुसार भ्रमण करते हुए संयोगवश मेरी प्रियतमा को देखते हो तो उसे आश्वासन देना और तब माधव की दशा कहना; इसी प्रकार—कृत्यं घटेत सुहृदो यदि तत्कृतं स्यात् ।

द्र०—यह ध्यान देने योग्य है कि 'चेद्' कभी भी वाक्य के आरम्भ में नहीं प्रयुक्त होता ।

२०६. हेतुहेतुमद्भाव वाले वाक्यों में प्राय: विधिलिङ् के स्थान पर वर्तमान या सामान्य भविष्यत् काल का प्रयोग होता है; जैसे—यदि स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुः (भर्तृ० ३।६७) यदि स्वामी जगकर तुम्हें देखेंगे तो क्रुद्ध होवेंगे; न चेद् ब्रवीषि प्रश्नानश्नामि त्वां (दशकु० १।६) यदि तुम मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं देते हो तो मैं तुम्हें खा जाऊँगा। कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति (सि० कौ०) यदि वह कृष्ण को प्रणाम करेगा तो सुखपूर्वक रहेगा ।

द्र०—(क) कभी-कभी पूर्ववर्ती उपवाक्य में वर्तमान काल और अनुवर्ती उपवाक्य में विधिलिङ् का प्रयोग होता है; जैसे—'यदि तस्य प्राणविपत्तिरुपजायते तदपि महदेनो भवेत् (काद० १६०) यदि उसकी मृत्यु होती है तो वह भी एक बहुत बड़ा पाप होगा'; इसी प्रकार—क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ (भवेत्) (रघु० ८।८७) ।

(ख) नम्रतापूर्वक भाषण करने में अनुवर्ती उपवाक्य में विधिलिङ् के स्थान पर आज्ञार्थक लोट् लकार का प्रयोग होता है; जैसे—'न चेदन्यकार्यातिपाती गृह्यतामातिथेयसत्कारः (शाकु० १) यदि इससे किसी कार्य में विघ्न नहीं पड़ता तो आप अतिथिसत्कार का आनन्द लें ।'

(ग) जब हेतु बताने वाला उपवाक्य स्वीकारात्मक और निश्चयात्मक होता है, क्रिया के स्वीकार सूचक रूप द्वारा व्यक्त होता है या जब वाक्य के दोनों उपवाक्य 'तथ्यों' का वर्णन करते हैं तब विधिलिङ् के स्थान पर वर्तमानकाल का प्रयोग होता है; जैसे—'यदि वर्षा होती है तो हम बाहर नहीं जा सकते' यदि देवो वर्षति तर्हि वयं बहिर्गन्तुं न शक्नुमः ('देवो वर्षेत्' नहीं होगा) ।

अभ्यास

१. वयस्य, किं परमार्थत एव देव्या व्रतनिमित्तोऽयमारम्भः स्यात् ।
(विक्रमो० ३)

२. यदि त्वामीदृशमैक्ष्वाको राजा रामभद्रः पश्येत्तदाऽस्य हृदयं स्नेहेनाभिष्यन्देत् । (उत्तर० ५)

३. देव, यदि चन्द्रमस्युष्मा, दहने वा शीतलत्वमंशुमालिनि वा तमः सम्भाव्यते, ततो युवराजेऽपि दोषः । (काद० २८६)

४. यदि मे सहसा दर्शनपथान्नापयाति, नारोहति वा कैलासशिखरं, नोत्पतति गगनतलं, सर्वमेतदेनामुपसृत्य पृच्छामि । (काद० १३२)

५. लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियम् ।
श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् ॥ (शाकु० ३)

६. परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥ (चाण० १८)

७. अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेदवक्षयात् ।
रक्षितं वर्द्धयेत्सम्यग् वृद्धं तीर्थेषु निक्षिपेत् ॥ (हितो० २)

८. उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ (गीता० ३।२४)

९. भवेदभीष्मद्रोणं धृतराष्ट्रबलं कथम् ।
यदि तत्तुल्यकर्माय भवान् धुर्यो न युज्यते ॥ (वेणी० ३)

१०. तन्नो देवा विधेयासुर्येन रावणवद्वयम् ।
सपत्नांश्चाधिजीयास्म संग्रामे च मृषीमहि ॥ (भट्टि० १९।२)

११. आददीध्वं महार्हाणि तत्र वासांसि सत्वराः ।
उद्धुनीयात् सत्केतून् निर्हरेताग्र्यचन्दनम् ॥ (वही ८)

१२. नावकल्प्यमिदं ग्लायेद्यत्कृच्छ्रेषु भवानपि ।
न पृथग्जनवज्जातु प्रमुह्येत् पण्डितो जनः ॥ (भट्टि० १९।१७)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

अपि नामोर्वशी—

१. गूढा नूपुरशब्दमात्रमपि मे कान्तं श्रुतौ पातयेत्
पश्चादेत्य शनैः कराम्बुजवृते कुर्वीत वा लोचने ।
हर्म्येऽस्मिन्नवतीर्य साध्यसवशान्मन्दायमाना बला-
दानीयेत पदात्पदं चतुरया सख्या ममोपान्तिकम् ॥ (विक्रमो० ३)

२. इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात् ।
क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥
(कुमार० ५।५)

३. फलार्थी नृपतिर्लोकान् पालयेद्यत्नमास्थितः ।
दानमानादि तोयेन मालाकारोऽङ्कुरानिव ॥ (पंच० १।८)

४. कौर्मं संकोचमास्थाय प्रहारानपि मर्षयेत् ।
प्राप्तकालं तु नीतिज्ञ उत्तिष्ठेत् कृष्णसर्पवत् ॥ (हितो० ३)

५. किं वा तवात्यन्तवियोगमोघे कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेऽस्मिन् ।
स्याद्रक्षणीयं यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तरायः ॥ (रघु० १४।६५)

६. प्रसह्य मणिमुद्धरेत् मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्
समुद्रमपि संचरेत् प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।
भुजंगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् । (भर्तृ० २।४)

७. अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्यात्सानुरागेण कः
प्रज्ञाविक्रमशालिकोऽपि हि भवेत् किं भक्तिहीनात् फलम् ।
प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च ॥ (मुद्रा० १)

८. स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेद् अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥ (रघु० ८।४६)

अनुवाद कीजिए :—

१. उसके यह सोचते-सोचते कि मेरा अभीष्ट मनोरथ किस प्रकार सिद्ध होगा सारी रात बीत गई ।
२. इस शोक-सागर में मग्न होने पर भला उसे चैन कैसे मिल सकती है ?
३. सम्भव है कि उसका दुःख प्रेम के प्रभाव से उत्पन्न हुआ हो ।
४. तुम्हें अपने माता पिता और गुरुओं की आज्ञा का पालन करना चाहिए, भले आदमियों की संगति करनी चाहिए और सदा ईश्वर की महानता का विचार करना चाहिए ।
५. यदि तुम इस गहन अन्धकार में बाहर जाकर वाटिका से मेरे लिये पुष्प ले आओगे तो मैं तुम्हें निर्भय मन वाला व्यक्ति मानूँगा ।

६. यदि उसका हृदय पत्थर का भी होता तब भी वह उस स्त्री की हृदय-विदारक दशा देखकर दयार्द्र हो जाता ।

७. उस विलक्षण वर्णन को सुनकर मैं हतप्रभ हो गया कि आगे क्या कहूँ या करूँ ।

८. लोभी व्यक्ति को धन देकर और मूर्ख व्यक्ति को उसकी रुचि के अनुसार चलकर जीते ।

९. सूर्य के अतिरिक्त दूसरा कौन रात्रि के अन्धकार से मलिन आकाश को स्वच्छ कर सकता है ?

१०. यदि गरुड भी मुझसे पहले चलें तो रथ की इस गति से मैं उसे भी मात कर दूँ ।

११. ऐसा हुआ होता कि धूर्त चाणक्य नन्द वंश के पक्ष में हो गये होते !

१२. मैं आशा करता हूँ ('कच्चित्' का प्रयोग कीजिए) कि आपकी धार्मिक क्रियाएँ निर्विघ्न चल रही हैं ।

पाठ १९

अनद्यतन भूत (लङ्), परोक्षभूत (लिट्) और सामान्य भूत (लुङ्)

२०७. अंग्रेजी में भूतकाल को बनाने के लिए केवल एक रूप है; वह है सामान्य भूत (Past Indefinite) (अंग्रेजी क्रिया पर हावर्ड की टिप्पणी पृ० १२); जैसे—मैं चला I walked संस्कृत में भूतकाल को बताने वाले तीन लकार हैं : १ अनद्यतन भूत (लङ् लकार), २ परोक्षभूत (लिट् लकार) और ३ सामान्यभूत (लुङ्-लकार)। इनमें से प्रत्येक का मूलतः एक विशिष्ट अर्थ था। प्राचीन रचनाओं में या उन रचनाओं में, जिनके समय में संस्कृत को बोलचाल की भाषा मानने का हमें प्रमाण मिलता है, इनका प्रयोग उनके ठीक-ठीक विशिष्ट अर्थों में किया गया है; आगे चलकर जैसे-जैसे संस्कृत बोलचाल से दूर होती गई लेखकों ने भूतकाल के तीनों लकारों का मनमाना प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। जिन अर्थों में इनका मौलिक रूप में प्रयोग होता था वे निम्न-लिखित हैं :—

पाणिनि के अनुसार अनद्यतनभूत (लङ् लकार) आज के पहले किये गये कार्य का बोध कराता है (अनद्यतने लङ्)। परोक्षभूत (लिट् लकार) ऐसे कार्य का बोध कराता है जो आज से पहले हुआ हो और जिसे वक्ता ने देखा हो (परोक्षे लिट्)। सामान्यभूत (लुङ् लकार) केवल अनिश्चितरूप में या सामान्य रूप में भूतकाल का बोध कराता है और किसी विशिष्ट समय का संकेत नहीं करता। आज से पहले किये गये कार्य को परोक्षभूत (लिट्) या अनद्यतनभूत (लङ्) द्वारा व्यक्त करते हैं। सामान्यभूत (लुङ्) ऐसे कार्य का बोध कराता है जो कुछ ही देर पहले हुआ हो, या यों कह लीजिए कि आज ही हुआ हो, अथवा वर्तमान में किये जाने वाले कार्य से सम्बन्ध रखता हो। अतएव सामान्य भूत केवल भूतकाल में किसी कार्य के पूर्ण होने का सामान्य अर्थ रखता है और उसी दिन (आज ही) कुछ देर पहले हुए कार्य का भी बोध कराता है। प्रायः बहुत प्राचीन काल की कथाओं को कहने के लिए, अनद्यतनभूत (लङ्) और परोक्षभूत (लिट्) का व्यवहार होता है

और सामान्यभूत का प्रयोग कुछ देर पहले हुए कार्यों से सम्बद्ध कथोपकथन और वार्तालाप में होता है; किन्तु इसका प्रयोग निश्चित काल वाले भूतकाल का बोध कराने के लिए या घटनाओं का वर्णन करने के लिए नहीं होता।[1] इस प्रकार समूचे 'पुरुषसूक्त' (ऋग्वेद १०।६०) में केवल अनद्यतनभूत या परोक्षभूत का प्रयोग किया गया है और 'ऐतरेय ब्राह्मण' में तात्कालिक भूतकाल के कार्यों को सामान्यभूत (लुङ् लकार) द्वारा वर्णित किया गया है; जैसे—**स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशांगुलं, गावो ह जज्ञिरे तस्मात्; अजनि ते वै पुत्रो यजस्व मामनेनेति।** किन्तु बाद के संस्कृत लेखकों ने अनद्यतनभूत, परोक्षभूत और सामान्यभूत का अन्तर नहीं समझा और इन तीनों का मनमानी ढङ्ग से केवल भूतकाल का कार्य बताने के लिये प्रयोग किया, चाहे वह कार्य हाल में हुआ हो, चाहे बहुत पहले हुआ हो और वक्ता द्वारा न देखा गया हो; जैसे—**तदाहं किमकरवं क्वागमं किं व्यलपमिति सर्वमेव नाज्ञासिषम्।** (काद० १६६)

२०८. **अनद्यतनभूत (लङ्)** का सामान्य प्रयोग के अतिरिक्त हाल ही में हुए कार्य के विषय में प्रश्न पूछने के लिये प्रयोग किया जाता है; जैसे—**अगच्छत्किं स ग्रामं** 'क्या वह गाँव को गया ?' किन्तु जब बहुत पहले के समय का बोध कराना होता है तो केवल परोक्षभूत (लिट्) का प्रयोग करना चाहिए; जैसे—**कंसं जघान किं** (सि० कौ०) क्या उसने कंस को मार डाला ?

२०९. **परोक्षभूत (लिट्)** उत्तमपुरुष में परोक्षभूत का रूप किसी मानसिक विकार या अचेतन दशा का बोध कराता है, अतएव इसके उत्तम पुरुष रूप का प्रयोग इन अर्थों से भिन्न अर्थों में नहीं करना चाहिए, जैसे—**बहु जगदपुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहं** (शिशु० ११।३९) मत्त होकर वह उनके समक्ष बहुत कुछ बकता रहा।

(क) इसका प्रयोग उत्तमपुरुष में भी होता है—जब किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई बात कह कर फिर उसके विपरीत कथन द्वारा सच्ची बात किसी से छिपाई जाय; जैसे—**कलिंगेष्ववात्सीः किं** क्या तुम कलिंग देश में रहे ? **नाहं कलिंगाज्जगाम** (सि० कौ०) मैं कलिंग देश में नहीं गया था।

---

१. इन तीनों भूतकालीन रूपों का विस्तृत अन्तर जानने के लिए देखिए, प्रो०—आर० जी० भण्डारकर का 'सेकेण्ड बुक आफ संस्कृत' प्रथम संस्करण का आमुख।

२१०. सामान्यभूत (लुङ् लकार) तात्कालिक अनिश्चित भूतकाल के सामान्य अर्थ के अतिरिक्त इस लकार से किसी कार्य के 'निरन्तर होने' का भाव भी निकलता है। इस अर्थ में अनद्यतनभूत (लङ्) का व्यवहार नहीं हो सकता। जैसे—ब्राह्मणेभ्यो यावज्जीवमन्नमदात् (न कि 'अददात्') वह जीवन भर ब्राह्मणों को अन्न देता रहा।

(क) जब 'पुरा' (पहले) 'स्म' के साथ संयुक्त नहीं होता तब अनद्यतनभूत, परोक्षभूत, सामान्यभूत या वर्तमान काल का प्रयोग किया जा सकता है; जैसे—वसन्तीह पुरा छात्रा अवात्सुरवसन्नूषुर्वा' यहाँ पर पहले शिष्य रहते थे। किन्तु 'पुरास्म' के साथ केवल वर्तमान काल होता है; जैसे—यजति स्म पुरा, उसने पहले यज्ञ किया था।

२११. 'मा' या 'मा स्म' के बाद सामान्यभूत (लुङ्) के आगम 'अ' को हटा दिया जाता है। मध्यमपुरुष में जब इस लकार के रूप का प्रयोग इस प्रकार बिना आगम के होता है तो उसका अर्थ लोट् लकार का हो जाता है और उत्तम पुरुष तथा प्रथम (अन्य) पुरुष में इसका अर्थ अंग्रेजी के may या might के साथ that का या केवल may का होता है। जैसे—वयस्य मा कातरो भूः (मालवि० ४) मित्र, डरो मत। भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः (शाकु० ४) पति द्वारा अपमानित किये जाने पर कुपित मत होना, उनके विपरीत आचरण मत करना।

मा मूमुहत्खलु भवंतमनन्यजन्मा।
मा ते मलीमसविकासघना मतिर्भूत् ॥

इत्यादि नन्विह निरर्थकमेव…(मालती० १)

स्वयं उत्पन्न होने वाला कामदेव तुम को मोहित न करे, यह तुम्हारा मन कुत्सित विचारों से युक्त न होवे—इस विषय में यह या ऐसी बातें कहना व्यर्थ है।

अभ्यास

१. तपोवनवासिनामुपरोधो माभूत्। (शाकु० १)
२. नरपतिराहारं निर्वर्त्य आस्थानमण्डपमयासीत्। तत्र चावनिपतिभिरमात्यैर्मित्रैश्च सह तास्ताः कथाः कुर्वन् मुहूर्तमिवासां चक्रे। (काद० १७)

---

१. क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः (३।३।१३५)

३. शुकनासोऽपि महान्तं कालं तं राज्यभारमनायासेनैव प्रज्ञाबलेन बभार। यथैव राजा सर्वकार्याण्यकार्षीत्तद्वदसावपि द्विगुणितप्रजानुरागञ्चकार।
(काद० ५८)

४. आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां
ये व्यवहारास्तेषु मा संशयो भूत्। (उत्तर० ४)

५. जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्॥ (रघु० १।२१)

६. अभिगतपरमार्थान् पण्डितान् मावमंस्थाः
तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि। (भर्तृ० २।१७)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. चण्डवर्मा प्राणैरेनं न व्ययूयुजन्। अपि त्वनीनयदपनीताशेषशल्यमकल्पसंधो बन्धगगृहमजीगणच्च गणकसंघैरद्यैव क्षपावसाने विवाहनीया राजदुहितेति।
(दशकु० २।१)

२. दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्॥
(रघु० ३।१४)

३. मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरःसरौ।
अनुभावविशेषात्तु सेनापतिवृताविव॥ (रघु० १।३७)

४. भूयस्तपोव्ययो मा भूद्वाल्मीकेरिति सोऽत्यगात्।
मैथिलीतनयोद्गीतनिःस्पन्दमृगमाश्रमम्॥ (रघु० १५।३७)

५. क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥ (गीता० २।३)

अनुवाद कीजिए :—

१. जब मैंने जाना कि मेरे मित्रों ने मुझे नींद में बड़बड़ाते हुए सुन लिया है तब मैं लज्जित हुआ।

२. इस विषय में चिन्तित मत होओ (भू), तुम्हारी अनुपस्थिति में मेरे पिता तुम्हारे बच्चे की देखभाल करेंगे (चिन्त्)।

३ः उसने पूरा दिन कभी उनके साथ शास्त्रीय विषयों में वार्तालाप करके और कभी चित्र बनाने में बिता दिया।

४. तुमने मेरी पुस्तक क्यों नष्ट की? नहीं, श्रीमान्, मैंने तो उसे देखा तक नहीं।

५. जब मैं उसको देखने गया तब मैंने उसे घर नहीं पाया।

६. हमारे पिताने सम्पूर्ण पैतृक सम्पत्ति बाँट दी है जिससे हम आगे चलकर परस्पर कलह न करें।

७. राजा ने सभी आश्रमों के चारों ओर अपने रक्षक लगा रखे हैं (स्थापय् लुङ्) जिससे तपस्वियों की तपस्याओं में विघ्न न पड़े (अर्द् का लुङ् कर्मवाच्य)।

८. मैं यह जानकर प्रसन्न हूँ कि निर्धनों की दशा सुधारने में तुम्हारे प्रयत्न सफल हुए हैं।

९. वादी के सभी साक्षी आ गये हैं, अतएव मुकदमे की सुनवाई प्रारम्भ होनी चाहिए।

१०. अनेक वर्षों तक शिकार खेलने में अपना जीवन व्यतीत कर अन्त में संयोग वश वह एक भयंकर व्याघ्र के मुख का शिकार बना।

—:०:—

पाठ २०

भविष्यत् काल के दो लकार ('लुट्' एवं 'लृट्') और क्रियातिपत्ति (लृङ्)

२१२. अंग्रेजी में भविष्यत्काल का बोध will या shall के प्रयोग द्वारा कराया जाता है। संस्कृत में भविष्यत् काल के कार्य को बताने के लिए क्रियाओं के दो भिन्न प्रकार के रूप या लकार होते हैं; प्रथम या अनद्यतन भविष्य (लुट् लकार) और द्वितीय या सामान्य भविष्य (लृट् लकार)। इन दोनों का मौलिक अन्तर लगभग वही है जो अनद्यतनभूत काल और सामान्य भूतकाल में होता है; भेद केवल इतना है कि अनद्यतन भूत और सामान्य भूत बीते हुए समय के कार्य का निर्देश करते हैं जबकि अनद्यतन भविष्य और सामान्य भविष्य आने वाले समय के कार्य का बोध कराते हैं; दूसरे शब्दों में प्रथम या अनद्यतन भविष्य उस कार्य का बोध कराता है जो आज न होने वाला हो, जबकि द्वितीय या सामान्य भविष्य सामान्य रूप से एक अनिश्चित भविष्यत्काल के कार्य का और निकट भविष्य में होने वाले कार्य का भी बोध कराता है। इस प्रकार अनद्यतन भविष्यकाल (लुट्) दूर भविष्य में आने वाले समय की ओर संकेत करता है, आज के समय की ओर नहीं। इसके विपरीत सामान्य भविष्यत् (लृट्) अनिश्चित भविष्य काल, आज के आने वाले समय और तात्कालिक भविष्य के समय का बोध कराने के लिये प्रयुक्त किया जाता है; जैसे—**पंचषैरहोभिर्वयमेव तत्र गन्तारः** (मुद्रा० ५) हम भी वहाँ पाँच या छः दिनों में जायँगे, **एते···उन्मूलयितारः कपिकेतनेन** (किरात० ३।२२), कपिध्वज अर्जुन द्वारा उनका भी समूल नाश कर दिया जायगा; **यास्यत्यद्य शकुन्तला** (शाकु० ४) आज शकुन्तला जायगी; **सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः** (मेघ० ६) देखने में सुन्दर तुझे आकाश में बलाका पक्षी देखेंगे (किसी अनिश्चित भविष्यत्काल में)। लेखकों ने इन दो भविष्यत्कालों के विषय में उस प्रकार की मनमानी नहीं बरती है जिस प्रकार कि भूतकाल के रूपों में दिखाई पड़ती है। अनद्यतन भविष्यत् (लुट्) का प्रयोग बहुत कम होता है, और जहाँ इसका प्रयोग होता है वहाँ यह सामान्यतः सुदूर भविष्य के कार्य का संकेत करता है; जबकि सामान्य

भविष्य (लृट्) का प्रयोग किसी भी अनिश्चित भविष्यत्कालीन कार्य को सूचित करने के लिए होता है ।

२१३. जब किसी भविष्यत्कालीन क्रिया की सन्निकटता प्रदर्शित करनी होती है तब वर्तमानकाल या भविष्यकाल का प्रयोग हो सकता है; जैसे—कदा गमिष्यसि—एष गच्छामि, गमिष्यामि वा (सि० कौ०) कब जाओगे ? मैं अभी जाऊँगा ।

२१४. [1]जब हेतुहेतुमद् रूप द्वारा आशा व्यक्त की जाती है तब भविष्यकाल का बोध कराने के लिए सामान्य भूत, (लुङ्), वर्तमान (लट्) या सामान्य भविष्य (लृट्) का प्रयोग दोनों उपवाक्यों में होता है; जैसे—**देवश्चेद्वर्षीद् वर्षति वर्षिष्यति वा धान्यमवाप्स्म वपामो वप्स्यामो वा** (सि० कौ०) यदि वर्षा होती तो हम अन्न बोते ।

२१५. कभी-कभी किसी से भद्रतापूर्वक कोई कार्य करने के लिए कहते समय आज्ञा (लोट्) के अर्थ में सामान्य भविष्य (लृट्) का प्रयोग होता है; जैसे—**तदा मम पाशांश्छेत्स्यति** (हितो० १) बाद में मेरे बन्धनों को काटना; इसी प्रकार **पश्चात्सरः प्रति गमिष्यसि मानसं तत्** (विक्रमो० ४); यह अंग्रेजी के इस प्रकार के आदरसूचक अभिव्यक्तियों के तुल्य है : you will see me at the station tomorrow at twelve noon. आप मुझे कल बारह बजे दोपहर को स्टेशन पर देखेंगे ।

२१६. क्रियातिपत्ति का प्रयोग उन हेतुसूचक वाक्यों में होता है, जिनमें कार्य के 'न होने' का भाव हो, या जहाँ पूर्ववर्ती कथन की असत्यता बताई गई हो । यह अंग्रेजी के Pluperfect Conditional के समान है और क्रियातिपत्ति (लृङ्) का प्रयोग पूर्ववर्ती और अनुवर्ती दोनों ही उपवाक्यों में होना चाहिए; जैसे—**यदि सुरभिमवाप्स्यस्तन्मुखोच्छ्वासगन्धं तव रतिरभविष्यत्पुण्डरीके किमस्मिन्** (विक्रमो० ४) यदि तुमने उसके श्वास की सुगंधि का अनुभव किया होता (जिसे तुमने स्पष्टतः नहीं किया है) तो क्या तुम कभी इस कमल को पसन्द करते ?

भट्टि ने क्रियातिपत्ति का प्रयोग बड़े विस्तृत क्षेत्र में किया है, किन्तु इसे प्रौढ प्रयोगों द्वारा समर्थन प्राप्त नहीं है ।

---

१. आशंसायां भूतवच्च (३।३।१३२) ।

टिप्पणी—संस्कृत क्रियातिपत्ति (लृङ्) का प्रयोग उन हेतुसूचक वाक्यों में नहीं करना चाहिए, जिनमें केवल यह भाव हो कि किसी कल्पित दशा में इस प्रकार का परिणाम होगा; जैसे—'यदि वह यहाँ होता तो अपने देश की बहादुरी के साथ रक्षा करता।' 'यदि मैं तुम्हारी इस योजना से सहमत हो सकता तो मैं जीने के बजाय मर जाता।' ऐसे वाक्यों का अनुवाद करते समय विधिलिङ् का प्रयोग किया जाता है। जैसे—यदि सोऽत्र सन्निहितो भवेत्तर्हि स्वदेशं वीरवद्रक्षेत्।

कालों और वृत्तियों के प्रयोग पर अतिरिक्त विचार

२१७. वर्तमान, भूत और भविष्यकाल के विविध रूपों की जटिलताएँ एवं सूक्ष्मताएँ संस्कृत में नहीं उपलब्ध होतीं। केवल एक मुख्य काल होता है और विभिन्न रूप प्राय: उसी काल द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। अंग्रेजी में भी अपूर्ण भविष्यकाल का कर्मवाच्य (Future Progressive Passive) और कार्य के निरन्तर होने की सूचना देने वाले रूपों Future Progressive Passive continuous) की उत्पत्ति आधुनिक काल में हुई है और उनका प्रयोग अधिक नहीं होता। इस कारण इन कालों के बहुविध रूपों का ठीक उनके समकक्ष लकार में अनुवाद करने में सामान्यत: संस्कृत के विद्यार्थी को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। आगे के अधिकरणों में इस विषय पर कुछ विचार किया गया है और इसके पहले के तीन पाठों में जो कुछ कहा जा चुका है उसी का विस्तार के साथ विवेचन किया गया है।

वर्तमान, भूत और भविष्यकाल

२१८. जैसा कि पहले कहा जा चुका है सामान्य वर्तमान काल (Present Iudefinite) द्वारा व्यक्त किये जाने वाले सभी प्रकार के भाव संस्कृत में आते हैं। (देखिए, अधिकरण १८६) अंग्रेजी का भूतकाल (Past Tense) भी, कम से कम प्राचीन संस्कृत लेखकों के प्रयोगों के अनुसार भूतकाल के कार्य को व्यक्त करने वाले अनद्यतन (लङ्), परोक्ष (लिट्) और सामान्य (लुङ्) भूतकाल इन तीनों में किसी के द्वारा व्यक्त किया जाता है; और भविष्यकाल का बोध सामान्यत: संस्कृत के दो भविष्यकालीन लकारों (लुट् और लृट्) द्वारा तथा कभी-कभी विधिलिङ् (अधिकरण १९८) द्वारा होता है। किन्तु विभिन्न कालों के विविध रूपों का विचार संस्कृत के लेखकों ने नहीं

किया है; यदि उनका संस्कृत में अनुवाद करना हो तो उनके लिए दूसरे रूपों का प्रयोग करना पड़ता है।

२१६. कार्य के निरन्तर होते रहने का बोध कराने वाले अपूर्ण वर्तमान (Present Continuous) अपूर्ण भूत (Past Continuous) और अपूर्ण भविष्य (Future Continuous) का अनुवाद सामान्यतः संस्कृत में कालों के सामान्य रूपों को रखकर किया जा सकता है; जैसे—वह अपना पाठ पढ़ रहा है (he is studying his lesson) **स पाठमधीते**; न कि **अधीयानोऽस्ति**; क्योंकि नैरन्तर्यसूचक (progressive या continuous) रूप वस्तुतः वर्तमान काल ही हैं (वेन का व्याकरण, पृ० १८६) 'बच्चे अब खेल रहे हैं (The boys are now playing) बालका अधुना क्रीडन्ति; सूर्य चमक रहा था (The sun was shining) '**रविरतपत्**' (न कि तपन् आसीत्) वह अपना पाठ याद कर रहा होगा (he will be preparing his lesson) **स पाठमध्येष्यते**।

द्र०—जहाँ अधिकरण १४५ में बताए गये नियम के समान क्रिया का निरन्तर होने या सातत्य का भाव व्यक्त करना होता है, वहाँ 'आस्' के साथ वर्तमान कृदन्त ('शतृ' और शानच् प्रत्ययान्त) का प्रयोग होता है। जब इन क्रियासातत्य सूचक रूपों का प्रयोग आश्रित उपवाक्यों में होता है, तब इस वर्तमानकालिक कृदन्त का 'भावे सप्तमी' का रूप सुविधा के साथ प्रयोग में लाया जा सकता है :—While the minister was speaking a messenger entered the assembly (जब मन्त्री बोल रहे थे तब एक सन्देशवाहक ने सभा में प्रवेश किया —**भाषमाणेऽमात्ये कश्चिद्दूतः सभां प्राविशत्**।

२२०. जिन रूपों में जोर देकर कहने या निश्चितता का भाव होता है और जो केवल वर्तमान और भूतकाल में होते हैं उनका अनुवाद एव, नूनं, खलु या निश्चितता प्रकट करने वाले शब्दों का प्रयोग करके सामान्य रूपों (सामान्य वर्तमान या सामान्य भूतकाल) द्वारा किया जाता है; जैसे—I do consider thee guilty (मैं तो तुम्हें निश्चित ही अपराधी मानता हूँ) **अहं त्वामपराधिनं मन्ये खलु-एव** या '**नूनं त्वा......मन्ये**' he did tall a lie (उसने झूठ तो जरूर बोला) '**सोऽसत्यभाषतैव**' या '**अभाषत खलु**'।

Perfect anp its Continuos Forms
(पूर्ण तथा उसके क्रियासातत्य सूचक रूप)

२२१. अंग्रेजी के Present Perfect (पूर्ण वर्तमान) को संस्कृत में

सामान्यभूत (लुङ् लकार) द्वारा या उस धातु के भूतकालिक कृदन्त (क्तवतु प्रत्ययान्त) द्वारा व्यक्त किया जाता है; जैसे—'जो कुछ पाप मैंने दिन में किये हैं' यदह्ना पापमकार्षम्; मैंने अपना कार्य कर लिया है अहं मम कार्यं संपादितवान्; कभी-कभी इसे अनद्यतन भूत (लङ्) या परोक्षभूत (लिट्) द्वारा भी व्यक्त करते हैं; जैसे—उसने अपना भाषण समाप्त कर लिया है, 'स भाषणमवसितवान्' या 'भाषणाद् व्यरंसीत्' या 'व्यरमत्' या 'विरराम' ।

२२२. आश्रित उपवाक्यों के पूर्णभूत (Past Perfect, Pluperfect) को 'भावे सप्तमी' या 'क्त्वा' प्रत्ययान्त शब्द द्वारा व्यक्त किया जाता है; जैसे—'जब वह चला गया तब मैं लौटा' तस्मिन्नपक्रान्तेऽहं प्रत्यागच्छम्; अपना पाठ तैयार कर चुकने के बाद मैं पाठशाला गया—पाठानधीत्य शालामगच्छम्; या कभी-कभी केवल भूतकालिक कृदन्त (क्त, क्तवतु प्रत्ययान्त) के प्रयोग से ही काम चल जाता है; जैसे—उससे, जो ऐसा कह चुका था, मैंने कहा कि अब जाओ—इत्युक्तवन्तं व्रज साधयेत्यहमब्रवम्; उसने उस घायल हुए को अच्छा किया—क्षतमचिकित्सत ।

२२३. पूर्ण भविष्य (Future Perfect) को क्रिया के भूतकालिक कृदन्त (क्त, क्तवतु प्रत्ययान्त) के साथ 'भू' धातु का विधिलिङ् का रूप जोड़कर व्यक्त किया जाता है; या उसकी अपेक्षा कर्मवाच्य के रूपों द्वारा अनुवाद करना अच्छा होता है; इस समय तक वह वहाँ चला गया होगा—'अनेन समयेन गतो भवेत्' या 'तेन तत्र गन्तव्यम्' ।

२२४. पूर्ण नैरन्तर्यसूचक रूपों (Persect Continuous) 'मैं करता रहा हूँ', 'मैं करता रहा था', 'मैं करता रहा हूँगा' का अनुवाद (क) समयवाचक शब्दों के योग में सामान्य वर्तमान, भूत या भविष्यकाल का प्रयोग करके किया जा सकता है, जैसे—तौ चिरान्निवसतः (हितो० १।२); (ख) आस्, वस् या स्था (देखिए १४५) के तत्तत् कालों के रूपों के साथ वर्तमानकालिक कृदन्त (शतृ, शानच् प्रत्ययान्त) के द्वारा या (ग) अधिक मुहावरेदार बनाने के लिए समयवाचक शब्दों के योग में कर्ता के विशेषण रूप में प्रयुक्त वर्तमानकालिक कृदन्त के षष्ठी विभक्ति के रूप द्वारा किया जाता है; जैसे—मैं इसे तीन दिनों से करता रहा हूँ—इदं कुर्वतो मम दिनत्रयं जातं । वह वहाँ कितने दिनों से निवास करता रहा है ? तत्र स्थितस्य तस्य कियान् कालो व्यतीतः ।

२२५. संभावना या इच्छा व्यक्त करने वाले रूपों, जैसे 'वह करने जा रहा है या करने वाला है'; 'वह करने वाला था', 'वह करने वाला होगा' का अनुवाद क्रिया के 'तुमुन्' प्रत्ययान्त रूप के साथ 'काम' या 'मन' शब्द जोड़कर किया जाता है (देखिए १८१); जैसे—**कर्तुकामोऽस्ति–बभूव–भविष्यति** वा और आश्रित उपवाक्यों में उनका अनुवाद भविष्यकालिक कृदन्त (स्यतृ, स्यमान प्रत्ययान्त) द्वारा भी किया जा सकता है। जब वह जाने वाला था तब मैंने उससे कहा—**गमिष्यन्तं, गन्तुं कामं तमहमेवमबोचम्।**

Will और Shall

२२६. अंग्रेजी में उत्तमपुरुष के साथ shall और मध्यमपुरुष तथा अन्यपुरुष में will साधारण भविष्य को व्यक्त करते हैं और इनका अनुवाद सामान्य भविष्य (लृट्) या विधिलिङ् द्वारा किया जा सकता है; जैसे—मैं इसे करूँगा (I shall do it) **अहं तत् कुर्यां या करिष्यामि,** He will go there (वह वहाँ जायेगा) **स तत्र गच्छेत या गमिष्यति।**

२२७. कर्ता के दृढ़ निश्चय को प्रदर्शित करने के लिये अंग्रेजी में उत्तमपुरुष के साथ will का प्रयोग होता है; इसे व्यक्त करने के लिये 'इच्छा करना' अर्थ की क्रियाओं के वर्तमान काल के रूप का प्रयोग करते हैं या सामान्यतः सामान्य भविष्यकाल का 'एव' या निश्चितता प्रकट करने वाले अन्य शब्दों के साथ प्रयोग करते हैं, जैसे I will do it (मैं इसे अवश्य करूँगा) **अहं तत्कर्तुमिच्छामि,** या '**अहं तत्करिष्याम्येव**' चाहे इसका परिणाम मृत्यु ही क्यों न हो, फिर भी मैं इसे निश्चय ही करूँगा—**यद्यपि तन्मृत्युपर्यवसायि भवेत् तथाप्यहं तत्करिष्याम्येव।**

२२८. मध्यमपुरुष और अन्यपुरुष के साथ shall का प्रयोग (१) 'आदेश' या 'धमकी' अथवा वक्ता का आत्म-निश्चय प्रकट करता है और इसका अनुवाद विधिलिङ् द्वारा या आज्ञा देना अर्थवाले किसी शब्द, जैसे 'आज्ञापय' द्वारा अथवा वक्ता को प्रेरणार्थक क्रिया का कर्ता बनाकर उसके भविष्यकालीन रूप द्वारा किया जाता है, जैसे पुत्र अपने पिता की आज्ञा का पालन करेगा, (The eon shall obev his father) **पुत्रः पितुराज्ञामनुरुध्येत,** तुम किले को जाओगे Thou shall go to the castle अर्थात् मैं तुम्हें किले में जाने का आदेश देता हूँ—**दुर्गं गन्तुं त्वामाज्ञापयामि,** He shalt do it वह इसे अवश्य करेगा—**अहं तं तत्कारयामि, अहं तं गमयिष्यामि** इत्यादि, या कभी-कभी 'एव', 'अवश्य' इत्यादि

के साथ या इनके विना भी कृत्यप्रत्ययों (तव्यत्, अनीयर्, यत, ण्यत्) का प्रयोग करके अनुवाद किया जाता है, जैसे—Thou shalt not kill him तू उसे नहीं मारेगा—**त्वया स नैव हन्तव्यः**, Thau shalt not move even a step from this place (तू उस स्थान से एक पग भी नहीं हटेगा) **त्वयास्मात्स्थानात्पदात्पदमपि न दातव्यम्** (२) जब shall प्रतिज्ञा प्रकट करता हो तब इसका अनुवाद विधिलिङ् या सामान्य भविष्य (लृट्) के साथ कोई निश्चयार्थक शब्द रखकर किया जाता है, जैसे he shall be my prime minister मैं वचन देता हूँ कि वह मेरा प्रधान अमात्य होगा, **'स मम प्रधानसचिवो भवेत् (भविष्यति) इत्यहं निश्चयेन कथयामि'** या **तं प्रधानसचिवं करिष्याम्येव ।**

२२९. अप्रत्यक्ष कथनों में सभी पुरुषों के सन्दर्भ में भविष्यकाल को व्यक्त करने वाले shall का अनुवाद सामान्य भविष्य (लृट्) या विधिलिङ् द्वारा किया जा सकता है। जैसे You say you shall do it (तुम लोग कहते हो कि हम इसे करेंगे) **वयं तत्करिष्यामः, कुर्याम् इति यूयं भणथ।** कर्ता के निश्चय को सूचित करने वाला और सभी पुरुषों में प्रयुक्त will का अनुवाद उसी प्रकार होगा जैसा २२७ में बताया गया है। He saye he will write (वह कहता है कि मैं अवश्य लिखूँगा) **अहमवश्यं लेखिष्यामीति स वदति ।**

२३०. जब will और shall उत्तम पुरुष के अतिरिक्त मध्यम तथा अन्य पुरुष के साथ प्रश्नवाचक वाक्यों में आते हैं और जिस व्यक्ति से प्रश्न पूछा जाता है उसके निश्चय या इच्छा को व्यक्त करते हैं तब यदि वे दूसरे व्यक्ति की इच्छा की ओर संकेत करते हैं तो विधिलिङ् या आज्ञा (लोट्) द्वारा उसका अनुवाद किया जाता है और यदि वे वाक्य के कर्ता की इच्छा की ओर संकेत करते हैं तो इच्छार्थक धातु का प्रयोग करके अनुवाद किया जा सकता है। जैसे—Shall I or he go ? (मैं या वह जायेगा ?) **'गच्छेयं किं' या 'गच्छानि किं' गच्छेत किं, गच्छतु किं;** shall you go ? क्या तुम जाना चाहते हो—**गच्छेत् किं गन्तुं शक्नुयात् किं;** will you or he vo ? (तुम जाना चाहोगे या वह जाना चाहेगा) **गन्तुमिच्छथ किं ? गन्तुमिच्छति किं ?** किन्तु जब प्रश्नवाचक में प्रयुक्त will केवल भविष्यत्काल का निर्देश करता हो तो सामान्य भविष्य (लृट्) का प्रयोग होता है, जैसे—क्या वह वहाँ जायेगा will he go there ? **तत्र गमिष्यति किं;** will you come to my house (क्या तुम मेरे घर आओगे) **मम गृहमागमिष्यथ किं ?**

Should और Would

२३१. Should अनिश्चित भविष्य, अनुग्रह या कर्तव्य को व्यक्त करता है, इसका अनुवाद विधिलिङ् द्वारा, या कृत्यप्रत्ययों (तव्यत्, अनीयर्, ण्यत्, यत्) से बने हुए शब्दों द्वारा किया जाता है। जब यह किसी सन्देह या अनिश्चय को प्रकट करता है, जैसे 'I should think so' (मैं ऐसा समझता हूँ) तब हम कह सकते हैं, 'इति मे वितर्कः, या मतिः'।

२३२. would जब अनिश्चय या इच्छा को व्यक्त करता है तब इसका अनुवाद विधिलिङ् (१९८) द्वारा किया जाता है, जब यह कोई आदत या प्रतिदिन किये जाने वाले कार्य को सूचित करता है तब केवल वर्तमानकाल (लट्) का प्रयोग करके इसका भाव व्यक्त करते हैं, जैसे—कालं नयति 'would prss his time' अपना समय बिताता, पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं (शाकु० ४) वह पहले पानी नहीं पिया करती थी, She would not drink water first, Would that he were Present काश ! वह यहाँ होता—यदि सोऽत्र सन्निहितः स्यात् तर्हि शोभनं भवेत्।

(क) प्रश्नवाचक वाक्यों में आए हुए 'would' और should का अनुवाद बहुत कुछ उसी तरह होता है जैसे will और shall का, उदाहरण— 'Should I or he go out ?' (क्या मैं बाहर जाऊँ ? क्या वह बाहर जावे ? बहिर्गच्छेयं-गच्छानि (गच्छेत् या गच्छतु) किं, would you do this क्या आप यह करेंगे—'यूयमेतत्करिष्यथ किं' या कर्तुमिच्छथ किं, जैसा भाव हो।

May (might) Can (Could)

२३३. जब May का प्रयोग 'संभावना', स्वीकृति और अभिप्राय के अर्थ में होता है तब इसे विधिलिङ् द्वारा अभिव्यक्त करते हैं : जैसे—अक्षैर्दीव्येयमिति प्रत्यहमत्रायामि I come here eveyday that I may Play at dice मैं यहाँ रोज आता हूँ जिसे मैं जुआ खेल सकूँ। किन्तु जब may 'इच्छा' व्यक्त करता है तो इसका अनुवाद विधिलिङ्, आज्ञा (लोट्) या आशीर्लिङ् द्वारा होता है।

२३४. Can (could) सदैव शक्ति या सामर्थ्य प्रदर्शित करता है, स्वीकृति नहीं और संस्कृत में इसे मुख्य क्रिया के तुमुन् प्रत्ययान्त रूप के साथ 'योग्य होना' अर्थ वाले शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं; जैसे—I can do it (मैं इसे करने में समर्थ हूँ) तत्कर्तुं शक्नोमि, समर्थः पारयामि, इत्यादि।

२३५. Might के लिये प्राय: विधिलिङ् का प्रयोग होता जैसे itmight he so (संभव हो यह ऐसा हो)–एवं स्यात् । कभी-कभी कृत्य प्रत्यय (तव्य, अनीयर्, ण्यत्) से निष्पन्न शब्दों द्वारा अनुवाद होता है : he might be my friend (सम्भव है कि वह मेरा मित्र हो) कदाचिदनेन मम मित्रेण भवितव्यम् ।

(क) might का प्रयोग जब पूर्णकाल (Persent tense) के साथ हुआ हो और इसका भाव 'संभावना' का हो तो इसे विधिलिङ् या भूतकालिक कृदन्त ('क्त' प्रत्ययान्त) द्वारा व्यक्त किया जा सकता है; जैसे—he might have done it संभव है उसने ऐसा किया होगा––तेनैतत्कृतं स्यात्—कर्तव्यं, इसी प्रकार I could have done मैंने इसे कर लिया होता––मयैतत्कर्तुं शक्यमासीत् (किन्तु न कृतम्) ।

Must और Ought

२३६. आवश्यकता, बाहरी प्रभाव और निश्चय या अनिवार्य निष्कर्ष के अर्थों में प्रयुक्त must को सदैव कृत्य प्रत्यय (तव्यत्, अनीयर्, यत्, ण्यत्) द्वारा व्यक्त करते हैं; जैसे—you must go तुम्हें अवश्य जानना चाहिए—त्वा गन्तव्यं; he must obey me उसे मेरी आज्ञा का पालन अवश्य करना चाहिए—अहं तेनानुरोद्धव्यः ।

२३७. Ought को भी उसी प्रकार व्यक्त किया जाता है; जैसे you ouht to learn it तुम्हें यह अवश्य पढ़ना चाहिए––त्वयेदं (अवश्यं) अध्येतव्यम्, और कभी-कभी 'अर्हं' के साथ 'तुमुन्' प्रत्ययान्त शब्द द्वारा व्यक्त किया जाता है । पूर्णकाल (Perfect tense) के साथ प्रयुक्त होने पर must और ought का अनुवाद भूतकालिक कृदन्त ('क्त' प्रत्ययान्त) के साथ विधिलिङ् द्वारा या कृत्य प्रत्यय (तव्यत्, अनीयर्, यत्, ण्यत्) निष्पन्न शब्दों द्वारा किया जाता है, जैसे—he must have come home (वह अवश्य घर आ गया होगा) स गृहमागतो भवेत्, या तेन गृहमागन्तव्यं, एवमनया प्रष्टव्यं (मालवि०४) उसे तुमसे ऐसा पूछना चाहिए था she ought to have asked you so; you ought to have told me this (तुम्हें यह मुझ से कहना चाहिए था)––इयं त्वया मह्यं कथितव्यम् ।

हेतुहेतुमद्भूत (The Subjunctive Mood)

२३८. अंग्रेजी में तीन मुख्य रूपों में हेतुहेतुमद्भूत (Subjunctive mood)

का प्रयोग होता है; वे हैं : वर्तमान भूत और पूर्णभूत के तुल्य काल(Pluperfect); जब हेतुहेतुमद्भूत का प्रयोग आदेश, परामर्श आदि अर्थ की क्रियाओं से युक्त आश्रित उपवाक्यों में वर्तमान काल के रूप में होता है; आशा करना, प्रार्थना करना अर्थ वाली क्रियाओं के बाद और lest (कहीं ऐसा न हो) के बाद प्रयोग होता है, तब संस्कृत में इसका अनुवाद विधिलिङ् या लोट् लकार से करना चाहिए; जैसे—I order that he be hanged (मैं आज्ञा देता हूँ कि वह लटका दिया जाय ; 'स शूलमारोप्येत' या 'शूलम् आरोप्यतां इत्यहमाज्ञापयामि'; I hope I come outsuccessful in this affair (मैं आशा करता हूँ कि मैं इस कार्य में सफल होऊँगा) अस्मिन्कार्ये विजयी भवेयमित्याशंसे, या अपि नाम विजयी भवेयं (२०३) Save her, lest her indisposition increases उसको बचाइए, कहीं ऐसा न हो कि उसकी अस्वस्थता बढ़ जाय—परित्रायतामेनां भवान् मा अस्या विकारो वर्धताम् ।

२३९. हेतुसूचक वाक्यों में, जिसमें दोनों ही उपवाक्यों में हेतुहेतुमद्भूत वर्तमानकाल द्वारा व्यक्त किया जाता है, इसका (हेतुहेतुमद्भूत—subjinctive) का अनुवाद अधिकरण २०६ के अनुसार किया जा सकता है; If you go I go. यदि तुम जाते हो तो मैं जाता हूँ यदि यूयं गच्छथ (गमिष्यथ, या गच्छेत्) तर्हि अहं गच्छामि (गमिष्यामि या गच्छेयं) If it rains we shall not be able to go out यदि वर्षा होती है तो हम बाहर नहीं जा सकेंगे—यदि देवो वर्षेत् (वर्षति, वर्षयिष्यति वा) तर्हि वयं बहिर्गन्तुं न शक्नुयाम (शक्ष्यामः) ।

२४०. जब हेतुहेतुमद्भूत भूतकाल के साथ हेतुसूचक वाक्यों में आता है तब दोनों उपवाक्यों में विधिलिङ् का प्रयोग किया जाता है; If he were here, he would accompany me (यदि वह यहाँ रहता तो मेरे साथ चलता) यद्यत्र स भवेत्तन्मया सहागच्छेत्; किन्तु जब भूतकालिक हेतुहेतुमद्भूत पूर्ववर्ती कथन का निषेध करे या उसे असत्य ठहरावे तब विधिलिङ् का प्रयोग नहीं हो सकता, अपितु क्रियातिपत्ति का प्रयोग होता है (२१६) जैसे If the book were in the library (as it is not) It should be given to you (यदि पुस्तक पुस्तकालय में होती—जैसा कि वह है नहीं—तो वह तुम्हें अवश्य दी जाती—यदि तत्पुस्तकं ग्रन्थालयेऽभविष्यत्तर्हि तद्युष्मभ्यम्

अदास्यत् । इस प्रकार इन तीन वाक्यों के अनुवाद करने में प्रथम दो में वर्तमान या विधिलिङ् का प्रयोग होगा अन्तिम में क्रियातिपत्ति का—

(१) If the book is (as I know it is) in the library, you may take it. यदि पुस्तक पुस्तकालय में है (जैसा कि मैं जानता हूँ कि वह है) तो तुम इसे ले सकते हो ।

(२) If it be (I am uncertain) theu yon may take it. यदि वह वहाँ है (मुझे ठीक मालूम नहीं) तो तुम उसे ले सकते हो ?

(३) If it were (as I know it is not) you may take it. यदि वह वहाँ रहती (जैसा कि मैं जानता हूँ वह है नहीं) तो तुम उसे ले सकते थे ।

२४१. भूतकालिक क्रियातिपत्ति (Pluperfect Conditional) को संस्कृत में सदैव क्रियातिपत्ति द्वारा व्यक्त किया जाता है । (देखिए अधिकरण २१६)

अभ्यास

१. तदाकर्ण्य दमनकश्चिन्तयामास । युद्धाय कृतनिश्चयोऽयं दृश्यते दुरात्मा । तद्यदि कदाचित्तीक्ष्णश्रृंगाभ्यां स्वामिनं प्रहरिष्यति तन्महाननर्थः संपत्स्यते । (पंच० १)

२. युवराज किं न जितं देवेन तारापीडेन यज्जेष्यसि । कानि द्वीपान्तराणि नात्मीकृतानि यान्यात्मीकरिष्यसि । कानि रत्नानि नोपार्जितानि यान्युत्पार्जयिष्यसि । (काद० ११७)

३. तौ चेद्राजपुत्रौ निरुपद्रवावर्धिष्येतामियता कालेन तवेमां वयोवस्थामस्प्रक्ष्येताम् । (दशकु० २।३)

४. तया देवतयास्मै स्वप्ने समादिष्टम् । उत्पत्स्यते तवैकः पुत्रो जनिष्यते चैका दुहिता । स तु तस्याः पाणिग्राहकमनुजीविष्यति । (दशकु० २।६)

५. नामधास्यत्कथं नागो मृणालमृदुभिः फणैः ।
आ रसातलमूलात्त्वमवालम्बिष्यथा न चेत् ।। (कुमार० ६।६८)

६. राजन्प्रजासु ते कश्चिदपचारः प्रवर्तते ।
तमन्विष्य प्रशमयेर्भवितासि ततः कृती ।। (रघु० १४।४७)

७. अकरिष्यदसौ पापमतिनिष्करुणैव सा ।
नाभविष्यमहं तत्र यदि तत्परिपन्थिनी ॥ (मालती० ६)

८. सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ॥ (शाकु० ७।४)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. भागुरायणः——कुमार, न कदाचिदपि शकटदासोऽमात्यराक्षसाग्रतोऽयं लेखो मया लिखित इति प्रतिपत्स्यते । अतोऽन्यल्लिखितमानीयतामस्य यतो वर्णसंवाद एवैतत् सर्वं विभावयिष्यति । (मुद्रा० ५)

२. रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति चक्रवालम् ।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥ (सुभाषित०)

३. परस्परेण स्पृहणीयशोभं, न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत् ।
अस्मिन् द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां विफलोऽभविष्यत् ॥
(कुमार० ७।२५)

४. यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ (गीता २।५२, ५३)

५. भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ (गीता० २।३५)

६. मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥ (गीता १८।५८)

७. परिणेष्यति पार्वतीं यदा, तपसा तत्प्रणवीकृतो हरः ।
उपलब्धसुखस्तदा स्मरं वपुषा स्वेन नियोजयिष्यति ॥ (कुमार० ४।४२)

अनुवाद कीजिए:—

१. सम्पूर्ण प्रजा को यह सूचना दे दी जानी चाहिए कि अबसे चन्द्रगुप्त राज्य के कार्यों को देखेंगे ।

२. यदि तुम केवल प्रयत्न करो तो तुम अपना अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त कर लोगे ।

३. ऋषि ने कहा—यह सब कलियुग में घटित होगा (सं+पद) जो अभी आने वाला है, और मनुष्य अनेक पाप करेंगे ।

४. यदि उस बालक की बचपन से सावधानी के साथ देखभाल की गई होती तो मैं निश्चय के साथ कहता हूँ कि वह इस बालक के बराबर हुआ होता ।

५. समृद्धि के दिनों में मनुष्य को सैकड़ों की संख्या में मित्र घेरे रहते हैं किन्तु विपत्ति में वे उसको छोड़ देते हैं ।

६. यदि राजा अपराधियों को दण्ड देने में शीघ्रता न बरते तो शक्तिशाली व्यक्ति निर्बलों को शिकार बना लें ।

७. यदि तुम और गोपाल यहाँ होते तो तुम लोग उस भयंकर दृश्य को देखना कथमपि सहन न कर सकते ।

८. एक बार एक बारहसिंहा ने अभिमान के साथ सोचा—यदि मेरी टाँगे मेरी सींगों के समान होतीं तो पृथ्वी पर कोई भी जानवर सुन्दरता में मेरी तुलना न कर सकता (तुल) ।

९. यदि राम वहाँ ठीक उस क्षण न पहुँच गया होता, तो सारा घर जल गया होता ।

१०. यदि उस समय मैं बिल्कुल तटस्थ न रहा होता तो राजा की नाराजगी का भागी बन गया होता ।

११. वह लौटकर आयेगा और हमारे साथ आनन्द से दिन बितायेगा, यह असम्भव ही समझो ।

१२. मैंने जितनी भक्ति से राजा की सेवा की यदि उसकी आधी भी भक्ति के साथ ईश्वर की सेवा की होती तो वह उसने मुझे नंगा करके शत्रु के हाथ में नहीं दिया होता ।

———

पाठ २१

अव्यय

अंग, अथ, अधिकृत्य, अपि, अयि, अये, अहह और अहो

२४२. पाणिनि की अष्टाध्यायी, 'अमरकोश' और वर्धमान के 'गणरत्न-महोदधि' में अव्यय के अन्तर्गत अनेक पद गिनाए गये हैं। उनमें से कुछ लघु संयोजक पदों के रूप में बहुत उपयोगी हैं और इस कारण उनका अर्थ ठीक-ठीक समझ लेना चाहिए। कुछ अत्यन्त प्रचलित अव्ययों का इस पाठ में और आगे के पाठों में विवेचन किया गया है।

२४३. [1]स्वतन्त्र रूप से 'अंग' का प्रयोग संबोधन के पद रूप में होता है: जैसे—**तन्मन्ये क्वचिदंग भृङ्गतरुणेनास्वादिता मालती** (गणरत्न०) अतएव, श्रीमन्, मैं सोचता हूँ कि मालती-पुष्प का कहीं किसी तरुण भृङ्ग ने रसास्वादन किया है। **अंग कच्चित्कुशली तातः** (काद० २२१); **प्रभुरपि जनकानामंग भो याचकस्ते** (महावीर० ३); या कभी-कभी आदरसूचक अव्यय पद के रूप में इसका प्रयोग होता है; जैसे—**अंग विद्वन्माणवकमध्यापय** (गणरत्न०) हे पण्डित! माणवक को पढ़ाइए।

(क) कभी-कभी 'अंग' का प्रयोग 'किं' के साथ होता है और तब इसका वही अर्थ होता है जो 'किमुत' या 'किं पुनः' (बात ही क्या?) का। जैसे—**तृणेन कार्यं भवतीश्वराणां किमंग वाग्घस्तवता नरेण** (पंच० १।१) धनी व्यक्ति को एक तिनके की भी जरूरत रहती है तो फिर वाणी और हाथों से युक्त मनुष्य की तो बात ही क्या कहनी?

२४४. [2]अथ का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में होता है:—

---

१. अंगपूजासंबोधनयोः—(गणरत्न०)

२. मंगलानंतरारंभप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ। (अमर०)

अथोथ स्यातां समुच्चये।
मंगले संशयारंभाधिकारानन्तरेषु च।
अन्वादेशे प्रतिज्ञायां प्रश्नसाकल्ययोरपि॥ (हे०)

मंगलसूचक अर्थ में जैसे—अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (शां० भा०) यहाँ से अब ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा आरम्भ होती है।

२. किसी कथन का प्रारम्भ बताने के लिए; अथेतदमारभ्यते द्वितीयं तन्त्रम् (पंच० २) अब यहाँ से दूसरा तन्त्र प्रारम्भ होता है।

३. 'उसके बाद' और 'तब' के अर्थ में—अथ प्रजानामधिपः प्रभाते वनाय धेनुं मुमोच—इसके बाद प्रजाओं के स्वामी राजा ने प्रातःकाल गाय को वन जाने के लिए खोला। प्रायः अथ का प्रयोग उपर्युक्त अर्थ में 'यदि' या 'चेद्' के साथ होता है :—न चेन्मुनिकुमारोऽयमथ कोऽस्य व्यपदेशः (शाकु० ७)।

४. प्रश्न पूछने में—अथ शक्तोऽसि भोक्तुम् (गणरत्न०); और प्रायः स्वयं प्रश्नवाचक शब्द के साथ अथ का प्रयोग होता है :—अथ सा किमाख्या राजर्षेः पत्नी (शाकु० ७)

५. 'और' तथा 'भी' के अर्थ में—भीमोऽथार्जुनः (गणरत्न०) भीम और अर्जुन, गणितमथ कलां कौशिकीम् (मृच्छ० १) गणित और कौशिकी कला।

६. 'यदि' 'ऐसा मानने पर' 'इस स्थिति में' के अर्थ में—अथ कौतुकमावेदयामि (काद० १४४) यदि तुम्हें उत्कण्ठा है तो मैं इसे कहूँगा; अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः (वेणी० ३) किन्तु यदि जीवों की मृत्यु निश्चित है।

७. 'सम्पूर्ण' 'सब' के अर्थ में—अथ धर्मं व्याख्यास्यामः (गण०) हम सम्पूर्ण धर्म का विवेचन करेंगे।

८. 'सन्देह' 'अनिश्चय' के अर्थ में—शब्दो नित्योऽथानित्य (गण०)

द्रष्टव्य—कोश 'अथ' का 'अधिकार' अर्थ भी बताते हैं परन्तु ऊपर के १ और २ तथा 'अधिकार' एक ही हैं उनमें भिन्नता नहीं है क्योंकि वे सभी कथन का आरम्भ सूचित करते हैं; इसी प्रकार अन्वादेश (उसी शब्द का वाक्य के परवर्ती अंश में पुनः प्रयोग) और प्रतिज्ञा को भी समझना चाहिए।

२४५. 'अथ' जब 'किं' के साथ संयुक्त होता है तो उस का अर्थ 'और क्या ?' 'हाँ' 'ऐसा ही' होता है; जैसे—शकारः—चेट, प्रवहणमागतम् चेटः—अथ किम् (मृच्छ० ८) शकार—क्या गाड़ी आ गई ? सेवक—और क्या ? हाँ !

(क) 'अथवा' का प्रयोग अंग्रेजी or के और हिन्दी के 'या' के समान होता है। किन्तु सामान्यतः इसका प्रयोग पूर्व कथन को सुधारने के लिए 'या क्यों' 'बल्कि' 'या यों कहें' के अर्थ में होता है; जैसे—किं न सहस्रधाहमय वा

रामेण किं दुष्करम् (उत्तर० ६) 'मैं सहस्रों' टुकड़ों में छिन्न-भिन्न क्यों नहीं कर दिया जाता हूँ अथवा (मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए) राम के लिए कौन सा कार्य दुष्कर है ?

२४६. 'ल्यप्' प्रत्यय लगाकर बनाये गये कृदन्त 'अधिकृत्य' का प्रयोग 'विषय में' 'सन्दर्भ में' 'संबन्ध में' में के अर्थ में होता है और इसके योग में द्वितीया विभक्ति होती है; जैसे—अथ कतमं पुनर्ऋतुमधिकृत्य गास्यामि (शाकु० १) किन्तु किस ऋतु के संबन्ध में गाऊँ ? इसी प्रकार 'उद्दिश्य' का प्रयोग 'सन्दर्भ में' 'लक्ष्य करके' 'और' के अर्थ में होता है; जैसे—'स्वपुरमुद्दिश्य प्रतस्थे' (हितो० ४) अपने नगर की ओर चल पड़ा; 'किमुद्दिश्यामी ऋषयो मत्सकाशं प्रेषिताः स्युः' (शाकु० ५) किस सम्बन्ध में ये ऋषि मेर पास भेजे गये होंगे ?

२४७. [1]'अपि' निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है—

१. 'यद्यपि' के अर्थ में—पातितोऽपि कराघातैः (भर्तृ० २।८५) यद्यपि हाथ की मार से गिरा दिया गया।

२. 'भी' के अर्थ में—इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी (शाकु० १) यह तन्वी वल्कल द्वारा भी अधिक सुन्दर लग रही है।

३. 'और भी' 'अपनी ओर से' 'अपनी बार' के अर्थ में—राजापि मुनिवाक्यमंगीकृत्यातिष्ठत (दशकु० ११) राजा भी मुनि के वचन को मानकर चुप हो गया। विष्णुशर्मणापि राजपुत्राः पाठिताः (पंच० १) अपनी ओर से विष्णुशर्मा ने भी राजकुमारों को पढ़ाया; अपि सिंच अपि स्तुहि (सि० कौ०) सींचो भी और प्रार्थना भी करो; अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु (शाकु० १) मेरा इनके प्रति बहन के समान प्रेम भी है।

४. प्रश्न पूछने के अर्थ में, ऐसी दशा में 'अपि' का प्रयोग वाक्य के आरंभ में होता है—अपि तपो वर्धते (शाकु० १) आप की तपस्या में वृद्धि तो है ? अप्येतत्तपोवनम् (उत्तर० १) क्या यह तपोवन हो सकता है ?

५. 'सन्देह' या अनिश्चय के अर्थ में—'अपि चोरो भवेत्' (गणरत्न०) वह चोर हो सकता है (मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता ?)

---

१. गर्हासमुच्चयप्रश्नशंकासंभावनास्वपि। (अमर०)
अपि संभावनाप्रश्नशंकागर्हासमुच्चये।
तथायुक्तपदार्थेषु कामचारक्रियासु च॥ (विश्व०)

६. 'आशा' 'सम्भावना' के अर्थ में—'अपि जीवेत्सा ब्राह्मणशिशुः' (उत्तर० २) मैं आशा करता हूँ कि वह ब्राह्मण का बालक जी उठेगा।

द्रष्टव्य—अन्तिम अर्थ में 'अपि' प्रायः 'नाम' के साथ संयुक्त रहता है; 'तदपि नाम रामभद्रः पुनरपीदं वनमलं कुर्यात्' (उत्तर० २) तब मैं आशा करता हूँ कि रामभद्र पुनः इस वन को अलंकृत करेंगे।

टिप्पणी—अन्य अर्थों का भी उल्लेख किया गया है, जैसे—गर्हा (निन्दा)—'धिग्देवदत्तमपि स्तुयाद्वृषलम्' (सि० कौ०) देवदत्त को धिक्कार है; वह शूद्र की भी स्तुति करता है।

पदार्थ—'छिपे हुए शब्द के अर्थ में; 'सर्पिषोऽपि स्यात्' (सि० कौ०) घी का एक बूँद भी होवे।

'कामचार क्रिया' या **'अन्ववसर्ग'** **'इच्छानुसार कार्य करने की अनुमति'** अपि स्तुहि 'चाहो तो प्रार्थना करो' इसी प्रकार—अपि स्तुह्यपि सेधास्मास्तथ्यमुक्तं नराशन (भट्टि० ८।९२)।

(क) संख्यावोधक शब्दों के बाद 'अपि' का अर्थ 'सभी' 'सम्पूर्ण' का होता है; जैसे—**सर्वैरपि राज्ञां प्रयोजनम्** (पंच० १।१) राजा को सबसे प्रयोजन होता है (एक को भी न छोड़कर); इसी प्रकार—**चतुर्णामपि वर्णानाम्**—चारों वर्णों का।

(ख) प्रश्नवाचक सर्वनामों और उसके रूपों के साथ संयुक्त होने पर अपि का अर्थ 'कोई' होता है और कभी-कभी 'अवर्णनीय' का अर्थ भी होता है; देखिए, १३५।

(ग) **यद्यपि-तथापि** दोनों का एक साथ प्रयोग होता है और इनका अर्थ होता है; 'हालाँ कि—फिर भी', 'ऐसा होते हुए भी'।

२४८. [1]'**अयि**' का प्रयोग (१) नम्रतापूर्ण **सम्बोधन** में 'मित्र' 'कृपया' के अर्थ में होता है; जैसे—अयि विवेकविश्रान्तमभिहितम्' (मालवि० १) मित्र, तुमने कुछ अविवेकपूर्ण कह दिया है। 'अयि मातर्देवयजनसंभवे देवि सीते' (उत्तर० ४) हे देवताओं के यज्ञकर्म से उत्पन्न प्रिय सीता!

(२) नम्रतापूर्वक **प्रश्न** पूछने में 'अयि' का प्रयोग होता है—अयि जीवितनाथ जीवसि (कुमार० ४।३) मेरे जीवन के स्वामी क्या आप जीवित हैं?

---

१. अयि प्रश्नानुनययोस्तथा संबोधनेऽपि च (मेदिनी०)।

२४९. 'अये' का प्रयोग मुख्यत: इन अर्थों में होता है :—(१) 'आश्चर्य' विस्मय—'अये भगवत्यरुंधती' (उत्तर० ५) अरे, यह तो देवी अरुन्धती हैं; इसी प्रकार—अये मय्येव भ्रूकुटीधर: संवृत्त: (उत्तर० ५)।

(२) शोक, निराशा, भय—'अये देवपादपद्मोपजीविनोऽवस्थेयम्' (मुद्रा०) हाय ! यह तो महाराज के चरण-कमलों के सेवक की यह अवस्था है !

२५०. [1]'अहह' का प्रयोग (१) आनन्द, आश्चर्य या विस्मय और (२) 'शोक' या अत्यधिक कष्ट व्यक्त करने के लिये होता है; 'अहह महतां नि:-सीमानश्चरित्रविभूतय:' (भर्तृ० २।३५) अहा ! महान् व्यक्तियों के जीवन की महानता अपार होती है! 'अहह दारुणो वज्रनिर्घात:' (उत्तर० २) हाय ! घोर वज्रपात हुआ; 'अहह कष्टमपण्डितता विधे:' (भर्तृ० ३।११०) अरे, ब्रह्मा की यह मूर्खता बड़ी कष्टकारक है।

२५१. [2]'अहो' (१) सम्बोधन का पद है; जैसे—अहो राजान: हे राजाओं ! (२) इसका सामान्यत: प्रयोग **विशेषणों और संज्ञाओं के साथ** 'अहो !' 'अरे' के अर्थ में खुशी, शोक या दु:ख प्रकट करने के लिये होता है; जैसे—अहो मधुर-मासां कन्यकानां दर्शनम्' (शाकु० १) अहा इन कन्याओं का दर्शन मन को सुख देने वाला है। 'अहो सर्वास्ववस्थास्वनवद्यता रूपस्य (मालवि० २) अहा ! सभी दशाओं में सौन्दर्य निर्दोष होता है ! (सौन्दर्य कितना निर्दोष है); अहो विपाक: (उत्तर० ४) अरे, यह परिवर्तन ! अहो उन्मीलन्ति वेदना: (उत्तर० ४)।

(३) कभी-कभी 'अहो' किसी व्यक्ति से सहसा मिलने या किसी वस्तु को पा लेने पर उत्पन्न आश्चर्य को प्रकट करता है; जैसे—अहो बकुलावलिका (मालवि० १) अरे ! यह तो बकुलावलिका है !

अभ्यास

१. अहो सर्वास्ववस्थासु चारुता शोभां पुष्यति। (मालवि०)

२. सर्व: कान्तमात्मीयं पश्यति। अहं तु तामेवाश्रमललामभूतां शकुन्तलामधि-कृत्य ब्रवीमि। (शाकु० २)

---

१. अहहेत्यद्भुते खेदे परिक्लेशप्रकर्षयो: (मेदिनी)।

२. अहो धिगर्थे शोके च करुणार्थविषादयो:।
संबोधने प्रशंसायां विस्मये पादपूरणे॥

३. अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयतास्य वपुषः। अथवोपपन्नमेतदस्मिन्नृषिकल्पे राजनि। (शाकु० २)

४. अपि ज्ञायते कतमेन दिग्भागेन गतः स जाल्म इति (विक्रमो० १)

५. अयि जात, कथयितव्यं कथय। (उत्तर० ४)

६. कथमीदृशेन सह वत्सस्य चन्द्रकेतोर्द्वन्द्वसंप्रहारमनुजानीयाम्।
अथ वा इक्ष्वाकुगृहवृद्धा वयम्। प्रत्युपस्थिते च का गतिः। (उत्तर० ५)

७. अतिप्रबलपिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमंगकानि। अलमप्रभुरस्म्यात्मनः। सीदति मे हृदयम्। अन्धकारतामुपयाति चक्षुः। अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमद्यैवोपपादयेत्। (काद० २६)

८. अहो प्रभावो महात्मनाम्। अत्र शाश्वतं विरोधमपहायोपशान्तात्मानस्तिर्यंचोऽपि तपोवनवसतिसुखमनुभवन्ति। (काद० ४५)

९. अपि नाम तयोः कल्याणिनोर्भूरिवसुदेवरातापत्ययोर्मालतीमाधवयोरभिमतः पाणिग्रहः स्यात्। (मालती० १)

१०. अहो मे मूर्खतायाः प्रकारः। अहो यत्किंचन कारितायामादरः। अहो निरर्थकव्यापारेष्वभिनिवेशः। अहो बालिशचरितेष्वासक्तिः। (काद० १२०)

११. चाणक्य—भद्र उपवर्णयेदानीं कुसुमपुरवृत्तान्तम्। अपि वृषलमनुरक्ताः प्रकृतयः। चरः—अथ किम्। आर्येण तेषु तेषु विरागकारणेषु परिहृतेषु देवे चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ताः प्रकृतयः। (मुद्रा० १)

१२. अये अश्वमेध इति विश्वविजयिनां क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्रियपरिभावी महानुत्कर्षनिकषः। (उत्तर० ४)

१३. ताः स्वचारित्र्यमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली।
ततः पुत्रवतीमेनां प्रतिपत्स्ये त्वदाज्ञया॥ (रघु० १५।७३)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. भगवति, मदीयेषु लेखेषु तत्रभवते त्वामुद्दिश्य सभाजनाक्षराणि पातयिष्यामि। (मालवि० ५)

२. हा कथं सीतादेव्या ईदृशं जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि। अथ वा नियोगः खल्वीदृशो मन्दभाग्यस्य। (उत्तर० १)

३. चाणक्यः—अपि प्रचीयन्ते संव्यवहाराणां लाभाः वः।
चन्द्रगुप्तः—आर्य, अथ किम्। (मुद्रा० १)

४. अथ धर्मानुरोधादितरपक्षावलम्बनद्वारेण मृत्युमंगीकरोमि । एवमपि प्रथमं तावत् स्वयमागतस्य तत्रभवतः कपिंजलस्य प्रणयप्रसरभंगः । पुनरपरं यदि तस्य जनस्य मत्कृतादाशाभंगात् प्राणविपत्तिरुपजायते तदपि मुनिजनवधजनितं महदेनो भवेत् । (काद० १६०)

५. चाणक्यः—अगृहीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्य किं वा स्थैर्यमुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्याः । अहो राक्षसस्य नन्दवंशे निरतिशयो भक्तिगुणः । स कस्मिश्चिदपि जीवति नन्दान्वयावयवे वृषलस्य साचिव्यं ग्राहयितुं न शक्यते । (मुद्रा० १)

६. यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कलया त्वया ।
अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् ॥ (शाकु० ५)

७. अप्यग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणां कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते । (रघु० ५।४)

८. विललाप स बाष्पगद्‌गदं सह गामप्यपहाय धीरताम् ।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु ॥ (रघु० ८।४३)

९. अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते ।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ॥
(कुमार० ५।३३)

१०. अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैव शोचितुमर्हसि ॥ (गीता० २।२६)

११. सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ (शाकु० १)

अनुवाद कीजिए :—

१. मूर्ख का भी अनादर नहीं करना चाहिए, विद्वान् का तो कहना ही क्या ?
२. लेकिन मान लो कि तुम मुझे बलपूर्वक वहाँ ले जाते हो तब भी मेरा मन मेरी प्रियतमा की ओर लगा रहेगा, जो मेरा एकमात्र प्रेमपात्र है ।
३. स्वामी—क्या तुमने वह कार्य कर लिया है, जिसे करने के लिये मैंने तुमसे कहा था ?
सेवक—हाँ, उसे तो मैंने बहुत पहले ही कर दिया ।

४. राजा अपनी प्रजा का भली-भाँति पालन करने के लिये प्रशंसा के योग्य है; या; ऐसा करना तो राजा का कर्तव्य ही है ।

५. जिस बालक के विषय में कह रहा हूँ वह बड़ा कुशाग्रबुद्धि है ।

६. जो किसी निश्चित कारण से क्रुद्ध होता है वह जैसे ही वह कारण दूर कर दिया जाता है वैसे ही प्रसन्न हो जाता है ।

७. इस पर भगवान् विष्णु गरुड के घर गये । गरुड भी अपने पूज्य स्वामी का स्वागत करने के लिए शीघ्र बाहर निकले ।

८. क्या यह संभव है कि मेरी इच्छाएँ पूरी होगीं ?

९. इन दुःखी व्यक्तियों की दशा कितनी दयनीय है । यह एक पाषाण के हृदय को भी द्रवित कर देगी ।

१०. अहो ! इस वाटिका की कैसी शान्तिमय शोभा है ?

११. मनुष्य के अभीष्ट फल की सिद्धि विघ्नों से कितनी परिपूर्ण होती है ।

१२. हाय ! मैंने तो अपना सारा समय जुआ खेलकर बिता दिया और इसके लिए अपने को छोड़कर दूसरे किसको दोष दूँ ?

१३. अहा ! यह तो मेरी ही अँगूठी है; मैं इसे इन आठ दिनों से ढूँढ़ता रहा हूँ । तुमने इसे कहाँ पाया ?

१४. मैं अब चलने से थक गया हूँ । अब कृपया घर चलें ।

१५. मैं आशा करता हूँ कि तुम्हें उस व्यक्ति की याद है, जिसके विषय में मैंने तुमसे एक महीना पहले कहा था ।

पाठ २२

आ, आं, आः, इति, इव, उत, एव, एवं ओम्

२५२. [१]'आ' का अर्थ 'तक' और 'से' (देखिए ८४) के अतिरिक्त ईषत् 'थोड़ा' 'कुछ' का अर्थ होता है और यह अंग्रेजी के 'ish' के समान होता है जैसे blackish (कुछ काला) में; इसे विशेषण शब्द के पहले जोड़ा जाता है; जैसे—'आविगल' थोड़ा पिगल रंग का; आमत्तानां कोकिलानां कूजितैः (मालवि० ३) कुछ थोड़े मत्त कोयलों की कूक से।

क्रिया के साथ 'आ' का प्रयोग सुविदित है।

(क) [२]कभी-कभी 'आ' का प्रयोग भूतकाल की घटनाओं की याद दिलाने के लिए होता है; जैसे—'आ एवं किल तदासीत्' (उत्तर० ६) 'अच्छा ! उस समय ऐसी बात थी।' कभी-कभी इसका प्रयोग केवल पादपूर्ति के लिए होता है; जैसे—आ एवं मन्यसे (गण०)।

२५३. [३]'आं' का प्रयोग भूतकाल की घटना का स्मरण करते समय होता है और कभी-कभी निश्चय सूचक अव्यय के रूप में (जिससे कथन पर जोर पड़ता हो) प्रयुक्त होता है और दृढ़ निश्चय प्रदर्शित करता है; जैसे—किं नाम दण्डकेयम्—(सर्वतो विलोक्य) आं (उत्तर० २) क्या यही दण्डक वन है ? (चारों ओर देखकर) हाँ, यही तो है (अब याद आया) आं चिरस्य प्रतिबुद्धोऽस्मि (गण०) सचमुच मैं बहुत देर करके उठा हूँ।

(क) कभी-कभी किसी प्रश्न का उत्तर देने में 'हाँ' के अर्थ में 'आं' का प्रयोग होता है; जैसे— आं देव्याः पार्श्वगतोऽसौ जनश्चित्रे दृष्टः (मालवि० १) हाँ, देवी के पास खड़ा हुआ यह व्यक्ति चित्र में देखा गया था।

---

१. आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे।

२. आ प्रगृह्यः स्मृतौ वाक्ये। (अमर०)

३. आं स्मृतौ चावधारणे। (विश्व०)

२५४. [1]'आः' का प्रयोग 'कष्ट' या 'क्रोध' व्यक्त करने के लिए होता है; जैसे—आः शीतम् (गण०) उफ! कितनी ठंडक है। आः कथमद्यापि राक्षसत्रास (उत्तर० १) ऐं! क्या अब भी राक्षसों का भय बना हुरा है ?

२५५. 'इति' का प्रयोग अधिकांशतः किसी व्यक्ति द्वारा उक्त वचन को ज्यों के त्यों प्रस्तुत करने में होता है, जिसे अंग्रेजी में प्रत्यक्ष वचन (Direct Construction) के रूप में प्रकट किया जाता है। यह उद्धरण चिह्न का स्थान लेता है या परोक्ष-कथन के 'कि' (that) का स्थान लेता है; और उद्धृत वचन के अन्त में इसका प्रयोग किया जाता है; जैसे—**आज्ञप्तोऽस्मि राजश्यालकेन। स्थावरक प्रवहणं गृहीत्वा जीर्णोद्यानमागच्छेति'** (मृच्छ० ६) 'स्थावरक, गाड़ी लेकर पुराने वगीचे में आना' ऐसा राजा के साले ने मुझे आदेश दिया है। **तयोर्मुनिकुमारकयोरनन्यः कथयति अक्षमालामुपयाचितुमागतोऽस्मीति** (काद० १५१) उन दो मुनिकुमारों में एक कहता है कि मैं अक्षमाला माँगने आया हूँ।

द्र०—अप्रत्यक्ष कथनों (Indirect Narration) का संस्कृत में अनुवाद करते समय प्रत्यक्ष कथन (Lirect) में जिस स्थिति में शब्द होते हैं उनका ज्यों के त्यों अनुवाद करके उन उद्धृत शब्दों के अन्त में 'इति' लगा दिया जाता है। राम ने मुझसे कहा कि जब कभी मुझे जरूरत होगी तो मैं तुम्हें रुपये दूँगा (Rama said to me that he would give me money whenever I wanted it) **रामो मामुवाच। यदा-यदा धनेन तव प्रयोजनं स्यात् तदा तदाहं तत्तुभ्यं दद्यामिति** या **'दद्यामिति रामो मामुवाच'**।

(क) उपर्युक्त अर्थ में 'इति' का प्रयोग किसी निश्चित कथन का बोध कराने के लिए होता है अतएव एक भिन्न कथन की सभी शर्तें पूरी होनी चाहिए अर्थात् उद्धृत वाक्य में कम से कम कर्ता और क्रिया अवश्य होने चाहिए; जैसे—**क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः** (शिशु० १।३) उन्होंने क्रमशः 'ये नारद हैं' ऐसा समझा। **अवैमि चैनामनघेति** (रघु० १४।४०) 'वह निर्दोष है' ऐसा मैं उसे समझता हूँ। वहाँ ऐसा कहना गलत होगा—**'क्रमादमुं नारदमित्यबोधि सः'** या **एनामनघामित्यवैमि**। यदि 'इति' का प्रयोग न किया जाय तो द्वितीया विभक्ति हो सकती है।

२५६. [1]इस सामान्य अर्थ के अतिरिक्त 'इति' के निम्नलिखित अर्थ होते हैं:—

---

१. आस्तु स्यात्कोपपीडयोः। (अमर०)

१. 'कारण' का अर्थ—जिसे 'इस कारण' 'चूँकि' इस आधार पर' द्वारा व्यक्त किया जाता है, वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि कः पुनरसौ जामाता (उत्तर० १) चूँकि मैं विदेशी हूँ इस लिये पूछता हूँ कि यह जामाता कौन है। लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोः (मालवि० १) 'उस व्यक्ति का जो इस आधार पर विवाद से डरता है कि मैंने स्थान प्राप्त कर लिया है।'

२. प्रयोजन या हेतु—शरीरस्य मा विनाशोऽभूदिति 'मयेदमुत्क्षिप्य समानीतं (काद० ३२०) मैं शरीर को उठाकर ले आया जिससे वह नष्ट न हो (कहीं वह नष्ट न हो जाए)।

३. 'इस प्रकार' के अर्थ में उपसंहार का बोध कराने के लिए—'इति तृतीयोऽङ्कः' इस प्रकार तीसरा अंक समाप्त हुआ; पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।' पृथिवी, जल…मन, ये द्रव्य हैं।

४. 'ऐसा' 'इस प्रकार' 'इस तरह का' के अर्थ में—इत्युक्तवन्तं परिरभ्य दोर्भ्याम् (किरात० ११।१०) ऐसा कहने वाले का बाहों से आलिंगन करके; 'गौरश्वो हस्तीति जातिः' जाति इस प्रकार की होती है जैसे गौ, घोड़ा, हाथी।

५. 'जैसा आगे कहा गया है' 'निम्नलिखित प्रकार का' के अर्थ में आगे कही जाने वाली बात की ओर संकेत करने के लिए 'इति' का प्रयोग है; रामाभिधानो हरिरित्युवाच (रघु० १३।१) राम नाम से ख्यात हरि ने इस प्रकार कहा :—

६. 'की हैसियत से' 'अधिकार' 'के रूप में' 'जहाँ तक संबन्ध है' के अर्थ में जिस दृष्टि से किसी वस्तु पर विचार किया जाता है उसे व्यक्त करने के लिए 'इति' का प्रयोग होता है। जैसे—पितेति स पूज्यः, अध्यापक इति निन्द्यः 'पिता के रूप में वह पूज्य है, अध्यापक के रूप में वह निन्दनीय है। शीघ्रमिति सुकरं निभृतमिति चिन्तनीयं भवेत्' (शाकु० ३) जहाँ तक इसे शीघ्र करने की बात है वह तो आसान है; जहाँ तक इसे गुप्तरूप से करने की बात है वह विचारणीय विषय है।

७. मान्य मत को प्रकट करने के लिए—इत्यापिशलिः (गण०) ऐसा आपिशलि का मत है।

---

१. इति स्वरूपे सान्निध्ये विवक्षानियमे मते।
हेतौ प्रकारप्रत्यक्षप्रकाशेऽप्यवधारणे॥
एवमर्थे समाप्तौ स्यात्। (हेम०)।

८. उदाहरण देने में—इन्दुरिन्दुरिव श्रीमानित्यादौ तदनन्वयः (चन्द्रालोक)।

द्रष्टव्य—'स्वरूप' और 'प्रकार' के अर्थ एक साथ मिले हुए हैं; जबकि 'प्रत्यक्ष', 'प्रकाश' और 'अवधारण' के अर्थ बहुत कम मिलते हैं।

(क) 'किं' के साथ 'इति' जोड़ देने पर निश्चय सूचक प्रश्न (जोर देकर प्रश्न पूछने) का अर्थ हो जाता है; 'भला क्यों?' 'वस्तुतः क्यों'—किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम् (कुमार० ५।४४) इस युवावस्था में शोभा देने वाले आभूषणों को त्यागकर वृद्धावस्था के लिए उचित वल्कल को तुमने भला क्यों पहन रखा है?

२५७. [1]इव का प्रयोग प्रायः 'तुलना' या 'उपमा प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है; और इसे उपमान (जिस वस्तु की समानता बतायी जाय) के बाद रखा जाता है; वैनतेय इव विनतानन्दनजनः (काद० ५) वैनतेय के समान वह विनत (नम्र हुए) लोगों को सुख देने वाला था। इसी प्रकार 'संसारः अर्णव इव' संसार एक समुद्र के समान है।

द्र०— 'इव' से संयुक्त होने वाले शब्द एक ही विभक्ति के होने चाहिए; महीमिव जलभृतदेहां कन्यकां ददर्श (काद० १३१) उसने एक कन्या देखी जो जल से युक्त पृथ्वी के समान थी (जो जल पर शरीर धारण करती थी।) दिवसेनैव मित्रानुवर्तिना विलासिजनेनाधिष्ठिता (काद० ५१) उसमें विलासी व्यक्ति निवास करते थे जो सूर्य का अनुगमन करने वाले दिन के समान मित्रों के पीछे-पीछे चलते थे।

(क) इव के अन्य अर्थ इस प्रकार हैं:—(१) 'किंचित्' 'थोड़ा' 'ईषत्' 'कुछ'—कडार इवायं (गणरत्न०) यह थोड़ा पिंगल जैसा है।

२. 'मानों' 'जैसे कि'—मृगानुसारिणं पिनाकिनमिव पश्यामि (शाकु० १) 'मानों मैं अपने सामने पिनाकधारी शिवको ही मृग का पीछा करते हुए देख रहा हूँ।' यो जहासेव वासुदेवं (काद० ५) जो मानों वासुदेव का उपहास करता था।

(ख) 'सम्भावना' 'मैं जानना चाहूँगा' 'सचमुच' 'वस्तुतः' 'भला' के अर्थ में 'इव' का प्रयोग प्रश्नवाचक सर्वनामों और उनके रूपों के साथ किया जाता है; जैसे—विना सीतादेव्या किमिव हि न दुःखं रघुपतेः (उत्तर० ६) सीता देवी से वियुक्त होने पर रघुकुल के स्वामी राम को भला कौन सी वस्तु कष्ट-

---

१. ईषदर्थोपमोत्प्रेक्षावाक्यभूषणयोरिव। (गणरत्न०)

दायक नहीं होगी (यह मैं जानना चाहूँगा); **परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्तु पुरुषः** (मुद्रा० ३) पराधीन व्यक्ति को भला सुख का ज्ञान कैसे हो सकता है ?

२५८. [1]सामान्यतः 'उत' का प्रयोग 'अथवा' 'या' के अर्थ में विकल्प प्रदर्शित करने के लिये होता है और इस अर्थ में प्रायः इसका अन्योन्याश्रयी 'किं' होता है; 'उत' के स्थान पर भी 'आहो' 'उताहो' 'आहोस्वित्' का प्रयोग होता है, जैसे--**न जाने किमिदं वल्कलानां सदृशमुताहो जटानां समुचितं किं तपसोऽनुरूपमाहोस्विद्धर्मोपदेशांगमिदं** (काद० १५१) मैं यह नहीं जानता कि यह आप के वल्कल के योग्य है या जटाओं के योग्य है, यह आपकी तपस्या के योग्य है या आपके धार्मिक उपदेश का अंश है (यह मैं नहीं जानता)।

(क) 'उत' का जब दो बार प्रयोग होता है तो इसका अर्थ 'या तो या' (either-or) होता है; जैसे--**एकमेव वरं पुंसामुत राज्यमुताश्रमः** (गणरत्न०) मनुष्य द्वारा एक ही वस्तु चाही जाती हैं, या तो राज्य या आश्रम।

२५९. स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त होने पर 'उत' के निम्नलिखित अर्थ होते हैं :—सन्देह, अनिश्चय, अनुमान; **स्थाणुरयमुत पुरुषः** (गणरत्न०) यह खंभा है या पुरुष।

(२) प्रश्न पूछने में 'उत' का अकेला प्रयोग होता है—**उत दण्डः पतिष्यति** (वही) क्या डंडा गिरेगा ?

द्र०—'अत्यर्थ' का अर्थ बहुत कम पाया जाता है।

२६०. 'एव' का प्रयोग बहुत प्रचलित रूप में किसी शब्द द्वारा व्यक्त किये गये भाव को पुष्ट करने के लिए या उस पर जोर देने के लिये होता है। इस अर्थ में इसका अनुवाद विविध शब्दों द्वारा किया जा सकता है, जैसे—'ठीक' 'वही' 'केवल' 'पहले ही' 'उसी क्षण' 'ज्यों ही'; उदाहरण—**एवमेव** 'ठीक ऐसा ही' 'ही' **अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव** (भर्तृ० २।४९) वही व्यक्ति धन की गर्मी से शून्य होकर; **सा तथ्यमेवाभिहिता भवेन** (कुमार० ३।६३) शिव ने उससे केवल तथ्य ही कहा, (तथ्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा); **नाम्नैव निर्भिन्नारातिहृदयः** (काद० ५) जिसने केवल अपने नाम से ही शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण कर दिया। **उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि**

---

१. उत प्रश्ने वितर्के स्यादुतात्यर्थविकल्पयोः (विश्व०)।

कीर्तित एव यत् (रघु० १।८७) नाम लेते ही वह कल्याणकारी यहाँ उपस्थित हो गई है (नाम लेने के तत्काल वाद); **भवितव्यमेव तेन** (उत्तर० ४) ऐसा घटित होगा।

२६१. [1]एवं का प्रयोग वहुशः 'इस प्रकार' 'ऐसा' के अर्थ में होता है और पूर्ववर्ती या परवर्ती कथन के सन्दर्भ में अथवा कोई कार्य करने के लिये आदेश देने में इसका प्रयोग होता है; जैसे—**एवमुक्तः कपिञ्जलः प्रत्यवादीत्** (काद० १५)। मेरे ऐसा कहने पर कपिञ्जल ने उत्तर दिया।

(क) 'स्वीकृति' (हाँ, निश्चय ही) का भाव वताने के लिये भी 'एवं' का प्रयोग होता है; जैसे—**एवमेतत्** (उत्तर० १) विल्कुल ऐसा ही, 'हाँ, तुम ठीक कहते हो' **एवं कुर्मः** अच्छा, हम ऐसा करेंगे।

द्रष्ट०—'एवं' का प्रयोग कभी-कभी 'सादृश्य' या 'निश्चय' प्रदर्शित करने के लिये होता है।

२६२. [2]**'ओम्'** का प्रयोग कम होता है। यह मंगलसूचक आरम्भ का बोध कराने के लिये प्रयुक्त होता है; जैसे—'ओं अग्निमीले पुरोहितं' या किसी पवित्र धार्मिक क्रिया या प्रार्थना के अन्त में इसका प्रयोग होता है : ब्रह्म भूः भुवः स्वरोम्।

(क) लौकिक संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग 'हाँ' 'वहुत अच्छा' के अथं में होता है और 'अनुमति' या 'सहमति' का वोध कराता है; जैसे—**ओमित्युच्यताममात्यः** (मालती० ६) 'मन्त्रियों से कह दो कि अच्छी वात है (मैं ऐसा ही करूँगा,) द्वितीयश्चेदोमिति ब्रूमः।

अभ्यास

१. भर्तृदारिके, आर्यायाः पण्डितकौशिक्या इव स्वरसंयोगः श्रूयते। (मालवि० ५)

२. उत्खातिनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीकृतो वेगः। (शाकु० १)

३. प्रथममिति प्रेक्ष्य दुहितृजनस्यैकोऽपराधो भगवता मर्षयितव्यः। (शाकु० ४)

४. अतिभूमिं गतेन रणरणकेनार्यपुत्र शून्यमिवात्मानं पश्यामि (उत्तर० १)

---

१. एवं प्रकारोपमयोरंगीकारेऽवधारणे। (विश्व०)।

२. ओमित्यनुमतौ प्रोक्तं प्रणवे चाप्युपक्रमे। (वि०)

५. सखे करटक, किमित्ययमुदकार्थी स्वामी पानीयमपीत्वा सचकितो मन्दं मन्दमवतिष्ठते । (हितो०)

६. सखे पुण्डरीक, सुविदितमेतन्मम । केवलमिदमेव पृच्छामि यदेतदारब्धं भवता किमिदं गुरुभिरुपदिष्टम् उत धर्मशास्त्रेषु पठितमुत मोक्षप्राप्ति-युक्तिरियमाहो-स्विदन्यो नियमप्रकारः । (काद० १५५

७. सीता—एते चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिता यूयम् । अहो जाने तस्मिन्नेव प्रदेशे तस्मिन्नेव काले वर्त इति । रामः—एवम् । (उत्तर० १)

८. पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥ (मालवि० १)

९. यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा ।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते ॥ (हितो० १)

१०. प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मनः ।
प्रियभावः स तु तया स्वगुणैरेव वर्धितः ॥
तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत् ।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ॥ (उत्तर० ६)

११. ययातेरेव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव ।
पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥ (शाकु० ४)

१२. लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता ॥ (मृच्छ० ५)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. किमिव दुष्करमकरुणानां सोऽयत्नेनैव पादपमधिरुह्यैकैकशः फलानीव तस्य वनस्पतेः शाखासन्धिभ्यः कोटरान्तरेभ्यः शुकशावकानग्रहीदपगतासूंश्च कृत्वा क्षितावपातयत् । (काद० ३३)

२. स मद्वचनानन्तरमेव न वेद्मि किमसह्यवृत्तेर्मदनज्वरस्य वेगादुत सद्योविपाकस्यात्मनो दुष्कृतस्य गौरवादाहोस्विन्मद्वचस एव सामर्थ्यादाछिन्नमूलस्तरुरिव क्षितावपतत् । (काद० ३।२)

३. पात्रविशेषन्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः ।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य ॥ (मालवि० १)

४. सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन ।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥ (कुमार० १।४९)

५. का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः ।
हुंकारेणेव धनुषः सहि विघ्नानपोहति ।। (शाकु० ३)

६. गत एव न ते निवर्तते स सखा दीप इवानिलाहतः ।
अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्य व्यसनेन धूमिताम् ।। (कुमार० ४।३०)

७. स्वशरीरशरीरिणावपि श्रुतसंयोगविपर्ययौ यदा ।
विरहः किमिवानुतापयेद्वद बाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम् ।। (रघु० ८।८९)

८. प्रयान्तीव प्राणाः सुतनु हृदयं ध्वंसत इव ।
ज्वलन्तीवाङ्गानि प्रसरति समन्तादिव तमः ।। (मालती० ९)

९. किमात्मनिर्वादकथामुपेक्षे जायामदोषामुत सन्त्यजामि ।
इत्येकपक्षाश्रयविक्लवत्वादासीत्स दोलाचलचित्तवृत्तिः ।। (रघु० १४।३४)

अनुवाद कीजिए :—

१. दुष्ट व्यक्ति पर इसलिए विश्वास नहीं कर लेना चाहिए कि वह मधुर शब्द बोलता है ।
२. वह यहाँ पिछले दो महीने से निवास कर रहा है, जिससे कि वह नगर के विद्वानों से परिचित हो जाय ।
३. जल्दी से मेरे पास आकर, मानो क्रुद्ध होकर उसने कहा कि तुमने मेरा बड़ा अनादर किया है ।
४. 'विपत्तियाँ अकेले नहीं आती हैं' यह एक बुद्धिमत्तापूर्ण उक्ति है, जिसका अनुभव इस संसार के लोग प्रायः करते हैं ।
५. जब शत्रु हमारे ऊपर ओलों की तरह टूट पड़े तो हम यह न जान सकें कि क्या करें ।
६. बहुत दिनों तक भोजन न दिये जाने से वह मानों मरणासन्न हो गया ।
७. सम्पूर्ण संसार मुझे शक्तिहीन समझता है क्योंकि मैं किसी की हानि नहीं करता ।
८. मेरे शब्दों को सुनते ही वह अविवेकी व्यक्ति एक सेवक को साथ लेकर यह दुःसाहस करने के लिये तैयार हो गया ।
९. मैं नहीं जानता कि आगे क्या करूँ ? इस नगर में रहूँ या इसे छोड़ जाऊँ ।
१०. वह यह सोचता रहा कि मेरे सामने खड़ा हुआ व्यक्ति मेरा शत्रु है या संन्यासी के वेश में कोई गुप्तचर है या वस्तुतः शरण चाहने वाला कोई भिखारी है ।

पाठ २३

कच्चित्, क्व-क्व, कामम्, किं (किमु, किमुत, किं पुनः), किल, केवलं और खलु

२६३. [1]'कच्चित्' वक्ता की आशा को व्यक्त करता है, और इसका अर्थ "मैं आशा करता हूँ कि"—होता है। इसका रूप प्रश्नवाचक का होता है और इसका उत्तर प्रश्न के स्वरूप के अनुसार 'हाँ' या 'नहीं' होता है। जैसे—**शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित्** (रघु० ५।८) आपके तीर्थजल निर्विघ्न तो हैं ? (मैं आशा करता हूँ कि···) **कच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लव आश्रमपादपानां** (वही० ६) 'मैं आशा करता हूँ कि आँधी इत्यादि कोई उपद्रव आश्रम के वृक्षों पर नहीं आता ?' (नहीं, नहीं आता)

२६४. [2]'क्व' का अर्थ होता है 'कहाँ' और जब इसे दो या दो से अधिक उपवाक्यों में दुहराया जाता है तो यह महान् अन्तर, 'असमानता' या अत्यन्त अनुपयुक्तता का बोध कराता है; जैसे—**क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः** (रघु० १।२) कहाँ तो सूर्य से उत्पन्न वंश और कहाँ थोड़े से विषयों का ज्ञान रखने वाली मेरी बुद्धि (इन दोनों में बहुत अन्तर है, मेरी बुद्धि उस वंश का वर्णन करने में बिल्कुल असमर्थ है)। **तपः क्व वत्से क्व च तावकं वपुः** (कुमार ५।४) हे पुत्री ! कठोर तप कहाँ और तुम्हारा यह शरीर कहाँ ? तपस्या और तुम्हारे शरीर में कितना अन्तर है (तुम्हारा कोमल शरीर कठोर तपस्या के उपयुक्त नहीं है)।

२६५. [3]'काम का अर्थ होता है 'इच्छानुसार' 'सन्तोषभर' किन्तु लौकिक संस्कृत साहित्य में इसका सामान्यतः प्रयोग 'यह मानने पर' 'मानते हुए' 'थोड़ी देर के लिए मानकर भी' के अर्थ में हुआ है; और ऐसे प्रयोग में प्रायः 'काम' के बाद 'तु' या 'तथापि' या इसी प्रकार का शब्द अन्योन्याश्रयी बनकर आता है;

---

१. कच्चित् कामप्रवेदने। (अमर०)

२. द्वौ क्वशब्दौ महदन्तरं सूचयतः (रघु० १।२ पर मल्लिनाथ)

३. कामं प्रकामेऽनुमता क्व सूयानुगमेऽपि च। (विश्व०)

जैसे—कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखी सा भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्या (शाकु० १) यह माना कि वह मेरी ओर मुँह करके नहीं खड़ी होती, फिर भी उसकी दृष्टि अधिकांशत: दूसरी ओर नहीं है।

२६६. [1]'किं' का प्रयोग अधिकांशत: प्रश्न पूछने में 'क्यों' 'किसलिए' के अर्थ में होता है; जैसे—तत्रैव किं न चपले प्रलयं गतासि (मुद्रा० २) हे चंचल देवी, तुम इस कारण वहीं क्यों नहीं नष्ट हो गई ? कभी-कभी समास क पद में आने पर 'बुरा' या 'कुत्सित' का अर्थ होता है; जैसे—स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं (किरात. १।५) क्या वह मित्र है (अर्थात् वह एक बुरा मित्र है) जो स्वामी को उचित परामर्श नही देता ?

२६७. [2]'जब 'किं' के वाद 'वा' 'उत' 'आहो' इत्यादि शब्द आते हैं तो इसका अर्थ 'या' का होता है; जैसे—ज्ञायतां किमेतदारण्यकं ग्राम्यं वेति (पंच० १।१) 'यह जान लिया जाय कि यह पशु जंगली है या पालतू है।' 'उत' के योग में 'किं' के प्रयोग के लिये अधिकरण २५८ देखिए।

(क) 'कहना ही क्या' 'और भी अधिक' 'और भी कम' के अर्थ में प्राय: 'किं' उ; उत, या पुन: के साथ संयुक्त रहता है; जैसे—एकैकमप्यनर्थाय किमु तत्र चतुष्टयं (इनमें से एक भी विनाश का कारण होता है फिर जहाँ चारों एक साथ हों वहाँ की तो बात ही क्या कहनी; चाणक्येनाहूतस्य निर्दोषस्यापि शंका जायते किमुत सदोषस्य (मुद्रा० १) चाणक्य द्वारा बुलाये गये निर्दोष व्यक्ति के मन में भी शंका उत्पन्न हो जाती है फिर अपराधी की तो बात ही क्या। मयि नान्तकोऽपि प्रभुः प्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्राः 'यमराज भी मुझ पर प्रहार करने में समर्थ नहीं है फिर जंगली पशुओं की बात ही वात है' स्वयं रोपितेषु तरुषु उत्पद्यते स्नेहः किं पुनरंगसंभवेष्वपत्येषु (काद० २९४) अपने लगाये गये पेड़ों के प्रति स्नेह हो जाता है फिर अपने पुत्रों के विषय में क्या कहना ! भवादृशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षमं परिपन्थीभवितुं किं पुनर्युधिष्ठिरबलं (वेणी० ३) आप जैसे व्यक्ति के मार्ग में आने का साहस तीनों लोक भी नहीं करता, फिर धर्म की सेना की क्या हस्ती ?

---

१. किं पृच्छायां जुगुप्सने। (अमर०)

२. किमु संभावनायां स्यात् विमर्शे चापि दृश्यते। (मेदिनी०)
किमुतातिशये प्रश्ने विकल्पे च प्रयुज्यते। (विश्व०)

द्र०—'अनिश्चय' या 'सन्देह' प्रकट करने के लिए भी किमु का प्रयोग होता है; जैसे—किमु विषविसर्पः किमु मदः (उत्तर० १) यह शरीर पर विष फैल रहा है या उत्कट हर्ष ।

२६८. 'किल' का सामान्य प्रचलित अर्थ है 'वस्तुतः' 'वास्तव में' 'निश्चित-रूप से' और जिस शब्द पर यह जोर देता है उस शब्द के बाद प्रयुक्त होता है; जैसे—अर्हति किल कितव उपद्रवं (मालवि० ४) वह धूर्त उपद्रव का पात्र है प्रत्यूहं सर्वसिद्धीनामुत्तापः प्रथमः किल (हितो० ३) पहले ही उतावला हो जाना (सभी अभीष्ट फलों की) सिद्धि के लिए विघ्न होता है ।

२६९. [1]'किल' का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में भी होता है; (१) 'जैसा कहा जाता है' 'लोग कहते हैं' के अर्थ में--जैसे—'बभूव योगी किल कार्तवीर्यः' कहा जाता है कि कार्तवीर्य नाम के एक योगी थे; जघान कंसं किल वासुदेवः (महाभारत) (२) बनावटी कार्य को व्यक्त करने के लिए—प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष (रघु० २।२७) एक छद्मवेशधारी सिंह ने उसे बलपूर्वक पकड़ लिया; पयस्यगाधे किल जातसंभ्रमाः (किरात० ८।४८) (३) आशा या संभावना व्यक्त करने के लिए—जैसे पार्थः किल विजेष्यते कुरून् (गणरत्न०) मैं आशा करता हूँ कि पार्थ कुरुओं को जीत लेगा ।

द्र०--जब 'किं' के साथ 'किल' का प्रयोग होता है तब वर्धमान के अनुसार अरुचि, और न्यक्करण (घृणा, उपेक्षा) का अर्थ होता है (एवं किल केचिद्वदन्ति, और त्वं किल योत्स्यसे); जैसे—न श्रद्दधे किं किल त्वं शूद्रान्नं भोक्ष्यसे (सि० कौ०) मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि तुम शूद्र का भोजन ग्रहण करोगे । हेतु, अर्थ में 'किल' का प्रयोग बहुत कम होता है ।

२७०. 'केवलं' एक क्रिया विशेषण है, इसका अर्थ 'केवल, सिर्फ' होता है किन्तु कभी-कभी यह एक विशेषण रूप में भी प्रयुक्त होता है; जैसे—निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले (कुमार० ५।१२) आस्तरणरहित वेदि पर बैठे हुए ।

(क) 'न केवल—किन्तु यह भी' के अर्थ में 'न केवलं' का 'अपि' या 'किंतु' के साथ प्रयोग बहुत मिलता है; जैसे--वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि पर-

---

१. वार्तासंभाव्ययोः किल । (अमर०)
किल इत्यागमरुचिन्यक्करणसंभाव्यहेत्वलीकेषु (गणरत्न०)

प्रयोजना (रघु० ८।३१) 'न केवल उसकी सम्पत्ति अपितु उसके सद्गुणों की सम्पत्ति भी दूसरों के लिये थी।'

(ख) कभी-कभी 'अपि' के स्थान पर 'प्रत्युत' का प्रयोग किया जाता है; जैसे—अयं वत्सो न केवलं ध्रियते प्रत्युत प्रांजलिना गरुडेन पर्युपास्यमानस्तिष्ठति (नागा० ५) मेरा पुत्र केवल जीवित नहीं है अपितु अंजलि बाँधकर गरुड़ उसकी रक्षा भी कर रहे हैं।

२७१. [1]'खलु' का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में किया जाता है :--

(१) वस्तुतः, 'निश्चय ही', 'वास्तव में'—जब किसी कथन पर जोर देना होता है या पादपूर्ति के लिए प्रयोग किया जाता है। जैसे—'मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति' तुम्हारे पैर निश्चय ही मार्ग पर लड़खड़ा रहे हैं।

(२) मनाने या अनुनय करने के अर्थ में—न खलु न खलु बाण: सन्निपात्योऽयमस्मिन् (शाकु० १) कृपया, इस पर बाण न चलावें, इसी प्रकार न खलु न खलु मुग्धे साहसं कार्यमेतत् (नागा० २)।

(३) प्रश्न पूछने के अर्थ में विनम्रतापूर्वक प्रश्न के रूप में--न खलु तामभिक्रुद्धो गुरुः (विक्रमो० ३) क्या गुरु उससे क्रुद्ध नहीं हुए ?

(४) 'क्त्वा' प्रत्ययान्त शब्द के योग में 'अलं' (५७) के समान निषेधवाचक अर्थ में--निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकं (शिशु० २।७०) जब किसी विषयका पत्र द्वारा निर्णय हो जाय तो फिर उसके साथ जबानी संदेश मत दो (उसकी क्या आवश्यकता)।

(५) कारण (क्योंकि) के अर्थ में—न विदीर्ये कठिना खलु स्त्रियः (कुमार० ४।५) 'मैं विदीर्ण नहीं की जाती, क्योंकि स्त्रियाँ कठोर होती हैं' (वर्धमान ने इसे 'विषाद' का उदाहरण बताया है); इसी प्रकार--विधिना जन एष वंचितस्त्वदधीनं खलु देहिनां सुखं (कुमार० ४।१०)।

(६) कभी-कभी इसका प्रयोग केवल पादपूरण के लिये होता है अथवा वाक्य में सुन्दरता लाने के लिये होता है।

---

१. निषेधवाक्यालंकारजिज्ञासानुनये खलु। (अमर०)

खलु इति निषेधवाक्यालंकारजिज्ञासानुनयनियमनिश्चयहेतुविषादेषु।

(गणरत्न)

उ०—गणरत्नमहोदधि में दिये गये 'नियम' और 'निश्चय के अर्थों में कोई भेद नहीं है।'

अभ्यास

१. विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य। (शाकु० ३)

२. न खलु विदितास्ते तत्र निवसन्तश्चाणक्यहतकेन—अथ किम्। (मुद्रा० २)

३. भर्तृगतया चिन्तयात्मानमपि नैषा विभावयति, किं पुनरागन्तुकम्। (शाकु० ४)

४. द्वावपि किलागमिनौ प्रयोगनिपुणौ च। किन्तु शिष्यागुणविशेषेण गणदास उन्नमितोपदेशः। (मालवि० ३)

५. अनुत्सेकः खलु त्रिक्रमालंकारः। (विक्रमो० १)

६. भो, न केवलं रूपं, शिल्पेऽप्यद्वितीया मालविका। (मालवि० २)

७. वत्से सीते स्वहस्तावचितैः पुष्पैः सवितारं देवमुपतिष्ठस्व। न च त्वामवनिपृष्ठचारिणीमस्मत्प्रभावाद्वनदेवता अपि द्रक्ष्यन्ति, किं पुनर्मर्त्याः।

८. गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरंपरा। सर्वाविनयानामेकैकमप्येषामायतनं किमुत समवायः। (काद० १०३)

९. भोः कामं धर्मकार्यमनतिपात्यं देवस्य। तथापीदानीमेव धर्मासनादुत्थितस्य पुनरुपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै निवेदयितुं नोत्सहे। (शाकु० ५)

१०. एवं कदलीदलेनानवरतं वीजयतः समुद्भूम्ने मनसि चिन्ता। नास्ति खल्वसाध्यं मनोभुवः। क्वायं हरिण इव वनवासनिरतः स्वभावमुग्धो जनः क्व च विविधविलासरसराशिर्गन्धर्वराजपुत्री महाश्वेता। (काद० १५७)

११. निवार्यतामालि किमप्ययं वटुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्॥ (कुमार० ५।३८)

१२. किमपेक्ष्य फलं पयोधरान्ध्वनतः प्रार्थयते मृगाधिपः।
प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया॥ (किरात० २।२१)

१३. कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय॥ (गीता १८।७२)

१४. कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।
नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ॥ (रघु० ६।२२)

१५. क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः ।
परिहासविजल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः ॥ (शाकु० २)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. वयस्य मया न साधु समर्थितमापत्प्रतीकारः किल प्रमदवनोद्यानप्रवेश इति । (विक्रमो० २)

२. भगवन्तं जावालिमवलोक्याहमचिन्तयम्–तपस्विनां प्रतनुतपसामपि तेजः प्रकृत्या दुःसहं भवति किमुत सकलभुवनवन्दितचरणानां मुनीनाम् । एवं विधानामक्षयकारिणाम् पुण्यानि नामग्रहान्यपि महामुनीनां, किं पुनर्दर्शनानि । (काद० ४३)

३. आजन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य ।
परातिसन्धानमधीयते यैर्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः ॥ (शाकु० ५)

४. यदृच्छया त्वं सकृदप्यवन्ध्ययोः पथि स्थिता सुन्दरि यस्य नेत्रयोः ।
त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत्सखीजनस्ते किमु रूढसौहृदः ॥ (विक्रमो० १)

५. न केवलं दरीसंस्थं भास्वतां दर्शनेन वः ।
अन्तर्गतमपास्तं मे रजसोऽपि परं तमः ॥ (कुमार० ६।६०)

६. न केवलं तद्गुरुरेकपार्थिवः
क्षितावभूदेकधनुर्धरोऽपि सः ॥ (रघु० ३।३१)

७. सुखश्रवा मंगलतूर्यनिस्वनाः प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम् ।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः पथि व्यजृम्भंत दिवौकसामपि ॥ (रघु० ३।३१)

८. रघुमेव निवृत्तयौवनं तममन्यन्त नरेश्वरं प्रजाः ।
स हि तस्य न केवलां श्रियं प्रतिपेदे सकलान्गुणानपि ॥ (रघु० ८।४)

९. मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः ।
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥ (मेघ० ३)

१०. दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ (मेघ० ३९)

११. स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।
प्रागंतरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात—
मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ॥ (शाकु० ५)

१२. क्व रुजा हृदयप्रमाथिनी क्व च ते विश्वसनीयमायुधम् ।
मृदुतीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिदं मन्मथ दृश्यते त्वयि ॥ (मालवि० ३)

१३. कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि ।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थनां कुरुते ॥ (शाकु० २)

अनुवाद कीजिए :—

१. ऐसा कहा जाता है कि राजा हमारी असावधानी के कारण हम पर बहुत कुपित हो गये हैं ।

२. जिसे मैंने एक बार देख लिया उस व्यक्ति को नहीं भूल सकता, फिर एक पुराने मित्र की तो बात ही क्या ?

३. इस तपोवन में निर्जीव पदार्थ भी पवित्र करने वाली शक्ति से युक्त दिखाई पड़ते हैं, फिर जीवधारियों के विषय में क्या कहना ?

४. जब मैं उसके पास गया तब उसने न केवल मेरा अपमान किया अपितु स्वयं गुरु जी का भी अपमान किया ।

५. इतना ही नहीं है कि कोई मुझसे घृणा नहीं करता अपितु वे मुझे भोजन भी देते हैं ।

६. मैं आशा करता हूँ कि यह राजा के कानों तक नहीं पहुँचा है कि मैंने ही कौमुदी-उत्सव को तत्काल बन्द करने का आदेश दिया था ।

७. हम पाते हैं कि धनीकुल में उत्पन्न व्यक्ति भी इस संसार में पूर्णतः सुखी नहीं हैं; तब उनकी बात ही क्या ? जो अनेक प्रकार के कष्टसाध्य कार्यों द्वारा अपनी जीविका अर्जित करते हैं ।

८. मैं हार्दिक आशा करता हूँ कि तुम इस असहाय बालक के प्राण न लोगे । सज्जन अपने शत्रु का वध करने में भी हिचकते हैं फिर इस बालक जैसे निर्दोष प्राणी की तो बात ही क्या ?

९. आप सबकी तपस्याएँ निर्विघ्न चल तो रही हैं ?

१०. माना कि आप सभी सद्गुणों से युक्त हैं; फिर भी मैं आपको उपदेश देना अपना कर्तव्य समझता हूँ, क्योंकि युवावस्था प्रलोभनों का स्थान है।

११. यह सत्य है कि मुझे यह याद नहीं कि मैंने उससे विवाह किया था; फिर भी उसे देखकर मेरा मन बहुत प्रभावित हुआ है।

१२. क्या तुम्हारी पवित्र विद्या और हृदय की इस चंचल अवस्था में क्या भला कोई संगति है ?

१३. कहाँ तो राजाओं के कार्य, जो स्वभावतः अज्ञेय होते हैं, और कहाँ मुझ जैसे व्यक्ति जिनका ज्ञान वहुत सीमित होता है।

———

पाठ २४

च (च–च), जातु, तत् ततः, तथा, तावत्, और तु

२७२. [1]'च' एक समुच्चयबोधक अव्यय है और शब्दों या कथनों को एक साथ जोड़ता है। इसका प्रयोग ठीक अंग्रेजी के and और लैटिन के 'et' की तरह नहीं होता। इसका प्रयोग उन सभी शब्दों या कथनों के साथ होता है जिन्हें यह जोड़ता है अथवा इस प्रकार संयुक्त किये जाने वाले शब्दों या कथनों में अन्तिम के साथ इसका प्रयोग नहीं होता, किन्तु कभी भी वाक्य के आरंभ में इसका प्रयोग नहीं हो सकता। जैसे—'रामश्च गोविन्दश्च' या 'रामो गोविन्दश्च' राम और गोविन्द; 'तण्डुलानानयति, च तान् पचति चौदनं भुंक्ते च' या 'तण्डुलानानयति तान् पचत्योदनं भुंक्ते च' वह चावल ले आता है, उन्हें पकाता है, और भात खाता है। किन्तु प्रत्येक संयुक्त शब्द के साथ आवृत्ति करने की अपेक्षा 'च' का प्रयोग अन्त में करना अधिक अच्छा होता है। जैसे—**कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः।** (रघु० ६।७९)।

(क) प्रायः 'च' का प्रयोग वाक्य में प्रथम शब्द को छोड़कर कहीं भी कर दिया जाता है; जैसे—**अथ गजस्तं प्रणम्य प्रस्थितः। शशकाश्च तद्दिनारभ्य सुखेन तिष्ठन्ति।** (पंच० ३।१)। तब उसे प्रणाम करके हाथी चला गया और खरगोश भी उस दिन से सुख पूर्वक रहने लगे।

(ख) जब 'च' का प्रयोग 'न' के साथ होता है तब इसका अर्थ 'न तो—और न' होता है; जैसे—**न च न परिचितो न चाप्यगम्यः** (मालवि० १) न तो वह अज्ञात है और न अगम्य है।

(ग) कभी-कभी इसका अर्थ वियोजक होता है और इसका अनुवाद 'किन्तु' (but) फिर भी (still) ऐसा होते हुए भी (nevertheless) हो सकता है; जैसे—**शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः** (शाकु० १) 'यह आश्रम शान्त है, फिर भी मेरी बाँह फड़क रही है।'

द्र०—इस अर्थ में प्रायः 'च' की आवृत्ति होती है; अगला अधिकरण देखिए।

---

१. चान्वाचये समाहारेऽप्यन्योन्यार्थे समुच्चये।
पक्षान्तरे तथा पादपूरणेऽप्यवधारणे॥ (विश्व०)

(घ) बहुत कम स्थलों पर इसका अर्थ 'वस्तुतः' 'वास्तव में' होता है और तब यह 'एव' के समानार्थक होता है; जैसे—**अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयोः** (गणरत्न०) आप की महानता वस्तुतः मन और वाणी के क्षेत्र को भी पार कर जाती है।

(ङ) इसका प्रयोग कभी-कभी 'दशा' का बोध कराने के लिये होता है (=चेद् या यदि); जैसे—**जीवितं चेच्छसे मूढ हेतुं मे गदतः शृणु** (महाभारत) अर्थात् 'जीवितमिच्छसे चेद्'।

(च) अथवा इसका प्रयोग पादपूर्ति के लिये भी किया जा सकता है; जैसे—**भीमः पार्थस्तथैव च** (गणरत्न०)।

द्र०—कोशकारों ने 'च' का अर्थ अन्वाचय, समाहार, इतरेतर, समुच्चय दिया है जो सभी 'च' द्वारा व्यक्त किये जाने वाले 'संयोजन' के सामान्य भाव के अन्तर्गत आ जाते हैं। 'अन्वाचय' का अर्थ होता है आश्रित या गौण लक्ष्य को मुख्य तथ्य के साथ जोड़ना; जैसे—**भिक्षामट गां चानय**, भिक्षा माँगने जाओ (और ऐसा करते हुए) गाय ले आओ। समाहार 'समूहात्मक संयोग' होता है, जैसे—पाणी च पादौ च पाणिपादं; इतरेतर अन्योन्य संबन्ध को कहते हैं—जैसे—**प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च प्लक्षन्यग्रोधौ**; समुच्चय का अर्थ होता है समूह; जैसे पचति च पठति च।

२७३. बहुधा दो कथनों में 'च' की आवृत्ति निम्नलिखित अर्थों में होती है :—

(१) **'एक ओर—दूसरी ओर'** 'यद्यपि-फिर भी' के अर्थ में विरोध प्रदर्शित करने के लिए, जैसे—न सुलभा सकलेन्दुमुखी च सा किमपि चेदमनं गवि चेष्टितम् (विक्रमो० २) एक ओर तो पूर्णचन्द के समान मुखवाली वह स्त्री सुलभ नहीं है, और दूसरी ओर काम इस प्रकार की चेष्टाएँ कर रहा है; अथवा 'वह पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली युवती....फिर भी...'

(२) **दो घटनाओं के एक साथ या अविलम्ब होने का बोध कराने के लिए** 'च' की आवृत्ति होती है, जिसे 'ज्योंही' 'जैसे ही' द्वारा व्यक्त किया जाता है—जैसे—ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः (रघु० १०।६) ज्योंही ही वे समुद्र पर पहुँचे त्योंही परमात्मा (भगवान् विष्णु) जगे।

२७४. 'जातु' का अर्थ है 'कैसे भी', 'सम्भवतः' 'शायद' ,'भला' जैसे—किं तेन जातु जातेन (पंच० १।१) उसके जन्म लेने का भला क्या प्रयोजन

है ? न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिं (कुमार० ५।५५) उस बाला ने किसी भी प्रकार सुख नहीं प्राप्त किया।

प्र०—पाणिनि के अनुसार 'जातु' का प्रयोग विधिलिङ् के साथ 'आज्ञा न देना' 'सहन न करना' के अर्थ में होता है; जैसे—जातु यत्त्वादृशो हरिं निन्देन्न मर्षयामि (सि० कौ०) मैं यह नहीं सहन कर सकता कि तुम्हारे जैसा व्यक्ति हरि की निन्दा करे।

२७५. 'तद्' सर्वनाम भी है (इसके प्रयोग के लिए अधिकरण १३२ देखिए) और क्रियाविशेषण भी। क्रिया विशेषण होने पर इसके निम्नलिखित अर्थ होते हैं :—

(१) 'इस कारण से' 'अतएव', 'फलतः', जैसे—राजपुत्रा वयं, तद्विग्रहं श्रोतुं नः कुतूहलमस्ति (हितो० ३) हम राजकुमार हैं, अतएव हमें युद्ध के विषय में सुनने की उत्कण्ठा है।

(२) **'तब', 'ऐसी दशा में',**—प्रायः 'यदि' के सहगामी अव्यय के रूप में; जैसे—तदेहि विमर्दक्षमां भूमिमवतरावः (उत्तर० ५) तब आओ, हम अपने युद्धके योग्य स्थान पर चलें। तथापि यदि महत्कुतूहलं तत्कथयामि, (काद० १३६) फिर भी यदि तुम्हें अत्यधिक कुतूहल है तो मैं कहता हूँ।

२७६. 'ततः' का प्रयोग प्रायः 'तद्' के पञ्चमी विभक्ति के रूपों के लिये होता है; जैसे—तस्मात्, तस्याः। ततोऽन्यत्रापि दृश्यते (सि० कौ०)=तस्मादन्यत्रापि। किन्तु उससे भी अधिक इसका प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप में होता है। इसका अर्थ मौलिक रूप में 'उससे' 'उस स्थान से' और सामान्य रूप में 'तब' 'उसके बाद' 'ऐसा होने पर' होता है। जैसे—ततः कतिपयदिवसापगमे (काद० ११०) तब कुछ दिन बीतने के बाद। इसके निम्नलिखित अर्थ भी होते हैं :—

(१) **'इस कारण से'**, 'अतएव', 'परिणामस्वरूप'—'यतः' के जोड़ में आने वाले पद के रूप में।

(२) 'तब' 'ऐसी दशा में' के अर्थ में, यदि के जोड़ में आने वाले पद के रूप में। जैसे—यदि गृहीतमिदं ततः किम् (काद० १२०) यदि यह पकड़ लिया गया तब क्या होगा ?

(३) कभी-कभी 'उसके आगे' 'आगे' 'और भी' के अर्थ में। ततः परतो निर्मानुषमरण्यं (काद० १२१) उसके आगे निर्जन वन है।

(क) ततस्ततः (ततः+ततः) का प्रयोग बातचीत में 'आगे क्या हुआ' 'कहते जाइए' 'तब फिर' के अर्थ में होता है; जैसे—राक्षसः—उभयोरप्यस्थाने प्रयत्नः। ततस्ततः (मुद्रा० २) राक्षस—दोनों का प्रयत्न उचित विषय के लिए नहीं था। तब क्या हुआ ?

२७७. [1]'तथा' का अर्थ होता है 'ऐसा' 'इस प्रकार' जैसे—तथा मां वंचयित्वा (शाकु० ५) उस प्रकार मुझे धोखा देकर; सूतस्तथा करोति (विक्रमो० १) सूत वैसा ही करता है; तथा च श्रुतिः (शा० भा०) और वेद भी ऐसा ही कहता है।

(क) इसका प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में भी किया जाता है— (१) और भी 'इसी प्रकार'; जैसे—अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा (पंच० १।१३) जो भविष्य के लिये कार्य करता है और वह भी जो प्रत्युत्पन्न मतिवाला है।

(२) 'हाँ' 'ऐसा ही हो' 'ऐसा ही होगा' के अर्थ में 'अनुमति' या 'वचन' देने का भाव व्यक्त करने के लिए तथा का प्रयोग होता है और उसके बाद 'इति' आता है; जैसे, राजा—एनं तत्रभवतः सकाशं प्रापय। प्रतिहारी—तथेति निष्क्रान्ता। राजा—इसे उनके पास ले जाओ। प्रतिहारी—अच्छा, ऐसा ही होगा) आपकी आज्ञा का पालन किया जायेगा) ऐसा कहकर चला जाता है।

(३) इसका प्रयोग शपथ ग्रहण करने में ('यथा' के बाद) 'इतना निश्चित है जितना' के अर्थ में होता है; जैसे—यथाहमन्यं न चिन्तये तथायं पततां परासुः' जितना निश्चित रूप से मैं दूसरे पुरुष का चिन्तन नहीं करती उतने ही निश्चित रूप से इस व्यक्ति की मृत्यु हो (यदि मैं किसी दूसरे पुरुष का ध्यान नहीं रखती तो···)।

'यथा' के साथ प्रयुक्त होने वाले पद के रूप में 'तथा' के कुछ अर्थ पाठ २७ में देखिए।

द्र०—तथाहि='क्योंकि', 'ऐसा कहा गया है', 'उदाहरण के लिए', 'तथा च'=और इसी प्रकार। दोनों का प्रयोग प्रायः कोई उद्धरण देते समय किया जाता है।

---

१. तथाऽभ्युपगमे पृष्टप्रतिवाक्ये समुच्चये।
सदृशे निश्चयेऽपि स्यात्। (मेदिनी०)

२७८. अव्यय शब्द 'तावत्' का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में किया जाता है:—

(१) इसका शाब्दिक अर्थ होता है 'पहले' 'कोई दूसरा कार्य करने के पूर्व', जैसे—प्रिय इतस्तावदागम्यतां (शाकु० १) प्रिये पहले इधर आओ। आह्लादयस्व तावच्चन्द्रकरश्चन्द्रकान्तमिव (विक्रमो० ५) पहले मुझे उसपर आनन्दित करो जैसे चन्द्रमा की किरण चन्द्रकान्तमणि को चमका देती है।

(२) 'अपनी ओर से', 'इसी बीच' 'जबकि' के अर्थ में; जैसे—सखे स्थिरप्रतिबन्धो भव। अहं तावत्स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये (शाकु० २) मित्र अपने विरोध पर दृढ़ रहो, मैं भी (जब तक मैं) अपने स्वामी की इच्छा के अनुसार कार्य करूँगा।

(३) 'अभी', 'अब' के अर्थ में—'गच्छ तावत्' तो अब जाओ।

(४) 'वस्तुतः', 'वास्तव में' के अर्थ में किसी कथन पर जोर देने के लिए; जैसे—त्वमेव तावत्प्रथमो राजद्रोही (मुद्रा० १) तो तुम्हीं पहले राजद्रोही हो।

(५) 'जहाँ तक सम्बन्ध है' 'विषय में' के अर्थ में—एवं कृते तव-तावत्प्राणयात्रा क्लेशं विना भविष्यति (पंच० १।८) ऐसा करने पर, जहाँ तक तुम्हारा सम्बन्ध है, (तुम्हारे विषय में तो) तुम्हारी जीवनवृत्ति तो तुम्हें बिना कष्ट के मिलेगी; विग्रहस्तावदुपस्थितः (हितो० ३) जहाँ तक युद्ध की बात है, वह तो अब आ ही गया।

'यावत्' के सहगामी पद के रूप में 'तावत्' के अन्य प्रयोगों के लिये पाठ २७ देखिए।

२७९. [1]'तु' का प्रयोग विरोधसूचक अव्यय के रूप में होता है और इसका अर्थ होता है 'लेकिन' 'इसके विपरीत' 'फिर भी' 'दूसरी ओर'; जैसे—स सर्वेषां सुखानां प्रयोजनं ययौ। एकं तु सुतमुखदर्शनसुखं न लेभे (काद० ५९) 'उन्होंने सभी सुखों का पूरी तरह से भोग किया, केवल उन्होंने पुत्र का मुख देखने का सुख नहीं प्राप्त किया।' इस अर्थ में इसे प्रायः 'किं' और 'परं', के साथ जोड़कर प्रयुक्त किया जाता है।

---

१. तु पादपूरणे भेदे समुच्चयेऽवधारणे (विश्व०)

टिप्पणी—'तु' का प्रयोग कभी भी वाक्य के आरम्भ में नहीं होता, जबकि 'परन्तु' और किन्तु सदैव पहले आते हैं।

(क) 'तु' का प्रयोग प्राय: 'और अब' 'अब' 'अपनी ओर से' 'जहाँ तक सम्बन्ध है' 'विषय में' के अर्थ में विना कोई विरोधसूचक भाव के होता है; जैसे—**एकदा तु नातिदूरोदिते सहस्रमरीचिमालिनि प्रतीहारी समुपसृत्याब्रवीत्** (काद० ८) एक बार जब सहस्रकिरणोंवाले भगवान् (सूर्य) आकाश में बहुत ऊँचे नहीं उठे थे तब निकट आकर द्वारपाल ने कहा; **अवनिपतिस्तु तामनिमेषलोचनो ददर्श** (काद० ११) पृथ्वी के स्वामी ने भी निर्निमेष दृष्टि से उसकी ओर देखा; **यत्तु आसनशब्दस्यासन्नादेश इति काशिकायामुक्तं तत्प्रामादिकं** (सि० कौ०) या '**निर्वापितं तु परिरभ्य वपुर्न नाम** (मालती०)।

(ख) कभी कभी 'तु' अन्तर या उत्कर्ष प्रकट करता है; जैसे—**मृष्टं पयो मृष्टतरं तु दुग्ध** (गणरत्न०) जल शुद्ध होता है, दूध उससे भी अधिक शुद्ध होता है; और कभी-कभी जोर देने वाले अव्यय पद के रूप में प्रयुक्त होता है; जैसे—**भीमस्तु पांडवा रौद्र** (वटी०) अकेला भीम ही पाण्डवों में सबसे अधिक भयंकर है।

अभ्यास

१. तद्यदि नातिखेदकरमिव तत: कथनेनात्मानमनुग्राह्यमिच्छामि।
(काद० १३४)

२. अपसृते च तस्मिन् स विहंगराजो राजाभिमुखो भूत्वा राजानमुद्दिश्यार्यामिमां पपाठ। राजा तु तां श्रुत्वा संजातविस्मयोऽमात्यमब्रवीत्।
(काद० १२)

३. आर्य तत: किं विलंब्यते। त्वरितं (तं) प्रवेशय। (उत्तर० १)

४. अनेन क्रमेण तस्य सर्वेष्वरण्यवासिष्वाधिपत्यं बभूव। ततस्तेन स्वज्ञातिभिरावृतेनाधिकं प्रभुत्वं साधितम्। (हितो० ३)

५. आर्ये कृतपरिश्रमोस्मि चतु:षष्ट्यंगे ज्योति:शास्त्रे। तत्प्रवर्त्यंतां भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाक:। चन्द्रोपरागं प्रति तु केनापि विप्रलब्धासि।
(मुद्रा० १)

६. भगवन् कुसुमायुध त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामतिसंधीयते कामिजनसार्थ:। (शाकु० ३)

७. तात लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये । (शाकु० ४)

८. करटक उवाच । भद्र किं कृतं तत्रभवता । दमनक आह—मया तावन्नीतिबीज-
निर्वपणं कृतं, परतो दैवविहितायत्तम् । (पंच० १।१५

९. दृष्ट्वा मेघनादं दूरत एव कृतनमस्कारं तमप्राक्षीत् । तिष्ठतु तावत्पुरस्तात्पत्र-
लेखागमनवृत्तान्तप्रश्नो, वैशंपायनवृत्तान्तमेव तावत् पृच्छामि ।
(काद० ३०४)

१०. अयमेकपदे तया वियोगः सहसा चोपनतः सुदुःसहो मे ।
नववारिधरोदयादहोभिर्भवितव्यं च निरातपत्वरम्यैः ॥ (विक्रमो० ४)

११. प्रतिग्रहीतुं प्रणयिप्रियत्वात्त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च ।
संमोहनं नाम च पुष्पधन्वा धनुष्यमोघं समधत्त बाणम् ॥
(कुमार० ३।३६)

१२. न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ (मनु० २।९४)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. अत्र भवत्या प्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु । कुत इदमुच्यत इति चेत् त्वं साधुभिरु-
पदिष्टः प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति । स चेत्तल्लक्षणोपपन्नो भवि-
ष्यति, अभिनंद्य शुद्धांतमेनां प्रवेशयिष्यसि । विपर्यये तु पितुरस्याः समीप-
नयनमवस्थितमेव । (शाकु० ५)

२. कथारंभकाले राजपुत्रा ऊचुः—आर्य मित्रलाभः श्रुतस्तावदस्माभिः इदानीं
सुहृद्भेदं श्रोतुमिच्छामः । (हितो० २)

३. सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा ।
चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥ (हितो० १)

४. लब्धान्तरा सावरणेपि गेहे योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते ।
बिभर्षि चाकारमनिर्वृतानां मृणालिनी हैममिवोपरागम् ॥ (रघु० १६।७)

५. मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः ।
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः ॥ (शाकु० ६)

६. देव परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु—
सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता ।
स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारादुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम ॥ (शाकु० ५)

७. धनं तावदसुलभं लब्धं कृच्छ्रेण रक्ष्यते ।
लब्धनाशो यथा मृत्युस्तस्मादेतन्नचिन्तयेत् ॥ (हितो० १)

८. सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ (गीता० १५।१५)

९. न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्—
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः ।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते ॥ (शाकु० १)

१०. आपूर्णश्च कलाभिरिन्दुरमलो यातश्च राहोर्मुखं
संजातश्च घनाघनो जलधरः शीर्णश्च वायोर्जवात् ।
निर्वृत्तश्च फलैग्रहिर्द्रुमवरो दग्धश्च दावाग्निना
त्वं चूडामणितां गतश्च जगतो यातश्च मृत्योर्वशम् ॥ (मालती० ९)

अनुवाद कीजिए :—

१. जो सदाचार के साथ कार्य करते हैं और दूसरे की भलाई करने में लगे रहते हैं, वे ही ईश्वर की दया के पात्र होते हैं ।

२. मैं बम्बई से आठ रेशमी कपड़े, पाँच चाँदी के बर्तन और अनेक दूसरी उपयोगी वस्तुएँ ले आया हूँ ।

३. एक ओर तो मैंने उसे कभी पहले नहीं देखा है; दूसरी ओर उसकी वाणी वज्र की चोट के समान कठोर है; यह आदमी कौन हो सकता है ?

४. जैसे ही ये वीर सैनिक अपने स्वामी का पक्ष छोड़ते हैं; मैं उसके राज्य में विद्रोह भड़का दूँगा ।

५. तुमने युद्ध की बहुत सुन्दर तैयारियाँ की हैं; अतएव तुम्हें किसी वस्तु का अभाव नहीं होगा ।

६. दुर्योधन—अरे ! उस बालक योद्धा की वीरता आश्चर्यजनक है ! सोचता हूँ कि सभी योद्धा उसकी वीरता को देखकर थोड़ी देर तक विस्मय से स्तब्ध रह गये होंगे । अच्छा, आगे बढ़ो ।

७. इस प्रकार अपने मधुमय शब्दों द्वारा मुझे अभिभूत करके फिर मुझे, ठुक-राते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ?

८. तुम अपनी प्रिया से क्षणिक वियोग से भी इतना अधिक दुःखी होते हो, फिर भी मुझ जैसे वियोगपीडित व्यक्ति को भी उसकी खोई हुई प्रियतमा का हाल बताने से इतने उदासीन हो।

९. जिस क्षण उसने घर की ड्योढ़ी के भीतर पैर रखा उसी समय तीन व्यक्ति उस पर टूट पड़े और उन्होंने उसे वन्दी बना लिया।

१०. तुमने अब धन, यश, सन्तान और मनुष्यों द्वारा इच्छित सभी वस्तुएँ प्राप्त कर ली हैं; अब और तुम क्या चाहते हो? अथवा क्यों? यह सत्य ही कहा गया है 'इसे कोई नहीं जानता कि मनुष्य की इच्छाएँ कहाँ तक बढ़ सकती हैं।'

११. यज्ञशर्मा के पास जाओ और उससे पूछो कि तुमने इतनी देर क्यों की है; तब तक मैं जाकर अन्य ब्राह्मणों को बुलाऊँगा।

१२. तड़के सवेरे उठकर राम पढ़ना प्रारम्भ करता है; जबकि तुम खर्राटें भरते हुए शय्या पर पड़े रहते हो।

१३. जहाँ तक मित्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र की बात है; उस पर विश्वास किया जा सकता है किन्तु उसके अन्य पुत्रों के विषय में कुछ नहीं जानता।

१४. यदि ऐसा हो तो तुम स्वयं ही निर्विघ्न अपना कार्य कर सकते हो, और हम भी अपना कार्य कर सकेंगे।

पाठ २५

दिष्ट्या, न, नाम, नु, ननु, और नूनं

२८०. 'दिष्टचा' आनन्द और प्रसन्नता व्यक्त करने वाला अव्यय शब्द है और इसका अनुवाद 'मैं प्रसन्न हूँ' 'संयोगवश' 'सौभाग्यवश' 'धन्य हैं !'' हो सकता है। जैसे--दिष्टचा प्रतिहतं दुर्जातं (मालती० ४) खुशी की वात है कि विपत्ति दूर हो गई; दिष्टचा कोपव्याजेन देव्या परित्रातो भवान् (मालवि० १) ईश्वर को धन्यवाद कि रानी ने तुम्हें क्रोध का वहाना कर वचा दिया।

(क) 'दिष्टचा' का प्रयोग प्राय: 'वृध्' धातु के साथ होता है और 'दृष्टचा वृध्' का अनुवाद होगा 'तुम्हें वधाई है।' 'वृध्' का कर्त्ता वह व्यक्ति होता है जिसे वधाई दी जाती है और जिस वात के लिये वधाई दी जाती है उसे तृतीया विभक्ति में रखते हैं: जैसे--दिष्टचा महाराजो विजयेन वर्धते (विक्रमो० १) मैं महाराज की सफलता पर वधाई देता हूँ; दिष्टचा सुहृद्बुद्धचा (वर्धितोसि मालती० ४) मित्र के चेतना प्राप्त करने पर आपको वधाई देता हूँ।

२८१. 'न' (नहीं) का प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप में होता है; न दृष्टोऽयं मया 'वह मेरे द्वारा नहीं देखा गया था।' संज्ञाके साथ प्रयुक्त होने वाले 'नहीं' (No) शब्द को किसी अनिश्चयवाचक रूप के साथ 'न' जोड़कर व्यक्त किया जाता है; जैसे कोई व्यक्ति मेरे पास नहीं आया No man came to me न कोपि नरो मामायात:, योगिनां न किमपि भयं 'योगियों को कोई भय नहीं होता।' निषेधवाचक वाक्यों में अनिश्चयवाचक सर्वनाम सबका निष्कर्ष सूचित करते हैं; जैसे--मरणान्न कोपि विभेति। कोई भी मृत्यु से नहीं डरता।

(क) अनेक स्थलों पर 'न-न' का प्रयोग किसी कथन पर जोर देने के लिये किया जाता है; जैसे—नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुं (शाकु० ३) यह निश्चय ही अपनी मानसिक व्यथा का गुप्त कारण बता देगी (ऐसी बात नहीं है कि वह नहीं बतावेगी)।

२८२. [1]'नाम' का प्रयोग बहुशः 'नाम लेकर' 'नामवाला' 'पुकारा जाता है' 'जाना जाता है' के अर्थ में प्रयुक्त होता है; जैसे—रावणो नाम लंकेशः रावण नाम का लंका का राजा था; पुष्पपुरी नाम नगरी, पुष्पपुरी नाम का शहर।

द्र०—'नाम' के पूर्व आने वाले संज्ञा शब्द में वही विभक्ति होनी चाहिए जो विभक्ति उस संज्ञापद में हो जिसका नाम होता है। जैसे—**मेघनादो नाम मित्रं** (पंच० १।१५) मेघनाद नाम का मित्र; **तन्नन्दिनी सुवृत्ता नामोपगम्य** (दशकु० १।१); **अस्ति पाटलिपुत्रे नाम नगरे बलभिन्नाम वणिक्** (दशकु० २।६); इस 'नाम' का प्रयोग किसी समास में नहीं होता और इसे 'नामन्' नहीं समझ लेना चाहिए जिसका प्रयोग समास में होता है; जैसे 'दशरथनाम राजा' गलत है यह 'दशरथो नाम राजा' या 'दशरथनामा राजा' (दशरथो नाम यस्य सः) होना चाहिए।

२८३. 'नाम' का अत्यन्त प्रचलित अर्थ है: 'वस्तुतः', 'निश्चय ही' 'सचमुच'; जैसे—**मया नाम जितम्** (विक्रमो० १) मैंने वस्तुतः विजय प्राप्त कर लिया है। **विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम** (शाकु० १) तपोवन में वस्तुतः नम्रवेष धारण कर प्रवेश करना चाहिए।

द्र०—जब 'नाम' का प्रयोग 'कः' 'किं' 'कथं' साथ होता है तो उसका अर्थ 'सम्भावना' या 'मैं जानना चाहूँगा'' होता है (तुलना 'इव' से २५७); जैसे—**को नाम राज्ञां प्रियः** (पंच० १।३) कौन राजा का प्रिय हो सकता है? **को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे** (उत्तर० ७) जब भाग्य अपना प्रभाव दिखाना प्रारम्भ कर देता है तो फिर कौन प्राणी उसके द्वार को बन्द कर सकता है, यह मैं जानना चाहूँगा; **अयि कथं नामैतत्** (उत्तर० ६) अरे यह कैसा है?

२८४. 'नाम' का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में भी होता है :—

(१) बहाना या बनावटी कार्य व्यक्त करने के लिये :—जैसे—**कार्तान्तिको नाम भूत्वा** (दशकु० २।६) ज्योतिषी होने का स्वांग रचकर।

---

१. नाम प्राकाश्यसंभाव्यक्रोधोपगमकुत्सने। (अमर०)
नाम प्राकाश्यकुत्सयोः।
संभाव्याभ्युपगंमयोरलीके विस्मये क्रुधि ॥ (हेम०)

(२) 'माना' 'ऐसा हो सकता है' यदि तुम चाहो' के अर्थ में लोट् लकार (आज्ञा) के साथ,—जैसे—यत्खल्वनालोचितावधि दुःखावसानमेव दुःखं तन्मरणभीरोर्भवतु नाम शोकावेगाय (काद० २२८) माना कि जो विपत्ति अनिश्चित काल तक रहती है उसका अन्त दुःख में होगा और वह मृत्यु से भयभीत व्यक्ति में शोक का भाव उत्पन्न करेगी; एवमस्तु नाम 'अच्छा, ऐसा ही हो', (यदि आप की यही इच्छा है)।

(३) आश्चर्य के अर्थ में—अन्धो नाम पर्वतमारोहति (गणरत्न०) आश्चर्य की बात है कि अन्धा व्यक्ति भी पर्वत पर चढ़ता है।

(४) 'क्रोध' और यदा-कदा 'निन्दा के अर्थ में—किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि (उत्तर० ४) अरे! शस्त्रों से चमक निकल रही है ? ममापि नाम दशाननस्य परैः परिभवः (गणरत्न०) क्या ? मैं दशानन भी किसी से परास्त होऊँ!

२८५. [1]'नु' का अर्थ प्रश्नवाचक होता है और यह 'सन्देह' या 'अनिश्चय' प्रकट करता है; जैसे—स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु (शाकु० ६) यह स्वप्न था, या माया थी या मेरी बुद्धि ही चकरा गई ?

(क) 'नु' का प्रयोग बहुशः प्रश्नवाचक सर्वनाम या प्रश्नवाचक सर्वनाम के किसी रूप के साथ संयुक्त करके होता है, और तब इसका अर्थ होता है 'संभवतः' 'वस्तुतः' (देखिये इव २५७) जैसे—किं न्वेतत्स्यात्किमन्यदितोऽथवा (मालती० १) यह क्या हो सकता है ?—या इसके अतिरिक्त और क्या ? कथं नु गुणवद् विन्देयं कलत्रं (दशकु० २।६) मैं भला कैसे गुणवती पत्नी प्राप्त करूँगा ?

२८६. [2]'नु' का सर्वाधिक प्रचलित प्रयोग 'न' के साथ होता है और अब 'ननु' को एक पृथक् शब्द समझा जाता है। इसका प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में होता है :—

१. 'क्या ऐसी बात नहीं है' 'निश्चय ही ऐसा है' के अर्थ—यदाऽमेधाविनी शिष्योपदेशं मलिनयति तदाचार्यस्य दोषो ननु' (मालवि० १) जब मन्दबुद्धि का शिष्य उपदेश को मलिन करता है तो क्या यह गुरु का दोष नहीं है ? (गुरु का ही तो दोष है)।

---

१. नु पृच्छायां विकल्पे च। (अमर०)

२. प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामंत्रणे ननु (अमर०)।

२. इसका प्रयोग 'क्यों' (अंग्रेजी के why) के समान पहले कही हुई बात को सुधारने के लिये होता है—'ननु पदे परिवृत्यभण' (मृच्छ० ६) मैं कहता हूँ, इसे शब्दों को बदल कर कहो ?

ननु भवानग्रतो मे वर्तते (शाकु० २) क्यों ? आप स्वयं ही मेरे सम्मुख उपस्थित हैं (क्या सचमुच ऐसा नहीं है कि); 'ननु विचिनोतु भवांस्तदस्मिन्नुद्याने' (विक्रमो०) (अच्छा, तुम खड़े क्यों हो) उसे वाटिका में ढूँढों ।

३. अनुनयसूचक शब्दों के रूप में 'प्रार्थना करता हूँ' 'प्रसन्न होइए' 'कृपया आदि के अर्थं में; जैसे—'ननु मां प्रापय पत्युरन्तिकम्' (कुमार० ४।३२) कृपया मुझे मेरे पति के पास ले चलो ।

४. किसी व्यक्ति को बुलाने के लिये संबोधन पद के रूप में 'अरे' हे ! के अर्थ में । जैसे—राजवाहनोऽभाषत । ननु मानव अत्र भवानेकाकी किमिति निवसति (दशकु० १।२) राजवाहन ने कहा—अरे मनुष्य ! यहाँ अकेले क्यों निवास करते हो ? ननु मूर्खा; पठितमेव युस्माभिस्तत्काण्डे (उत्तर० ४) अरे मूर्खो ! तुम लोग पहले ही उस अध्याय में पढ़ चुके हो ।

५. प्रश्न पूछने में । जैसे—'ननु समाप्तकृत्यो गौतमः' (उत्तर० ४) क्या गौतमने अपना कृत्य समाप्त कर लिया है ?

(क) तर्कपूर्ण विवाद में 'ननु' का प्रयोग कोई आपत्ति करने या विपरीत तर्क के प्रारम्भ में किया जाता है, और आपत्ति के उत्तर या पूर्वकथन के खण्डन करने वाले वक्तव्य के साथ 'उच्यते' का प्रयोग 'अत्र' के साथ या विना 'अत्र' के होता है । जैसे—ननु एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः इति वचनेन विषमो विभागो दर्शित इति । अत्रोच्यते । सत्यमयं विषमो विभागः सशास्त्रस्तथापि लोकविद्विष्टत्वान्नानुष्ठेयः (मिताक्षरा) यहाँ यह आपत्ति की जा सकती है कि (पैतृक संपत्ति का) विभाजन गुरु ने विषम किया है और ज्येष्ठ पुत्र को दो भाग मिलते हैं; इसका उत्तर हम यह देते हैं कि यह सही है कि शास्त्र में यह विषम विभाजन विहित है, किन्तु व्यवहार के विपरीत होने के कारण इसका पालन नहीं करना चाहिए ।

इसी प्रकार—'ननु अचेतनान्येव वृश्चिकादिशरीराण्यचेतनानां च गोमयादीनां कार्याणीति उच्यते (शा० भा० ४२८); इस अर्थ में 'ननु के प्रयोग के अन्य उदाहरण ये हैं :—ननु चेतनमपि कार्यकारणं स्वामिभृत्यन्यायेन भोक्तुरुपकरिष्यति । न । (शा० भा० ४२३) ननु जगदप्यप्रकृतमसंशब्दितं च । सत्यमेतत् (वही० ३८३) ।

द्र०—कथं तर्हि ('तब यह कैसे ?) इति चेत् (यदि कोई ऐसा कहे) का प्रयोग कभी-कभी आपत्ति करने में होता है, जैसे—कथं तर्हि, क्वासि हे सुभ्रु—प्रमाद एवायमिति भागुरिः (सि० कौ०) कोई पूँछ सकता है कि 'सुभ्रू.....' ऐसा क्यों होगा; तो (हमारा उत्तर है) भागुरि इसे अशुद्ध मानते हैं।

.२७७ 'नूनं' का मुख्य अर्थ 'निश्चय ही' वास्तव में' 'सचमुच' 'निश्चितरूप से' होता है; जैसे—स नूनं तव पाशांश्छेत्स्यति (हितो० १) वह निश्चय ही तुम्हारे बन्धनों को काटेगा। अद्यापि नूनं हरकोपवह्निस्त्वयि ज्वलति (शाकु० ३) सचमुच ही हर के क्रोध की अग्नि आज भी तुम्हारे अन्दर जल रही है।

अभ्यास

१. ननु समानेऽपि ज्ञानवृद्धभावे वयोवृद्धत्वात् गणदासः पुरस्कारमर्हति।
(मालवि० २)

२. मया नाम मुग्धचातकेनेव शुष्कघनगर्जितेऽन्तरिक्षे जलपानमिष्टम्।
(मालवि० २)

३. अनियंत्रणानुयोगो नाम तपस्विजनः। (शाकु० ६)

४. अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला। (शाकु० ४)

५. दिष्टचा धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान्वर्धते। (शाकु० ७)

६. निशम्यैतन्नियतिबलान्नु तत्पाटवान्नु स्वबुद्धिमान्द्यान्नु
स्वनियममनादृत्य तस्यामसौ प्रासजत्। (दशकु० २।२)

७. एतद्वचनं श्रुत्वा वृद्धकलकले महाजने पितुरंगे प्रदीप्तशिरसमाशीविषं न्यक्षिपम्। अहं च भीतो नामावप्लुत्य तातस्य विषं क्षणादस्तंभयम्।
(दशकु० २।४)

८. इमं ललनाजनं सृजता विधात्रा नूनमेषा घुणाक्षरन्यायेन निर्मिता। नोचेदब्जभूरेवंविधनिर्माणनिपुणो यदि स्यात् तर्हि समानलावण्यामन्यां तरुणीं किं न करोति। (दशकु० १।५)

९. यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुराः पुरुषाः।
अयि विद्युत्प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि॥ (मृच्छ० ५)

१०. प्रश्चोतनं नु हरिचन्दनपल्लवानां
निष्पीडितेन्दुकरकंदलजो नु सेकः।

आतप्तजीवनमनः परितर्पणो मे
संजीवनौषधिरसो नु हृदि प्रसिक्तः ॥

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तमभिज्ञानशाकुन्तलं नामापूर्वंनाटकं प्रयोगेणाधिक्रियतामिति । (शाकु० १)

२. अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि । न कदाचित्सत्पुरुषाः शोकपात्रात्मानो भवन्ति । ननु प्रवादेऽपि निष्कंपा गिरयः । (शाकु० ६)

३. सखि लवंगिके दिष्ट्या वर्द्धसे । ननु भणामि प्रतिवुद्ध एव ते प्रियवयस्यः प्रतिपन्नचेतनो महाभागो मकरन्द इति । (मालती० ४)

४. आर्यं, ननु रामभद्र इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य । तद्यथाभ्यस्तमभिधीयताम् । (उत्तर० १)

५. स शक्तिकुमारो नाम श्रेष्ठिपुत्रोऽष्टादशवर्षदेशीयश्चिन्तामापेदे । नास्त्यदाराणामननुगुणदाराणां वा सुखं नाम । तत्कथं नु गुणवद्विन्देयं कलत्रमिति । अथ पर प्रत्ययाहृतेषु दारेषु यादृच्छिकीं संपत्तिमनभिसमीक्ष्य कार्तान्तिको नाम भूत्वा भुवं बभ्राम । (दशकु० २।६)

६. विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम् ।
उमां स पश्यन्नृजुनैव चक्षुषा प्रचक्रमे वक्तुमनुज्झितक्रमः ॥
(कुमार० ५।३२)

७. नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय ।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातय सन्तु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम् ॥ (शाकु० ५)

८. वपुषा करणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत् ।
ननु तैलनिषेकविन्दुना सह दीपार्चिरुपैति मेदिनीम् ॥ (रघु० ८।३८)

९. अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चंद्रो नु कांतिप्रदः
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥ (विक्रमो० १)

अनुवाद कीजिए:—

१. धनमित्र का एक व्यापारी मणिपुर नाम के शहर में रहता था।

२. कौन मर्त्य पुरुष ईश्वर की महानता को जान सकता है, जिससे महर्षियों की भी बुद्धि चकरा जाती है।

३. वह अशुभलक्षणों वाला निश्चय ही राजा था, यद्यपि अन्य योग्य राजकुमार भी थे।

४. ऐसा कौन है जो अपने ही हाथों अपना ही विनाश करेगा?

५. मैं तुम सबको तुम्हारे अभीष्ट की प्राप्ति पर बधाई देता हूँ।

६. ईश्वर को धन्यवाद है कि बहुत लम्बे वियोग के बाद तुम्हें मैंने फिर देखा है।

७. मित्र, इतना ही मेरे लिये कर दो; मैं स्त्रियों का वस्त्र धारण कर लूँगा और अपने को तुम्हारी पुत्री बताऊँगा; तब तुम मुझे राजा के पास ले चलना और इस प्रकार कहना।

८. यह चाहे वास्तविक व्याघ्र हो या व्याघ्र का चमड़ा धारण किये हुए कोई अन्य जानवर।

९. गोविन्द—राम! तुम गुरु की सेवा करने के लिये कब जाओगे?
राम—क्यों? गुरु की सेवा करने की तो तुम्हारी बारी है।

१०. तुम कहते हो कि गोविन्द पैसा खर्च करने में बहुत उदार है; ऐसा क्यों? तुम स्वयं ही इस बात में और अन्य बातों में उसके समान हो।

११. तब यदि वह मित्र जानना चाहे कि ब्रूटस (गोपाल) ने सीज़र (विष्णु) के विरोध में सिर क्यों उठाया तो उसका उत्तर मैं यह दूँगा कि मैंने ऐसा इसलिए नहीं किया कि मैं सीज़र (विष्णु) को कम प्यार करता था परन्तु इसलिए कि मैं रोम (सुवर्णपुर) को अधिक प्यार करता था।

———

पाठ २६

पुनः, प्रायः (प्रायेण), वत, वलवत्, मुहुः यत् और यत्सत्यं

२८८. **'पुन:'** का अर्थ होता है 'फिर'। जैसे—पुनर्विवक्षु: (कुमार० ५।८३) फिर बोलने की इच्छा करता हुआ; किन्तु प्राय: यह 'जबकि' दूसरी ओर' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है; जैसे—**तदेव पंचवटीवनं स एव आर्यपुत्रः। मम पुनर्मन्दभाग्याया दृश्यमानमपि सर्वमेवैतन्नास्ति** (उत्तर० ३) 'यह वही पंचवटी है, मेरे पति भी वे ही हैं, किन्तु मुझ अभागिनी के लिये यह सब कुछ आँखों के सामने होते हुए भी कुछ भी नहीं है।'

(क) **'पुनः पुन:'** 'पुन:' की अपेक्षा अधिक जोर देने के लिये प्रयुक्त होता है और इसका अर्थ 'वार-वार' होता है; जैसे—**'स्वपाठान्पुन: पुनर्वाचय'** अपने पाठ को वार-वार पढ़ो। किं के साथ **'पुन:'** का प्रयोग पहले (२६७) समझाया जा चुका है।

२८९. **'प्राय:'** या **'प्रायेण'** का अर्थ होता है 'सामान्यतया' 'आमतौर से' और इसका प्रयोग कोई सामान्य नियम या वात कहने में होता है; जैसे—**प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमाना:** (मुद्रा० ४) सामान्यतया अपने स्वामियों की सेवा करने वाले सेवक धन का नाश होने पर उन्हें छोड़ देते हैं। **प्रायेणैते रमणविरहेष्वंगनानां विनोदा:** (मेघ० ८७) सामान्यतया वियोग के समय स्त्रियों के ये ही मनोविनोद होते हैं।

२९०. [1]**बत** का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में होता है :—

(१) 'हाय' 'अफसोस' दु:ख या दया व्यक्त करने के अर्थ में।

जैसे—'अहो वत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयं' (गीता १।४५) शोक है, कि हम घोर पाप करने जा रहे हैं।

(२) 'आनन्द' आश्चर्य के अर्थ में। इन अर्थों में इसका प्रयोग प्राय: 'अहो' के साथ होता है; जैसे—'अहो बतासि स्पृहणीयवीर्य:' (कुमार० ३।२२)अहो, तुम्हारा पराक्रम कितना स्पृहणीय है! इसी प्रकार—'अहो वत महच्चित्रं' (काद० १५४); 'हता वत वराकी सा' (गणरत्न०)।

---

१. खेदानुकंपासंतोषविस्मयामंत्रणे वत। (अमर०)

(३) इसका प्रयोग संबोधन के पद जैसा भी होता है। जैसे—वत वितरत तोयं तोयवाहा नितान्तं' (गणरत्न०) हे बादलों ! पूरा जल दो; 'त्यजत मानमलं वत विग्रहैः' (रघु० ९।४७)।

२९१. 'बलवत्' का अर्थ 'बलवाला' होता है किन्तु 'वलपूर्वक' 'अत्यन्त' 'बहुत अधिक' के अर्थ में इसका प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप में होता है। जैसे—'शिव इन्द्रियक्षोभं वलवन्निजग्राह' (कुमार० ३।६९) शिव ने वलपूर्वक इन्द्रियों की उत्तेजना को रोका (शान्त किया); वलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला' (शाकु० ३) शकुन्तला बहुत अस्वस्थ है।

२९१. 'मुहुः' का अर्थ होता है 'वार-वार' 'प्रायः'। जैसे—'वालो मुहुः रोदिति' 'वालक वार-वार रोता है। इस अर्थ में वहुधा 'मुहुः' की आवृत्ति की जाती है। इसका अर्थ 'एक समय दूसरे' समय' 'कभी—तो कभी' होता है और प्रत्येक उपवाक्य के साथ इसका प्रयोग होता है, जैसे—'मुहुर्भ्रंश्यद्बीजा मुहुरपि वहुप्रापितफला, अहो चित्राकारा नियतिरिव नीतिर्नयविदः' (मुद्रा० ५) कभी—इसके बीज लुप्त होते दिखाई पड़ते हैं तो दूसरे समय (कभी) यह प्रचुर फल उत्पन्न करता है, नीतिज्ञ की नीति भाग्य के समान कितनी विषम होती है !

२९३. 'यत्' प्रत्यक्षकथन (direct narration) के आरम्भ में आता है और उस कथन के अन्त में 'इति' का प्रयोग होता है और नहीं भी होता। जैसे—सत्योऽयं जनप्रवादो यत्संपत्संपदमनुवध्नातीति' (काद० ७३) यह कहावत है कि एक संपत्ति दूसरी संपत्ति के वाद आती है। ' तस्य कदाचिच्चिंता समुत्पन्ना यदर्थोत्पपत्त्युपायाश्चिन्तनीयाः कर्तव्याश्च' (पंच० १) एक बार उसके मन में यह विचार आया कि धन-उत्पत्ति का उपाय ढूँढना चाहिए और करना चाहिए।

(क) 'यत्' का अर्थ 'जिससे कि' 'जो' भी होता है। जैसे—क्या तुम पागल हो कि (जो) इस तरह निरर्थ बातें कर रहे हो ? 'किं त्वं मत्तोऽसि यदेवमसंबद्धं प्रलपसि'।

'क्योंकि' 'चूंकि' का अर्थ भी होता है। जैसे—'किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत्' (मुद्रा० २) क्या शेषनाग अपने मस्तक पर वोझ नहीं अनुभव करते जो पृथ्वी को (अपने सिर से) नीचे नहीं गिराते ?

'प्रियमाचरितं लते त्वया मे यदियं पुनर्मया दृष्टा' (विक्रमो० १) हे लता! तुमने मेरा भला ही किया जो वह एक बार मुझसे देख ली गई।

द्र०—'चूँकि—इसलिए' 'क्योंकि—इसलिए' 'अतएव' का अर्थ रखने वाले वाक्यों का अनुवाद करते समय इनके लिए तत्—या 'ततः' का प्रयोग किया जा सकता है, या पूरे वाक्य को 'यत्' या 'यतः' के प्रयोग द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। जैसे—अहं भ्रातरं गृहान्निष्कासयामि यत् (यतः) सोऽतीव दुर्वृत्तः,' मैं अपने भाई को घर से निकाल दूँगा, क्योंकि वह बहुत दुराचारी है।

२९४. 'यतः' का अर्थ होता है 'किस स्थान से', और इसका प्रयोग 'यस्मात्' के स्थान पर होता है। जैसे—यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं (रघु० ५।४) जिस (गुरु) से आपने सम्पूर्ण विद्यायें प्राप्त की हैं।

इसका अर्थ 'क्योंकि' 'इस कारण से' 'चूँकि' भी होता है और यह कारण का बोध कराता है। जैसे—किमेवमुच्यते महदन्तरं यतः कर्पूरद्वीपः स्वर्ग एव (हितो० ३) आप ऐसा क्यों कहते हैं? बहुत अन्तर है, क्योंकि कर्पूरद्वीप तो स्वर्ग ही है।

२९५. 'यत्सत्यं' को एक शब्द माना जाता है और इसका प्रयोग 'निश्चय ही' 'सच कहा जाय तो' 'वस्तुतः' एक अर्थ में होता है। जैसे—अमंगलशंसयास्य वो वचनस्य यत्सत्यं कंपितमिव मे हृदयं (वेणी० १) तुम्हारे इस अमंगलमय भाषण से सचमुच मेरा हृदय काँप उठता है।

अभ्यास

१. यद्वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति तत्किमात्मनः प्रभावेण ननु नदीवेगस्य। (शाकु० २)

२. इदं तत्प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते। (शाकु० ५)

३. निराकरणविक्लवायाः प्रियायाः समवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि। (शाकु० ६)

४. सर्वथा न कंचिन्न खलीकरोति जीविततृष्णा यदीदृगवस्थामपि मामायासयति जलाभिलाषः। (काद० २५)

५. पुण्यभाजः खल्वमी मुनयो यदहर्निशमेनं भगवन्तं पुण्याः कथाः शृण्वन्तः समुपासते। (काद० ३४)

६. कस्मान्मया निष्प्रयोजनमिदमश्वमुखद्वयमनुसृतमिति विचार्यमाणे यत्सत्यमात्मैव मे परिहासमुपजनयति। (काद० १२०)

७. अहं तं समादिशम्। सैषा सज्जनाचरिता सरणिर्यदणीयसि कारणेऽनणीयान्नादरः संदृश्यते। (दशकु० २।७)

८. अलमन्यथा गृहीत्वा न खलु मनस्विनी मया प्रयुक्तमिदम् ।
प्रायः समानविद्याः परस्परयशःपुरोभागाः ॥ (मालवि० १)

९. अयि कठोर यशः किल ते प्रियं किमयशो ननु घोरमतः परम् ।
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः कथय नाथ कथं बत मन्यसे ॥ (उत्तर० ३)

१० यत्सत्यं काव्यविशेषवेदिन्यां परिषदि प्रयुंजानस्य ममापि चेतसि सुमहान् परितोषः प्रादुर्भवति । यत :—

चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः ।
न शालेः स्तंबकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते ॥ (मुद्रा० १)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. अथ तेषां मध्यात् काकः प्रोवाच ! स्वामिन् वयं तावत्सर्वत्र पर्यटिताः परं न किंचित्सत्त्वमासादितं दृष्टं वा । तदत्र मां भक्षयित्वा प्राणान्धारयतु स्वामी येन देवस्याप्यायना भवति मम पुनः स्वर्गप्राप्तिरिति । (पंच० १।११)

२. इह (पंचमे प्रकोष्ठे) गन्धर्वसुरगणैरिव विविधालंकारशोभितैर्गणिकाजनैर्बन्धुलैश्च यत्सत्यं स्वर्गायित इदं गेहम् । (मृच्छ० ४)

३. आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानन् ।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥ (शाकु० १)

४. ज्वलयति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते ।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात्प्रतिपद्यते जन्तुः ॥ (शाकु० ६)

५. अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगणयात्मनः ।
उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत् ॥ (रघु० १।८७)

६. अथवा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एव वेधसा ।
यदनेन तरुर्न पतितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ॥ (रघु० ८।४७)

७. खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ॥ (भर्तृ० २।९०)

अनुवाद कीजिए :—

१. मैं इस विषय पर बोलना उचित नहीं समझता, क्योंकि मैं इसकी विस्तृत बातों से परिचित नहीं हूँ ।

२. चूँकि कल रात तुम लोगों ने मेरे घर में सेंध लगाई इसलिये मैं तुम लोगों को वन्दी बनाता हूँ और छानवीन के लिये मैं तुम लोगों को न्यायालय में ले चलूँगा।

३. बालिकाओं से संबद्ध विषयों में गृहस्थ लोग अपनी पत्नियों की दृष्टि से देखते हैं।

४. अहा ! इस स्थान की शोभा अद्वितीय है। सच कहा जाय तो सौन्दर्य की दृष्टि से यह इन्द्र के उपवन से भी तुलना करेगा।

५. क्या जिस स्थान से तुम आये हो वह पर्याप्त अन्न से युक्त है ?

६. मैं अपने स्वामी के आदेश का पालन करने जा रहा हूँ, पर तुम कहाँ जा रहे हो ?

७. इस प्रकार लकड़हारे ने अपना जीवन और धन बचाया, जबकि दुष्टात्मा पूरे बारह वर्ष तक कार्य में लगा रहा।

८. सुवदना मुझसे कहती है कि उसकी स्वामिनी चन्द्रलेखा दुर्गा के मन्दिर में नाचने के दिन से बीमार है; मुझे उसके पास यह पूछने जाना चाहिए कि अब आपकी तबियत कैसी है ?

९. सामान्य नियम के रूप में, अपने सेवकों के प्रति स्वामियों का आदर भाव उनके द्वारा कराये जाने वाले कार्य के स्वरूप के अनुसार परिवर्तित होता रहता है।

१०. क्या तुम सोचते हो कि सूर्य थका हुआ नहीं है क्योंकि वह आकाश मार्ग में कभी स्थिर नहीं रहता।

११. मित्र, मेरे बन्धनों को शीघ्र काटो और मुझे बचाओ; क्योंकि यह सत्य ही कहा गया है कि विपत्ति ही मित्र की कसौटी है।

पाठ २७

'यथा-तथा' और 'यावत्-तावत्'

२९६. जब 'यथा' का स्वतन्त्र रूप से प्रयोग होता है तो इसके निम्नलिखित अर्थ होते हैं :—

(१) 'जैसे' 'जैसा कि कहा गया है' 'पूर्वोक्त प्रकार से।' जैसे—यथाज्ञापयति देवः (शाकु० १) महाराज की जैसी आज्ञा अर्थात् आपकी आज्ञा का पालन किया जायगा।

(२) 'अर्थात्' 'जैसा कि आगे कहा गया है', 'इस प्रकार' के अर्थ में। जैसे—तद्यथानुश्रूयते (पंच० १) वह इस प्रकार सुना जाता है (जैसा कि आगे कहा गया है)।

(३) 'समान' 'तरह' के अर्थ में तुलना प्रदर्शित करने के लिए 'इव' जैसा इसका प्रयोग होता है। जैसे—आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः (उत्तर० ४) यह दशरथ के घर में लक्ष्मी के समान रहती थी।

(४) यह प्रत्यक्षकथन (किसी बातका ज्यों के त्यों कथन) प्रस्तुत करने के लिए; किसी के शब्द या वक्तव्य को उद्धृत करने के लिए आरम्भ में इसका प्रयोग होता है। जैसे—विदितं खलु ते यथा स्मरः क्षणमप्युत्सहते न मां विना (कुमार० ४।३६) यह तुम्हें पहले से ही विदित है कि मेरे विना कामदेव को एक क्षण भी चैन नहीं मिलती। इस अर्थमें 'यथा' से प्रारम्भ होने वाले वाक्य के अन्त में प्रायः 'इति' का प्रयोग होता है। जैसे—संदिष्टास्मि तातेन। यथा वत्स मित्रावसो जीमूतवाहनाद्योग्यतरो वरो न लभ्यते। तस्मादस्मै मलयवती प्रतिपाद्यतामिति (नागा० २) मेरे पिता ने मुझे इस प्रकार का सन्देश देकर भेजा है :—हे मित्रावसु ! जीमूतवाहन से अच्छा वर नहीं मिल सकता; इसलिये मलयवती को उसे प्रदान करो।

(५) 'जैसे' 'उदाहरण के लिए' अर्थ में। जैसे—यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः यथा महानसे (तर्क) जहाँ-जहाँ धुँआ होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है, जैसे—रसोई घर में।

(६) 'जिससे कि' 'ताकि' के अर्थ में। इस अर्थ में प्रायः 'यथा' के स्थान पर 'येन' का प्रयोग होता है; जैसे—त्वं दर्शय तं चौरसिंहं यथ व्यापादयामि 'तुम मुझे उस चोर सिंह को दिखाओ जिससे कि मैं उसे मार डालूँ। स्वामिन्मम प्राणैः प्राणयात्रा विधीयतां येन ममोभयलोकप्राप्तिर्भवति (पंच० १।११) हे स्वामी ! मेरे प्राणों को लेकर अपने प्राण धारण करें जिससे कि मैं दोनों लोकों को प्राप्त कर सकूँ।

'यथा' और 'तथा' का प्रयोग जब एक साथ होता है तब उसके निम्नलिखित अर्थ होते हैं :—

(१) जैसा–वैसा। इस अर्थ में कभी-कभी 'तथा' के स्थान पर 'तद्वत्' का प्रयोग होता है। जैसे—यथा वृक्षस्तथा फलं (जैसा वृक्ष होता है वैसा ही फल होता है); यथा बीजांकुरः सूक्ष्मः प्रयत्नेनाभिरक्षितः।

फलप्रदो भवेत्काले तद्वल्लोके सुरक्षितः ॥ (पंच० १।८)

जिस प्रकार बीज से निकला हुआ छोटा अंकुर सावधानी से बढ़ाये जाने पर समय से फल देता है, उसी प्रकार उचित रूप से सुरक्षित लोग भी होते हैं।

(२) 'ऐसा—कि' के अर्थ में। इस अर्थ में तथा—'ऐसा' के लिए और यथा 'कि' के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे—यदि वामनुमतं तथा वर्तेयाथां यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि (शाकु० ३) यदि तुम इसे मानते हो तो ऐसा कार्य करो कि मैं राजर्षि का कृपापात्र बनूँ। अहं स्वामिनं विज्ञाप्य तथा करिष्ये यथा स वधं करिष्यति (पंच० १।११) स्वामी की प्रार्थना करके मैं ऐसा करूँगा कि वह उसका वध कर देंगे।

द्र०—इसी प्रकार 'ईदृश', 'तादृश', 'तावत्', 'एतावत्', 'इयत्' आदि शब्दों का प्रयोग 'तथा' के लिए होता है, और सम्बन्धवाचक सर्वनाम के रूपों (विशेषतः 'येन') का प्रयोग दूसरे उपवाक्य में 'यथा' के लिए होता है। जैसे—ईदृशी अहं मन्दभागिनी यस्या न केवलमार्यपुत्रविरहः पुत्रविरहोऽपि (उत्तर० ३) मैं ऐसी अभागिनी हूँ कि केवल पति से ही मेरा वियोग नहीं हुआ है अपितु अपने पुत्रों से भी वियुक्त हूँ। मम चैतावान् लोभविरहो येन स्वहस्तगत-सुवर्णकंकड़मपि यस्मै कस्मैचिद्दातुमिच्छामि (हितो० १) मेरी लोभहीनता ऐसी है कि मैं अपने हाथ के इस सोने के कंगन को भी जिस-किसी व्यक्ति को दे देने की इच्छा करता हूँ।

(३) 'चूँकि–इसलिए' 'क्योंकि–इसलिए' के अर्थ में है। जैसे—यथार्थं चलितम [illegible] भूतः पक्षि-

राजः (नागा० ४) चूंकि यह वायु भयंकर है और मलयकेतु पर्वत के प्रस्तरों के संघात को हिलाने वाली है, इसलिए मैं सोचता हूँ कि पक्षिराज गरुड़ आ गये हैं।

(४) 'यदि–तो' के अर्थ में 'यदि–तर्हि' के समान प्रयुक्त होता है या दृढ़तापूर्ण वचन या शपथ में इसका प्रयोग होता है 'जितना निश्चित–उतना ही निश्चित।' जैसे—

> वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे।
> तथा विश्वंभरे देवि मामन्तर्धातुमर्हसि ॥ (रघु० १५।८१)

यदि (जितने निश्चित रूप से) वचन, मन और कर्म से पति के प्रति मैंने व्यभिचार न किया हो तो (उतने ही निश्चित रूप से) हे सर्वत्र व्याप्त पृथ्वी देवि ! कृपाकर मुझे अपने भीतर ले लीजिए।

(५) 'जितना–उतना' के अर्थ में। इसमें 'तथा' 'जितना' का अर्थ देता है और 'यथा' 'उतना' का। इसका प्रयोग उस समय होता है जब दो सम्बन्ध की समानता या तुलना करनी होती है। जैसे—न तथा बाधते शीतं यथा बाधति बाधते (सुभा०) शीत मुझे उतना कष्ट नहीं देता जितना की 'बाधति' रूप मुझे कष्ट दे रहा है। इस अर्थ में प्रायः 'एव' का प्रयोग 'यथा' और 'तथा' के साथ या उनमें से एक के साथ करके समानता पर और अधिक जोर दिया जाता है और तब उनका अनुवाद 'जैसा—वैसा ही' हो सकता है। जैसे—वधूचतुष्केऽपि यथैव शान्ता प्रिया तनूजास्य तथैव सीता (उत्तर० ४) चार बहुओं में सीता उन्हें ऐसी प्रिय थी जैसी उनकी पुत्री शान्ता।

(क) 'यथा' और 'तथा' की आवृत्ति (यथा यथा–तथा तथा) की आवृत्ति करके तुलनाबोधक विशेषण ('तस्' तथा 'ईयसुन्' प्रत्ययान्त के साथ) किया जाता है और स्वयं विशेषण का अनुवाद समान संस्कृत शब्दों द्वारा किया जाता है। इसका प्रयोग 'जितना ही–उतना ही' 'जितना ही कम–उतना ही कम' जैसे-जैसे के अर्थ में होता है। जैसे—जितना ही वह बूढ़ा होता गया उतना ही सन्तानाभाव के कारण उसका दुःख बढ़ता गया। यथा-यथा यौवनमतिचक्राम तथा-तथा अनपत्यताजन्मा महानवर्धतास्य संतापः (काद० ५९)। इस प्रकार—अपने मृत पुत्र के विषय में तुम जितना ही कम सोचोगे उतना ही तुम्हारा शोक कम होगा—यथा यथा मृतपुत्रं न चिन्तयिष्यसि तथा तथा तव दुःखं शमेष्यति, या 'यथा यथा अल्पीयसी पुत्रचिन्ता तथा तथा अल्पीयो दुःखम्।

२९८. [1]'यावत्' का जब स्वतन्त्र रूप से प्रयोग होता है तब उसका अर्थ 'जहाँ तक' 'जब तक' होता है और यह समय की अवधि या स्थान का विस्तार बताता है तथा इसके योग में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—स्तनत्यागं यावत्पुत्रयोरवेक्षस्व (उत्तर० ७) जब तक ये स्तन पीना नहीं छोड़ते तब तक इन पुत्रों की देखभाल करो। कियन्तमवधिं यावदस्मच्चरितं चित्रकारेणालिखितं (उत्तर० १) कहाँतक हमारे जीवन को चित्रकार ने चित्रित किया है ?

(क) [1]कभी-कभी 'यावत्' का प्रयोग तत्काल किये जाने वाले कार्य को बताने के लिए 'अभी' 'तब' के अर्थ में होता है। (देखिये १९०) जैसे—तद्यावद् गृहिणीमाहूय संगीतकमनुतिष्ठामि (शाकु० १) अतएव मैं अपनी पत्नी को बुलाकर अभी संगीत आरम्भ करूँगा। यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि तां (शाकु० ३) तब इस छाया में आकर मैं उसकी प्रतीक्षा करता हूँ।

२९९. एक साथ प्रयुक्त होने पर 'यावत्' और 'तावत्' के निम्नलिखित अर्थ होते हैं :—

(१) 'उतना–जितना' 'तावत्' 'उतना' के लिए और 'यावत्' 'जितना' के लिये आता है और इन दोनों का प्रयोग संज्ञाओं या विशेषणों के रूप में होता है। जैसे—पुरे तावन्तमेवास्य तनोति रविरातपम्। दीर्घिकाकमलोन्मेषो यावन्मात्रेण साध्यते (कुमार० २।३३) सूर्य नगर में उतना ही प्रकाश करता है, जितने से उसके सरोवरों के कमल खिल जाते हैं।

(२) 'सभी' 'सम्पूर्ण' के अर्थ में, इनका प्रयोग एक साथ होता है, जैसे—यावद्दत्तं तावद् भुक्तं (गणरत्न०) जितना दिया गया था वह सब मैंने खा लिया है। यावन्मानुष्यके शक्यमुपपादयितुं तावत्सर्वमुपपाद्यतां (काद० ६२)।

(३) 'जब तक—तब तक' 'जब तक-तब तक' के अर्थ में ऐसे प्रयोगों में 'यावत्' 'जब तक' का अर्थ देता है और 'तावत्' 'तब तक' का अर्थ देता है, जैसे—यावद्वित्तोपार्जनशक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः (मोहमुद्गर) जब तक मनुष्य धन कमाने लायक रहता है तब तक ही उसका परिवार उससे प्रेम करता है।

द्र०—(क) 'जहाँ तक--वहाँ तक' या 'जब तक' के अर्थ में संस्कृत में 'यावत्' और 'तावत्' का प्रयोग किया जाता है। 'यावत्' का प्रयोग 'जहाँ तक'

---

१. यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे। (अमर०)

'जब तक' आदि से प्रारम्भ होने वाले उपवाक्य के साथ और 'तावत्' का प्रयोग प्रधान उपवाक्य में होता है। जैसे—जब तक राज्य का उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है तब तक मैं प्रजा को सन्तुष्ट रखूँगा। यावद्राज्यभारो मयि विन्यस्तस्तावदहं प्रजा अनुरक्ता: करिष्यामि। सारथि, रथ को तब तक रोको जब तक कि मैं उतरता हूँ—सूत तावद्रथं स्थापय यावदहमवतरामि।

(ख) 'इसके पहले कि' से प्रारम्भ होने वाले वाक्यों का अनुवाद करते समय 'इसके पहले कि' के लिए 'यावन्न' का प्रयोग किया जाता है और यह 'जब तक नहीं' के समान अर्थ देता है। जैसे—यावदेते सरसो नोत्पतति तावदेतेभ्य: प्रवृत्तिरवगमयितव्या (विक्रमो० ४) इसके पहले कि वे सरोवर से उड़कर जाते हैं, मुझे उनसे सूचना प्राप्त कर लेनी चाहिए।

३००. कभी-कभी 'यावत्—तावत्' का अर्थ केवल 'जब—तब' का होता है। जैसे—यावदसौ पान्थ उत्थायोर्ध्वं निरीक्षते तावत्तेनावलोकितो हंस: काण्डेन हतो व्यापादितश्च (हितो० ३) जब यात्री ने उठकर ऊपर देखा, तब उसके द्वारा देखा जाता हुआ हंस बाण के प्रहार से मार डाला गया। कभी-कभी 'यावत्—तावत्' का अर्थ 'ज्यों ही' 'जैसे ही—वैसे ही' इत्यादि भी होता है। ऐसे स्थलों पर 'यावत्' 'जैसे ही' के लिए और 'तावत्' 'वैसे ही' 'तभी' के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे—एकस्य दु:खस्य न यावदन्तं गच्छामि······तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे (हितो० १) अभी एक दु:ख के अन्त तक पहुँचा भी नहीं कि तब तक दूसरी विपत्ति आ पड़ी।

अभ्यास

१. भगवन्संकल्पयोने प्रतिबन्धत्स्वपि विषयेष्वभिनिवेश्य तथा प्रहरसि यथा जनोऽयं कालान्तरक्षमो न भवति। (मालवि० ३)
२. अकथितोऽपि ज्ञायत एव यथायमाभोगस्तपोवनस्येति। (शाकु० १)
३. आश्रमवासिनो यावदवेक्ष्याहमुपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठा: क्रियन्तां वाजिन:। (शाकु० १)
४. बहुवल्लभा राजान: श्रूयन्ते। तद्यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वाहय। (शाकु० ३)
५. संजीवक आह। भो मित्र, कथं ज्ञेयो मयासौ दुष्टबुद्धिरिति। इयन्तं कालं यावदुत्तरोत्तरस्नेहेन प्रसादेन चाहं दृष्ट:। (पंच० १।१५)

६. यद्येवं नकुलस्य विलद्वारात्सर्पकोटरं यावन्मत्स्यमांससकलानि प्रक्षिप यथा नकुलस्तन्मार्गेण गत्वा तं दुष्टसर्पं विनाशयति (पंच १।२०)

७. अयि मातर्देवयजनसंभवे देवि सीते, ईदृशस्ते निर्माणभागः परिणतो येन लज्जया स्वच्छन्देनाक्रन्दितुमपि न शक्यते । (उत्तर० ४)

८. ततो यावदसौ पान्थस्तद्वचसि प्रतीतो लोभात्सरसि स्नातुं प्रविशति तावन्महापंके निमग्नः पलायितुमक्षमः । (हितो० १)

९. यथा यथेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति । (काद० १०५)

१०. यावत्संबन्धिनो न परापतन्ति तावद्वत्सया मालत्या नगरदेवतागृहं गन्तव्यमित्यादिशन्ति भगवतीनिदेशर्वातनोऽमात्यदाराः । (मालती० ६)

११. यथेतो मुखागतैरपि महान् कलकलः श्रुतोऽस्माभिस्तथा तर्कयामि । अन्यदपि पारक्यं वलमुपगतमिति । (मालती० ८)

१२. क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति ।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ।। (कुमार० ३।७२)

१३. यथैव श्लाघ्यते गङ्गा पदेन परमेष्ठिनः ।
प्रभावेण द्वितीयेन तथैवोच्छिरसा त्वया ।। (कुमार० ६।७०)

१४. अर्थेन विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः ।
क्रियाः सर्वा विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ।। (हितो० १)

१५. यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान्मनसः प्रियान् ।
तावन्तोऽपि विलिख्यन्ते हृदये शोकशंकवः ।। (हितो० ४)

१६. स तावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ वसु ।
यावतैषां समाप्येरन् यज्ञाः पर्याप्तदक्षिणाः ।। (रघु० १०।१७)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. यावत्तत्रभवान्वयस्यः कार्यासनादुत्तिष्ठति तावदेतस्मिन्विरलजलसंपाते विमानोत्संगपरिसरे स्थास्यामि । (विक्रमो० २.)

२. तदेवंप्रायेऽतिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे राज्यतन्त्रेऽस्मिन् महामोहान्धकारिणि च यौवने कुमार तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैर्नोपालभ्यसे सुहृद्भिर्नाक्षिप्यसे विषयैर्न कृष्यसे रागेण नापह्रियसे सुखेन । (काद० १०९)

३. यथा तथा चलितजलयंत्रविगलिताभिरम्बुधाराभिराहन्यते सा तथा तथा वैद्युतानलसहोदर इव स्फुरति मदनपावकः । (काद० २४१)

४. चन्द्रापीडः प्रातरेव किंवदन्तीं शुश्राव । यथा किल दशपुरीं यावत् परागतः स्कन्धावार इति । (काद० २६२)

५. वत्स यावदयं संसारस्तावत्सिद्धैवेयं लोकयात्रा । यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति । (वेणी० ३)

६. अपि दृष्टवानसि मम प्रियां वने कथयामि ते तदुपलक्षणं शृणु ।
पृथुलोचना सहचरी यथैव ते सुभगं तथैव खलु साऽपि वीक्षते ॥
(विक्रमो० ४)

७. वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा ।
भवति च पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्वोद्ग्राहे मणिर्न मृदां चयः ॥ (उत्तर० २)

८. यथाकालकृतोद्योगात्कृषिः फलवती भवेत् ।
तद्वन्नीतिरियं देव चिरात्फलति न क्षणात् ॥ (हितो० ३)

९. क्रोडीकरोति प्रथमं यथा जातमनित्यता ।
धात्रीव जननी पश्चात्तथा शोकस्य कः क्रमः ॥ (नागा० ४)

१०. यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः ॥ (हितो० ४)

११. उभयोर्न तथा लोकः प्रावीण्येन विसिष्मिये ।
नृपतेः प्रीतिदानेषु वीतस्पृहतया यथा ॥ (रघु० १५।६८)

१२. यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ (भर्तृ० ३।८८)

१३. यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥
(गीता ११।२९)

अनुवाद कीजिए :—

१. अपने मित्रों के परामर्श से मैंने उसके नाश के लिए एक सौ मार्ग सोचे हैं, वे इस प्रकार हैं :—

२. मेरा अनुमान है कि तुम सुन चुके हो कि स्वर्ग में अप्सर: नामकी सुराङ्ग-नाएँ निवास करती हैं।

३. वीरता में वह भीम के समान है किन्तु हृदय की दुष्टता में वह अत्यन्त नृशंस राक्षसों से भी बढ़कर है।

४. रावण ने अपने कठोर तप से शंकर को इतना प्रसन्न कर लिया कि भगवान् शिव ने उसे अनेक वर प्रदान किए।

५. यह राजा अपने देश का इतना अच्छा शासन करता है कि उसकी असंख्य प्रजाओं में एक भी व्यक्ति उसका द्रोही नहीं है।

६. चूंकि युद्ध की सभी तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं इसलिए मैं शत्रु के साथ सन्धि करना उचित नहीं समझता।

७. जितना ही मैं इस संसार के विषय में सोचता हूँ उतना ही मेरा मन इसके प्रति वैराग्य से भर जाता है।

८. ज्यों ही उसने अपने घर के भीतर पैर रखा त्यों ही उसकी पत्नी उसके पास यह कहते हुए दौड़ी-दौड़ी आई कि एक सर्प ने मेरे बच्चे को काट लिया है।

९. मैं आशा करता हूँ कि जब तक गोविन्द तीर्थयात्रा से लौटता है तब तक तुम यहाँ रुकोगे।

१०. जब तक मेरी साँस चलती रहेगी तब तक मैं अपने प्यारे देश की प्राणों की बाजी लगाकर रक्षा करूँगा, जिससे मैं अपयश से मलिन नाम के साथ न मरूँ।

११. उसने डाक्टर की दवा २१ दिनों तक (यावत्, ली, किन्तु कुछ भी सुधार होते न देखकर उसने उसे लेना बन्द कर दिया।

१२. अध्यापक ने एक डंडे से इतनी बुरी तरह मारा कि वह पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

१३. दार्शनिक लोग ईश्वर के विषय में जितना ही चिन्तन करते हैं उतना ही कम वे उसे जान पाते हैं।

१४. वह अपने आचरण की पवित्रता से उतना ही विशिष्ट है जितना अपनी बुद्धि से तथा अपने इन्द्रियों को वश में रखने में जितना निरत है उतना ही परोपकार करने में ।

१५. क्या तुम नहीं जानते कि सभी मांसभक्षी पशुओं के पंजे होते हैं ('यावत्—तावत्' का प्रयोग कीजिए) ?

१६. जितना ही परिश्रम के साथ तुम अध्ययन करोगे उतना ही कम तुम्हारी विफलता का भय होगा और सफलता की संभावना उतनी ही अधिक रहेगी ।

———

पाठ २८

वरं–न, वा, स्थाने, हन्त, हा और हि

३०१. 'न' के साथ 'वरं' का प्रयोग, जिसके उपरान्त प्राय: 'च', 'तु' या 'पुन:' आता है 'उससे अच्छा है' 'यह अच्छा है किन्तु यह नहीं' के अर्थ में होता है। ऐसी दशा में यह किसी की श्रेष्ठता या किसी की दूसरे के साथ तुलना में अच्छाई बताने के लिए प्रयुक्त किया जाता है और 'वरं' उस उपवाक्य में रखा जाता है जिसमें 'श्रेष्ठ' या 'अधिक अच्छा' कही जाने वाली वस्तु आती है (उस वस्तु को, जिसे श्रेष्ठ बताया जाता है, प्रथमा विभक्ति में रखा जाता है) और 'न च', 'न तु' या 'न पुन:' का प्रयोग उस उपवाक्य में होता है जिसमें कम चाही जाने वाली वस्तु होती है (इस वस्तु को भी प्रथमा विभक्ति में रखा जाता है)। जैसे— **वरं कन्या जाता न च पुनरविद्वांस्तनय:** (पंच० १।१)

कन्या का जन्म लेना अच्छा है, किन्तु एक मूर्ख पुत्र का जन्म अच्छा नहीं। **वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः** (हितो० १) प्राण-त्याग देना अच्छा है किन्तु मूर्खों का साथ अच्छा नहीं।

(क) कभी-कभी 'न' का प्रयोग विना 'च' 'तु' या 'पुन:' के होता है। जैसे—**याञ्चा माघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा** (मेघ० ५) योग्य व्यक्ति से याचना ठुकराई जाने पर भी श्रेष्ठ होती है, किन्तु नीच व्यक्ति से याचना करने पर उसकी पूर्ति होने पर भी वह उत्तम नहीं होती। **वरं भ्रान्तं वनचरैः सह न मूर्खजनसंपर्कः** (भर्तृ० २।१४) मूर्खों का साथ करने की अपेक्षा वनचरों के साथ घूमना अच्छा है।

३०२. [1]'वा' विकल्प बतानेवाला समुच्चयबोधक अव्यय है। इसका अर्थ 'या' होता है। किन्तु संस्कृत में इसका स्थान अंग्रेजी के or की अपेक्षा भिन्न होता है क्योंकि इसका स्थान 'च' के समान है (देखिए अधिकरण २७२) राम या गोविन्द—**'रामो गोविन्दो वा'** या **'रामो वा गोविन्दो वा'**।

---

१. वा समुच्चय एवार्थं उपमानविकल्पयोः। (हेम०)

(क) इसके निम्नलिखित अर्थ भी होते हैं :—

(१) 'और' 'और भी', 'भी' । जैसे—पत्रलेखे कथय महाश्वेतायाः कादम्बर्याश्च कुशलं कुशली वा सकलः परिजन इति (काद० २३०) पत्रलेखा ! मुझे बताओ कि महाश्वेता और कादम्बरी कुशल से तो हैं और सभी परिजन कुशल से हैं न ?

(२) 'समान' 'जैसा' के अर्थ में, 'इव' के अर्थ में । जैसे—जातां मन्ये तुहिनमथितां पद्मिनीं वान्यरूपां (मेघ० ८६) मैं उसे पाले से कुम्हलायी हुई कमलिनी के समान परिवर्तित रूप वाली होने का अनुमान करता हूँ ।

(३) विकल्प का अर्थ बताने के लिये-व्याकरण के नियमों में अधिकतर इसका प्रयोग होता है । जैसे—दोषो णौ वा चित्तविरागे (पाणिनि ६।४,९०—९१) प्रेरणार्थक में 'दुष' का 'उ' दीर्घ हो जाता है किन्तु जब चित्तविराग का अर्थ होता है तब ऐसा विकल्प से होता है ।

(ख) 'इव' या 'नाम' के समान ही 'वा' का प्रयोग प्रश्नवाचक सर्वनाम शब्दों और उसके रूपों के साथ 'संभवतः' 'भला' 'वास्तव में' के अर्थ में होता है (देखिए २५७) जैसे—'मृतः को वा न जायते' (पंच० १।१) कौन मरा हुआ व्यक्ति भला जन्म नहीं लेता ? कस्य वान्यस्य वचसि मया स्थातव्यं (काद० १५६) भला किस दूसरे के वचन के अनुसार मैं चलूँ ? कथं वा गम्यते (उत्तर० ३) और भला तुम कैसे जा सकते हो ? (वास्तव में तुम...) ।

३०३. जब 'वा' को दुहराया जाता है तो इसका अर्थ 'या तो—या' 'या' होता है । जैसे—उभे एव क्षमे वोढुमुभयोर्बीजमाहितम् । सा वा शंभोस्तदीया वा मूर्तिर्जलमयी मम (कुमार० २।६०) केवल दो ही हम दोनों के वीर्य को धारण करने में समर्थ हैं-या तो शंभु की वह (पार्वती) या मेरी जलमयी मूर्ति । तत्र कविपरिश्रमानुरोधाद्वा उत्तानकथावस्तुगौरवाद्वा नवनाटकदर्शनकुतूहलाद्वा भवद्भिरवधानं दीयमानं प्रार्थये (वेणी० १) मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग इधर ध्यान दें; चाहे कवि के श्रम के प्रति आदर के कारण, या गम्भीर विषयवस्तु के महत्त्व के कारण या नया नाटक देखने की इच्छा से ।

३०४. 'स्थाने' का प्रयोग क्रियाविशेषण के रूप में 'उचित रूप से' 'यह बिल्कुल उचित है कि' के अर्थ में होता है । जैसे—स्थाने प्राणाः कामिनां दूत्यधीनाः (मेघ० ३) 'यह सत्य ही कहा गया है कि प्रेमियों का जीवन सन्देशवाहकों के हाथ में होता है !' स्थाने तपो दुश्चरमेतदर्थमपर्णया पेलवयापि

तप्तं (कुमार० ७।६५) यह नितान्त उचित है कि कोमल होते हुए भी अपर्णा ने उनके लिए कठोर तप किया ।

(क) 'अस्थाने' का अर्थ है 'अनुपयुक्त' 'अनुचित स्थान पर ।' जैसे—अस्थाने द्वयोरपि प्रयत्नः (मुद्रा० २) उन दोनों का प्रयत्न अनुचित स्थान पर था ।

३०५. [1]'हंत' का प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में होता है :—

(१) 'हर्ष', 'आश्चर्य' 'व्याकुलता', जिसे अंग्रेजी में oh और हिन्दी के 'अरे ।' द्वारा व्यक्त करते हैं। जैसे—हंत प्रवृत्तं संगीतकं (मालवि० १) अरे ! संगीत प्रारम्भ हो गया !

(२) 'दया' 'करुणा' के अर्थ में। जैसे—पुत्रक हंत ते धनाकाः (गणरत्न०) बच्चे ! खेद की बात है कि तुम्हारे पास केवल धनाका है।

(३) शोक प्रकट करने वाले 'हाय !' के अर्थ में जैसे—हन्त धिङ् मामधन्यं (उत्तर० १) हाय ! मुझ अभागे को धिक्कार है।

(४) कभी-कभी वाक्य का आरम्भ सूचित करने वाले अव्यय के रूप में इसका प्रयोग होता है। जैसे—हन्त ते कथयिष्यामि (रामा० १।४८।१४) 'अच्छा ! अब मैं तुम्हें बताऊँगा !

३०६. [2]'हा' शोक, विषाद, निराशा और कष्ट को व्यक्त करता है और इसका अर्थ होता है 'हाय !' 'मुझे धिक्कार है।' जैसे—हा प्रिये जानकि (उत्तर० ३) हाय प्यारी जानकी ! हा हा देवि ! स्फुटति हृदयं (उत्तर० ३) हाय ! हाय !! मेरा हृदय फट रहा है ? कभी-कभी आश्चर्य प्रकट करने के लिये भी इसका प्रयोग होता है—हा कथं महाराजदशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या (उत्तर० ४) अरे ! क्या वह मेरे मित्र महाराज दशरथ की धर्मपत्नी कौसल्या हैं ?

'हा' के योग में द्वितीया विभक्ति के प्रयोग के लिए अधिकरण ३४ देखिए ।

द्र०—जुगुप्सा का अर्थ बहुत कम मिलता है।

३०७. [3]हि का प्रयोग कभी भी वाक्य के आरम्भ में नहीं होता इसके तीन अर्थ होते हैं :—

---

१. हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः । (अमर०)

२. हा इति विस्मयविषादजुगुप्सार्तिषु । (गणरत्न०)

३. हि पादपूरणे हेतौ विशेषेऽप्यवधारणे (विश्व०)

(१) 'क्योंकि' 'इस कारण से' और यह कठोर तार्किक हेतु प्रकट करता है। जैसे—**अग्निरिहास्ति धूमो हि दृश्यते** (गणरत्न०) यहाँ अग्नि है, क्योंकि धुँआ दिखाई पड़ रहा है ! **अपि महर्षिणा त्वं गृहायानुमतः। कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयमाश्रमं** (रघु० ५।१०) क्या महर्षि ने तुम्हें गृहस्थ बनने की आज्ञा दे दी है ? क्योंकि अब यह तुम्हारा जीवन के दूसरे आश्रम में प्रवेश करने का समय हो गया है।

द्र०—किसी विशिष्ट प्रयोग के सन्दर्भ में कहे गये सामान्य कथन में 'हि' (क्योंकि) का यह भाव छिपा रहता है।

(२) वस्तुतः, वास्तव में, जैसे—**देव प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्रं किमत्र वाग्व्यवहारेण** (मालवि० १) मेरे स्वामी ! नाट्यकला में मुख्यतः प्रयोग होता है, इस विषय में मौखिक वादविवाद की क्या आवश्यकता ? **न हि कमलिनीं दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतंगजः** (मालवि० ३) कमलिनी को देखने पर मत्त हाथी ग्राह की भी चिन्ता नहीं करता।

(३) प्रायः इसका अर्थ 'उदाहरण के लिए' (स्फुटार्थ) 'जैसा कि सुविदित है' होता है; और इस अर्थ में जब पूर्वकथन की पुष्टि करने के लिए किसी तथ्य का वर्णन किया जाता है तब इसका भाव 'तथा च' का होता है। जैसे—**प्रजानामिव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्। सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः** (रघु० १।१८) प्रजा की भलाई के लिये ही वह उनसे कर लेता था; उदाहरण के लिये हजारगुना अधिक जल बरसाने के लिये ही सूर्य (समुद्र से) जल ग्रहण करता है।

(४) 'केवल' 'अकेले' के अर्थ में किसी बात पर जोर देने के लिए भी 'हि' का प्रयोग होता है। जैसे—**मूढो हि मदनेनायास्यते** (काद० १५५) केवल मूर्ख ही मदन द्वारा पीडित होता है।

(५) कभी-कभी पादपूर्ति के लिए भी इसका प्रयोग होता है।

अभ्यास

१. शकुन्तला—सखि कस्य वान्यस्य कथयिष्यामि किन्त्वायासयित्रीदानीं वा भविष्यामि।

उभे—अत एव खलु निर्बन्धः। स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति। (शाकु० ३)

२. हन्त भोः शकुन्तलां पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम् । (शाकु० ४)

३. स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताप्यस्य कृते शकुन्तला क्लाम्यति । (शाकु० ६)

४. अविनीत, किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि । हन्त वर्धते ते संरंभः । स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि । (शाकु० ७)

५. स्थाने खलु नारायणमृषिं विलोभयंत्यस्तदूरुसंभवामिमां दृष्ट्वा व्रीडिताः सर्वा अप्सरस इति । (विक्रमो० १)

६. भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम् । अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखमुपदेशगुणाः । (काद० १०३)

७. तदेषा भवतः कान्ता त्यजैनां वा गृहाण वा ।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ॥ (शाकु० ५)

८. अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवांकः ॥ (कुमार० १।३)

९. बहूनामप्यसाराणां समवायो हि दुर्जयः ।
तृणैरावेष्ट्यते रज्जुर्यया नागोऽपि वध्यते ॥ (पं० १।१४)

१०. कुसुमान्यपि गात्रसंगमात्प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि ।
न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधेः ॥ (रघु० ८।४४)

११. सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः ।

१२. वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं
वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम् ।
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचि-
र्वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम् ॥

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. वरमावाभ्यां कतिपयदिवसाननयोरप्यदर्शनकृताः क्लेशाः अनुभूता न पुनरस्य वैशंपायनावलोकनदुःखदीनं दिने दिने मुखमीक्षितम् । (काद० २०४)

२. असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥ (शाकु० १)

३. सुतनु हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत ।
प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यंधः क्षिप्तां धुनोत्यहिशंकया ॥ (शाकु० ७)

४. राजा—एवमादिभिरनुपक्रम्योऽयमातंकः । पश्य—
कुसुमशयनं न प्रत्यग्रं न च चन्द्रमरीचयो—
र्न च मलयजं सर्वांगीणं न वा मणियष्टयः ।
मनसिजरुजं सा वा दिव्या ममालमपोहितुं
रहसि लघयेदारब्धा वा तदाश्रयिणी कथा ॥ (विक्रमो० ३)

५. स्थाने त्वां स्थावरात्मानं विष्णुमाहुस्तथाहि ते ।
चराचराणां भूतानां कुक्षिराधारतां गतः ॥ (कुमार० ६।६७)

६. आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पंजरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥ (मेघ० ८८)

७. अरुन्धती—हा वत्से—
शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा—
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति ।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतो
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ॥ (उत्तर०४)

८. स्थाने भवानेकनराधिपः सन्नकिञ्चनत्वं मखजं बिभर्ति ।
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ॥
(रघु० ५।१६)

९. प्रेष्यभावेन नामेयं देवीशब्दक्षमा सती ।
स्नानीयवस्त्रक्रियया पत्त्रोर्णं वोपयुज्यते ॥ (मालवि० ५)

१०. नृपतेः प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान् पंक्तिरथो विलंघ्य यत् ।
अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः ॥ (रघु० १।७४)

११. तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं स्तनसंबाधमुरो जघान च ।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ॥ (कुमार० ४।२६)

१२. व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु वहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते ।
विकसति हि पतंगस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥ (मालती० १)

१३. अर्हस्येनं (दवाग्नि) शमयितुमलं वारिधारासहस्रै--
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ॥ (मेघ० ५४)

१४. स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥
(गीता० ११।३६)

१५. राक्षसः—अहो सुश्लिष्टोऽभूदयं प्रयोगः ।
लेखोऽयं न ममेति नोत्तरमिदं मुद्रा मदीया यतः
सौहार्दं शकटेन खण्डितमिति श्रद्धेयमेतत्कथम् ।
मौर्ये भूषणविक्रयं नरपतौ को नाम संभावयेत्
तस्मात्संप्रतिपत्तिरेव हि वरं न ग्राम्यमत्रोत्तरम् ॥ (मुद्रा० ५)

१६. स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव ।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ॥ (शाकु० ५)

१७. उचितः प्रणयो वरं विहन्तुं वहवः खण्डनहेतवो हि दृष्टाः ।
उपचारविधिर्मनस्विनीनां न तु पूर्वाभ्यधिकोऽपि भावशून्यः ॥
(मालवि० ३)

अनुवाद कीजिए :—

१. अभिमानी धनवान् की चाटुकारी करने की अपेक्षा द्वार-द्वार भीख माँगकर जीवननिर्वाह करना अच्छा है ।

२. या तो वह इसे करने में समर्थ है या उसके दो भाई; दूसरा कोई व्यक्ति नहीं ।

३. यह बिल्कुल उचित है कि वह तुम्हें मितव्ययिता से धन खर्च करने की चेतावनी देता है, क्योंकि तुम्हारी पुत्री का विवाह दिन-ब-दिन नजदीक होता आ रहा है।

४. जब विपत्तियाँ मनुष्य पर आती हैं तो विवेक ही वास्तविक ज्ञान होता है, क्योंकि जो विना विवेक के कार्य करते हैं उनकी विपत्तियाँ बढ़ती जाती हैं।

५. जिस कवि ने यह कहा कि एक दोष गुणों के समूह में डूब जाता है, उसने ठीक तरह से मानव-स्वभाव पर विचार नहीं किया; क्योंकि सामान्यतः निर्धनता सद्गुणों के समूह का भी नाश कर देती है।

६. इस उदारचेता व्यक्ति के अतिरिक्त भला कौन दूसरों के प्राणों को बचाने के लिए संकट मोल ले सकता है?

७. हे स्त्री! यह सच मानो कि शीघ्र ही तुम्हारा अपने पति से संयोग होगा; क्या यह सत्य नहीं है कि जिस नदी का जल ग्रीष्म से सूख जाता है वह भी वर्षा ऋतु में अपने प्रवाह से संयुक्त हो जाती है?

८. मैं सभी देवताओं की समान भक्ति के साथ पूजा करता हूँ, चाहे वे यवनों के हों वा ब्राह्मणों के।

९. मैं बाघों और भेड़ियों से युक्त निर्जन वन भी पसन्द करूँगा किन्तु अपने बन्धुओं के बीच निर्धनता का जीवन नहीं पसन्द करता।

१०. मुझे धिक्कार है कि अपने सभी प्रियजनों के मर जाने पर भी मैं जीवित हूँ।

११. अहा! मैंने वह अँगूठी पा ली है, जो खो गई थी।

१२. अहा! इस पुरुष का रूप कितना आह्लाददायक है? यह उचित ही है कि रामायण के लेखक ने उसके अनेक प्रकार के कर्मों का वर्णन करने के लिए देववाणी का उपयोग किया।

१३. सैकड़ों राजाओं में उसने केवल इस राजा का अपने पतिरूप में वरण किया; क्योंकि मन अपने पूर्वजन्म के सम्बन्धों से अभिज्ञ रहता है।

१४. दुष्ट के फन्दे में पड़कर भला कौन व्यक्ति बचकर सुरक्षित निकल सका है? और कौन दुर्बल व्यक्ति बलवानों के साथ संघर्ष करने के प्रयत्न में विफल नहीं हुआ है?

पाठ २९

आत्मनेपद और परस्मैपद

टि०—इस पाठ में और आगे के पाठ में जिस उद्धरण के स्रोत का उल्लेख नहीं किया गया है उसे 'सिद्धान्तकौमुदी' का समझना चाहिए और भट्टिकाव्य के आँठवे सर्ग को सूचित करता है ।

३०८. संस्कृत में दो पद होते हैं; आत्मनेपद और परस्मैपद । आत्मनेपद (अपने लिए वाच्य) यह बोध कराता है कि क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त होता है (कर्तृगामि फल) जैसे—कुरुते (अपने लिए करता है) । परस्मैपद (दूसरे के लिए वाच्य) यह बोध कराता है कि क्रिया का फल दूसरे को प्राप्त होता है; गच्छति (दूसरे के लिये जाता है)। व्यवहार में इस भेद पर कदाचित् ही ध्यान दिया गया है । उपर्युक्त इन दोनों पदों के मौलिक अर्थ हैं परन्तु सभी स्थितियों में इनका अनुसरण नहीं किया जा सकता । संस्कृत के लेखक दोनों पदों का मनमाना प्रयोग करते हैं, जैसे—**निदेशमिदानीं श्रोतुमिच्छामि** (मालवि० १) मैं इस समय सन्देश सुनना चाहता हूँ । **उत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि** (शाकु० ४) । **यावद्यते साधयितुं त्वदर्थं** (रघु० ५।१५) ।

यदि ऐसा माना जाय कि इन पदों का उपर्युक्त भेद वहाँ किया जाना चाहिए जहाँ धातु दोनों पदों में हो सकती हो, तो यह बात भी प्रयोग से सिद्ध नहीं होती; जैसे—**राजा स्वसूनोश्चन्द्रापीड इति नाम चकार । शुकनासोऽपि विप्रजनोचितं वैशम्पायन इति नाम चक्रे** (काद० ७४) इस उदाहरण में दोनों पदों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया गया है ।

३०९. कुछ धातुओं के रूप केवल एक ही पद में होते हैं; जैसे—नम्, भ्रम, रुच्, भाष् इत्यादि; कुछ धातुओं के रूप दोनों पदों में चलते हैं, जैसे कृ, चि, चुर्, दुह् इत्यादि; कुछ धातुएँ विशेष उपसर्गों से संयुक्त होने पर किसी एक पद की हो जाती हैं या उनका प्रयोग किसी विशेष अर्थ में होता है; जैसे 'गम्' परस्मैपद की धातु है परन्तु 'संगम्' आत्मनेपद की । शास् (शासन करना) परस्मैपद है किन्तु 'आशास्' आशीर्वाद देना आत्मनेपद । इस प्रकार की कुछ धातुओं को इस पाठ में और आगे के पाठ में दिया गया है ।

भ्वादिगण की धातुएँ

३१०. जब [1]'क्रम्' धातु के पहले कोई उपसर्ग नहीं लगा रहता तो उसका प्रयोग दोनों पदों में होता है। किन्तु जब 'नैरन्तर्य या व्यवच्छेदहीनता' 'शक्ति' या 'विकास' अथवा 'वृद्धि' का बोध कराता है तो इसका स्वतन्त्र रूप से प्रयोग आत्मनेपद में होता है : जैसे—**क्रममाणोऽरिसंसदि** (भट्टि० २२) निर्बाध शत्रु की सभा में विचरण करते हुए; **अध्ययनाय क्रमते** अध्ययन की शक्ति दिखाता है; **'क्रमतेऽस्मिन् शास्त्राणि'** उसमें शास्त्रों का विकास होता है।

(क) 'उप' और 'परा' उपसर्ग लगने पर क्रम् धातु आत्मनेपद की धातु हो जाती है और अर्थ वे ही रहते हैं; जैसे—**इत्युक्त्वा खे पराक्रंस्त** (भट्टि० २२) ऐसा कहकर उसने आकाश में अपना पराक्रम दिखाया; **परीक्षितुमुपाक्रंस्त राक्षसी तस्य विक्रमं** (वही २३)...परीक्षा लेने का साहस किया।

(ख) 'आ' उपसर्ग पूर्वक 'क्रम' धातु आत्मनेपदी होती है और इसका अर्थ होता है किसी नक्षत्र का 'चढ़ना' 'उगना' जैसे—**आक्रमते सूर्यः** (महाभाष्य) सूर्य उगता है; **दिवमाक्रममाणेव** (भट्टि० २३) किन्तु **'आक्रामति धूमो हर्म्यतलात्'** महल की छत से धूआँ उठ रहा है; या **'आक्रामति धूमो हर्म्यतलं'** (महाभाष्य) धुआँ, महल की छत को ढँक रहा है।

(ग) 'वि' उपसर्गपूर्वक 'क्रम्' धातु का अर्थ होता है 'चलना' 'पग रखना'; **विष्णुस्त्रेधा विचक्रमे**, विष्णु ने तीन पग रखे; **वाजी विक्रमते**; किन्तु **'विक्रामति संधिः'** जोड़ खुलता है।

(घ) 'प्र' और 'उप' उपसर्ग के साथ 'क्रम्' धातु का अर्थ 'आरम्भ होना' होता है। जैसे— **वक्तुं मिथः प्राक्रमतैवमेनं** (कुमार० ३।२) इस प्रकार उससे एकान्त में बात करना प्रारम्भ किया; किन्तु—'प्रक्रामति' जाता है, 'उपक्रमति' आता है।

३११. [2]क्रीड (खेलना) धातु सामान्यतः परस्मैपद की धातु है किन्तु जब इसके पूर्व अनु, सं, परि और आ उपसर्ग लगते हैं तो आत्मनेपद की होती हैं।

---

१. वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः। उपपराभ्याम्। आङ् उद्गमने। वेः पादविहरणे। प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्। अनुपसर्गाद्वा। (१।३।३८–४३)

२. क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च। (१।३।२१)

अनुक्रीडते माणवकः, परिक्रीडते माणवकः, आक्रीडते माणवकः। किन्तु माणक-मनुक्रीडति (महाभाष्य) माणवक के साथ खेलता है।

(क) 'सं' उपसर्गपूर्वक 'क्रीड' धातु परस्मैपदी होती है और इसका अर्थ होता है 'ध्वनि करना' या 'शोर करना'। जैसे—संक्रीडन्ति शकटानि (महा-भाष्य) गाड़ियाँ घड़घड़ा रही हैं।

३१२. [1]'सं' उपसर्गपूर्वक 'गम्' धातु 'जुड़ा हुआ' 'मिला हुआ' 'जोड़ना', 'मिलाना' अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—अक्षधूर्तैः समगंसि (दशकु० २।२) मैं जुआड़ियों से मिला। इसी प्रकार 'सं' उपसर्गपूर्वक 'ऋ' या 'ऋच्छ्' धातु भी—समारंत ममाभीष्टा (भट्टि० १६)।

३१३. 'चर' (चलना) [2]धातु के पहले जब 'उद्' उपसर्ग जोड़कर उसका सकर्मक धातु के रूप में प्रयोग होता है तब वह आत्मनेपदी होती है, जैसे—पान-शौण्डाः पथः क्षीबा वृन्दैरुदचरंत च (भट्टि० ३१) मदपान करने वाले मत्त होकर भीड़ में भटक गये; इसी प्रकार—'धर्म्ममुच्चरते' धर्म का उल्लंघन करता है। किन्तु—वाष्पमुच्चरति, भाप ऊपर जाता है।

(क) 'सं' पूर्वक 'चर' धातु के साथ जब 'वाहन' या जाने के साधन में तृतीया विभक्ति लगती है तो वह (सं+चर) आत्मनेपदी होती है; जैसे—यानैः समचरंतान्ये (भट्टि० ३२) दूसरे वाहनों से गये; क्वचित्पथा संचरते सुराणां (रघु० १३।१६) अब देवताओं के मार्ग (आकाश) से जा रहा है।

३१४. 'जि' धातु[3] के पहले जब 'वि' और 'परा' उपसर्ग होते हैं और उसका अर्थ क्रमशः 'जीतना' या 'विजयी होना' और 'हराना' होता है तो वह आत्मनेपदी होती है। जैसे—चक्षुर्मेचकमंबुजं विजयते (विद्धशाल०) उसकी नीली आँखें कमलों को भी जीतती हैं। विजयतां देव (मालवि० १) महाराज की जय हो। खं पराजयमानोऽसौ (भट्टि० ९) आकाश को परास्त (पूर्ण रूप से पार) करते हुए।

३१५. जब 'वि' या 'उद्' पूर्वक तप्[4] (तपाना) धातु का अकर्मक प्रयोग होता है या जब इसका कर्म 'शरीर का कोई अंग' होता है, तब वह आत्मनेपदी

---

१. समो गम्यृच्छिभ्याम्। (१।३।२९)

२. उदश्चरः सकर्मकात्। समस्तृतीयायुक्तात् (१।३।५३-४)

३. विपराभ्यां जेः (१।३।१९)

४. उद्विभ्यां तपः (१।३।२७); स्वांगकर्मकाच्चेति वक्तव्यम् (वार्त्तिक)

होती है। जैसे—रविर्वितपतेत्यर्थं (भट्टि० १४) सूर्य बहुत तेज चमक रहा है; तीव्रमुत्तपमानोऽयमशक्यः सोढुमातपः (वही १५) यह अत्यन्त तापयुक्त धूप असह्य है; उत्तपते वितपते पाणी (महाभाष्य) हाथ को गर्म करता है। किन्तु—उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः, (महाभाष्य०) स्वर्णकार सोने को तपाता है, इसी प्रकार—चैत्रो मैत्रस्य पाणिमुत्तपति।

द्र०—'तप्' का जब विना उपसर्ग के प्रयोग होता है तब वह अकर्मक धातु होती है। जैसे—तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति (शाकु० ५) सूर्य के प्रदीप्त होते रहने पर अन्धकार कैसे आविर्भूत हो सकता है ?

३१६. [1]विना उपसर्ग के या 'उद्', 'उप' या 'वि' उपसर्गों से युक्त होने पर 'नी' (ले जाना या ढोना) धातु आत्मनेपदी होती है और इसके निम्न-लिखित अर्थ होते हैं :—

(१) शिक्षा देना। जैसे—शास्त्रे नयते—शास्त्र का उपदेश देता है।

(२) ऊपर उठाना, जैसे—दण्डमुन्नयते—डंडा उठाता है।

(३) धार्मिक कर्मों के लिये दीक्षित करना, माणवकमुपनयते—माणवक का यज्ञोपवीत संस्कार करता है।

(४) 'ज्ञान' 'अन्वेषण', तत्त्वं नयते—सत्य की खोज करता है।

(५) मजदूरी पर रखना, कर्मकरानुपनयते—मजदूरों को भाड़े पर रखता है।

(६) कर देना, ऋण देना; करं विनयते—राजा को कर देता है।

(७) 'खर्चकरना' 'प्रयोग में लाना'; शतं विनयते (दान के लिए) एक सौ खर्च करता है।

(क) 'वि' पूर्वक 'नी' धातु का कर्म जब 'शरीर के अंग' के अतिरिक्त कोई वस्तु होती है तब वह आत्मनेपदी होती है; जैसे—विनेष्ये क्रोधमथवा (भट्टि० २२) अथवा मैं अपने क्रोध को दूर (शान्त) करूँगा; किन्तु—'गण्डं विनयति'—अपना कपोल घुमा लेता है।

---

१. संमाननोत्संजनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः। (१।३।३६)

द्र०—'पढ़ाना' 'पालतू बनाना' के अर्थ में 'विनी' परस्मैपद की धातु होती है। **वनान्विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान्** (रघु० २।८) मानों वन के दुष्ट जीवों को पालतू बना रहे थे; इसी प्रकार **विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियं** (रघु० ३।२९)।

३१७. [1]'आ' पूर्वक 'यम्' धातु का प्रयोग जब अकर्मक क्रिया के रूप में होता है या जब इसका कर्म 'शरीर का कोई अंग' अथवा 'ग्रन्थ' के अतिरिक्त कोई वस्तु हो तब वह आत्मनेपदी होती है। जैसे—**आयच्छते** (फैलाता है) **पाणिमायच्छते** 'अपना हाथ फैलाता है', **वस्त्रमायच्छते** 'वस्त्र फैलाता है'।

(क) 'सं' और 'उद्' उपसर्ग से संयुक्त होने पर जब 'गम्' क्रिया का कर्म कोई 'साहित्यिक रचना' अथवा 'ग्रन्थ' नहीं होता, तब वह आत्मनेपदी होती है। जैसे—**व्रीहीन्संयच्छते** (चावल इकट्ठा करता है); **भारमुद्यच्छते** (बोझ उठाता है); किन्तु—'**उद्यच्छति वेदं**' वेद पढ़ने का कठोर श्रम करता है।

(ख) 'उप' पूर्वक 'यम्' धातु 'विवाह करना', 'सामान्यतः स्वीकार करना' के अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—**सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमे यदन्यां** (रघु० १४।७१) दश मुख वाले रावण के शत्रु राम ने सीता का परित्याग कर फिर दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया।

३१८. [2]'रम्' (क्रीडा करना) धातु सामान्यतः आत्मनेपदी होती है किन्तु जब इसके पूर्व 'वि', 'आ', या 'परि' उपसर्ग जुट जाते हैं तो यह परस्मैपदी हो जाती है। जैसे—**विरम विरम वह्ने** (रत्ना० ५) अग्नि ! रुको, रुको; **आरमति उद्याने** 'वाटिका में आराम करता है, **क्षणं पर्यरमत्तस्य दर्शनात्** (भट्टि० ५३) कुछ क्षण तक उसे देखकर प्रसन्न हुआ।

(क) 'उप' उपसर्ग के साथ अकर्मक क्रिया के रूप में प्रयुक्त होने पर 'रम्' धातु दोनों पदों की हो सकती है; जैसे—**उपारंसीच्च सम्पश्यन् वानरस्तं चिकीर्षितात्**। (भट्टि० ५४) उसे देखकर बन्दर जो कुछ करना चाहता था उससे विरत हो गया; **नात्र सीतेत्युपारंस्त** (भट्टि० ५५) यहाँ सीता नहीं है, यह देखकर वे रुक गये।

---

१. आङो यमहनः (१।३।२८); समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे (१।३।७५) उपाद्यमः स्वीकरणे (१।३।५६)

२. व्याङ्परिभ्यो रमः; विभाषाऽकर्मकात् (१।३।८३-८४)

३१९. [1]'वद्' (बोलना) धातु स्वत: निम्नलिखित अर्थों में आत्मनेपदी होती है :—

(१) दक्षता, कुशलता, या कुशाग्रता प्रदर्शित करने में। जैसे–शास्त्रे वदते।

(२) सन्तुष्ट करना, मनाना, या फुसलाना अर्थ में (सामान्यत: 'उप' उपसर्ग के साथ); जैसे—भृत्यानुपवदते 'अपने सेवकों को मिलाता या मनाता है।

(३) 'ज्ञान' अर्थ में; जैसे—शास्त्रे वदते 'शास्त्र का ज्ञान कर सकता है।'

(४) श्रम करना, प्रयत्न करना अर्थ में; जैसे—क्षेत्रे वदते (खेत में श्रम करता है)।

(५) 'विचारवैषम्य' मतभेद के अर्थ में; (सामान्यत: 'वि' उपसर्ग के साथ); जैसे परस्परं विवदमानानां शास्त्राणां (हितो० १) परस्पर विवाद रखने वाले शास्त्रों का।

(६) 'चाटुकारिता' 'अनुनय' के अर्थ में; जैसे—दातारमुपवदते, दाता से प्रार्थना करता है (यह अर्थ (२) के समान ही है)।

(क) 'सम्प्र' के साथ युक्त होने पर 'वद्' धातु आत्मनेपदी होती है और इसका अर्थ 'उच्चस्वर में स्पष्ट बोलना' (जैसे पुरुषों की आवाज) होता है। है। जैसे—सम्प्रवदन्ते ब्राह्मणा:, ब्राह्मण उच्चस्वर से बोल रहे हैं; किन्तु 'वरतनु सम्प्रवदन्ति कुक्कुटा:' (महाभाष्य) हे सुन्दरी ! मुर्गे बाँग दे रहे हैं।

(ख) उपर्युक्त अर्थ में ही जब 'अनु' पूर्वक 'वद्' का अकर्मक क्रिया के रूप में प्रयोग होता है तो वह आत्मनेपदी होती है। जैसे—अनुवदते कठ: कलापस्य, 'कठ कलाप' की बोली का अनुकरण करता है। किन्तु—उक्तमनुवदति 'कही हुई बात को दुहराता है' अनुवदति वीणा, वीणा ध्वनि करती है।

(ग) 'कलह करने' 'विवाद करने' अर्थ में 'विप्र' पूर्वक 'वद्' धातु का प्रयोग दोनों ही पदों में हो सकता है। जैसे—विप्रवदन्ते वैद्या:, विप्रवदन्ति वैद्या:—चिकित्सकों के विचारों में भेद है। ऐद्विप्रवदमानैर्हस्तां संयुक्तां ब्रह्मराक्षस: (भट्टि० ३०) परस्पर लड़ते हुए राक्षसों से पूर्ण होकर उसके पास गये।

(घ) 'अप' पूर्वक 'वद्' धातु आत्मनेपदी होती है और इसका अर्थ होता है 'भर्त्सना करना' 'धिक्कारना'। जैसे—न्यायमपवदते; नृभ्योऽपवदमानस्य (भट्टि० ४५)

---

१. भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमंत्रणेषु वद:। व्यक्तवाचां समुच्चारणे। अनोरकर्मकात्। विभाषा विप्रलापे। (१।३।४७-५०)

३२०. 'अपने विचारों को व्यक्त करना' अर्थ में स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त 'स्था' धातु आत्मनेपदी होती है : जैसे—गोपी कृष्णाय तिष्टते। 'निर्णायक' रूप में स्वीकार करना अर्थ में भी 'स्था' (आत्मनेपदी) धातु होती है। जैसे—संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः (किरात० ३।१४) जो सन्देहग्रस्त होने पर कर्ण को निर्णायक मानकर उसके निकट जाते थे।

(क) 'सं' [1]'अव', 'प्र' और कभी-कभी 'वि' उपसर्ग के साथ 'स्था' धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे—'दारिद्र्यात्पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न संतिष्ठते' (मृच्छ० १) दरिद्रता के कारण मनुष्य के बन्धु भी उसके वचनों के अनुसार कार्य नहीं करते। क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुः (रघु० ८।८७) यदि कोई प्राणी थोड़ी देर के लिये भी श्वास लेता है, हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतस्थे (शिशु० ३।१) तब हरि ने हरिप्रस्थ के लिये प्रस्थान किया। इसी प्रकार—अत्रापरे प्रत्यवतिष्ठन्ते (शां० भा०); अग्नेर्ज्वलतः विस्फुलिंगा विप्रतिष्ठेरन् (वही)।

(ख) 'आ' पूर्वक 'स्था' धातु केवल प्रतिज्ञा के अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—जलं विषं वा तव कारणादास्थास्ये (महाभारत) तुम्हारे लिये मैं जल या विप की भी शरण लूँगा।

३२१. 'उद्' [2]पूर्वक 'स्था' धातु केवल प्रतिज्ञा के अर्थ में आत्मनेपदी होती है किन्तु आलंकारिक अर्थ में आत्मनेपदी होती है। जैसे—उत्तिष्ठमानं मित्रार्थे कस्त्वां न बहु मन्यत (भट्टि० १२) अपने मित्र के लिए प्रयत्न करने वाले तुझे कौन आदर नहीं करता ? मुक्तावत्तिष्ठते स्वयं को मुक्ति की अवस्था तक उठाता है। देखिए किरात ११।१३ और शिशु० १४।१७; किन्तु—पीठादुत्तिष्ठति, और ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति, एक गाँव एक सौ देता है, एक गाँव से एक सौ निकलता है।

३२२. [3]'उप' पूर्वक 'स्था' धातु 'धार्मिक रूप में सेवा करना' (देवता के समान) पूजा करना अर्थ में आत्मनेपदी है। जैसे—ये सूर्यमुपतिष्ठन्ते मन्त्रैः (भट्टि० १३) जो धार्मिक मन्त्रों के अनुसार सूर्य की पूजा करते हैं; न त्र्यम्बकादन्यमुपास्थितासौ (भट्टि० १।३)।

---

१. समवप्रविभ्यः स्थः। प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च। (१।३।२२–२३)

२. उदोऽनूर्ध्वकर्मणि। (१।३।२४)

३. उपान्मन्त्रकरणे। (१।३।२५)

द्र०—[1]सामान्यत: 'पूजा करने' के इस अर्थ में यह धातु साहित्य में दोनों ही पदों में प्रयुक्त पाई जाती है । जैसे—उपतस्थुर्महात्मानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरं (महाभारत २।४।७); स्तुत्यं स्तुतिभिरर्थ्याभिरुपतस्थे सरस्वती (रघु० ४।६) ।

३२३. [2]उप पूर्वक 'स्था' धातु आत्मनेपदी होती है और उसका प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में होता है :—

(१) जोड़ना मिलना; जैसे—'गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते' गङ्गा यमुना से मिलती है ।

(२) 'मित्रता करना'; जैसे—रथिकानुपतिष्ठते (महाभाष्य) सारथियों से मित्रता करता है ।

(३) 'जाना' (रास्ते के लिए) जैसे—अयं पन्था: साकेतमुपतिष्ठते, (महाभाष्य)यह मार्ग साकेत (अयोध्या) को जाता है ।

(क) 'उप' के साथ 'स्था' धातुका प्रयोग दोनों पदों में होता है । जब 'कोई वस्तु प्राप्त करने की इच्छा' का भाव होता है । जैसे—भिक्षुको ब्राह्मणकुलमुपतिष्ठते—तिष्ठति (महाभाष्य) एक भिक्षुक ब्राह्मण के द्वार पर (कुछ पाने की इच्छा से) खड़ा है । जब उसका अकर्मक प्रयोग होता है तब भी 'उप +स्था' उभयपदी धातु ही होती है; जैसे—भोजनकाले उपतिष्ठते 'भोजन के समय पर तैयार होकर खड़ा हो जाता है ।'

३२४. 'अनु' पूर्वक 'हृ' धातु (निरन्तर अभ्यास करना) आत्मनेपदी होती है; जैसे—'पैतृकमश्वा अनुहरन्ते' घोड़े सदैव अपने साथके घोड़ों की चाल चलते हैं; किन्तु 'समान होना' के अर्थ में यह परस्मैपदी होती है; जैसे—रामभद्रमनुहरति (उत्तर० ४) ।

३२५. 'आ' पूर्वक 'ह्वे' धातु (चुनौती देना, ललकारना) आत्मनेपदी होती है; जैसे—कृष्णश्चाणूरमाह्वयते; आह्वयते चेदिराण्मुरारिं (शिशु० २०।१)

१. इस विषय पर महाभाष्य में निम्नलिखित श्लोक है :—

बहूनामप्यचित्तानामेको भवति चित्तवान् ।
पश्य वानरसैन्येऽस्मिन्यदर्कमुपतिष्ठते ।।
मैव मंस्था: सचित्तोऽयमेषोपि हि यथा वयम् ।
एतदप्यस्य कापेयं यदर्कमुपतिष्ठति ।।

२. उपाद्देवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिस्विति वाच्यम् । (वार्तिक)

किन्तु—इत एवाह्वयैनमप्यायुष्मन्तं (उत्तर० ६) इस चिरंजीवी बालक को भी यहाँ बुलाओ

अभ्यास

१. राज्यं नाम शक्तित्रयायतम् । शक्तयश्च मन्त्रप्रभावोत्साहाः परस्परानुग्रहीताः कृत्येषु क्रमन्ते । (दशकु० २।८)

२. असौ पापः क्रमेण शाखान्तरैः संचरणमाणः कोटरमागत्य तातमपगतासुमरोत् । (काद० ३३)

३. एवं भोः संततिविच्छेदनिरवलंबानां मूलपुरुषावसाने संपदः परमुपतिष्ठन्ति । (शाकु० ६)

४. उषसि स्नात्वा कृतमंगलो मंत्रिभिः सह समगच्छे । (दशकु० २।३)

५. अये वनदेवतेयं फलकुसुमपल्लवार्घ्येण मामुपतिष्ठते । (उत्तर० २)

६. विजयेतां रामलक्ष्मणौ कुंभकर्णमेघनादौ । (अनर्घ० ६)

७. यतः प्रतस्थे कौबेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम् । (रघु० ४।६६)

८. वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः । (मेघ० १०१)

९. वलिर्बबन्धे जलधिर्ममन्थे जह्रेऽमृतं दैत्यकुलं विजिग्ये ।
कल्पान्तदुःस्था वसुधा तथोहे येनैष भारोऽतिगुरुर्न तस्य ॥
(भट्टि० २।३९)

१०. उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता ।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च ॥ (शिशु० २।१०)

११. अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधोप्रयुक्ता–
मनुवदति शुकस्ते मञ्जुवाक् पंजरस्थः । (रघु० ५।७४)

१२. यावत्प्रतापनिधिराक्रमते न भानु–
रह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम् । (रघु० ५।७१)

१३. अथ सर्वस्य धातारं ते सर्वे सर्वतोमुखम् ।
वागीशं वाग्भिरर्थ्याभिः प्रणिपत्योपतस्थिरे ॥ (कुमार० २।३)

१४. स मानसीं मेरुसखः पितॄणां कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः ।
मेनां मुनीनामपि माननीयामात्मानुरूपां विधिनोपयेमे ॥
(कुमार० २।१८)

१५. पटुर्धारावाहीं नव इव चिरेणापि हि न मे
निकृतन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति । (उत्तर० ४)

१६. फलान्यादत्स्व चित्राणि परिक्रीडस्व सानुषु ।
साध्वनुक्रीडमानानि पश्य वृन्दानि पक्षिणाम् ॥ (भट्टि० ८।१०)

१७. किंचिन्नोपावदिष्टासौ केनचिद् व्यवदिष्ट न ।
शृण्वन् संप्रवदमानाद्रावणस्य गुणान् जनात् ॥ (भट्टि० ८।२८

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. एते भगवत्यौ भूमिदेवानां मूलमायतनमन्तर्वेदि पूर्वेण कृष्णागरुमलयजरसमंगरागमन्योन्यस्य कुर्वाणे कलिंदकन्यामंदाकिन्यौ संगच्छेते (अनर्घ० ७)

२. इत्युक्त्वा शुकनासो हेमन्तकालोत्पलिनीमिवोद्बाष्पां दृष्टिमुद्वहन्नुद्वेपिताधरश्च बहिर्लब्धनिर्गमेण स्फुटन्निवान्तर्मन्युपूरेण निश्वसन्नेवावतस्थे । (काद० २८९)

३. वयोवेषविसंवादि रामस्य च तयोस्तदा ।
जनता प्रेक्ष्य सादृश्यं नाक्षिकंपं व्यतिष्ठत ॥ (रघु० १५।६७)

४. तत्रैनं हेमकुंभेषु संभृतैस्तीर्थवारिभिः ।
उपतस्थुः प्रकृतयो भद्रपीठोपवेशितम् । (रघु० १७।१०)

५. इति दर्शितविक्रियं सुतं मरुतः कोपपरीतमानसम् ।
उपसांत्वयितुं महीपतिर्द्विरदं दुष्टमिवोपचक्रमे ॥ (किरात० २।२५)

६. पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना ।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी ॥ (रघु० ४।६०)

७. विनयन्ते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम् ।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु ॥ (रघु० ४।६५)

८. श्रुतमप्यधिगम्य ये रिपून् विनयन्ते न शरीरजन्मनः ।
जनयन्त्यचिराय संपदामयशस्ते खलु चापलाश्रयम् ॥ (किरात० २।४१)

९. प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः ।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमपिर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥ (उत्तर० २)

१०. क्षणं भद्रावतिष्ठस्व ततः प्रस्थास्यसे पुनः ।
न तत्संस्थास्यते कार्यं दक्षेणोरीकृतं त्वया ॥ (भट्टि० ८।११)

११. द्रष्टुं प्रक्रममाणोऽसौ सीतामंभोनिधेस्तटम् ।
उपाक्रंस्ताकुलं घोरैः क्रममाणैर्निशाचरैः ॥ (भट्टि० ८।२५)

१२. जल्पितोत्क्रुष्टसंगीतप्रवृत्तस्मितवल्गितैः ।
घोषस्यान्ववदिष्टेव लंका पूतक्रतोः पुरः ॥ (भट्टि० ८।२९)

१३. व्यरमत्प्रधानाद्यस्मात्परित्रस्तः सहस्रदृक् ।
क्षणं पर्यरमत्तस्य दर्शनात्मारुतात्मजः ॥ (भट्टि० ८।५३)

१४. यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः ।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः ॥ (शिशु० २।१३)

१५. विपणमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा ।
अनीत्वा पङ्कतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते ॥ (शिशु० २।३४)

१६. संगमध्वं पुरः शत्रोर्मोदयध्वं रघूत्तमम्
नोपयध्वं भयं सीतां नोपायंस्त दशाननः ।
ततः प्रास्थिषताद्रीन्द्रं महेन्द्रं वानरा द्रुतम्
सर्वे किलकिलायन्तो धैर्ये चाधिषताधिकम् ॥ (भट्टि० ७।१०१–१०२)

अनुवाद कीजिए :—

१. अर्धरात्रि को जब मैं अपनी शय्या पर गाढ़ी निद्रा में सो रहा था तब मैं परस्पर लड़ने वाले (वि+वद्) पुरुषों की ओर से आते हुए शोरगुल द्वारा जगा दिया गया ।

२. परिवार की रक्षा का भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंपकर वह वृद्ध पुरुष तीर्थ-स्थान की यात्रा पर चल पड़ा (प्र+स्था) ।

३. अपने योग्यतम सेनापति के नेतृत्व में फ्रांसीसियों ने दुर्ग पर टूटना आरम्भ कर दिया (उप+क्रम) किन्तु चीनियों ने आसानी से उन्हें हरा दिया (परा+जि) ।

४. जोर-जोर से विवाद करने के बाद वे दोनों व्यक्ति हाथापाई पर उतारू हो गये और उनमें से अधिक क्रोधी प्रकृति वाले ने दूसरे को द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारा (आ+ह्वे)

५. उन्हें धिक्कार है जो केवल धन पाने के लिये धनियों की सेवा (उप+स्था) और चाटुकारी करते हैं ।

६. प्रयाग में यमुना गङ्गा से मिलती है (सं + गम्) और यह स्थान हिन्दुओं के लिए बहुत पवित्र है।

७. क्रोध न करो (वि + रम्) और लोभ का त्याग करो, कभी बुरा कार्य करने के लिये मन को प्रेरित न करो।

८. जब परशुराम एक उद्धत घोड़े पर सवार होकर जा रहा था (सं + चर्) तब वह एक तालाब के पास भड़क उठा और सवार नीचे जा गिरा।

९. इंगलैंड की गद्दी के युवराज ने डेनमार्क के राजा की पुत्री से विवाह किया है (उप + यम्)।

१०. जो बालक का यज्ञोपवीत करता है (उप + नी) और उसे ब्रह्मविद्या की शिक्षा देता है वह आचार्य कहलाता है।

११. यह मार्ग सीधे नदी को जाता है (उप + स्था), जब कि दूसरा मार्ग घूम कर जाता है; जिधर से चाहो उधर से जाओ।

१२. जब सूर्य की धूप इतनी तेज है (उद् + तप्) तो तुम विना छाते के बाहर कैसे जा सकते हो?

१३. ब्राह्मण का प्रकाश स्वभावतः कोमल होता है, और यद्यपि थोड़ी देर के लिए इसमें विघ्न आ सकता है, किन्तु यह शीघ्र ही अपना स्वरूप ग्रहण कर लेता है ('अव + स्था' सप्तमी के साथ)।

१४. कृपा की आशा रखने वाले हम लोगों ने दुष्टों के कटूक्तियाँ बहुत देर से सही हैं और अभिमानी के अपमान को नम्रतापूर्वक सह लिया है; हे आशा! तुम अपना काम कब बन्द करोगी?

१५. शुकनास ने चन्द्रापीड की सेवा की (उप + स्था) और उन्हें अनेक महत्त्व-पूर्ण विषयों पर परामर्श देकर वे घर लौटे।

पाठ ३०

अदादिगण की धातुएँ

३२६. विद् (जानना) धातु के साथ 'सं' उपसर्ग लगाने पर वह आत्मनेपदी हो जाती है और उसका अर्थ होता है 'पहचानना'। जैसे—**पितरावपि मां न प्रतिसंविदाते** (दशकु० २।३) मेरे माता-पिता भी मुझे नहीं पहचानते हैं।

(क) जब 'जानना', 'अवगत होना' के अर्थ में इसका प्रयोग अकर्मक होता है तब भी यह (सं०+विद्) आत्मनेपदी होती है। जैसे—**केन संविदते वायोर्मैनाकाद्रिर्यथा सखा** (भट्टि० १७) कौन नहीं जानता कि मैनाक पर्वत वायु का मित्र है ?

३२७. 'आ' पूर्वक 'शास्' धातु आत्मनेपदी होती है और इसका अर्थ होता है 'अशीर्वाद देना' और प्र+शास् (किसी के लिये प्रार्थना करना भी) आत्मनेपदी होता है। **ऋचच्छन्दसाशास्ते** (शाकु० ४) एक ऋचा के द्वारा आशीर्वाद देता है। **इदं प्रशास्महे** (उत्तर० १) हम इसके लिये प्रार्थना करते हैं।

३२८. 'हन्' सामान्यत: परस्मैपद होता है; किन्तु जब इसके पहले 'आ' उपसर्ग होता है और जब अकर्मक प्रयोग होता है तथा किसी के अपने शरीर की ओर संकेत करता है तो परस्मैपदी होता है। जैसे—**आघ्नान इव संदीप्तैरलातैः सर्वतो मुहुः** (भट्टि० १५) मानों जलते हुए अग्निपुंज द्वारा सभी दिशाओं में प्रहार करते समय; किन्तु **'परस्य शिर आहन्ति'** (सि० कौ०)

द्र०—इस प्रतिबन्ध का प्राय: पालन नहीं किया जाता है:—

आजघ्ने विषमविलोचनस्य वक्षः (किरात० १७।६३)

जुहोत्यादि, दिवादि और स्वादिगण की धातुएँ

३२९. 'दा' (देना) धातु का जब स्वतन्त्र रूप से प्रयोग होता है तो दोनों पदों में उसका प्रयोग होता है; किन्तु जब इसके पूर्व 'आ' उपसर्ग होता है तब 'आ+दा' ('लेना') आत्मनेपदी होता है, जैसे—**नादत्ते भवतां स्नेहेन या पल्लवं** (शाकु० ४) जो तुम्हारे प्रेम के कारण तुम्हारे पल्लव नहीं तोड़ती थी; किन्तु—**मुखं व्याददाति** 'अपना मुँह खोलता है' इसी प्रकार—**विपादिका**

व्याददाति अपने पैर के फोड़े को फोड़ता है। नदीं कूलं व्याददाति; किन्तु व्याददते पिपीलिका: पतंगस्य मुखं (महाभाष्य) ।

३३०. 'सं' पूर्वक 'नह्' धातु 'तैयार करना' 'तैयार होने' के अर्थ में आत्मनेपदी होती है; जैसे—छेत्तुं वज्रमणीन् संनह्यते (भर्तृ० २।६) वज्र को भी काटने के लिये तैयार है। युद्धाय संनह्यते (महाभाष्य) युद्ध की तैयारी करता है।

३३१. 'सं' पूर्वक 'श्रु' धातु का प्रयोग जब सकर्मक धातु के रूप में होता है तब वह परस्मैपदी होती है। जैसे—मद्वचनं न संशृणोति मेरे वचनों को नहीं सुनता है; किन्तु अकर्मक होने पर यह आत्मनेपदी होती है; जैसे—संश्रुणुष्व कपे (भट्टि० १६) हे कपि ! सुनिए !

तुदादिगण की धातुएँ

३३२. 'कृ' (बिखेरना, फैलाना) धातु के साथ जब 'अप' उपसर्ग लगता है तो वह आत्मनेपदी होती है और उसका अर्थ 'ऊपर फेंकना' आनन्द के साथ भोजन के लिए या निवासस्थान बनाने के लिए 'खोदना' होता है। जैसे—'छायापस्किरमाणविष्किर' (उत्तर० २) पशु भोजन के लिए वृक्ष की छाया में खोद रहा है; इसी प्रकार अपस्किरते कुक्कुटो भक्षार्थी, श्वा आश्रयार्थी।

किन्तु—अपकिरति कुसुमं—फूल बिखेरता है।

३३३. 'गृ' (खाना) धातु के पूर्व जब 'अव' आता है तो वह आत्मनेपद होता है। जैसे—'अवगिरते ग्रासं' एक कौर निगलता है।

(क) 'सं' पूर्वक 'गृ' धातु (प्रतिज्ञा करना, वचन पालन करना) आत्मनेपदी होती है; जैसे संगिरते शब्दं अपने वचन का पालन करता है; किन्तु—संगिरति ग्रासं।

३३४. 'आ' पूर्वक 'प्रच्छ' धातु आत्मनेपदी होती है और इसका अर्थ, 'आज्ञा लेना' 'विदा लेना' होता है, जैसे—आपृच्छस्व प्रियसखममुं (मेघ० ९) अपने प्रिय मित्र से विदा ले लो।

३३५. 'नि+विश्' धातु आत्मनेपदी होती है। जैसे—किष्किन्ध्याद्रिं न्यविशत (भट्टि० ८।१४३) किष्किन्धा पर्वत पर प्रवेश किया।

(क) अभि+विश् धातु भी आत्मनेपदी होती है। जैसे—भयं तावत्सेव्यादभिनिविशते सेवकजनं (मुद्रा० ५) पहले सेव्य व्यक्ति का भय सेवक के मन में प्रवेश करता है।

रुधादिगण की धातुएँ

३३६. [1]'पालन करना' अर्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थों में 'भुज्' धातु आत्मनेपदी होती है; जैसे—ओदनं भुंक्ते भात खाता है; सदयं बुभुजे स मेदिनीं (रघु० ८।७) उसने कोमलता के साथ पृथ्वी का भोग किया। वृद्धो जनो दुःखशतानि भुङ्क्ते बूढ़े व्यक्ति को सैकड़ों दुःख होते हैं। किन्तु—भुनक्ति स्वराज्यं (अनर्घ० ३) अपने देश का पालन करता है, शासन करता है।

३३७. जब [2]युज् धातु के पहले प्र और 'उप' अथवा सामान्यतः कोई ऐसा उपसर्ग आता है जिसके आदि या अन्त में कोई स्वर हो, तब वह आत्मनेपदी होती है किन्तु जब उसका प्रयोग याज्ञिक उपकरणों के सन्दर्भ में होता है तो वह आत्मनेपदी नहीं होती। जैसे—प्रयुंजानः प्रिया वाचः (भट्टि० ३९) मधुरवचनों का प्रयोग करते हुए; आश्रमधर्मे नियुंक्ते (शाकु० १) तमन्वयुंक्त (रघु० ८।१८) पणबन्धमुखान् गुणानजः षडुपायुंक्त (वही २१) अज ने पणबन्ध आदि छः गुणों का उपयोग किया।

तनादिगण की धातुएँ

३३८. [3]कृ (करना) धातु का जब स्वतंत्र रूप से प्रयोग होता है तो इसका प्रयोग दोनों पदों में होता है, किन्तु यह आत्मनेपद की धातु है सामान्यतः उपसर्ग के साथ संयुक्त होने पर यह आत्मनेपद की धातु होती है और इसके निम्नलिखित अर्थ होते हैं :—

(१) किसी को चोट पहुँचाना। जैसे—उत्कुरुते कान भरता है।

(२) 'निन्दा करना' 'दबा लेना' के अर्थ में, जैसे—श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते बाज वर्तिका को दबोच लेता है;

(३) 'सेवा करना' 'देखभाल करना' अर्थ में, जैसे—हरिमुपकुरुते हरि की सेवा करता है।

(४) उग्र कर्म करना, अपमानित करना, जैसे—'परदारान् प्रकुरुते' दूसरों की स्त्रियों को अपमानित करता है।

---

१. भुजोऽनवने (१।३।६६)

२. प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु। (१।३।६४)
स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वक्तव्यम्। (वार्तिक)

३. गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः। (१।३।३२)

(५) तैयार करना' 'वस्त्र पहनाना', जैसे—एधोदकस्योपस्कुरुते, लकड़ी पानी गर्म करती है।

(६) 'कहना' 'उच्चारण करना' अर्थ में। जैसे—'गाथा प्रकुरुते' कहानी कहता है।

(७) 'लगाना' 'काम में लाना' अर्थ में; जैसे—'शतं प्रकुरुते' एक सौ (पवित्र कर्म में) लगाता है; इसी प्रकार—उपकुर्वंतमत्यर्थं प्रकुर्वाणोऽनुजीविवत् (भट्टि० १८)।

(क) उप+कृ (उपकार करना, भलाई करना) उभयपदी होती है। जैसे—न हि दीपौ परस्परस्योपकुरुतः (शां० भा० ४२०) दो दीपक वस्तुतः एक दूसरे की सहायता नहीं करते। किं वा भूयः प्रियमुपकरोमि (मुद्रा० ७) सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषां (किरात० ७।२८) वही धन है जिसके द्वारा धनवान् व्यक्ति दूसरे का उपकार करता है।

(ख) [1]'अनु' और 'परा' उपसर्गों के साथ संयुक्त होने पर 'कृ' धातु परस्मैपदी होती है; जैसे—'पराकरोति दानं' दान को अस्वीकार करता है; अनुकरोति भगवतो नारायणस्य (काद० ६)।

३३९. [2]'अधि' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु 'सहन करना' 'अधिकार करना' अर्थ में आत्मनेपदी होती है; जैसे—शत्रुमधिकुरुते शत्रु को क्षमा करता है या वश में करता है; किन्तु—मनुष्यानधिकरोति शास्त्रं (शां० भा०) शास्त्र मनुष्य को प्रमाण प्रदान करता है।

३४०. [3]'वि' पूर्वक 'कृ' धातु आत्मनेपदी होती है और इसका अर्थ होता है उच्चारण करना ('ध्वनि' इसका कर्म होता है), जैसे—स्वरान् विकुरुते शब्द करता है; किन्तु—'चित्तं विकरोति कामः' काम मन में विकार उत्पन्न करता है।

(क) जब 'वि' पूर्वक 'कृ' धातु का प्रयोग अकर्मक होता है तो वह आत्मनेपदी धातु होती है। जैसे—विकुर्वे नगरे तस्य (भट्टि० २१) मैं उसके नगर में इच्छानुसार कार्य करूँगा (विविधं चेष्टे)।

---

१. अनुपराभ्यां कृञः। (परस्मैपदं) (१।३।७९)

२. अधेः प्रसहने। (१।३।३३)

३. वेः शब्दकर्मणः। अकर्मकाच्च। (१।३।३४–५)

क्र्यादिगण की धातुएँ

३४१. 'क्री'[1] (खरीदना) धातु के पहले जब 'परि' 'वि' और 'अव' उपसर्ग लगते हैं तो वह आत्मनेपदी होती है। जैसे---कृतेनोपकृतं वायोः परिक्रीणानं (भट्टि० ८) वायु के उपकार को कर्मों द्वारा चुकाते हुए; यस्तानि विक्रीणीते (याज्ञ० २) जो उन्हें बेचता है।

३४२. [2]जब 'ज्ञा' धातु का स्वतंत्ररूप से प्रयोग होता है तो यह उभयपदी होती है। जैसे---जानासि विनोदयितुं (उत्तर० १) जानीते हि भवान् (विक्रमो० २) 'अप' पूर्वक 'ज्ञा' धातु आत्मनेपदी होती है और इसका अर्थ होता है 'अस्वीकार करना', 'छिपाना'। जैसे---शतमपजानीते एक सौ अस्वीकार करता है।

(क) 'सं' और 'प्र' पूर्वक 'ज्ञा' धातु आत्मनेपदी है, किन्तु 'सोचना' अर्थ में परस्मैपदी होती है। जैसे---शतं संजानीते एक सौ की आशा करता है? हरचापारोपेण कन्यादानं प्रतिजानीते (प्रसन्न० ४) शिव के धनुष को चढ़ाने की शर्त पर अपनी पुत्री के विवाह की प्रतिज्ञा करता है किन्तु---मातरं मातुर्वा संजानाति 'अपनी माता के विषय में सोचता है।'

(ख) 'अनु' पूर्वक 'ज्ञा' धातु का प्रयोग दोनों पदों में होता है; जैसे---अनुजानीहि तां गमनाय (उत्तर० ३); ततोऽनुजज्ञे गमनं सुतस्य (भट्टि० ३।२३) तब पुत्र के जाने के विषय में सहमत हुए।

(ग) 'ज्ञा' का सन्नन्त रूप आत्मनेपदी है; जैसे--जिज्ञासमानानुचरस्य भावं (रघु० २।२६) अपनी अनुगामिनियों का विचार जानने की इच्छा रखती हुई।

चुरादिगण की धातुएँ और प्रेरणार्थक रूप

३४३. चुरादिगण की धातुएँ और प्रेरणार्थक धातुएँ प्रायः दोनों पदों की होती हैं। किन्तु इसके अपवाद भी होते हैं:---

(क) [3]जब सकर्मक क्रियाओं की प्रेरणार्थक धातु का फल कर्ता पर ही पड़ता है या जब साधारण दशा के वाक्य का कर्म प्रेरणार्थक में कर्ता बन जाता

---

१. परिव्यवेभ्यः क्रियः। (१।३।१८)

२. अपह्नवे ज्ञः। संप्रतिभ्यामनाध्याने। (१।३।४४, ४६)

३. णेरणौ यत्कर्म णौ चेत्स कर्ताऽनाध्याने। (१।३।६७)

है तो आत्मनेपद का प्रयोग होता है, किन्तु 'दया के साथ याद करना' अर्थ में आत्मनेपद नहीं होता। जैसे—**भक्ता भवं पश्यन्ति** भक्त भव को देखते हैं; **भवो भक्तान् दर्शयते** भव स्वयं को भक्तों को दिखाता है; **दर्शयते नित्यं मनुष्यान्** (महाभारत २।५।८६) किन्तु—**स्मरयति वनगुल्मः कोकिलं उत्कण्ठापूर्वकस्मृतौ विषयो भवति** (सि० कौ०) यह आसानी से समझा जा सकता है कि यह प्रयोग प्रेरणार्थक क्रिया के सामान्य प्रयोग से नितान्त भिन्न है। **भक्तान् भवं दर्शयति देवदत्तः।**

(ख) सामान्यतः जब कार्य का फल कर्ता पर पड़ता है, तो प्रेरणार्थक क्रिया आत्मनेपद में होती है। जैसे—**कटं कारयते** 'अपने लिये चटाई बनवाता है'; **स्वार्थं कारयमाणाभिः** (भट्टि० ४८) अपना हित सिद्ध करते हुए।

३४४. [1]बुध्, युध्, नश्, जन्, इ ('अधि'पूर्वक) प्रु, द्रु, स्रु धातुओं के प्रेरणार्थक रूप परस्मैपद में होते हैं; जैसे—**बोधयति पद्मं, नाशयति दुःखं, जनयति सुखं,** इत्यादि।

(क) 'खाना' 'निगलना' या 'हिलाना' अर्थवाली प्रेरणार्थक धातुएँ परस्मैपदी होती हैं, किन्तु 'अद्' धातु का कार्य जब कर्ता के लिये नहीं होता तभी वह परस्मैपदी होती है, अन्यथा नहीं।

३४५. [2]'पा' (पीना) दम्, आ+यम्, आ+यस्, परि+मुह्, रुच्, नृत् और वद् (अभि' पूर्वक) के प्रेरणार्थक जब इन क्रियाओं का फल कर्ता पर पड़ता है तब आत्मनेपदी होते हैं। जैसे—**पिबत्यसौ पाययते च सिंधुः** (रघु० १३।९)

(क) आ+मन्त्र धातु (पुकारना, संबोधन करना, विदा लेना) का प्रेरणार्थक आत्मनेपदी होता है। जैसे—**आमन्त्रयस्व सहचरं** (शाकु० ३) अपने मित्र से विदा लो।

अभ्यास

१. सा दूरस्थितैव पाणिना वेणुलतामादाय नरपतिप्रबोधनार्थं सकृत्सभाकुट्टिममाजघान। (काद० १०)

---

१. बुधयुधनशजनेङ् प्रुद्रुस्रुभ्योणेः (१।३।८६)

२. न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः। (१।३।८९)

२. सखे सीरध्वज हृदयमेवामन्त्रयस्व किमर्थं कृतार्थमसीति। (अनर्घ० ३)

३. सखे सैव धन्या गणिकादारिका यामेवं भवन्मनोभिनिविशते।
(दशकु० २।२)

४. इयमतिक्रम्य स्वकुलधर्ममर्थनिरपेक्षा गुणेभ्य एवं स्वं यौवनं विचिक्रिषते।
(दशकु० २।२)

५. राज्ञा च तथानुशिष्य सत्यप्यनश्रयैव सा यदासीत्तदास्याः स्वसा माता च निर्बंधेन राज्ञे समगिरेताम्। (दशकु० २।२)

६. मानी मानसारो महेश्वरं समाराध्यास्माद्भूयदां गदां लब्ध्वा आत्मानमप्रतिभटं मन्यमानो महाभिमानो भवंतमभियोक्तुमुद्युंक्ते।
(दशकु० १।१)

७. ततः प्रवृत्तासु प्रति संकथासु सुहृदां वृत्तान्तं श्रोतुं कृतप्रस्तावस्तांश्च तदुक्तावन्वयुक्त। (दशकु० २।१)

८. तथास्मासु प्रतिविधाय तिष्ठत्सु राजापि विज्ञापितोदन्तो
जातानुतापः पारग्रामिकान् प्रयोगान् प्रायः प्रायुंक्त। (दशकु० २।४)

९. मदसिक्तमुखैर्मृगाधिपः करिभिर्वर्तयते स्वयं हतैः।
लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यतः॥ (किरात० २।१८)

१०. उज्झत्सु संहार इवास्तसंख्यमह्नाय तेजस्विषु जीवितानि।
लोकत्रयास्वादनलोलजिह्वं न व्याददात्याननमत्र मृत्युः॥
(किरात० १६।१६)

११. मृदुव्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते।
प्रदीपः स्नेहमादत्ते दशयाभ्यंतरस्थया॥ (शिशु० २।८५)

१२. षाड्गुण्यमुपयुंजीत शक्त्यपेक्षो रसायनम्।
भवन्त्यस्यैवमङ्गानि स्थास्नूनि बलवंति च॥ (रघु० १५।९)

१३. कृतसीतापरित्यागः स रत्नाकरमेखलाम्
बुभुजे पृथिवीपालः पृथिवीमेव केवलाम्। (रघु० १५।१)

१४. कुलभार्यां प्रकुर्वाणमहं द्रष्टुं दशाननम्।
यामि त्वरावान् शैलेन्द्रं मा कस्यचिदुपस्कृथाः॥
योऽपचक्रे वनात्सीतामधिचक्रे न यं हरिः।
विकुर्वाणः स्मरानद्य बलं तस्य निहन्म्यहम्॥ (भट्टि० ८।१९,२०)

१५. आत्मानमपजानानः शशमात्रोऽनयद्दिनम् ।
ज्ञास्ये रात्राविति प्राज्ञः प्रत्यज्ञास्त क्रियापटुः ॥ (भट्टि० ८।२६)

१६. संजानानान् परिहरन् रावणानुचरान् बहून् ।
लंकां समाविशद्रात्रौ वदमानोऽरिदुर्गमाम् ॥ (भट्टि० ८।२७)

अभ्यास के लिए अतिरिक्त वाक्य

१. अथ कुपितोऽर्थपतिर्व्यवहर्तुमर्थगर्वादभियोक्ष्यते । तं च भूयश्चित्रैरुपायैः कौपीनावशेषं करिष्याव । (दशकु० २।२)

२. प्रजाभिस्तु बन्धुमन्तो राजानो न ज्ञातिभिः । तदुत्तिष्ठ कुरुष्व पुरेव सर्वाः-क्रियाः । कृताहारे त्वय्यहमपि सुखमुपभोक्ष्ये । पथ्यमित्येवमभिहितस्यास्य-दिक्षन्निव हृदयमतितरां शोकानलः संदुधुक्षे । (हर्ष० ५)

३. सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुंक्ते । (रघु० १३।४३)

४. स किंसखा साधु न शास्ति योधिपं हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः ।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसंपदः ॥ (किरात० १।५)

५. सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः समानमानान् सुहृदश्च बंधुभिः ।
स संततं दर्शयते गतस्मयः कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम् ॥
(किरात० १।१०)

६. मदमानसमुद्धतं नृपं न वियुंक्ते नियमेन मूढता ।
अतिमूढ उदस्यते नयान्नयहीनादपरज्यते जनः ॥ (किरात० २।४९)

७. स राजलोकः कृतपूर्वसंविदारंभसिद्धौ समयोपलभ्यम् ।
आदास्यमानः प्रमदामिषं तदावृत्य पन्थानमजस्य तस्थौ । (रघु० ७।३१)

८. असंविदानस्य ममेश संविदां तितिक्षितुं दुश्चरितं त्वमर्हसि ।
विरोध्य मोहात्पुनरभ्युपेयुषां गतिर्भवानेव दुरात्मनामपि ॥
(किरात० १८।४२)

९. तत्प्रतीपपवनादि वैकृतं प्रेक्ष्य शांतिमधिकृत्य कृत्यवित् ।
अन्वयुंक्त गुरुमीश्वरः क्षितेः स्वंतमित्यलघयत्स तद्व्यथाम् ॥
(रघु० १९।६२)

१०. नृपतिः प्रकृतीरवेक्षितुं व्यवहारासनमाददे युवा ।

परिचेतुमुपांशु धारणां कुशपूतं प्रवयास्तु विष्टरम् ॥ (शिशु० ८।१८)

११. समनद्ध किमंग भूपतिर्यदि संधित्सुरसौ सहामुना ।
हरिराक्रमणेन सन्नति किल विक्रीत मियेत्यसंभवः ॥ (शिशु० १६।३४)

१२. न्यस्ताक्षरामक्षरभूमिकायां कात्स्र्येन गृह्णाति लिपिं न यावत् ।
सर्वाणि तावच्छ्रुतवृद्धयोगात् फलान्युपायुंक्त स दंडनीतेः ॥
(रघु० १८।४३)

१३. नैतच्चित्रं यदयमुदधि श्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति ।
आशंसते समितिषु सुराः सक्तवैरा हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे ॥ (शाकु० २)

१४. यन्मां विधेयविषये स भवान्नियुंक्ते
स्नेहस्य तत्फलमसौ प्रणयस्य सारः । (मालती० १)

१५. अवाद्वायुः शनैरस्यां लतां नर्तयमानवत् ।
नायासयंत संत्रस्ता ऋतवोऽन्योन्यसंपदः ॥
ज्योत्स्नामृतं शशी यस्यां वापीर्विकसितोत्पलाः ।
अपाययत संपूर्णः सदा दशमुखाज्ञया ॥
प्रादमयंत पुष्पेषु यस्यां बन्धः समाहृताः ।
परिमोहयमाणाभी राक्षसीभिः समावृताः ॥
यस्यां वासयते सीतां केवलं स्म रिपुः स्मरात् ।
न त्वरोचयतात्मानं चतुरो बुद्धिमानपि ॥ (भट्टि० ८।६१—६४)

१६. उत्क्षिप्तगात्रः स्म विडंबयन्नभः समुत्पतिष्यन्तमृगेन्द्रमुच्चकैः ।
आकुंचितप्रोहनिरूपितक्रमं करेणुरारोहयते निषादिनम् ॥ (शिशु० १२।५)

अनुवाद कीजिए :—

१. ऋष्यश्रृङ्ग ने सीता को इन शब्दों द्वारा आशीर्वाद दिया (आ+शास्) कि तुम वीरपुत्र को जन्म देनेवाली होओ ।'

२. जब तुम इस भयंकर युद्ध के लिए तैयारी करो (सं+नह्) तब अपने सर्वोत्तम अस्त्रों को अपने साथ ले लो (आ+दा) ।

३. मेरे स्वामी ! सुनिए; आप मुझे पीड़ित कर सकते हैं, आप मुझे सम्पूर्ण धन से हीन बना सकते हैं (वि+युज्) किन्तु आप मुझसे मेरी सत्य के प्रति निष्ठा नहीं ले सकते ।

४. बाघ के चमड़े को धारण कर गदहे ने आस-पास के खेतों में चरने वाले पशुओं में भय उत्पन्न कर दिया। ('भी' से प्रेरणार्थक)

५. छः विधियों में सबसे पहले साम का प्रयोग करो (प्र+युज्) यदि वह विफल हो जाय तो दूसरों का आश्रय लो।

६. चरवाहे ने अपनी गायों को सरोवर का निर्मल जल पिलाया और घर की ओर चल पड़ा, क्योंकि सूर्यास्त होने वाला था।

७. जब किसी व्यक्ति को कहीं दूर जाना होता है, तब वह अपने से बड़ों से विदा लेता है (आ+प्रच्छ) और इष्ट देवताओं को प्रणाम करता है।

८. सूर्य की तेज धूप से पीड़ित होकर हाथी ने तत्काल सरोवर के गहरे जल में डुबकी लगाई।

९. जो राजा अपनी प्रजा का अपनी सन्तान के समान पालन करता है (भुज्) वह स्वयं अत्यन्त सुख पाता है (उप+भुज्) और राज्यसत्ता के प्रति प्रजा की भक्ति प्राप्त करता है।

१०. द्रुपदों के राजा ने अपनी पुत्री को विवाह में ऐसे व्यक्ति को देने की प्रतिज्ञा की जो जल के पात्र के ऊपर लटकाई गई मछली को नीचे जल में उसकी छाया देखकर वाण से विद्ध कर दे।

११. यज्ञ के घोड़े को ढूँढते हुए सगर के पुत्र कपिल मुनि से झगड़ पड़े और उन पर घोड़ा चुराने का दोष लगाया (अभि+युज्)।

१२. दुर्भाग्यवश ऐसा हुआ कि युद्ध में माता ने तेजी से अन्धा होकर अपने प्रिय-पुत्र का सिर एक पत्थर से टकरा दिया (आ+हन्) और उसे मार डाला।

१२. कौआ रोटी के टुकड़े या खानेयोग्य वस्तुओं के टुकड़े चुगता है (अप+कॄ) और इस प्रकार अपना जीवन निर्वाह करता है।

१४. फारस के एक राजा ने एक वार एक दार्शनिक से पूछा (अनु+युज्) कि राजाओं में तुम किस चीज को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हो? उसने उत्तर दिया कि लोभ के अभाव को।

१५. इस कलियुग में माता-पिता प्रायः अपनी लड़कियों को पैसे के लिए वेच देते हैं (वि+क्री) और उनकी दूनी आयु के पुरुषों के साथ उनका विवाह करते हैं। क्या यह राक्षसी कार्य नहीं है?

खण्ड ४

वाक्य-विश्लेषण तथा वाक्य-संश्लेषण

३४६. इसके पूर्व के तीन खण्डों में हमने कुछ ऐसे प्रमुख सिद्धान्तों को समझाया है जो शब्दों को जोड़कर वाक्य बनाने में लागू होते हैं। हमने अधिक महत्त्वपूर्ण व्याकरणीय रूपों और समुच्चयबोधक अव्ययों को भी समझाया है, जो प्रोफेसर वेन के मतानुसार "समान रूप से सभी विषयों और शैलियों से संबद्ध होने के कारण रचना के मूल आधार हैं।" संस्कृत में तो ऐसे रूपों और शब्दों की व्याख्या और भी अधिक आवश्यक है; कारण, संस्कृत व्याकरण के जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनमें इस विषय का बहुत कम और वह भी अपूर्ण विवेचन किया गया है, यद्यपि ऐसा करने में व्याकरण के लेखक को थोड़ा-बहुत कोशकारों के क्षेत्र में भी जा पहुँचना पड़ता है।

वाक्यरचना के नियमों को अधिक सरल और बोधगम्य बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वाक्य-विश्लेषण पर विचार किया जाय। इससे विद्यार्थी वाक्य के विभिन्न भागों और उनके पारस्परिक सम्बन्ध को समझने की योग्यता प्राप्त करेंगे। वाक्य-विश्लेषण संस्कृत-रचना के लिये भी लाभदायक होगा और विद्यार्थियों को अनुवाद करने में सहायता पहुँचायेगा।

प्रकरण १

वाक्य-विश्लेषण

३४७. 'वाक्य'—एक पूर्ण विचार की भाषा में अभिव्यक्ति को वाक्य कहते हैं।

जिससे केवल एक विचार की अभिव्यक्ति हो उसे 'पद' कहते हैं, उद्देश्य या विधेय-रहित दो या दो से अधिक पदों के समूह को 'पदसमुच्चय' कहते हैं; और एक निश्चित तथा पूर्ण विचार से युक्त पद-समूह को वाक्य कहते हैं। जैसे—

रामः, सुवर्णं, नीतिः (पद); रामविवासनं, अग्नितप्तं सुवर्णं, जनहितावहा नीतिः (पदसमुच्चयः); और रामविवासनं कैकेय्या अभिमतं, अग्नितप्तं सुवर्णं विलिनाति, जनहितावहा नीतिः राज्ञा अनुरुध्यते (वाक्य)।

द्रष्टव्यः—वाक्य चाहे साधारण हो, चाहे आज्ञात्मक, आशीर्वादात्मक या प्रश्नवाचक उसका सार या मूल विचार एक ही रहता है।

३४८. प्रत्येक वाक्य के दो भाग होते हैं : उद्देश्य और विधेय। जिसके विषय में कुछ कहा जाय वह **उद्देश्य** होता है और उद्देश्य के वियय में जो कुछ कहा जाता है वह **विधेय** होता है। जैसे—सविता उदेति (सूर्य उगता है) में 'सविता उद्देश्य है और 'उदेति' विधेय है

३४९. वाक्य तीन प्रकार के होते हैं :—साधारण, मिश्रित और संयुक्त।

साधारण वाक्य में एक उद्देश्य होता है और एक मुख्य क्रिया होती है या विधेय रूप में कोई पद होता है (आगे देखिए)। जैसे—**अहं पापकारिणी महाभागमद्राक्षं** (काद० १६६) **धिक् तां** (भर्तृ० २।२)

मिश्रित वाक्य वह वाक्य होता है जिसमें एक प्रमुख उद्देश्य और एक प्रमुख विधेय होने के अतिरिक्त दो या अधिक प्रधान क्रियाएँ होती हैं; जैसे—**यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता** (भर्तृ० २।२); यदि गर्जति वारिधरो (स) गर्जतु (मालवि० ५)

संयुक्त वाक्य वह वाक्य होता है जिसमें दो या दो से अधिक प्रमुख वाक्य होते हैं। जैसे—**दुदोह गां स यज्ञाय शस्याय मघवा दिवं** (दुहोह च) (रघु० १।२६)

साधारण-वाक्य

३५०. साधारण वाक्य में एक उद्देश्य और एक समापिका क्रिया होती है।

यह साधारण वाक्य का नितान्त प्रारम्भिक रूप होता है इसी प्रारम्भिक रूप से आगे बताई गई विधियों द्वारा वाक्यों के विस्तृत और पेचीदे रूप बनते हैं।

३५१. साधारण वाक्य के प्रारम्भिक तत्त्वों—उद्देश्य और विधेय—का विस्तार एक या अधिक गौण तत्त्वों या विस्तारों को जोड़कर किया जा सकता है और इन गौण तत्त्वों का भी विस्तार आगे किया जा सकता है।

उद्देश्य

३५२. उद्देश्य कोई साधारण या संयुक्त संज्ञापद अथवा सर्वनाम हो सकता है।

आत्मा तपस्यायोजितः (काद० १७३); शुकनासः सविस्तरमुवाच (काद० १०२); भरतशत्रुघ्नौ द्वन्द्वं बभूवतुः (रघु० १०।८१); त्रैलोक्यं अपि पीडितं; पटुत्वं कथायोगेन बुध्यते (हितो० १); मरणं प्रकृतिः शरीरिणां (रघु० ८।८७) सोऽप्याचचक्षे (दशकु० २।८)

द्र०—(क) चूँकि क्रिया का रूप ही उद्देश्य के वचन तथा पुरुष का बोध करा देता है, इसलिये प्रायः उद्देश्य का एकदम उल्लेख नहीं किया जाता। जैसे—(भवान्) अपनयतु नः कुतूहलं (काद० १८); कथं मन्दभाग्यः करोमि (अहं) (उत्तर० ३); (त्वं) ब्रूहि रामचरितं (उत्तर० २)

(ख) प्रायः विशेषण का प्रयोग विना विशेष्यभूत संज्ञा के भी होता है। जैसे—विद्वान् सर्वत्र पूज्यते; द्वावपि आगमिनौ (मालवि० ३)

(ग) संख्यावाचक शब्दों का भी वाक्य के उद्देश्य रूप में प्रायः प्रयोग होता है; शरदां 'अयुतं' ययौ (रघु० २) 'शतं' अनूच्यमायुष्कामस्य।

३५३. साधारण उद्देश्य का विस्तार संज्ञा या सर्वनाम पद की विशेषता बताने वाले विविध साधनों द्वारा किया जा सकता है :—

(१) विशेषण द्वारा—सार्वनामिक, कृत्प्रत्ययान्त, गुणबोधक या परिमाण-बोधक विशेषण द्वारा—

'स' राजा किमारंभः संप्रति (उत्तर० २) का 'इयमन्या' विभीषिका (उत्तर० ४); 'व्रज्रंश्च' (स) समर्थयामास (काद० १३३); एवं 'अभिधी-यमानः स प्रत्यवादीत् (काद० १४७); पदपंक्तिर्दृश्यते 'अभिनवा' (शाकु० ३); 'चतुर्दश' सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणां हतानि (उत्तर० २)

(२) सम्बन्ध कारक (षष्ठी विभक्ति) में किसी संज्ञा या सर्वनामका प्रयोग करके :—

रामस्य करुणो रसः (उत्तर० ३); अपि कुशली ते गुरुः (रघु० ५।४); अन्यविषया न तु दृष्टिः अस्याः (शाकु० ३)

(३) समानाधिकरण संज्ञा द्वारा—

तस्मिन् 'भोजवंशभूषणं' 'संभावयिता बुधान्' पुण्यवर्मा नामासीत् (दशकु० २।८)

द्र०—यदि कृत्प्रत्ययान्त विशेषण सकर्मक क्रियाओं से व्युत्पन्न हों तो उनके योग में कर्म का प्रयोग होता है—

'आसेदिवान्' रत्नवत् 'आसनं' स गुहेनोपमेयकान्तिरासीत् (रघु० ६।४) अनुयास्यन् मुनितनयां (अहं) विनयेन वारितप्रसरः शाकु० १); रसिकमनांसि समुल्लासयन्' वसंतसमयः समाजगाम (दशकु० १।५)।

टिप्पणी—संस्कृत के अव्ययार्थक भूतकालिक कृदन्त समयवाचक क्रिया-विशेषणों के स्वरूप वाले हैं और उनका विवेचन विधेय के विस्तार को समझाते समय किया जायगा।

३५४. संस्कृत में विस्तार की नितान्त सामान्य और प्रचलित विधि है **समासों का प्रयोग**। वे संस्कृत के मूलतत्त्व हैं और कोई ऐसा वाक्य ढूँढ़ निकालना जिसमें समास का प्रयोग न हो वहुत कठिन होता है। वैयाकरणों ने इन समासों के विस्तार अथवा लम्बाई की कोई सीमा निर्धारित नहीं की है और दीर्घ समासों का प्रयोग कितना मनमाना किया गया है (जो कभी-कभी भद्दा दीखता है) यह दण्डिन्, सुबन्धु, बाण और यहाँ तक कि भवभूति (मालती माधव अंक ३ में लवंगिका के कथन तथा अंक ५ में दण्डक छन्द देखें) की रचनाओं में भी देखा जा सकता है। ऐसे समास जो न अधिक लम्बे होते हैं और न बहुत छोटे वाक्य की शोभा में चार चाँद लगा देते हैं और शब्द; लाघव की दृष्टि से बहुत महत्त्व का काम करते हैं।

३५५. संज्ञा या सर्वनाम के विस्तार के लिये जिन समासों का सर्वाधिक प्रयोग होता है वे हैं—तत्पुरुष और बहुव्रीहि।

(१) साधारण विशेषण पद के स्थान पर व्यधिकरण तत्पुरुष, कर्मधारय, उपपद तत्पुरुष और बहुव्रीहि समास का प्रयोग किया जा सकता है :—

क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता (रघु० ८।४७); 'अबलाविप्रयुक्तः' 'कनक-वलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः' स कामी (मेघ० २); उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं' (शाकु० ४); 'ताम्बूलकरंकवाहिनी' तरलिका (काद० १४८) गृहीतप्रति-मुक्तस्य तस्य (रघु० ४।४३); कुल्यांभोभिः 'पवनचपलैः' (शाकु० १)

षष्ठी तत्पुरुष का प्रयोग अधिकतर संबन्ध कारक के लिए होता है:—

कौत्सः प्रपेदे 'वरतन्तुशिष्यः' (रघु० ५।१); नष्टाशंका हरिणशिशवः चरन्ति (शाकु० १)

३५६. उद्देश्य का विस्तार उपर्युक्त विधियों की आवृत्ति अथवा दो या दो से अधिक विधियों को मिलाकर किया जा सकता है और बढ़ाये जाने वाले पद स्वयं संज्ञा या सर्वनाम हों तो उनका भी विस्तार अन्य पदों द्वारा किया जा सकता है––

एकदा तत्रस्थ एव मृगयानिर्गतो विचरन् (विशेषण) काननं किंनरमिथुनमद्राक्षीत् (काद० ११९); तत्तनयश्च (षष्ठीतत्पु०) हारीतनामा (विशेषण) तापसकुमारकः (समानाधिकरण संज्ञा) सनत्कुमार इव सर्वविद्यावदातचेताः (विशेषण, बहुव्रीहि समास) सिस्नासुः (विशेषण) उपागमत् (काद० ३७); ताभिरष्टाभि प्रत्यक्षाभिः ('तनुभिः' का विशेषण) तनुभिः प्रपन्नः (उद्देश्य का विशेषण) ईशो वः अवतु (शाकु० १); मदम्बा पूर्णभद्रबोधितार्था (विशेषण) तादृशेपि व्यसने (आगे वाले का विशेषण) नातिविह्वला (विशेषण) कुलपरिजनानुयाता (विशेषण) मत्पितुरुत्तमांगं उत्संगेन धारयन्ती (कर्म और क्रिया-विशेषण के साथ कृत्प्रत्ययान्त विशेषण) राज्ञे समादिदेश (दशकु० २।४); इसी प्रकार–'तस्य' 'त्रयः' 'पुत्राः' परमदुर्मेधसो' 'वसुशक्तिरुग्रशक्तिरनेकशक्तिश्चेतिनामानो' बभूवुः (पंच० १); दुःखेन तप्यन्ते 'त्रयो' 'न' पितरः 'अपरे' (उत्तर० ५)

द्र०––बाण, दण्डी और सुबन्धु जैसे लेखकों ने व्यक्तियों, स्थानों, नगरों और नदियों आदि के वर्णन में संज्ञा के विस्तार की हद कर दी है। विस्तार उतना ही किया जाना चाहिए जिससे भाव उलझकर दुर्बोध न हो जाय। जब भाव के दुर्बोध होने का भय हो तो वाक्य को दो या अधिक वाक्यों में विभक्त कर देना चाहिए।

कर्म या विधेय का पूरक

३५७. यदि विधेय सकर्मक क्रिया हो, या गत्यर्थक हो अथवा ऐसी क्रिया हो जो उपसर्गों से संयुक्त होने पर सकर्मक होती हो, तो इसकी पूर्ति 'कर्म' द्वारा की जाती है। कर्म एक संज्ञा या सर्वनाम पद हो सकता है अथवा कोई भी ऐसा पद हो सकता है जो संज्ञा का कार्य करता हो :—

जाबालिम् अपश्यं (काद० ४२); आखण्डलः काममिदं बभाषे (कुमार० ३।११). याति अस्तशिखरं पतिरोषधीनां (शाकु० ४); विचचार दावं (रघु० २।८) [illegible] (रघु० ७।२७)।

३५८. उद्देश्य के समान ही होने के कारण कर्म का विस्तार भी उद्देश्य के समान ही होता है (देखिए ३५३–६) :—त्रियंबकं संयमिनं ददर्श (कुमार० ३।४४); विलपन्तं कपिंजलमश्रौषं (काद० १६५); तं तस्थिवांसं, नगरोपकण्ठे (विशेषण का क्रियाविशेषण) प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रः (रघु० ५।६१); प्रकृतिवक्रः स 'कस्य' अनुनयं प्रतिगृह्णाति (शाकु० ४); इदं अव्याजमनोहरं' वपुः 'तपःक्षमं' साधयितुं य इच्छति (शाकु० १) मेघं 'आश्लिष्टसानुं' वप्रक्रीडा-परिणतगजप्रेक्षणीयं' ददर्श (मेघ० २) अवनिपतिस्तु 'प्रतीहार्या निर्दिश्यमाना तां प्रावृषमिव घनकेशजालां अलकोद्भासिनीं' अचिरोपरूढयौवनां अतिशयरूपा-कृतिं अनिमेषलोचनो ददर्श (काद० ११)

३५९. 'बनाना' 'नाम रखना' 'पुकारना' 'सोचना' 'समझना' 'नियुक्त करना' आदि अर्थ वाली क्रियाओं के साथ प्रमुख कर्म के अतिरिक्त एक पूरक कर्म भी होता है; जैसे—

तमात्मजन्मानं 'अजं' चकार (रघु० ५।३६); आज्ञामपि 'वरप्रदानं' मन्यन्ते, दर्शनप्रदानमपि 'अनुग्रहं' गणयन्ति (काद० १०८); प्रत्याख्यानमपि 'ईर्षा' संभावयति, आक्रोशमपि 'परिहासं' आकलयति, दोषसंकीर्तनमपि 'स्मरणोपायं' अवगच्छति, अवज्ञानमपि 'अनियंत्रणं प्रणयं' उत्प्रेक्षते (काद० २३५)

३६०. 'दुह्', 'याच्', 'शास्' और 'नी' आदि जैसी द्विकर्मक क्रियाओं के साथ एक प्रधान कर्म होता है और एक गौण भी होता है। देखिए अधिकरण ४०।

३६१. कभी-कभी अर्थ की दृष्टि से सकर्मक होने वाली क्रियाओं के योग में, विशेष नियमों द्वारा संज्ञा या सर्वनाम पद में चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी या सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं। ऐसे कारकों को विधेय का पूरक कह सकते हैं, क्योंकि उनके बिना अर्थ अधूरा रहता है स्पृहयामि दुर्ललिताय 'अस्मै' (शाकु० ७); कुप्यन्ति हितवादिने (काद० १०८); असूयन्ति 'मह्यं' प्रकृतय (विक्रमो० ४); 'पापात्' जुगुप्सते (महाभाष्य); स्मरसि वा 'तस्य प्रदेशस्य' (उत्तर० ६); स स्निह्यति 'आवयोः' (उत्तर० ६)

३६२. 'देना' कहना', 'प्रतिज्ञा करना' 'भेजना' अर्थ वाली क्रियाओं के योग में जिस व्यक्ति को कुछ दिया जाता है, कहा जाता है, जिससे प्रतिज्ञा की जाती है,

या जिसे भेजा जाता है उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है; इस सम्प्रदान कारक (चतुर्थी विभक्तियुक्त पद को) अप्रत्यक्ष या गौण कर्म माना जा सकता है।

'विप्राय' गां प्रतिश्रृणोति; भोजेन दूतो 'रघवे' विसृष्टः (रघु० ५।३०) 'तस्मै' प्रस्तुतमाचचक्षे (रघु० ५।१९)

द्र०—दूसरे दृष्टिकोण से उन्हें विधेय का विस्तार माना जा सकता है और ये 'किसे' 'कहाँ' प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

विधेय

३६३. विधेय एक अकेली समापिका क्रिया हो सकता है; जैसे—'आज्ञापयतु' भवान् (शाकु० ४)

३६४. विधेय एक विशेष्य या विशेषण पद भी हो सकता है, जिसके साथ 'अस्' (होना) धातु या तो व्यक्त रहती है या छिपी रहती है;

अविवेकः परमापदां 'पदं' (किरात० २।३०); त्वं 'असि' महसां भाजनं (मालती० १); वत्से किमेवं 'कातरा' 'असि' (शाकु० ४) 'गृहीतः' सन्देशः (वही); अवहितोऽस्मि' (शाकु० ७); तेन हि 'श्रेयांसि अनतिक्रमणीयानि' (शाकु० ७); 'दूषिताः स्थ' परिभूताः स्थ रामहतकेन (उत्तर० १); व्यावर्तित-तुरगश्च पुनः 'चिंतितवान्' (काद० १२१)

(क) 'अस्' धातु प्रधानतः विधेय के पूरक की आवश्यकता रखती है, अतएव अर्थ को पूरा करने के लिए इसके बाद एक संज्ञा या विशेषण पद जोड़ना होता है जैसे कि ऊपर के उदाहरणों में। किन्तु जब यह केवल 'अस्तित्व' की सूचना देता है तो इसका प्रयोग अकेले हो सकता है। जैसे—

हिमालयो नाम नगाधिराजः अस्ति (कुमार० १।१)

इसी प्रकार जब 'भू' धातु का अर्थ केवल 'अस्तित्व' बोधक होता है, बढ़ना नहीं होता तो यह भी स्वतन्त्र रूप से अकेले प्रयुक्त होती है—

बभूव योगी किल कार्तवीर्यः (रघु० ६।३८)

(ख) कभी-कभी विधेय (अस्, विद्, वृत्) की विवक्षा बिल्कुल ही नहीं होती; मातले कस्मिन्प्रदेशे मारीचाश्रमः (शाकु० ७) अर्थात् अस्ति, विद्यते इत्यादि।

३६५. अपूर्ण विधेय वाली कुछ अन्य क्रियाएँ भी हैं, जैसे—भू, वृत् (होना), जन् (होना; बढ़ना), भा, दृश या लक्ष (कर्मवाच्य–'प्रतीत होना')

आदि क्रियाओं के साथ विधेय के पूरा करने के लिये संज्ञा या विशेषण पद की आवश्यकता होती है।

तेपि 'यथोक्ताः' 'संवृत्ता' (पंच० १) तव प्रजासु विडौजाः 'प्राज्यवृष्टि-र्भवतु' (शाकु० ७) (प्रचुर वृष्टि को देने वाला हुआ) ईदृशानां विपाकोऽपि 'परमाद्भुतो जायते' (उत्तर० ३); स्वात्यां सागरशुक्तिसंपुटगतं (पयः) 'सम्मौक्तिकं जायते' (भर्तृ २।६७) एक उत्तम मोती बनता है या हो जाता है); अयं पाण्ड्यः 'अद्रिराजः' इवाभाति (रघु० ६।६०) मदनक्लिष्टा इयमा-लक्ष्यते (शाकु० ३ यह कामपीड़िता दिखाई पड़ रही है ।)

(क) 'मन्' (समझना, सोचना) कृ (परिवर्तित करना, बदलना) धातुओं के कर्मवाच्य के साथ भी उपर्युक्त स्थिति होती है——

नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता (रघु० ७।४५); व्याघ्रः कुक्कुरः कृतः (हितो०); इसी प्रकार——स सेनापतिर्नियुक्तः ।

अतएव जब विधेय संज्ञा या विशेषण पद होता है, तब उसमें वही विभक्ति लगती है जो उद्देश्य में; अथवा उसे प्रथमा विभक्ति में रखा जाता है ।

३६६. अंग्रेजी के समान संस्कृत में भी कभी-कभी संक्षिप्त रूप द्वारा अव्यय-पदों का विस्मयादिबोधक पदों के प्रयोग द्वारा व्यक्त किया जाता है; ऐसी दशा में उद्देश्य और विधेय अथवा दोनों ही विवक्षित नहीं होते अपितु उन्हें अव्यय-पदों से समझना होता है, जैसे——

'धिक्' तां च तं च='सा' च 'स' च 'निन्द्यौ' स्तः; शिवाय 'नमः'=शिवः प्रणम्यते; 'अलं' प्रयत्नेन=प्रयत्नेन न 'किमपि' साध्यम्, इत्यादि ।

३६७. प्रायः अव्यय पद विधेय का कार्य करता है, जैसे——विषवृक्षोऽपि छेत्तुं 'असांप्रतम्' (कुमार० २।५५)=न युज्यते; पवनः आलिंगितुं 'शक्यं' (शाकु० ३)=शक्यते; कष्टं' खलु अनपत्यता (शाकु० ६); मनसिजरुजं सा वा दिव्या मम 'अलं' अपोहितुं (विक्रमो० ४) ।

विधेय का विस्तार

३६८. विधेय का विस्तार या अधिक स्पष्ट रूप में निर्धारण क्रियाविशेषण द्वारा या क्रियाविशेषण के समकक्ष शब्द द्वारा किया जाता है। इस प्रकार के शब्द होते हैं——समय, स्थान, प्रकारवाचक क्रियाविशेषण, समुच्चय और विस्मया-दिबोधक पद (प्रथमा, द्वितीया, षष्ठी और संबोधन के अतिरिक्त) विविध

विभक्तिनिष्पन्न रूप; और संज्ञाओं के साथ उपसर्गों और क्रियाविशेषणों का संयोग; मया सार्धं, रामाद्विना, वृक्षाणामधः, राज्ञः समक्षं इत्यादि।

३६९. विधेय के विस्तारों को निम्नलिखित चार वर्गों में रखा जा सकता है—

(१) समयसंबन्धी विस्तार।
(२) स्थानसंबन्धी विस्तार।
(३) प्रकार या विधिसंबन्धी विस्तार।
(४) कारण और कार्यसंबन्धी विस्तार।

समयवाचक विस्तार

३७०. समयवाचक क्रियाविशेषण विस्तार का प्रयोग निम्नलिखित दशाओं में से किसी एक दशा को प्रदर्शित करने के लिए होता है।

(१) किसी निश्चित समय या अवधि का बोध कराने के लिए, 'कब ?' प्रश्न के उत्तर के रूप में;

द्वयं गतं 'संप्रति' शोचनीयतां (कुमार० ५।७१) 'ततः' प्रविशति कंचुकी (शाकु० ५); यास्यति 'अद्य' शकुन्तला (शाकु० ४) आषाढस्य 'प्रथमदिवसे' मेघं ददर्श (मेघ० २); 'अनुदिवसं' परिहीयसे अंगैः (शाकु० ३); गिरिशमुपचचार 'प्रत्यहं' सा सुकेशी (कुमार० १।६०); अस्मात्परं को नः कुले निवपनानि नियच्छति (शाकु० ६)

द्र०—(क) 'भावे सप्तमी' के प्रयोग सामान्यतः समय का बोध कराते हैं; और उन्हें समयवाचक विस्तार के रूप में कालवाचक क्रियाविशेषण माना जा सकता है;

'अन्तर्हिते शशिनि' सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति (शाकु० ४) जब चन्द्रमा डूब जाता है या चन्द्रमा के डूब जाने पर !

'गते च केयूरके' चन्द्रापीडमुवाच (काद० १८१)

(ख) इसी प्रकार 'क्त्वा' या 'ल्यप्' प्रत्ययान्त भूतकालिक कृदन्त भी क्रियाविशेषण विस्तार है जो समय या अवधि प्रदर्शित करते हैं। यदि ये कृदन्त सकर्मक क्रियाओं से व्युत्पन्न हों तो उनके साथ कर्म भी आता है:—

प्रतिनिवृत्य तं प्रदेशं व्यलोकयम् (काद० १२५); महाश्वेता 'तच्छ्रुत्वा सुचिरं 'विचार्य' केयूरकं प्राहिणोत् (काद० १८१); अचिरात् पावनं तनयं प्रसूय मम विरहजां शुचं न गणयिष्यसि (शाकु० ४।१८)

(२) **समय की अवधि या दूरी;** जो 'कब तक ?' इस प्रश्न का उत्तर दे—

'इयंति दिवसानि' प्रजागरकृशो लक्ष्यते (शाकु० ३); दत्तदृष्टिः 'सुचिरं' व्यचरम् (काद० १५२); 'क्रोशं' कुटिला नदी (सि० कौ०); 'स्तनत्यागं यावत्' अवेक्षस्व (उत्तर० ७)

(३) **समय की आवृत्ति**—जो 'कितनी बार' इस प्रश्न का उत्तर होता है—

'वारं वारं' तिरयति दृशोरुद्गमं वाष्पपूरः (मालती० १), अह्नो 'द्विः' भुङ्क्ते (सि० कौ०); ताम्यन्मूर्तिः श्रयति 'बहुशः' चन्द्रपादान् (मालती० ३)

स्थानवाचक विस्तार

८७१. स्थानवाचक क्रियाविशेषण विस्तार तीन प्रकार के संबन्ध प्रदर्शित करते हैं :—

(१) **किसी जगह पर स्थिर होना;** 'कहाँ ?' 'किस स्थान पर' प्रश्न के उत्तर रूप में—

अस्ति 'अवन्तीषु' उज्जयिनी नाम नगरी (काद० ४८); 'कस्मिंश्चिदधिष्ठाने' कौलिकरथकारौ प्रतिवसतः स्म (पंच० १।५); एष कण्वस्य महर्षेः 'उपमालिनीतीरं' आश्रमो दृश्यते (शाकु० १); अस्ति 'उत्तरस्यां दिशि' नगाधिराजः (कुमार० १।१); निर्मलनखलग्नमूर्तिः 'पादयोः' पतति (काद० १९३)

(२) **किसी स्थान को गति;** जो 'किधर' 'किस ओर' का उत्तर होता है :—

सा तरलिका 'क्व' गता (काद० १७६); 'नीचैः' गच्छति 'उपरि' च दशा (मेघ० ११२); 'गृहाभिमुखं' प्रतस्थे (हितो० ४); मदोद्धताः 'प्रत्यनिलं' विचेरुः (कुमार० ३।३१)

(३) **किसी स्थान से गति होना,** 'कहाँ से' किससे' ? के उत्तर रूप में (अपादान के सामान्य अर्थ में)—

यदि मे 'दर्शनपथात्' नापयाति (काद०१३२) 'वनस्पतिभ्यः' कुसुमान्याहरत (शाकु० ४); कुतः' इदं सौधमागतं (दशकु० २।५)

८७०—इस सम्बन्ध द्वारा 'हेतु' या 'प्रयोजन' के अतिरिक्त अपादान का सामान्य अर्थ व्यक्त होता है;

'तीक्ष्णात्' उद्विजते (मुद्रा० ३); 'दिवाकरात्' अन्धकारं रक्षति (कुमार० १।१२)

प्रकारवाचक विस्तार

३७२. विधि या प्रकार के विस्तार निम्नलिखित संबन्धों को व्यक्त करते हैं :—

(१) किसी कार्य की विधि या ढंग:—(कैसे ?)।

चन्द्रापीड: 'सविनयं' अवादीत् (काद० १३४); माधव: 'सलज्जं' अधोमुखस्तिष्ठति (मालती० १); को वा दुर्जनवागुरासु पतित: 'क्षमेण' यात: पुमान् (पंच० १।२); तदिदं 'कणशो' विकीर्यते (कुमार० ४।२७); 'त्वरितं अपसर्पतां तरुगहनेन (उत्तर० ४); अथवा 'कथं' भवान् मन्यते (मालवि० १) 'अयत्नेनैव' उपहासास्पदतामीश्वरो नयति जनं (काद० १५१); प्रकृत्या यद्वक्त्रं (शाकु० १)

(२) मात्रा :—

तमवेक्ष्य सा 'भृशं' रुरोद (कुमार० ४।२६); स राज्यं गुरुणा दत्तं प्रतिपद्य 'अधिकं बभौ (रघु० ४।१); यावच्छक्यं सुहृदसवो रक्षणीया: (काद० १५१)

द्र०—तुलना के लिये जिस अपादान का प्रयोग किया जाता है उसे भी इस शीर्षक के अन्तर्गत रखा जा सकता है;

'मोहात्' प्रबोध: कष्टतरोऽभूत् (रघु० १४।५६); गृहं 'कान्तारात्' अतिरिच्यते (पंच० ४।१)

(३) किसी कार्य का साधन :—

संचूर्णयामि 'गदया' न सुयोधनोरु (वेणी० १); क्वचित् 'पथा' संचरते सुराणां (रघु० १३।१९); विसृजति हिमगर्भैर्मयूखै:' अग्निमिन्दु: (शाकु० ३)

द्र०—किसी क्रिया के 'कर्ता' को बताने वाले करण कारक को व्यावहारिक दृष्टि से इसी के अन्तर्गत समझा जा सकता है :—

जनपदहितकर्ता त्यज्यते 'पार्थिवेन' (पंच० १।२); 'त्वया' 'चन्द्रमसा' च अतिसन्धीयते कामिजनसार्थ: (शाकु० ३); इदं 'अशरणै:' अद्याप्येवं रुद्यते (उत्तर० ३)

अथवा इसे क्रिया के कर्ता का बोध कराने के कारण 'उद्देश्य' के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

(४) सहयोगी परिस्थितियाँ :—

'त्वया'सह निवत्स्यामि (उत्तर० २); रत्नं समागच्छतु कांचनेन (रघु० ६।७९); 'जटाभि:' तापस:, (भवति या ज्ञायते); महत्या सेनया निर्जगाम, स्मर: क्षणमप्युत्सहते न 'मां विना' (कुमार० ४।३६)

कार्य-कारण-वाचक विस्तार

३७३. इस प्रकार के क्रियाविशेषण विस्तार निम्नलिखित संबन्धों को प्रकट करतें हैं:—

(१) **किसी कार्य का आधार, कारण या हेतु** (करण कारक तथा अपादान कारक द्वारा व्यक्त किये जाने वाला अर्थ):—

'दौर्मन्त्र्यात्' नृपतिर्विनश्यति (भर्तृ० २।४२); 'भर्तृगतचिंतया' आत्मानमपि नैषा विभावयति (शाकु० ४); 'आवेगस्खलितया गत्या' प्रभ्रष्टं मे पुष्पभाजनं (वही०); कापुरुष: 'स्वल्पकेनापि' तुष्यति (पंच० १।१ ; लज्जेहं अनेन-प्रागल्भ्येन' (काद० १८७); 'त्वया' जगन्ति पुण्यानि (उत्तर० १); नाथवन्त: 'त्वया' लोका: (वही)

(२) **किसी कार्य का अन्तिमकरण या प्रयोजन,** जिसे चतुर्थी विभक्ति या 'तुमुन्' प्रत्ययान्त पद द्वारा व्यक्त किया जाता है:—

'समिदाहरणाय' प्रस्थिता वयं (शाकु० १); श्रयति बहुशो 'मृत्यवे' चन्द्र-पादान् (मालती० ३); प्रवर्ततां 'प्रकृतिहिताय' पार्थिव: (शाकु० ७), 'अमीषां प्राणानां कृते' किं नास्माभिर्व्यवसितं (भर्तृ० ३।३६); तद्गच्छ सिद्धयै (कुमार० ३।१८); 'लोकान्दग्धुं' तत्तपोऽलं (कुमार० २।५६); यावद्यते 'साधयितुं तवार्थं' (रघु० ५।२५); छेत्तुं वज्रमणीन्' शिरीषकुसुमप्रान्तेन संन-ह्यते (भर्तृ० २।६)

(३) शर्त, स्वीकृति :—

'तथापि' घटिष्ये (मालवि० १); नन्दा हता: 'पश्यतो राक्षसस्य' (मुद्रा० ३)

३७४. पाठ २१—२८ में जिन अव्यय पदों पर विचार किया गया है उनमें कुछ का प्रयोग किसी बात पर जोर देने के लिए होता है और कुछ विस्मयादि बोधक होते हैं, जैसे—एव, खलु, किल, हन्त, अहो बत, नूनं नाम । वाक्य-विश्लेषण में या तो उन्हें छोड़ा जा सकता है या उन्हें प्रकार या विधिसूचक क्रियाविशेषण विस्तार माना जा सकता है ।

३७५. विधेय का आगे विस्तार ऊपर बताई गई चार विधियों में दो या दो दो से अधिक का प्रयोग किया जा सकता है; और इन विस्तारों का भी विस्तार उपर ३५३.—६ के अन्तर्गत बताई गई किसी भी विधि द्वारा किया जा सकता है।

'दिष्टया' 'धर्मपत्नीसमागमेन', 'पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान्वर्धते (शाकु० ७); अयं च 'मन्दाकिनी चित्रकूटवनविहारे' 'सीतादेवीमुद्दिश्य' रघुपतेः श्लोकः (उत्तर० ६); 'नियतं' 'स्वयमेव' इयं 'अतिविनीततया' 'कतिपयैरेव दिवसैः' कुमारमाराधयिष्यति (काद० १०१); 'प्रत्यूषे' 'उत्थाय' 'तेनैव क्रमेण' अनवरतप्रयाणकैः' 'प्रतिप्रयाणकं उपचीयमानेन सेनासमुदायेन' जर्जरयन्वसुन्धरां प्रातिष्ठत (काद० ११८) 'अथ' राजवाहनः 'पुष्पोद्भवे' 'सह स्वमन्दिरमुपेत्य' 'सादरं' 'वालचन्द्रिकामुखेन' 'निजवल्लभायैनं संगमोपायं वेदयित्वा' कौतुकाकृष्टहृदयः अतिष्ठत् (दशकु० १।५)

साधारण वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण

३७६. साधारण वाक्यों का वाक्य विश्लेषण करने का प्रक्रिया-क्रम इस प्रकार है :—

१. पहले वाक्य के उद्देश्य को ढूँढ लीजिए ?

२. तब उद्देश्य के विस्तार या विशेषणों को अलग कीजिए।

३. विधेय बताइए।

४. यदि विधेय सकर्मक क्रिया हो तो उसका कर्म बताइए।

५. कर्म के विस्तारों का उल्लेख कीजिए।

६. अन्त में विधेय के क्रियाविशेषण विस्तारों को स्पष्ट कीजिए।

उदाहरण

१. विश्वंभरात्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने।
प्राप्तप्रसवमात्मानं गंगादेव्यां विमुंचति ॥ (उत्तर० ७)

२. एवं क्रमेण समारूढयौवनारम्भं परिसमाप्तसकलकलाविज्ञानमवगम्यानुमोदितमाचार्यैश्चन्द्रापीडमानेतुं राजा बलाधिकृतं बलाहकनामानं बहुतुरगबलपदातिपरिवृतं प्राहिणोत्। (काद० ७७)

३. पौरस्त्यानेवमाक्रामंस्तांस्ताञ्जनपदाञ्जयी।
प्राप तालीवनश्यामुपकंठं महोदधेः ॥ (रघु० ४।३४)

वाक्य-विश्लेषण का रूप

	उद्देश्य	उद्देश्य का विस्तार	विधेय	कर्म	कर्म का विस्तार	विधेय के क्रियाविशेषण विस्तार
१.	देवी	विश्वंभरात्मजा (समानाधिकरणसंज्ञा), राज्ञा महावने त्यक्ता (विशेषण)	विमुंचति	आत्मानं	प्राप्तप्रसवं	गंगादेव्यां (स्थानवाचक)
२.	राजा		प्राहिणोत्	बलाधिकृतं	बहुतुरगबलपदातिपरिवृतं (विशे०) बलाहकनामानं	एवं क्रमेण परिसमा...विज्ञानवगम्य (समयवाचक) आचार्यैरनुमोदितं चन्द्रापीडमानेतुं (हेतुवाचक) ।
३.	जयी	तांस्तान् पौरस्त्यान् जनपदानेवमाक्रामन् (कर्म से संयुक्त कृदन्त)	प्राप	उपकण्ठं	तालीवनश्यामं) विशेषण-समास) महोदधेः (संबन्ध-बोधक षष्ठी)	
४.	प्रवृत्तिः	शब्दानां, चतुष्टयी, तस्य पुराणस्य कवेश्चतुर्मुखसमीरिता (विशेषण)	चरितार्था आसीत्			
५.	चन्द्रपालितः		आत्मसात् अकरोत्	विहारभद्रं		एवं अभ्येत्य (समयवाचक) विविधाभिः क्रीडाभिः (साधन) ।
६.	क्षितीश्वरः कौशिकेन (कर्ता)	स (सार्वनामिक विशेषण)	याचितः	रामं (गौणकर्म)	काकपक्षधरं	सत्य(समय)किल(प्रकारवाचक) अध्वरविघातशान्तये(हेतुवाचक)
७.	कुरुपतिः	सानुजः	धिक्-निंद्यः			

४. पुराणस्य कवेस्तस्य चतुर्मुखसमीरिता ।
प्रवृत्तिरासीच्छन्दानां चरितार्था चतुष्टयी ॥ (कुमार० २।१७)

५. एवंगते मंत्रिणि राजनि च कामवृत्ते चन्द्रपालितोऽभ्येत्य विविधाभिः क्रीडाभिर्विहारभद्रमात्मसादकरोत् (दशकु० २।८)

६. कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशांतये ।
काकपक्षधरमेत्य याचितः । (रघु० ११।१)

७. धिक् सानुजं कुरुपतिं । (वेणी० ३)

मिश्रित वाक्य

३७७. मिश्रित वाक्य में एक प्रमुख उद्देश्य (कर्ता और) विधेय होने के साथ-साथ दो या दो से अधिक समापिका क्रियाएँ होती हैं ।

'यस्यार्थाः' तस्य मित्राणि (हितो० १); इतश्चेतश्च निर्गतो युवराजः इति' आकर्ण्य आचकंपे मेदिनि (काद० ११३) ।

वाक्य के जिस भाग में प्रधान कर्ता (उद्देश्य) और विधेय होता है वह मुख्य उपवाक्य कहलाता है और अन्य भागों को आश्रित उपवाक्य कहते हैं ।

३७८. आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं :—संज्ञा उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य और क्रियाविशेषण उपवाक्य ।

सच्चे मानी में मिश्रितवाक्य साधारणवाक्य का ही विस्तृत रूप होता है; संज्ञा उपवाक्य 'संज्ञा' को, विशेषण उपवाक्य 'विशेषण' को और क्रियाविशेषण उपवाक्य क्रियाविशेषण को या विधेय के विस्तार को अभिव्यक्त करता है ।

संज्ञा उपवाक्य

३७९. संज्ञा उपवाक्य संज्ञापद का स्थान ग्रहण करता है अर्थात् इसका प्रयोग निम्नलिखित रूपों में होता है :—

(१) प्रधान विधेय (क्रिया) का उद्देश्य (कर्ता) ।
(२) प्रधान विधेय का कर्म ।
(३) मुख्य उपवाक्य के किसी संज्ञा पद का समानाधिकरण ।
(४) मुख्य उपवाक्य के किसी क्रियारूप का कर्म ।

उदाहरण :—

(१) 'अयं पुनरविरुद्धः प्रकार इति' वृद्धेभ्यः श्रूयते (उत्तर० ४) 'श्रूयते' का कर्ता। 'स स पापादृते तासां दुष्यन्त' इति घुष्यतां (शाकु० ६) (घुष्यतां का कर्ता)।

(२) प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि 'कियदवशिष्टं रजन्याः इति' (शाकु० ४) (अवलोकयामि का कर्म)

(३) 'अप्रतिष्ठे रघुज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य न'। इति दुःखेन तप्यन्ते त्रयो नः पितरोपरे। (उत्तर० ५) 'दुःखेन' का समानाधिकरण।

(४) 'तथापि सुहृदा सुहृदसन्मार्गप्रवृत्तो यावच्छक्तिते निवारणीयः इति' मनसा अवधार्य अब्रवम् (काद० १५५) (अवधार्य का कर्म)

३८०. संज्ञा उपवाक्यों को मुख्यतः 'इति' द्वारा निर्दिष्ट किया जाता है अथवा यथा, यद् से प्रारम्भ किया जाता है और अन्त में 'इति' रखा भी जाता है और नहीं भी रखा जाता।

अकथितोऽपि ज्ञायत एवं 'यथायं तपोवनस्याभोग' इति (शाकु० २) सत्योयं जनप्रवादो यत्संपदमनुबध्नातीति (काद० ७३), अविज्ञातमदनवृत्तान्ता 'क्व गच्छामि इति' नाज्ञासिष (काद० १४७)।

द्र०—कभी कभी 'इति' का प्रयोग नहीं किया जाता—कथय 'सत्संगतिः पुंसां किं न करोति' (भर्तृ० २।२८) एतत्कल्याणभिनिवेशिनः श्रुतिविण्यमापतितमेव 'यथा विबुधसद्मन्यप्सरसो नाम कन्यका सन्ति' (काद० १३६)

विशेषण उपवाक्य

३८१. विशेषण उपवाक्य का प्रयोग संज्ञा या सर्वनाम पद की विशेषता बताने के लिये होता है और इसका स्वरूप विशेषण का होता है। विशेषण उपवाक्य संबन्धवाचक सर्वनाम 'यद्' के किसी रूप (यावत्, यादृश् आदि) द्वारा आरम्भ होता है।

विशेषण उपवाक्य का प्रयोग निम्नलिखित रूपों में हो सकता है :—

(१) उद्देश्य (कर्ता) के साथ, 'यदालोके सूक्ष्मं' व्रजति सहसा तद्विपुलतां (शाकु० १); तत्तस्य किमपि द्रव्यं 'यो हि यस्य प्रियो जनः' (उत्तर० २), अहेतुः पक्षपातो यः' तस्य नास्ति प्रतिक्रिया (उत्तर० ५) (कर्ता के विस्तार 'तस्य' का विशेषण)

(२) कर्म के साथ; 'यस्यागमः केवलजीविकायै' तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति (मालवि० १); स तावदभिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ वसु। यावतैषां समाप्येरन् यज्ञाः पर्याप्तदक्षिणाः ।। (रघु० १७।१७)

(३) विधेय के विस्तारों के साथ :—युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकाशमासत । तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः । (शिशु० १।२३) ('ममुः' के विस्तार 'तनौ' का विशेषण),

द्र०—विशेषण उपवाक्य की स्थिति पर ध्यान दीजिए। यह या तो मुख्य उपवाक्य के पहले रहता है या बाद में; उस स्थान पर नहीं रहता जिस स्थान पर अंग्रेजी में who, which, आदि रखे जाते हैं।

३८२. क्रियाविशेषण उपवाक्य प्रायः विशेषणस्वरूप वाले समासों द्वारा व्यक्त किये जाते हैं; वे हैं व्यधिकरण और समानाधिकरण तत्पुरुष तथा बहुव्रीहि; तथा कृदन्तों (भूत, कृत्यप्रत्ययान्त, और क्त, क्तवतु प्रत्ययान्त) द्वारा भी विशेषण उपवाक्य व्यक्त किया जाता है।

तन्नंदिनीं सुवृत्तां नामैतस्मात् द्वीपादागतो रत्नोद्भवो नाम रमणीयगुणालयो भ्रांतभूवलयो व्यवहारी उपमेये (दशकु० १।१) इसमें 'आगतः' और 'भ्रान्त-भूवलयः' विशेषण उपवाक्यों ('यो द्वीपादागच्छत्' और 'यो भूवलयं बभ्राम') के लिये आये हैं।

क्रियाविशेषण उपवाक्य

३८३. क्रियाविशेषण उपवाक्य क्रियाविशेषण शब्द के समकक्ष होता है और क्रिया की विशेषता बताता है। यह विशेषण का स्थान ग्रहण करता है और उसी के समान इसकी रचना होती है; विशेषण के समान ही विशेषण उपवाक्य समय, स्थान, प्रकार और कार्य-कारण का बोध कराता है।

३८४. समयवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य ऐसी घटना को सूचित करते हैं जो प्रमुख उपवाक्य में अभिव्यक्त क्रिया के समय से पहले या साथ ही साथ हुई हो।

सत्वरं निवेदय 'यावद् दंष्ट्रान्तर्गतो न भवसि' (पंच० १।८); अत्रैव तावद्रथं स्थापय 'यावदवतरामि (शाकु० १); 'यदा हरः पार्वतीं परिणेष्यति' तदा स्मरं स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति (कुमार० ४।४२); यावदसौ पान्थः सरसि स्नातुं प्रविशति तावन्महापंके निमग्नः (हितो० १)

द्र०—समयवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य को अव्ययपद और क्रिया को एक कृदन्त में बदल कर या 'भावे सप्तमी' का प्रयोग करके संक्षिप्त रूप दे दिया जाता है।

३८५. स्थानवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य केवल एक संबन्ध प्रदर्शित करते हैं : किसी स्थान में स्थिर होना, या किसी स्थान को जाना :—

'यत्र यत्र धूमः' तत्र तत्र वह्निः।

३८६. प्रकार या विधिवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होते हैं : ।

(१) **सादृश्य या समानता**—जिसे 'इव' 'यथा' (सहगामी अव्ययपद 'तथा' 'तद्वत्') द्वारा व्यक्त किया जाता है; जैसे—पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरूपं 'भवन्तमीड्यं भवतः पिता इव' (अलभत) (रघु० ५।३४); आसीदियं दशरथस्य गृहे 'यथा श्रीः' (अस्ति) (उत्तर० ४) 'यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ। समेत्य च व्यपेयातां' तद्वद् भूतसमागमः (हितो० ४)।

द्र०—'यथा' या 'इव' से प्रारम्भ होने वाले उपवाक्यों को प्रायः संक्षिप्त रूप दे दिया जाता है।

(२) **मात्रा या संबन्ध** (समानता, या तीव्रता, आदि) :—

'वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव' तथा जडे (वितरति) (उत्तर० २); 'यथा यथा अम्बुधाराभिराहन्यते' तथा तथा स्फुरति मदनपावकः (काद० २५२)।

३८७. प्रकारवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्यों का प्रायः क्रियाविशेषण के रूप में प्रयुक्त विशेषणात्मक या बहुव्रीहि समासों द्वारा व्यक्त करते हैं। जैसे :— राजा 'सविलक्षस्मितं आह—यथा विलक्षस्मितं स्यात्' तथा आहः 'उद्द्योतितांबरदिगन्तरं अंशुजालः' शक्तिः पपात हृदि तस्य महासुरस्य (कुमार० १७।५१)।

३८८. 'कारण' और 'कार्यं' संबन्धी क्रियाविशेषण उपवाक्य निम्नलिखित संबन्धों को प्रकट करने के लिये प्रयुक्त होते हैं :—

(१) **आधार या कारण** (क्योंकि, चूँकि, कारण);

'वत्से कठोरगर्भेति' (उत्तर० १); ममापि तर्हि धर्मतस्तथैव 'यतः प्रियवयस्य इत्यात्थ' (उत्तर० ५); इत्यादि नन्विह निरर्थकमेव 'यस्मात्कामो जृंभितगुणः (मालती० १); कमपरमवशं न विप्रकुर्युः 'विभुमपि तं यदमी स्पृशन्ति भावाः' (कुमार० ६।९५); कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके 'त्वं हि तस्य प्रियेति' (मेघ० ८८)।

(२) **शर्त अथवा अनुमान**—श्रूयतां 'यदि कुतूहलं' (काद० ४९); 'अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः' पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् (शाकु० ५); जात्या चेदवध्योहं' एषा सा जातिः परित्यक्ता (वेणी० ३)।

(३) **स्वीकृतिः**—काममनुरूपमस्या वपुषो वल्कलं न पुनरलंकारश्रियं न पुष्यति (शाकु० १); 'नेत्रे पुनर्यद्यपि रक्तनीले' तथापि सौभाग्यगणः स एव (उत्तर० ६)

(४) **प्रयोजन**—दोषं तु मे कंचित् कथय 'येन स प्रतिविधीयेत' (उत्तर० १) 'तदागच्छ यथा दर्शयामि' (पंच० १।८); भो धीरं गच्छ 'मा खलु तत्रभवती घरिणी विसंवदिष्यति' (मालवि० १); 'अस्य शरीरस्य मा विनाशो भूदिति' मयेदमुत्क्षिप्य समानीतं (काद० ३२०)।

(५) **परिणाम, फल**—कुमार तथा प्रयतेथाः 'यथा नोपहस्यसे जनैः' (काद० ११०); स ऋत्विजस्तथानर्च 'यथा साधारणीभूतं नामास्य धनदस्य च' (रघु० १७।८०); सा वेणुलतामादाय सभाकुट्टिममाजघान 'येन सकलमेव तद्राजकं तदभिमुखमासीत्' (काद० १०)।

३८९. मिश्रितवाक्य का विस्तार संज्ञा, विशेषण या क्रियाविशेषण उपवाक्य को दुहराकर किया जा सकता है; ऐसी स्थिति में वस्तुतः वाक्य संयुक्तवाक्य हो जायगा, जिसमें सभी परस्पर समानाधिकरण उपवाक्य मिश्रितवाक्य होंगे।

'कथं स त्वया दृष्टः' 'किं किमभिहितासि तेन' 'कियंत कालमवस्थितासि तत्र' कियदनुसरन्नस्मानसावागतः' इति पुनः पुनः पर्यपृच्छम् (काद० १५०); 'यस्य चेन्द्रियाणि सन्ति' 'यः पश्यति वा' श्रुतमवधारयति वा' स खलूपदेशमर्हति (काद० १५६)।

(३९०. एक ही मिश्रितवाक्य में दो या दो से अधिक प्रकार के आश्रित उपवाक्यों का प्रयोग किया जा सकता है :—

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति (संज्ञा) यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति (क्रियाविशेषण) तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥ (कुमार० ३।७२) राष्ट्रमुख्यमाहूयाख्यातवान्। योसौ अनंतसीरः प्रहारवर्मणः पक्ष इति (क्रिया वि०) निनाशयिषितः (विशेषण) सोऽपि पितरि मे प्रकृतिस्थे किमिति नश्यतेति (संज्ञा) (दशकु० २)।

आश्रित उपवाक्यों को बनाने के लिये प्रयुक्त अव्यय पद :—

संज्ञा उपवाक्य—इति, यथा, यद् ('इति' के साथ या विना 'इति' के)
विशेषण उपवाक्य—यद्' के रूप।

क्रियाविशेषण उपवाक्य—
समय—यदा, यावत्, यावन्न (तावत् के साथ),
यदा यदा,
स्थान—यत्र, यत्र यत्र
प्रकार—इव, यथा ('तथा' या तद्वत् के साथ)
यथैव (तथैव), यथा यथा
कारण, कार्य—(१) इति यतः ('ततः' के साथ); यद्
यथा ('तथा' के साथ); हि।
(२) यदि (इसके बाद-तर्हि, तद्, ततः,
आता है), चेद् अथ।
(३) यद्यपि, कामं (तु, पुनः)
(४) येन, इति, यथा, मा (भविष्यकाल
या लोट् लकार के साथ)
(५) यथा, येन।

मिश्रित वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण

३९१. मिश्रित वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण पहले इस प्रकार किया जायगा मानों प्रत्येक आश्रित उपवाक्य एक शब्द या पदसमुच्चय हो। ऐसा कर लेने पर आश्रित उपवाक्यों का साधारण वाक्यों के समान पृथक् वाक्य-विश्लेपण किया जायगा।

उदाहरण :—

१. अथ स निःश्वस्य लज्जाविशीर्यमाणविरलाक्षरं सखे कपिंजल विदितवृत्तान्तोऽपि किं मां पृच्छसीति कृच्छ्रेण शनैः शनैरवदत्। (काद० ११५)

२. एष नामानुगृहीतः यः शूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः (शाकु० ६)।

३. अन्वेषमाणश्च यथा यथा नापश्यं तं तथा तथा सुहृत्स्नेहकातरेण मनसा तत्तदशोभनशंकमानो निपुणमितस्ततो दत्तदृष्टिः सुचिरं व्यचरम्। (काद० १५२)

वाक्यविश्लेषण का रूप

	उद्देश्य	उद्देश्य का विस्तार	विधेय	कर्म	कर्म का विस्तार	विधेयकेक्रियाविशेषणविस्तार
१.	स:		अवदत्	सखे कपिंजल ···पृच्छसीति (अ)		अथ (समय); निःश्वस्य (समय) लज्जाविशीर्यमाणविरलाक्षरं (प्रकार) कृच्छ्रेण, शनैः शनैः (प्रकार)
	(अ) (त्वं) सखे कपिंजल (उद्देश्य के साथ)	विदितवृत्तान्तोऽपि (विशेषण)	पृच्छसि	मां (अप्रत्यक्ष) किं (प्रत्यक्ष)		
२.	एष	यः–प्रतिष्ठापितः (अ)	अनुगृहीतः			नाम (प्रकारवाचक)
	(अ) यः		प्रतिष्ठापितः			हस्तिस्कन्धे (स्थान) शूलादवतार्य (समय)
३.	(अहं)	सुहृत्स्नेह:···शंकमाव: (कृदन्त—विशेषण) निपुणं इतस्ततो दत्तदृष्टिः (विशेषण)	व्यचरम्			तथा तथा (मात्रा) यथा यथा अन्वेषमाणो नापश्यं तं (अ) (मात्रा) सुचिरं) समया)
	(अ) (अहं)	अन्वेषमाणं (कृदन्त-विशेषण)	अपश्यं (न)	त		यथा यथा) मात्रा)

संयुक्त वाक्य

३९२. संयुक्त वाक्य में दो या दो से अधिक वाक्य होते हैं जो साधारण या मिश्रित वाक्य होते हैं और एक दूसरे के समानाधिकरण होते हैं।

संयुक्त वाक्य के अन्तर्गत आने वाले निम्नलिखित प्रकार के वाक्य हो सकते हैं :—

(१) साधारण वाक्य
(२) कुछ साधारणवाक्य और कुछ मिश्रितवाक्य, या
(३) सभी मिश्रितवाक्य।

(१) तथाप्येष प्राणः स्फुरति न तु पापो विरमति। (उत्तर० ६)
मनो निष्ठाशून्यं भ्रमति च किमप्यालिखति च ॥ (मालती० १)
(इसमें प्रत्येक वाक्य साधारणवाक्य है)

(२) दाक्षिण्यं नाम बिबोष्ठि बैविकानां कुलव्रतम्।
तन्मे दीर्घाक्षि ये प्राणास्ते त्वदाशानिबन्धनाः ॥ (मालत्रि० ४)
(दूसरा भाग एक मिश्रित वाक्य है)

(३) यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कुलया त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपि क्षमं ॥
(शाकु० ५)

(इसके दोनों भाग मिश्रित वाक्य हैं।)

इन उदाहरणों में पृथक् वाक्य एक दूसरे पर किसी भी प्रकार आश्रित नहीं हैं। उनमें से कोई भी कथन स्वतन्त्र रूप से कहा जा सकता था, जबकि मिश्रित वाक्य को स्वतन्त्र अर्थ वाले पृथक् वाक्यों में विभक्त नहीं किया जा सकता।

३९३. संयुक्त वाक्य के विभिन्न अंश परस्पर तीन प्रमुख संबन्धों द्वारा सम्बद्ध हो सकते हैं:—(१) **समूहवाचक संबन्ध**—जिसे समुच्चयबोधक अव्ययों 'च', 'तथा', 'अपि' आदि द्वारा व्यक्त किया जाता है और जिसमें दो या दो से अधिक कथनों को एक साथ संयुक्त किया जाता है; (२) **विरोधवाचक संबन्ध**—जो विरोधवाचक अव्यय पदों वा, तु, पुनः, परन्तु आदि द्वारा संबद्ध किये जाते हैं, जिसमें दूसरा वाक्य पहले वाक्य में कहे गये कथन से किसी प्रकार विरोध प्रकट करता है; और (३) **परिणामवाचक संबन्ध**—जिसे हेतु या निष्कर्षवाचक संयोजकों अतः, तत्, ततः द्वारा व्यक्त किया जाता है और

पहले कहे गये कथन से निकले हुए किसी कथन या निष्कर्ष का उल्लेख किया जाता है।

समूहवाचक सम्बन्ध

३९४. समूहवाचक संबन्ध में कथनों को निम्नलिखित तीन विभिन्न अर्थों में एक साथ रखा जा सकता है :—

(१) जब कथन पर बराबर जोर दिया जाता है :—

तटस्थः स्वानर्थान् घटयति च मौनं च भजते (मालती० १) त्रिलोचनस्तां प्रतीग्रहीतुमुपचक्रमे च पुष्पधन्वा धनुष्यमोघं चापं समधत्त च (कुमार० ३।६६) तृणमिव वने शून्ये (सा) त्यक्ता न चापि अनुशोचिता (उत्तर० ३)

(२) जब दूसरे उपवाक्य पर अधिक जोर दिया जाय; न केवलं तातनियोग एव अस्ति मे सोदरस्नेहोप्येतेषु '(शाकु० १); पुण्यानि नामग्रहणान्यपि महामुनीनां किं पुनर्दर्शनानि (काद० ३३)

(३) जब विचारों में क्रमिक विकास हो :—

उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं (शाकु० ५);
जगज्जीर्णारण्यं भवति हि विकल्पव्युपरमे
कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव। (उत्तर० ६)

द्र०—इस संबन्ध में अनेक समानाधिकरण वाक्य एक दूसरे के उपरान्त आते हैं; उन्हें केवल साथ-साथ रख दिया जाता है, उनको संयुक्त करने वाला पद नहीं रखा जाता जिसका अर्थ छिपा रहता है;

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने····
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी (शाकु० ४)

(इसमें चार कथन हैं)

जाड्यं धियो 'हरति' 'सिंचति' वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापं अपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोत कीर्तिं (सत्संगतिः) (भर्तृ० २।२३)
दारिद्र्याद् ह्रियमेति ह्रीपरिगतः प्रभ्रश्यते तेजसो
निस्तेजाः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते।
निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदं॥ (मृच्छ० १)

विरोधवाचक सम्बन्ध

३९५. विरोधसूचक संबन्ध तीन प्रकार से व्यक्त किया जाता है:—

(१) विच्छेदसूचकसमुच्चयबोधक अव्ययों द्वारा, जिसमें प्रथम स्थिति को अलग किया जाता है:—

प्रज्ञाहीनोयं राजा 'नोचेत्' नीतिशास्त्रकथाकौमुदीं वागुल्काभिः कथं तिमिरयति (हितो० ३)

व्यक्तं नास्ति कथं—'अन्यथा' वासन्त्यपि तां न पश्येत् (उत्तर० ३)

अद्यापि हरकोपवह्निस्त्वयि ज्वलति। 'अन्यथा' त्वं भष्मावशेषः कथमित्थमुष्णः (शाकु० ३)

(२) विकल्प बताने वाले समुच्चयबोधक अव्ययों द्वारा; वा-वा किं—अथवा, उत, आहो या आहोस्वित्; तदेषा भवतः कान्ता त्यजैनां 'वा' गृहाण 'वा' (शाकु० ५) सूतो 'वा' सूतपुत्रो 'वा' यो 'वा' को 'वा' भवाम्यहं (वेणी० ३); किं धर्मोपदेशांगमिदं 'उत' मोक्षप्राप्तिरियं 'आहोस्विद्' अन्यः कश्चिन्नियमप्रकारः (काद० १५०)।

(३) विरोध बताने वाले समुच्चयबोधक अव्ययों द्वारा : तु, किन्तु, परं (तु), पुनः, तथापि और (कभी-कभी) केवलं; दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं 'तु' पौरुषं (वेणी० ३); (अयं कथाप्रविभागः) प्रणीतो न तु प्रकाशितः (उत्तर० ४); सखे पुण्डरीक सुविदितमेतन्मम 'किन्तु' इदमेव पृच्छामि (मालवि० १); लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते। ऋषीणां 'पुनः' आद्यानां वाचमर्थोनुधावति॥ (उत्तर० १); अनुदिवसं परिहीयसे अंगैः 'केवलं' लावण्यमयी छाया त्वां न मुंचति (शाकु० ३)।

परिणामवाचक सम्बन्ध

३९६. परिणामवाचक संबन्ध अतः, तस्मात्, ततः, तद्, अनेन हेतुना एवं च, तेन हि शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है :—

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां भर्तृमतीं जनोन्यथा विशंकते 'अतः' प्रमदा स्वबन्धुभिः परिणेतुः समीपे इष्यते (शाकु० ५); भो उपस्थितं नयनमधु संनिहिता च मक्षिका। 'तत्' अप्रमत्त इदानीं पश्य (मालवि० २) जनकोद्य गतो विदेहान्। 'नतो' विमनसो देव्याः परिसान्त्वनाय नरेन्द्रो वासगृहं विशति (उत्तर० १);

अत्यद्भुतादपि गुणातिशयात्प्रियोसि 'तस्मात्' सखा त्वमसि (उत्तर० ५); मध्यस्था नो गुणदोषत: परिच्छेत्तुमर्हति । 'तेन हि' प्रस्तूयतां विवादवस्तु (मालवि० १)

३९७. अंग्रेजी के समान संस्कृत में भी प्राय: जब संयुक्तवाक्य के समानाधिकरण अंगों का उद्देश्य (कर्ता) विधेय, या वाक्य का कोई भाग एक ही होता है, तब उनकी आवृत्ति नहीं की जाती और इस प्रकार वाक्य को छोटा रूप दिया जाता है ।

(१) तटस्थ: स्वानर्थान् 'घटयति च मौनं च भजते (मालती० १)
हृदयमशरणं मे पक्ष्मलाक्ष्या: कटाक्षै: ।
'अपहृतं' 'अपविद्धं' 'पीतं' उन्मूलितं च ।। (वही)

(२) दिष्ट्या न केवलं 'उत्संग:' चिरात् 'मनोरथोपि' 'पूर्ण:' (उत्तर० ८)
न मां त्रातुं 'तात:' 'प्रभवति' न 'चांबा' न भवती' (मालती० २)

समानाधिकरण वाक्यों को संयुक्त करने वाले अव्ययों का वर्गीकरण

समूहवाचक संबन्ध (१) च, च च, तथा च, अपि, अपि च, अपरं च, अन्यच्च ।
(२) केवलं–अपि, किमुत, किपुन:,
(३) अथ, तदनु, पूर्वं–तत:, अनन्तरं–तत: परं, ततश्च अनंतरं च ।

विरोधवाचक संबन्ध (१) अन्यथा, न (नो) चेत् ।
(२) वा, वा–वा, न–वा ।
(३) तु, किन्तु, परं (तु), तथापि, पुन:, केवलं ।

परिणामवाचक संबन्ध—तद्, तस्मात्, अत:, तत:, तथा, एवं च, एवं, तेन हि ।

संयुक्त वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण

३९८. संयुक्त वाक्य का विश्लेषण करते समय सबसे पहले विविध समानाधिकरण वाक्यों के बीच रहने वाले सम्बन्ध का निर्देश किया जाता है और उसके बाद अन्य वाक्यों का, साधारण या मिश्रित होने के अनुसार अलग-अलग विश्लेषण किया जाता है ।

उदाहरण--

(१) वर्ष वा गर्ज वा शक्र मुंच वा शतशोऽशनिम् (मृच्छ० ५)
(२) उचितः प्रणयो वरं विहंतुं बहवः खंडनहेतवो हि दृष्टाः ।
उपचारविधिर्मनस्विनीनां न तु पूर्वाभ्यधिकोपि भावशून्यः ।।
(मालवि० ३)

(३) दृष्टा खलु मया तत्रभवत्या मालविकायाः प्रियसखी वकुलावलिका श्राविता च तमर्थं भवता यः संदिष्टः (मालवि०) ।

१. शक्र (त्वं) वर्ष वा (अ) प्रमुख वाक्य
(त्वं) गर्ज वा (व) प्रमुख वाक्य (अ) का समानाधिकरण
(त्वं) शतशोऽशनि मुंच वा (स) प्रमुख वाक्य (अ) और
(ब) का समानाधिकरण
सम्बन्ध विरोधसूचक संबन्ध है ।

	उद्देश्य	विधेय	कर्म	क्रियाविशेषण विस्तार
अ.	(त्वं) शक्र	वर्ष (वा)		
ब.	(त्वं)	गर्ज (वा)		
स.	(त्वं)	मुंच (वा)	अशनिं	शतशः (प्रकार)

२. उचितः प्रणयो विहन्तुं वरं बहव खण्डनहेतवो दृष्टाः हि (अ) न तु पूर्वाभ्यधिकोपि भावशून्यो मनस्विनीनामुपचारविधिः वरं (व) सम्बन्ध-विरोधवाचक सम्बन्ध है ।

वाक्य (अ)—मिश्रितवाक्य का वाक्य विश्लेषण—

	उद्देश्य	विधेय	कर्म	क्रियाविशेषण विस्तार
अ.	प्रणयः	वरं	—	विहंतुं (प्रयोजन)
	उचितः (विशे०)			बहव····दृष्टाः (अ) कारण
	(अ) खंडनहेतवः			
	बहवः (विशे०)	दृष्टाः	—	हि (कारण)
ब.	उपचारविधिः			
	मनस्विनीनां (षष्ठी)			
	पूर्वाभ्यधिकोपि न (वरं)			
	भावशून्यः (विशे०)			

३. प्रथम वाक्य साधारण वाक्य है। दूसरा वाक्य मिश्रितवाक्य है जिसका ऊपर के समान वाक्यविश्लेषण किया जा सकता है। संबन्ध समूहवाचक-सम्बन्ध है।

अभ्यास के लिए विविध उदाहरण

पहले बताई गयी विधियों के अनुसार निम्नलिखित वाक्यों का वाक्यविश्लेषण कीजिए और उनके प्रकार--साधारण, मिश्रित या संयुक्त--का निर्देश कीजिए।

१. महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोस्मि। (शाकु० २)

२. कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि। (शाकु० ५)

३. प्रमाणादधिकस्यापि गंडश्याममदच्युतेः।
पदं मूर्ध्नि समाधत्ते केसरी मत्तदन्तिनः।

४. लघुहृदयां मां लोकः कलयिष्यतीति निर्ह्रीकया मया नाकलितम्।
(काद० १७७)

५. दर्शनादारभ्य शरीरस्याप्ययमेव प्रभुः किमुत भवनस्य विभवस्य वा (काद० १९६)

६. स चानुयुक्तो धूर्तः सविनयमावेदयत्। विदितमेव खलु वो यथाहं युष्मदाज्ञया पितृवनमभिरक्ष्य तदुपजीवी प्रतिवसामि। (दशकु० २।६)

७. यदा किंचित् किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः। (भर्तृ० २।८)

८. अहमतिमृदुनि पुलिनवति सरस्तीरेऽवरोप्य सस्पृहं निर्वर्णंस्तां मत्प्राणैकवल्लभां राजकन्यां कंदुकावतीमलक्षयम् (दशकु० २।६)

९. एवमेतत्। किन्तु न कदाचिदार्यस्य निष्प्रयोजना प्रवृत्तिरित्यस्ति_.नः प्रश्नावकाशः (मुद्रा० ३)

१०. विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव॥ (शाकु०४)

११. अये महाराजेति निष्प्रणयमामन्त्रणपदं सौमित्रिमात्रे च बाष्पस्खलिताक्षरः कुशलप्रश्नः। तथा मन्ये विदितसीतावृत्तांतेयमिति। (उत्तर० ३)

१२. वरेषु यद् बालमृगाक्षि मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने।
(कुमार० ५।७२)

१३. तद् ब्रूत वत्साः किमितः प्रार्थयध्वं समागताः ।
मयि सृष्टिर्हि लोकानां रक्षा युष्मास्ववस्थिता ॥ (कुमार० २।२८)

१४. कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपितसंस्कारः । तथापि भवद्गुणसन्तोषो मामेवं मुखरीकृतवान् । (काद० १०९)

१५. वध्ये मयि मत्तहस्ती मृत्युविजयो नाम हिंसाविहारो राजगोपुरोपरितलाधिरूढस्य पश्यतः उत्तमामात्यस्य शासनाज्जनकंठरवद्विगुणितघंटारवो मंडलित हस्तकाडं समभ्यधावत् । दशकु० २।४)

१६. यज्ञोपवीतं नाम
अमौक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणानां विभूषणम् ।
देवतानां पितृणां च भागो येन प्रदीयते ॥ (मृच्छ० १०)

१७. अत्रान्तरे ब्राह्मणेन मृतं पुत्रमुत्क्षिप्य राजद्वारे सोरस्ताडनमब्रह्मण्यमुद्घोषितम् । ततो न राजापराधमन्तरेण प्रजास्वकालमृत्युश्चरतीत्यात्मदोषं निरूपयति करुणामये रामभद्रे सहसैवाशरीरिणी वागुदचरत् । (उत्तर० २)

१८. अथ कदाचित् पिंगलको नाम सिंहः सर्वमृगपरिवृतः पिपासाकुल उदकग्रहणार्थं यमुनातटमवतीर्णः संजीवकस्य गंभीतरशब्दं दूरादेवाशृणोत् । (पंच० १)

१९. यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितोन्यतः प्रयातुं ।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ॥ (वेणी० ३)

२०. प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः । (भर्तृ० २।९०)

२१. यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् । (भर्तृ० ३।८८)

२२. यथा तिरश्चीनमलातशल्यं प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दंशः ।
तथैव तीव्रो हृदि शोकशंकुर्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः ॥ (उत्तर० ३)

२३. परस्परविरोधिन्योरेकसंश्रयदुर्लभम् ।
संगतं श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम् ॥ (विक्रमो० ३)

२४. सर्वैरुस्रैः समग्रैस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः (मालवि० २)

२५. अस्त्वमर्षो मा भूद्वा । एतत्तु पृच्छामि दांतं हि राघवं राजानं शृणुमः । स किल नात्मना दृप्यति न चाप्यस्य प्रजा ईदृश्यो जायंते तत् किमस्य मनुष्या राक्षसीं वाचं वदन्ति । (उत्तर० ५)

२६. यथा नौ प्रियसखी बंधुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वाहय। (शाकु० ३)

२७. अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम्।
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम्॥ (रघु० ३।७०)

इसके आगे अभ्यास के लिए छात्र पिछले पाठों में दिये गये वाक्यों से वाक्य चुनकर उनका विश्लेषण कर सकते हैं।

प्रकरण २

वाक्यों में शब्दों का क्रम

३९९. खण्ड १ के आरम्भ में यह बताया जा चुका है कि संस्कृत में शब्दों का क्रम कोई महत्त्वपूर्ण विचारणीय विषय नहीं है। संस्कृत में प्रत्येक शब्द (क्रियाविशेषणों और अव्ययपदों को छोड़कर) के रूप चलते हैं और व्याकरणीय प्रत्यय ही एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ संबन्ध प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार यदि व्याकरण भी भाषा में कहा जाय तो कोई ऐसा विशिष्ट क्रम नहीं है जिसका पालन किये जाने की आवश्यकता हो।

'कथमपि तत्याज वने सीतां लक्ष्मणः कठोरगर्भां' जैसा वाक्य कुछ भद्दा जरूर लगता है, किन्तु व्याकरण की दृष्टि से यह अशुद्ध नहीं है। किन्तु यदि कोई व्याकरणीय क्रम न भी हो तब भी विचारों में एक तर्कयुक्त तारतम्य होना चाहिए। यदि हम किसी भी संस्कृत ग्रंथ के पृष्ठों का अवलोकन करें तो हम उनमें शब्दों के विन्यास में कुछ न कुछ क्रम अवश्य पावेंगे; पहले विस्तारों के साथ विवक्षित या अविवक्षित रूप में उद्देश्य (कर्ता) आता है, तब कर्म आता है (यदि कोई हो) और अन्त में क्रिया या विधेय आता है;

सा तु महाश्वेताया एव मुखमवलोकितवती (काद० ३०७);
महीपतिस्तं विद्येश्वरं सबहुमानं विससर्ज (दशकु० १।२५);

काव्यों और नाटकों के काव्य में भी, जिन्हें सामान्य गद्य के नियमों से परे माना जाता है, इस क्रम का अनेक स्थलों पर कठोर पालन किया गया है;

रघुणामन्वयं वक्ष्ये (रघु० १।८)

तृष्णां छिन्धि पापे रतिं मा कृथाः (भर्तृ० २।७६); **वदनकमलकं शिशोः स्मरामि** (उत्तर० ४); **असिगात्रं गात्रं सपदि लवशस्ते विकिरतु** (मालती० ५) इत्यादि।

आगे हम वाक्यों में शब्दों के क्रमसंबन्धी कुछ नियम देंगे :—

४००. गद्य रचना में शब्दों में जिस नियम का पालन करना छात्रों के लिये सबसे अच्छा होगा, वह यह है :—पहले कर्ता को उसके सभी

विशेषणों और क्रियाविशेषण पदसमुच्चयों के साथ रखें, तब विस्तार के साथ कर्म को और अन्त में विधेय (क्रिया, संज्ञा या विशेषण से सम्बद्ध क्रियारूप) को रखें। क्रियाविशेषण और क्रियाविशेषण वाक्यांश अन्त के अतिरिक्त कहीं भी आ सकते हैं जबकि कुछ को छोड़कर शेष समुच्चयबोधक अव्यय पहले विधेय के पूर्व रखे जाते हैं। यदि विद्यार्थी 'इत्थं राज्ञे आशिषं प्रयुज्याग्रजन्म गुरोः सकाशं प्रतीयाय' (रघु० ५।३५) के स्थान पर 'सकाशं गुरोः आशिषं राज्ञे अग्रजन्मा प्रयुज्य प्रतीयायेत्थं' कहे तो वह बहुत भद्दा वाक्य होगा।

४०१. जब किसी श्लोक का अन्वय किया जाता है और उसे गद्यक्रम में रखा जाता है, तो उपर्युक्त क्रम का पालन सामान्यतः किया जाता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित श्लोक लीजिए :—

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ॥ (रघु० २।१)

इसका अन्वय इस प्रकार होगा :—

अथ (समुच्चय बोधक अव्यय) यशोधनः (विशेषण) प्रजानां (षष्ठी) अधिपः (कर्ता) प्रभाते (कर्म का विस्तार) जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्यां (विशेषण) पीतप्रतिबद्धवत्सां (दूसरा विशेषण) तामृषेः (कर्म का विस्तार) धेनुं वनाय गंतुं (क्रिया वि०) मुमोच (विधेय)। इसी प्रकार—अभिहन्ति हन्त कथमेष माधवं सुकुमारकायमनवग्रहः स्मरः (मालती० १); हन्त, कथमेषोऽनवग्रहः स्मरः सुकुमारकायं माधवमभिहन्ति या हन्त एष ·········· कथमभिहन्ति।

विशिष्ट प्रयोगों में सामान्य नियम को छोड़ा जा सकता है, और हम यह बतायेंगे कि पदों का एक दूसरे के साथ क्या सम्बन्ध होना चाहिए।

४०२. सामान्य नियम से जो पहला सिद्धान्त सीखा जा सकता है वह यह है कि शब्दों को इस क्रम में रखा जाय कि विचार एक दूसरे के बाद स्वाभाविक क्रम में आवें और शब्दों का परस्पर स्वाभाविक सम्बन्ध हो, वे एक दूसरे पर आश्रित हों; दूसरे शब्दों में अधिकृत और आश्रित शब्द प्रायः उस शब्द के पहले रखे जाते हैं। जिस पर वे आश्रित होते हैं अथवा जिसके द्वारा वे अधिकृत होते हैं।

इस प्रकार विशेषण और उसका विशेष्य, सकर्मक क्रिया और उसका कर्म, क्रिया की विशेषता बतानेवाले क्रियाविशेषण और अव्यय तथा उनसे संयुक्त

शब्द संस्कृत में इतना निकट रखा जाना चाहिए जितना निकट संभव हो सके।

४०३. जब वाक्य का एक साधारण उद्देश्य (कर्ता) होता है और एक क्रिया होती है तब कर्ता का प्रयोग पहले होता है; रघुपतिस्तिष्ठति (उत्तर० ६)

विशेषणपद कर्ता के पूर्व आते हैं :—

'देवो' रघुपतिस्तिष्ठति (उत्तर० ६); 'उपात्तविद्यो' 'गुरुदक्षिणार्थी' कौत्सस्तं प्रपेदे (रघु० ५।१।); अपगलश्रमः, चाभिमतं दिगन्तरमयासीत् (काद० ३२)।

(क) विशेषण का जब विधेय रूप में प्रयोग होता है, तब वे उस संज्ञापद के बाद आते हैं जिसकी वे विशेषता बताते हैं।

(ख) जब सार्वनामिक और परिमाणबोधक दोनों ही प्रकार के विशेषणों का एक साथ प्रयोग होता है तब प्रायः सार्वनामिक विशेषण पहले रखे जाते हैं; **तस्यां अतिदारुणायां हतनिशायां** (काद० १६९) 'उस अत्यन्त दारुण और दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि में' किन्तु कभी-कभी उन्हें परिमाणबोधक अव्यय के बाद रखा जाता है। जैसे—**विचक्षणो वर्णी सः** (मल्लिनाथ रघु० ५।१९), यूना 'अनेन' **पार्थिवेन सह** (मल्लि० रघु० ६।३२)।

४०४. समानाधिकरण संज्ञा उस शब्द के पहले आनी चाहिए जिसकी व्याख्या करने के लिए उसका प्रयोग किया जाता है :—

आसीदशेषनरपतिशिरः समभ्यर्चितशासनः 'आदर्शः सर्वशास्त्राणां' 'उत्पत्तिः कलानां' 'कुलभवनं गुणानां' राजा शूद्रको नाम (काद० ५) **अथ 'मीनकेतन सेनानायकेन' दक्षिणानिलेन मन्मथानलमुज्ज्वलयन्** (दशकु० १।५)

४०५. षष्ठी विभक्ति (संबन्ध कारक) की संज्ञाएँ प्रायः उस शब्द के पहले आती हैं जिससे वह सम्बन्ध प्रदर्शित करती हैं।

'जगतः' पितरौ वन्दे (रघु० १।१); इसीप्रकार—

'अर्थानां' ईशिषे (भई० ३।३०)।

(क) जब किसी शब्द की किसी विशेषण पद द्वारा विशेषता बताई जाती है तब सामान्यतः क्रम इस प्रकार का होता है—विशेषण, सम्बन्धकारक,

विशेष्य संज्ञा; अयं अस्या देव्याः सन्तापः (काद० ६१) तस्य एवंविधस्य पद्मसरसः पश्चिमे तीरे (काद० २३)।

४०६. सम्बोधन के पद को वाक्य के आरम्भ में रखना चाहिए; 'तात' क एष बालः (दशकु० २।८); 'सखे पुण्डरीक' नैतद्भवतोनुरूपं (काद० १५१) आर्यपुत्र इयमस्मि' (शाकु० १)।

४०७. विधेय (चाहें क्रियारूप हो या संज्ञासम्बन्धी हो) सदैव वाक्य के अन्त में आता है; यह वाक्य द्वारा अभिव्यक्त किये जाने वाले विचार को पूरा करता है अतएव इसे अन्त में रखना सर्वाधिक उपयुक्त है।

(क) कथाओं में 'अस्' धातु और कभी-कभी 'भू' धातु वाक्य के आरंभ में आती है और उसका अर्थ अंग्रेजी वाक्यों के आरम्भ में आने वाले there is 'there was' का होता है।

अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः (हितो० १); अस्ति मगधदेशशेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी (दशकु० १।१); अभूत् अभूतपूर्वो राजा चिन्तामणिर्नाम (वासव० २)

(ख) कभी-कभी कथन पर बल देने के लिए विधेय को पहले रखा जाता है :—

'भवेयुः' तावत्प्राणादयः पंचजना माध्यंदिनानां (शां० भा० ३७१); 'आस्तां' तावत्सर्वमेवेदं (काद० १८) 'उत्सर्पिणी' खलु महतां प्रार्थना (शाकु० ७); 'कृतं' त्वया समसदृशं कर्म (उत्तर० २); 'विरलाः' हि तेषामुपदेष्टारः (काद० १०९); 'भवितव्यमेव' तेन (उत्तर० ४)

(ग) प्रश्नवाचक वाक्यों में जब प्रश्नवाचक अव्यय पदों का प्रयोग नहीं किया जाता तब विधेय सबसे पहले रखा जाता है; जैसे—जात 'अस्ति' ते माता 'स्मरसि' वा तातं (उत्तर० ४); 'स्मरसि' च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि (उत्तर० १)

४०८. संस्कृत के उपसर्ग प्रायः धातु के पहले संयुक्त किये जाते हैं और कर्मप्रवचनीय (जिसके योग में विभक्तियाँ लगती है) के अतिरिक्त अन्य स्थलों पर उनका स्वतन्त्र रूप से अकेले प्रयोग नहीं होता। कर्मप्रवचनीय होने पर वे सामान्य नियम के अनुसार उस शब्द के बाद आते हैं जिससे सम्बद्ध होते हैं :—

इति मन्दमतीन् 'प्रति' भायात् (शां० भा०); अयोध्यां 'अनु' जलानि वहति (रघु० १३।६१);

(क) 'सह', 'ऋते' 'विना, 'अलं' आदि जैसे शब्द जो संज्ञा या सर्वनाम शब्द के योग में आते हैं प्रायः उस शब्द के बाद प्रयुक्त होते हैं जिसके योग में ये आते हैं :—

रामेण सह, ईश्वरादृते, मां विना, सन्तोषायालं इत्यादि ।

४०९. संस्कृत का 'अव्यय' पद अंग्रेजी के Adverb (क्रियाविशेषण) की अपेक्षा अधिक विस्तृत अर्थ वाला होता है । इसके अन्तर्गत वे सभी शब्द आ जाते हैं जिनके रूप नहीं चलते, अर्थात् क्रियाविशेषण, उपसर्ग, समुच्चय और विस्मयादि बोधक पद संज्ञाओं और सर्वनामों की विभिन्न विभक्तियों (प्रथमा और द्वितीया और षष्ठी के अतिरिक्त) के रूपों को व्यावहारिक दृष्टि से क्रियाविशेषण' माना जा सकता, किन्तु प्रथमा और द्वितीया विभक्तियों के रूप क्रमशः क्रिया के कर्ता और कर्म का काम करते हैं और षष्ठी विभक्तियों के रूप क्रमशः क्रिया के कर्ता और कर्म का काम करते हैं और षष्ठी विभक्ति एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ सम्बन्ध बताती है । क्रियाविशेषणों की वाक्य में स्थिति के विषय में निम्नलिखित नियम उपर्युक्त विभक्तियों के रूपों के साथ भी लागू होंगे, जो विधेय के विस्तार होते हैं और समय, स्थान, प्रकार तथा कारण-कार्य प्रदर्शित करते हैं ।

४१०. समय, स्थान, प्रकार और कारण-कार्यवाचक क्रियाविशेषणों को प्रायः उस शब्द के निकट रखा जाता है जिसकी वे विशेषता बताते हैं :—

'हंसधवलशयनतले' निषण्णं पितरमपश्यम् (काद० ७२) यहाँ 'तले' 'निषण्णं' की विषेषता बताता है और इसलिये इसे निषण्ण के पहले रखा जाना चाहिए; इसी प्रकार—**'आलोकमात्रेणैव'** (हेतुवाचक क्रियावि०) **अपगतश्रमो मनसि** (स्थानवाचक क्रियावि०) एवं (प्रकारवाचक क्रियावि०) **अकरोत्** (काद० १२४) । **'इति मनसावधार्य' अब्रवम्** (काद० १५५); **'तमवेक्ष्य'** (कालवाचक क्रिया' वि०) **सा 'भृशं' रुरोद** (कुमार० ४।२६) । यहाँ 'भृशं' को पहले नहीं रखा जा सकता, क्योंकि ऐसा करने पर अर्थ में अन्तर पड़ जायगा ।

४११. जब क्रियाविशेषण विधेय की विशेषता बताते हैं तो उनका प्रयोग कर्ता के पहले, कर्ता के बाद या कर्म (कोई हो तो) के बाद होता है किन्तु कभी भी अन्त में नहीं आता;

अनेकवारं (समय) अपरिश्लथं (प्रकार) मां परिष्वजस्व (उत्तर० ६) प्रजानामेव भूत्यर्थं (प्रयोजन) स ताभ्यो (स्थान) बलिमग्रहीत् (रघु० १।१८) सर्वं सौदामिन्यां (स्थान) संभाव्यते (मालती० १) । दारिद्र्याद् (कारण) ह्रियमेति (मृच्छ० १); हरिणा (कर्ता) असुरास्तेव शरव्यं कृता: (शाकु० ६) शिवाभ्यो (प्रयोजन, अप्रत्यक्ष कर्म) मांसबलिपिण्डं अनुदिनं निशि (समय) समुत्ससर्ज (काद० ६५); गुरौ भक्त्या मय्यनुकंपया (कारण) च प्रीतास्मि (रघु० २।६३)

टिप्पणी—यदि कर्ता या कर्म के कोई विस्तार हों तो क्रियाविशेषण कर्म के बाद रखा जाता है जिससे अर्थ में उलझन न पैदा हो ।

(क) 'भावे' के रूप जो समय या (कभी-कभी) कारणवाचक क्रिया-विशेषणों के अर्थ वाले होते हैं, प्राय: सबसे पहले रखे जाते हैं ।

'चान्द्रिकायामभिव्यक्तायां' किं दीपिकापौनरुक्त्येन (विक्रमो० ३)

'युष्माकं प्रेक्षमाणानां' एनं स्मर्तव्यशेषं नयामि (वेणी० ४)

द्र०—समय और स्थानवाचक क्रियाविशेषण यदि वाक्य के आरम्भ में यदि कोई समुच्चयबोधक पद हो तो प्राय: उसके बाद रखे जाते हैं ।

४१२. समुच्चयबोधक अव्ययों में च, वा, तु, हि, चेत् कभी पहले नहीं आते, जबकि अथवा, अथ, अपिच, किंच प्राय: वाक्य के पहले आते हैं; और साथ-साथ आने वाले समुच्चयबोधक अव्यय 'यथा–तथा' 'यावत्–तावत्' 'यद्–तद्' यत:–तत:' उन उपवाक्यों के आरम्भ में आते हैं जिन्हें वे जोड़ते हैं। उदाहरण के लिये तत्तत् अधिकरणों का अवलोकन कीजिए ।

४१३. प्रश्नवाचक अव्यय पद प्राय: वाक्य के आरम्भ में आते हैं ।

'अपि' एतत्तपोवनं; 'अपि' कुशली ते गुरु: 'कथं' शास्त्राणां परिचय:, कियद्वा वय: (काद० १८)

(क) कथन पर बल देने वाले अव्यय पद जैसे—एव, नाम, किल, खलु, हि उन शब्दों के साथ संयुक्त रखे जाते हैं जिनपर ये बल देते हैं। 'इव' नु, 'अपि' जैसे अव्यय उन शब्दों के साथ जोड़े जाते हैं जिसकी ये विशेषता बताते हैं ।

(ख) विस्मयादिबोधक पद अव्यय जैसे—हा हन्त, अहह, और सम्बोधन के पद, जैसे—अहो, अये, अयि प्राय: वाक्य के आरम्भ में आते हैं ।

४१४. जिस शब्द की आवृत्ति होती है या वाक्य में पहले आये हुए शब्द के समान जब कोई दूसरा शब्द आता है तो उन्हें जहाँ तक संभव होता है पास-पास रखा जाता है; जैसे—गुणी गुणं वेत्ति निर्गुणः ।

द्र०—पिछले अधिकरणों से यह प्रकट होगा कि संस्कृत वाक्य में शब्दों का विन्यास लैटिन के समान ही होता है। लैटिन में सामान्य प्रचलित नियम यह है कि "सामान्य वर्णन में समुच्चयबोधक पद के बाद कर्ता तब अधिकृत कारक क्रियाविशेषणों और काल, स्थान, प्रकार आदि को व्यक्त करने वाले पदों सहित अधिकृत कारक और सबसे अन्त में क्रिया आती है।"
—एर्नोल्ड

———

प्रकरण ३

वाक्य-संश्लेषण

४१५. संस्कृत वाक्यों का वाक्यविश्लेषण समझाकर और वाक्य में शब्दों के क्रम के विषय में कुछ नियम बताकर अब हम छात्रों को एक पग और आगे वाक्यों की रचना पर ले चलेंगे।

अब तक छात्र यह देख चुके हैं कि एक वाक्य में कम से कम उद्देश्य और और विधेय होने चाहिये; और कर्ता एवं कर्म का विस्तार विशेषणों, सम्बन्ध-कारक की संज्ञा, समानाधिकरण संज्ञा द्वारा, समासों द्वारा या इन सबको एक साथ मिलाकर किया जा सकता है; तथा विधेय का विस्तार समय, स्थान, प्रकार और कारण-कार्यबोधक परिस्थियों द्वारा किया जा सकता है। अब छात्र को वाक्यों की रचना का प्रयत्न करना चाहिए।

साधारण वाक्य

४१६. 'राम' और 'गम्' पदों को लीजिए; इन दोनों को मिलाकर एक वाक्य बनाया जा सकता है, रामो जगाम। 'रामो जगाम' वाक्य प्रारम्भिक रूप में है इसमें कर्ता का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है :—

(१) दशरथस्य पुत्रः या दशरथपुत्रो रामो जगाम।

(२) कौसल्यानन्दवर्धनः अखिलजनप्रियो दशरथपुत्रो......

(३) भरताग्रजः कौसल्यानन्दवर्धन......

(३) भरताग्रजः कौसल्यानन्दवर्धनोऽखिलजनप्रियो दशरथपुत्रो ससीतलक्ष्मणो रम्याण्युपवनानि पश्यन् जगाम।

यह देखा जा सकता है कि किस प्रकार अन्तिम वाक्य 'राम' और 'गम्' इन दो साधारण तत्त्वों से बन निकला है।

अभ्यास १

अर्जुन, हनुमत्, गंगा और हरि शब्दों को कर्ता के रूप में प्रयोग करके वाक्य बनाइए और उपर्युक्त विधि से क्रमशः उनका विस्तार कीजिए।

अभ्यास २

रु, रुच्, पत्, रम् धातुओं का विधेय रूप में प्रयोग कर वाक्य बनाइए और उद्देश्य (कर्ता) का किन्हीं दो विधियों से विस्तार कीजिए ।

अभ्यास ३

शब्दों के निम्नलिखित युग्मों को लीजिए और विशेषण तथा संवन्धकारक की संज्ञा द्वारा कर्ता का विस्तार करते हुए वाक्य बनाइए : 'शुक' और 'डी', 'अंगना' और 'या', सैनिक–युध् गज–हन्' (कर्मवाच्य), भृत्य- तड् (कर्मवा०)

अभ्यास ४–५

'रावण: सीतां जहार:' और सारमेयोऽम्रियत' वाक्यों को लीजिए और कर्ता का सभी विधियों द्वारा विस्तार कीजिए ।

४१७. यदि विधेय सकर्मक क्रिया हो तो उसके अर्थ की पूर्ति किसी 'कर्म' द्वारा होती है, जिसके संज्ञा या सर्वनाम होने के कारण कर्ता के विस्तार-विधि के समान ही विस्तार होते हैं यथा—

अहं प्रासादमपश्यं (यहाँ कर्म का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है:—अहं विशालं प्रासादमपश्यं; अहं वंगाधिपस्य विशालं प्रासादमपश्यं; अहं सौख्यनिकेतनं नगरभूषणं च अनेकरसपरिवृतं वंगाधिपस्य विशालं प्रासादम-पश्यम् । इसी प्रकार—'राजा अमात्यं प्रोवाच' का विस्तृत रूप ऐसा होगा—राजा शास्त्राध्ययनकठोरधियं अनुरंजितसकलप्रजाजनं सुरगुरो: प्रत्यादेशं स्वममात्यं प्रोवाच ।

अभ्यास ६

(क्रियाविशेषणों द्वारा विस्तृत) उचित उद्देश्यों और विधेयों को ढूँढकर ऐसे वाक्य वनाइए जिसमें निम्नलिखित शब्द कर्म रूप में प्रयुक्त हों :—

ऋतूनां शतं, अजाकुलं, मद्गात्रं, सभृंगाणि कमलानि, स्वं नाम, शुष्क पर्णानि, मदागजं, तंडुलकणान्, हिमाद्रे: शिखरं तथा विपुलधनं ।

अभ्यास ७

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करके तथा कृदन्तों से विस्तृत कर्मों को रखकर वाक्य बनाइए; श्रु, ग्रह्, सृज्, चुर्, पा (पीना) अद्, प्र+दा, व्यध्, रुध् और नी ।

अभ्यास ८

निम्नलिखित शब्दों का कर्ता के रूप में प्रयोग कीजिए और कर्ता तथा कर्म का विस्तार करते हुए वाक्यों को पूरा कीजिए :—सर्प, धृतराष्ट्र, कंचुकिन्, यति, पथिक, राज्ञी, पाठशाला पुत्र और पितृ ।

अभ्यास ९–१०

नीचे दी हुई धातुओं के उचित कर्ता और कर्म का प्रयोग करते हुए और किन्हीं दो विधियों द्वारा कर्ता और कर्म का विस्तार करते हुए वाक्य बनाइए :—तु, अभि+लिह्, परि+भ्रम्, आप्, प्रच्छ्, पिष्, कृ, क्री, मन् और तड् ।

अभ्यास ११

ऐसे छः वाक्य लिखिए जिनमें कर्ता कृदन्तों द्वारा विस्तृत हो और विधेय की पूर्ति कृदन्त द्वारा विस्तृत कर्म का प्रयोग करके की गई हो ।

अभ्यास १२

ऐसे छः वाक्य लिखिए जिनमें कर्ता और कर्म दोनों का विस्तार संबन्ध-कारक के संज्ञा या सर्वनाम तथा कृदन्त द्वारा किया गया हो ।

४१८ विधेय का विस्तार समय, स्थान, प्रकार और कारण-कार्य बोधक स्थितियों द्वारा किया जा सकता है । 'त्वं यासि' वाक्य को लीजिए । विधेय का विस्तार निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :—

त्वं 'अधुना' यासि (समय); त्वं अधुना 'कुत्र' यासि (समय और स्थान); त्वमधुना 'सत्वरं' कुत्र यासि (समय, स्थान और प्रकार); त्वमधुना 'समिदाहरणाय' सत्वरं 'किमिति' 'पद्भ्यामेव' यासि (समय, प्रकार, प्रयोजन और कारण); त्वमधुना समिदाहरणाय गुरुमपृष्ट्वा सत्वरं किमिति यासि । इसी

प्रकार—'सखे मां प्रतिपालय' का विस्तार विविध प्रकार से किया जा सकता है :—सखे 'विरचितायां प्रयाणसंविधायां पितरावापृच्छ्य द्वारे क्षणं मां प्रतिपालय; 'निशितेन शरेण मध्याह्नाहारार्थं' कमपि विलोलनेत्रं हरिणशिशुं 'नितंबदेशे' विव्याध; 'पश्यतोपि पितुः' त्वं ह्यः स्ववेश्मनः निष्क्रम्य किंकरेण सार्धं अति-चटुलया गत्या कुत्र खलु अगच्छः ।

अभ्यास १३

निम्नलिखित वाक्यों में क्रिया के साथ काल और प्रकारवाचक क्रियाविशेषण विस्तार का प्रयोग कीजिए ।

(१) विहगा डयन्ते; (२) पुस्तकं वाचय; (३) अहं गामानयम्; (४) गुरूननुरुध्यस्व; (५) त्वया रुद्यते; (६) आपणं याति; (७) सैनिका युयुधिरे; (८) कृषीवलः क्षेत्रमकृषत्; (९) प्रमदा उद्यानं जग्मुः (१०) संपदुद्यममनुगच्छति ।

अभ्यास १४

निम्नलिखित क्रियाविशेषण विस्तारों का प्रयोग करके और कर्ता का दो से अधिक विधियों द्वारा विस्तार करके वाक्य बनाइए: सहसा, वारंवारं, त्रीन् संवत्सरान्, सपदि, कदा, पुनः, कल्याणाय, पूर्वं (पञ्चमी वि०), तदानीं, प्रेत्यनलं, प्रतिदिनं, उपनदि, द्विक्रोशं, रात्रिदिवं ।

अभ्यास १५

कर्ता का विशेषण अथवा संबन्धकारक द्वारा विस्तार करते हुए निम्नलिखित वाक्यांशों का वाक्यों में प्रयोग कीजिए:—सेनया सह, श्वसादृते, अनेन हेतुना, कस्य हेतोः, मित्रं सांत्वयितुं जठरस्यार्थे, अपवादश्रवणात्, तथानुष्ठिते, पाठमधीत्य गृहस्योपरि, मामन्तरेण, दुर्दैवात्, अरण्ये, प्रबलवेदनया, अनुगंगं ।

अभ्यास १६

शब्दों के निम्नलिखित जोड़ों को लीजिए और समय स्थानवाचक क्रियाविशेषणों द्वारा विस्तार कीजिए :—मुनि और वस् ; राजन्—रक्ष; पुत्र-सेव कोकिल—वि + रू ; हरि—क्रुध्, शिष्य—प्र + नम् ।

अभ्यास १७

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करके और प्रकार एवं कारण–कार्यवाचक क्रियाविशेषण विस्तारों द्वारा विधेय का विस्तार करके वाक्य बनाइए: मृ, प्र+या, (आत्मने०), मृज्, उत्+वह, याच्, पा (रक्षा करना), स्निह, ईश्, अधि+इ।

अभ्यास १८

निम्नलिखित कर्ता शब्दों को लीजिए और भूतकालिक कृदन्तों या 'क्त्वा', 'ल्यप्', 'तुमुन्' प्रत्ययान्त रूपों से विधेय का विस्तार कीजिए: भृंगा: नर:, देवा:, अमी, राक्षसै: (कर्ता), भीम:, सामाजिका:, दूत:, अधिराज:, अश्वत्थामा, सुभद्रा और यवना: ।

अभ्यास १९

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग कर 'भावे' प्रयोग द्वारा विधेय का विस्तार कीजिए :—भाष्, दह्, प्रच्छ, कृ (भूतकालिक कृदन्त), स्पृह्, वद्, हन् (भूत० कृदन्त) पठ्, सं+मंत्र् और या।

अभ्यास २०

समय और प्रकारवाचक क्रियाविशेषण विस्तारों और निम्नलिखित धातुओं के 'तुमुन्' प्रत्ययान्त रूपों द्वारा विधेय का विस्तार कीजिए :—

वन्ध्, कथ्, चुद्, शास्, ज्ञा, स्तु, ग्रह, आ+दा, वि+श्वस्, उप+आस्, सू और परि+नी।

अभ्यास २१

बारह ऐसे वाक्य लिखिए जिनमें विधेय का विस्तार काल, स्थान, प्रकार और कारण-कार्य वाचक क्रियाविशेषण विस्तारों द्वारा किया गया हो।

४१९. जब विधेय के साथ उद्देश्य और कर्म (यदि कोई हो) का भी विस्तार कर दिया जाता है तो वाक्य अपने पूर्ण विस्तृत रूप में आ जाता है। 'रविरुदगच्छत्' अत्यन्त साधारण रूप वाला वाक्य है। उद्देश्य और विधेय का विस्तार करने पर वाच्य का रूप इस प्रकार होगा :—

'अरुणपुर:सरो' रवि: 'तमोजालं निरस्य जनक्रियाप्रवृत्तये प्राच्यां दिशि झटिति' उदगच्छत। इसी प्रकार 'स पदवीमन्वयात्' साधारण वाक्य का विस्तार करके इस प्रकार का बनाया जा सकता है :—'गुरुभिरुपदिष्ट:' स 'प्रथमे वयसि वर्तमानोपि संसारादुद्विजमान:, अनेकयतिप्रतिपन्नां परमसुख-दायिनीं' साधु-पदवीं 'निवारयतोपि पितु: पारत्रिकसुखावाप्तये प्रशान्तचेतसा अन्वयात्', इसी प्रकार—'पान्थ: भुजङ्गं ददर्श' का विस्तृत रूप होगा—'अथ असौ' पांथो 'ग्रामान्तरं गच्छन् अध्वश्रमार्त: कथमपि पदानि न्यस्यन्, 'अनाक्रान्ते एवार्धपथे' 'कंचिद् बृहत्कायं प्रसारितफणं श्यामदेहं' भुजङ्गं 'यदृच्छया तरुतले' ददर्श। अन्य उदाहरण है :—इति परिकलय्य किंचि-दुन्नमितकन्धरो भयचकितया दृशा दिशोऽवलोक्य तृणेपि चलति पुन: प्रतिनिवृत्तं तमेव पदे पदे पापकारिणमुत्प्रेक्षमाणो निष्क्रम्य तस्मात्तमालतरु-मूलात्सलिलसमीपमुपसर्तुं प्रयत्नमकरवम्। (काद० ३५); अनुबध्यमानश्च तया तां सर्वामतिथिसपर्यामतिदूरावनतेन शिरसा सप्रश्रयं प्रतिजग्राह (काद० १३३) किं निमित्तं वा अनेकसिद्धसाध्यसंबाधानि सुरलोकसुल-भान्यपहाय दिव्याश्रमपदानि एकाकिनी वनमिदममानुषमधिवसति। (काद० १३५)।

अभ्यास २२

छ: ऐसे वाक्य लिखिए जिनने उद्देश्य और विधेय का विस्तार की सभी विधियों द्वारा विस्तार किया गया हो और इन क्रियाओं का प्रयोग करो : धाव्, प्रकाश, उत्+स्था, पत्, आस् और भ्रम्।

अभ्यास २३

छ: ऐसे वाक्य लिखिए जिनमें विधेय और उद्देश्य का विस्तार किया गया हो; निम्नलिखित क्रियाओं का प्रयोग कीजिए: भृ, स्तु, मन्, दुह्, चि और विद् (पाना)।

अभ्यास २४

छ: ऐसे वाक्य लिखिए जिनमें उद्देश्य, विधेय और कर्म का एक से अधिक विधियों द्वारा विस्तार किया गया हो।

४२०. साधारण वाक्यों में कथन का रूप क्रिया के वाच्य में परिवर्तन करके बदला जा सकता है, परन्तु अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता : दासी पुष्पाण्यानयत' का वही अर्थ है जो दास्या पुष्पाण्यानीयन्त' का। कभी-कभी एक वाक्यांश को बदलकर कथन के रूप में परिवर्तन लाया जा सकता है, कस्माद्धेतोरत्र निवससि, 'पिता सपुत्रो ग्रामं गतः' का अर्थ वही है जो 'किमर्थमत्र निवससि' और पिता पुत्रेण सह (या सहितः) ग्रामं गतः' का किन्तु प्रायः संस्कृत में एक ही विचार को विभिन्न शब्दों द्वारा व्यक्त करके कथन में अन्तर ला सकते हैं। 'उद्यमात् विभवः प्रभवति' वाक्य लीजिए। इस वाक्य को विना अर्थ में परिवर्तन लाये इस प्रकार भी कहा जा सकता है :—

उद्यमाद्विभव उत्पद्यते—संजायते।
उद्यमो विभवाय कल्पते—भवति-जायते।
उद्यमो विभवस्य कारणं—हेतुः।
उद्यमप्रभवो विभवः।
उद्यमेन नरो विभवं याति-विभवयुतो भवति।
उद्यमेन नरो विभवसंपन्नो भवति।
उद्यममवलम्ब्य नरो विभवं याति।
उद्यमपरेण नरेण (प्रायः) विभवयुतेन भाव्यम्।
(आलंकारिक रूप में) उद्यमबीजाद्विभवांकुरः प्ररोहति।

अभ्यास २५

ऊपर के उदाहरण के आधार पर निम्नलिखित वाक्यों के विचारों को विभिन्न प्रकार से व्यक्त कीजिए :—

(१) निर्धनता सर्वापदामास्पदं (२) अस्य कोपः सनिमित्तः (३) मूर्खाणामुपदेशः प्रकोपाय भवति, (४) अविवेकः आपदां परं पदं, (५) न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते; (६) विद्वान्सर्वत्र पूज्यते; (७) दैवपरा नरा विनश्यन्ति, (८) सुतो लालनाद्विनश्यति; (९) त्वमेव नः परमा गतिः, (१०) पराभवोपि मानिनामुत्सव एव।

मिश्रित वाक्य

४२१. मिश्रित वाक्य के रूप से यह स्पष्ट है कि उसमें एक प्रमुख कथन होता है और कम से कम एक आश्रित कथन होता है। प्रमुख उपवाक्य स्वतन्त्र

होता है, आश्रित उपवाक्य प्रमुख उपवाक्य पर आश्रित रहते हैं। इस प्रकार—'दूतो राज्ञे वार्तां न्यवेदयत्' वाक्य लीजिए।

यह साधारण वाक्य है और तीन प्रकार के आश्रित उपवाक्यों में किसी भी प्रकार के उपवाक्य का प्रयोग कर इसे मिश्रित वाक्य बनाया जा सकता है।

सामन्ता महाराजमभिद्रोग्धुमहर्निशं यतन्ते इति वार्तां दूतो राज्ञे न्यवेदयत् (संज्ञा उपवाक्य)।

यः पौरजानपदानपसर्पितुं प्रयुक्तः स दूतो...(विशेषण० उपवाक्य);

काले उपायश्चिन्त्येतेति हेतोः दूतो...(क्रियावि० उपवाक्य);

४२२. आगे हम मिश्रित वाक्यों की रचना के लिए कुछ अभ्यास देंगे। जहाँ तक संभव हो सके विद्यार्थी को वाक्य के प्रकार और कथन की विविधता का ध्यान रखना चाहिए। उसे पृ० २९३–२९४ पर दी गई तालिका का अवलोकन करना चाहिए, जिससे आश्रित उपवाक्यों के आरम्भ में आने वाले अव्ययपदों की जानकारी होगी।

अभ्यास २६–२८

पाँच ऐसे वाक्य लिखिए जिनमें संज्ञा उपवाक्य निम्नलिखित कार्य करता हो :—(१) कर्ता या कर्म, (२) प्रमुख उपवाक्य के कर्ता या कर्म का समानाधिकरण, (३) प्रमुख उपवाक्य में किसी कृदन्त से संयुक्त हो।

अभ्यास २९

इनमें से प्रत्येक के विषय में एक मिश्रित वाक्य लिखिए :—सुवर्णकार, गुरु, विद्या, सुशिष्य, वाजीनृप और शिवराज।

अभ्यास ३०

चार ऐसे मिश्रित वाक्य बनाइए जिनके विशेषण उपवाक्य क्रमशः कर्ता, कर्म, या विधेय के किसी क्रियाविशेषण विस्तार या अन्य विस्तार की विशेषता बताते हों।

अभ्यास ३१–३४

छः मिश्रित वाक्य बनाओ जिनमें निम्नलिखित का प्रयोग हो :—(१) कालवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य (२) स्थानवाचक क्रि० वि० उपवाक्य, (३) प्रकारवाचक क्रि० वि० उपवाक्य; (४) कारण, शर्त,

प्रयोजन वाचक क्रि० वि० उपवाक्य। निम्नलिखित क्रियाओं जैसी क्रियाओं का प्रयोग करो—स्वप्, उप+स्था, हन्, लभ, पत्, आ–राध (प्रेरणार्थक)।

अभ्यास ३५

छः ऐसे मिश्रित वाक्य लिखिए जिनमें क्रमशः समय, स्थान की गति, समानता, प्रकार, परिणाम, और शर्त बनाने वाला एक क्रियाविशेषण उपवाक्य हो।

४२३. हमने अबतक एक प्रकार के आश्रित उपवाक्यों से युक्त मिश्रित वाक्यों के उदाहरण दिये हैं, अब हम ऐसे मिश्रित वाक्य लेंगे जिनमें दो या दो से अधिक आश्रित उपवाक्य होंगे: **वृषल समाज्ञापयति। य एष क्षपणको जीवसिद्धिर्नाम राक्षसप्रयुक्तो विषकन्यया पर्वतकं घातितवान् स एनमेव दोषं प्रख्याप्य सनिकारं नगरान्निर्वास्यतामिति** (मुद्रा० १) यहाँ 'समाज्ञापयति' का उद्देश्य 'सः······इति' उपवाक्य हैं, इस उपवाक्य के कर्ता की विशेषता 'यः······घातितवान्' विशेषण उपवाक्य बताता है। इसीप्रकार—**'यदैव मयायं देवस्योज्जयिनीगमनवृत्तान्तो निवेदितस्तदैव सनिर्वेदमेवमेतदित्युक्त्वा उत्थाय महाश्वेता पुनस्तपसे स्वमाश्रमपदमाजगाम'**, प्रमुख विधेय की विशेषता कालवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य "यदै···· निवेदितः' बताता है और उसके विस्तार के साथ एक संज्ञा उपवाक्य जुड़ा हुआ है ('एवमेतत्' उक्त्वा' का कर्म है)। इस प्रकार हम एक मिश्रितवाक्य में दो या दो से अधिक तरह के उपवाक्यों को एक साथ रख सकते हैं; **यदा अतितृष्णा नराणां हृदये पदं करोति तदा ते यदीश्वरेणात्मने स्थित्यनुरूपं दत्तं तेनापरितुष्टाः सन्तस्ततोधिकतरमीहमाना यत्तैः सुखेन भोक्तुं शक्यं तदपि तृष्णातिरेकात् प्रायो हापयन्तीति असकृद्वयमस्मिञ्जगति प्रतीमः**' इस मिश्रित वाक्य में एक क्रियाविशेषण उपवाक्य है, 'यदा···करोति' जो 'हापयन्ति' की विशेषता बताता है, दो विशेषण उपवाक्य हैं 'यत्···दत्तं' और 'यत्···शक्यं' और एक संज्ञा उपवाक्य 'तत्ते··· हापयन्ति'।

अभ्यास ३६–४०

पाँच ऐसे मिश्रित वाक्य बनाइए जिनमें प्रत्येक में निम्नलिखित का प्रयोग हो :—

(१) विशेषण उपवाक्य और संज्ञा उपवाक्य; (२) एक क्रियाविशेषण उपवाक्य और विशेषण उपवाक्य;

(३) एक संज्ञा उपवाक्य और एक क्रियाविशेषण उपवाक्य;

(४) एक क्रियाविशेषण उपवाक्य और एक संज्ञा उपवाक्य, जिनमें प्रत्येक की विशेषता विशेषण उपवाक्य बताता हो,

(५) सभी तीनों प्रकार के उपवाक्यों का प्रयोग हो ।

संयुक्त वाक्य

४२४. जैसा कि पहले हम देख चुके हैं संयुक्तवाक्य में दो या दो से अधिक प्रमुख कथन होते हैं । ये सभी कथन या वाक्य साधारण हो सकते हैं या मिश्रित अथवा साधारण और मिश्रित दोनों एक साथ हो सकते हैं । यह बात तीनों ही संबन्धों–समूहबोधक––विरोधसूचक और परिणामसूचक संबन्धों––के साथ लागू होती है ।

एक साधारण वाक्य लीजिए––यात्रिकः काशीमगच्छत् । इसे तीनों संबन्धों को प्रकट करने वाले संयुक्त वाक्य में बदलने के लिये हम इस प्रकार कह सकते हैं :––

(१) यात्रिकः काशीमगच्छत्, गंगायाः पावने सलिलेऽस्नात् सकलानि च तत्रत्यानि तीर्थानि दृष्ट्वा स्वं ग्रामं न्यवर्तत ।

(२) यात्रिकः काशीमगच्छत् किन्तु गंगासलिले स्नानार्थमेवातीर्णः केनचिन्महानक्रेण सहसा गृहीत्वाऽभक्ष्यत ।

(३) यात्रिकः काशीमगच्छत् तेनात्मानं परिपूतं मेने ।

संयुक्त वाक्य के विभिन्न भाग इस उदाहरण में साधारण वाक्य हैं; आवश्यकतानुसार उन्हें मिश्रित वाक्य बनाया जा सकता है । उदाहरण के लिये (२) को लीजिए :—

यात्रिकः काशीमगच्छत् किन्तु यावत्स्नानार्थं गंगासलिलेऽवतरति तावत्केनचित्महानक्रेण सहसा गृहीत्वा भक्षितः ।

यहाँ दूसरा भाग मिश्रितवाक्य है और प्रथम भाग साधारणवाक्य है, जिसे इस प्रकार एक मिश्रित वाक्य में वदला जा सकता है : श्रीविश्वेश्वरदर्शनेनात्मानं निर्धौतकल्मषं करोमीति यदा गाढाभिलाषो मनसि पदं चकार तदा स यात्रिकः·······।

अभ्यास ४१–४२

उपर्युक्त आदर्श के आधार पर निम्नलिखित प्रकार के वाक्यों की रचना कीजिए :—

(१) पाँच संयुक्तवाक्य जिनमें साधारण वाक्यों का प्रयोग हो। (२) पाँच संयुक्तवाक्य जिनमें मिश्रित वाक्यों का प्रयोग हो।

अभ्यास ४३

निम्नलिखित विषयों में से प्रत्येक पर संयुक्तवाक्य बनाइए :— (१) वर्षाकाल:, (२) पाणिनि:, (३) अराजको जनपद:, (४) राजधर्म:, (५) धनं और (६) कालिदास:।

४२५. अंग्रेजी में हम अनेक साधारण वाक्यों को Participal, prepositional और अन्य प्रकार के वाक्यांशों एवं आश्रित तथा समानाधिकरण उपवाक्यों की सहायता से एक वाक्य का रूप देते हैं। इस प्रकार बनाया गया वाक्य साधारण, मिश्रित या संयुक्त हो सकता है।···संस्कृत में कृदन्तों और कृदन्तों से बने वाक्यांशों का साधारण वाक्यों को मिलाने या संक्षिप्त रूप देने के लिए बड़ी उदारता के साथ प्रयोग किया जाता है और इसके साथ ही साथ विशेषणात्मक समासों (तत्पुरुष और बहुव्रीहि) का भी प्रचुर प्रयोग होता है। इनकी सहायता से कई वाक्यों को मिलाकर एक वाक्य बनाया जा सकता है, जो साधारण, मिश्रित या संयुक्त वाक्य होते हैं।

एकदा सा गंभीरध्वनिं शुश्राव। तमाकर्ण्य तस्या: कुतूहलमुपजातम्। अत: सा तस्यां दिशि दृष्टिं प्रेरितवती महान्तं च शबरगणं ददर्श।

इन सबको इस प्रकार एक वाक्य में रखा जा सकता है :—

एकदा श्रुते गंभीरे ध्वनौ सा तदाकर्णनोपजातकुतूहला तद्दिशि दृष्टि: महान्तं च शबरगणं ददर्श। इसी प्रकार—अथैकदा राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनमियाय। तं तस्य सैनिका अमात्याश्चानुजग्मु:। वने स बहून् मृगाञ्जघान तेषु एकं मृगं पलायनमनुससार। मार्गे दिव्याश्रमपदं ददर्श।

इन वाक्यों को इस प्रकार एक मिश्रितवाक्य में मिलाया जा सकता है :—

सैनिकैरमात्यैश्चानुगतो यदैकदा राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनमियाय तदा स तत्र बहून् मृगान् हत्वा तेष्वेकं मृगं पलायमानमनुसरन्

मार्गे दिव्याश्रमपदं ददर्श', या इससे भी छोटे में—'ससैनिकामात्यो राजा दुश्यन्तो मृगयार्थं वनं गतः बहून् मृगान्' इत्यादि ।

अभ्यास ४४

वाक्यों के निम्नलिखित वर्ग को एक वाक्य में रखो, जो साधारण, मिश्रित या संयुक्त हो ।

(१) एवं महाश्वेता आहारं परिसमाप्य सन्ध्योचिताचारान्निर्वर्तयामास । पश्चात्सा एकस्मिन् शिलातले विश्रब्धमुपाविशत् । तथा स्थितां तां चन्द्रापीडो निभृतमुपससार । मुहूर्तमिव स्थित्वा च तां स सविनयमवादीत् ।

(२) तस्मिन्दिव्याश्रमपदे दुष्यन्तः कामपि कन्यकामपश्यत् । सा कन्या चारुसर्वांगी आसीत् । स कण्वमुनेराश्रमः । तं राजा प्राविशत् । तदा तत्सत्कारार्थं शकुन्तला आश्रमाद्बहिराजगाम । शकुन्तला कण्वस्य कृतिका दुहितासीत् । सा सप्रश्रयं दुष्यन्तं स्वागतं व्याजहार ।

(३) पेशवे इति ख्यातानां महाराष्ट्राधिकारिणां मध्ये चरमो वाजीराज इत्येको बभूव । स पुण्यपत्तनमधितष्ठौ । स किल बहुगुणोपपन्न आसीत् । किन्तु तस्य राजकार्य्यावेक्षणविषयेऽतीव मन्दादर आसीत् । अतः कर्मसचिवस्थाने वहवो कर्मसचिवा एव तं पर्यवारयन् । तैस्तस्य मनो विषयभोगेषु सुतराममाकृष्यत् । एवं कामाधीने राजनि तच्छन्दानुवर्तिनि चामात्यगणे महाराष्ट्रदेशोऽनायासेनैव रंध्रान्वेषणदक्षाणां शत्रूणामिषतां गतः ।

४२६. पहले के अधिकरण में हम यह प्रदर्शित कर चुके हैं कि कई वाक्यों को मिलाकर एक वाक्य कैसे बनाया जाता है । विद्यार्थियों के अतिरिक्त अभ्यास के लिए हम अब यह प्रदर्शित करेंगे कि किसी अनुच्छेद को अनेक वाक्यों में किस प्रकार तोड़ा जाय । इससे विद्यार्थी को संस्कृत अनुच्छेदों को मौलिक अनुच्छेद की रचना को काफी मात्रा में परिवर्तत करके दूसरे शब्दों में व्यक्त करने का अभ्यास होगा । इस विधि से अनुच्छेद के आवे भाग का प्रयोग कर उसकी व्याख्या प्रस्तुत करने में सुविधा होगी और यदि विद्यार्थी किसी अनुच्छेद को अनेक वाक्यों में विभक्त करके मौलिक शब्दों और उक्तियों के

स्थान पर दूसरे समानार्थक शब्दों और उक्तियों को रखे, तो वह अनुच्छेद का स्वतन्त्र अनुवाद या व्याख्या करेगा।

उदाहरण के लिये इस श्लोक को लीजिए :—

गुणदोषौ बुधो गृह्णन्निंदुक्ष्वेडाविवेश्वरः।
शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कंठे नियच्छति ॥

इसे दूसरे वाक्यों द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :—

शिवः इन्दुं विषं च द्वौ अपि स्वीकरोति किन्तु इन्दुं शिरोधारणपूर्वकं प्रशंसति विषं च स्वकण्ठे नियच्छति। एवं प्राज्ञो नरः कस्यचिन्नरस्य गुणं दोषमुभावपि गृह्णाति। किन्तु गुणं ग्रीवान्दोलनपूर्वकं श्लाघते दोषं तु स्वकण्ठे नियम्य तन्नाममात्रमपि विलोपयति।

निः सन्देह, यह मौलिक श्लोक की स्वतन्त्र भावाभिव्यक्ति है। दूसरा उदाहरण लीजिए :—

संग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहुरष्टादशद्वीपनिखातयूपः।
अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगी किल कार्तवीर्यः ॥

इसे वाक्यों में इस प्रकार विमक्त किया जा सकता है :—

पुरा किल कार्तवीर्यो नाम योगी समजायत। तस्य युद्धेषु (एव) बाहुसहस्रं परैनुभूतम्। (अन्यत्र स द्विभुज एव)। तेन अष्टादशसु द्वीपेषु यज्ञस्तंभाः स्थापिताः तथा च तस्य राजशब्दो नान्यसामान्य आसीत्। इसी प्रकार—श्रुतिसुभगं गीतध्वनिं श्रुत्वा संजातकुतुको ध्वनिप्रभवजिज्ञासया कृतनमनबुद्धिर्दत्तपर्याणमिन्द्रायुधमारुह्य प्रियगीतैः प्रथमप्रस्थितैर्वनहरिणैरुपदिश्यमानवर्त्मा पश्चिमया सरस्तीरवनलेखया निमित्तीकृत्य तं गीतध्वनिमभिप्रतस्थे—का विस्तार किया जा सकता है—यदा स सुखश्रवं गीतशब्दमश्रृणोत् तदा संजातकुतूहलस्तत्प्रभवमुपलब्धुं स ऐच्छत्। तदनुरोधात् गमनाय मतिं विधाय इन्द्रायुधपृष्ठे पर्याणं समारोप्य तमारुरोह। तन्मार्गोपदेशाय इव सदाप्रियगीतरवा वनहरिणास्तस्मात्पूर्वमेव तदभिप्रेतां दिशं प्रस्थिताः।ताननुसरद् स पश्चिमेन सरस्तीरप्रान्तेन तं गीतध्वनिमुद्दिश्य ययौ।

ऊपर के आदर्श पर और अधिकरण ४२० की सहायता से विद्यार्थी विभिन्न लेखकों की रचानाओं से अनुच्छेद लेकर उनकी व्याख्या कर सकते हैं।

प्रकरण ४

पत्र-लेखन

४२७. पत्र-लेखन विषय पर संस्कृत के लेखकों ने अधिक ध्यान नहीं दिया है। विद्यमान संस्कृत रचनाओं में हम पत्रों के बहुत कम उदाहरण पाते हैं; कदाचित् हमारे पूर्वज पत्र-लेखन की प्रणाली का अधिक आश्रय नहीं लेते थे। अतएव स्वाभाविक है कि पत्र-लेखन संस्कृत में उतना कठिन नहीं होता जितना अंग्रेजी या हिन्दी में, जिसके अनेक रूप होते हैं—व्यक्तिगत, व्यापारिक कार्यालय-संबन्धी इत्यादि। संस्कृत में लिखे गये पत्र सामान्यत: एक प्रकार के ही होते हैं। उनके प्रारम्भ करने के कुछ निश्चित रूप हैं। जिस व्यक्ति के पास ये पत्र लिखे जाते हैं उसके पद के अनुसार इन रूपों के भी विविध रूप हैं। किन्तु इस भेद के अतिरिक्त नितान्त व्यक्तिगत पत्रों (जैसे पिता द्वारा पुत्र को लिखे जाने वाले पत्रों और कार्यालय-संबन्धी पत्रों में, जो एक मंत्री द्वारा राजा को भेजे जाते हैं या किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को पदसंबन्धी कार्य के सम्बन्ध में भेजे जाते हैं, कोई अन्तर नहीं होता। इस प्रकरण में हम उदाहरण सहित कुछ प्रचलित पत्रों के नमूने प्रस्तुत करेगें।

४२८. विद्यार्थियों को विस्तृत जानकारी देने के पूर्व हम पत्रों के दो नमूने देंगे :—

१. स्वस्ति। महेन्द्रद्वीपात्परशुरामो लंकायाममात्यं माल्यवन्तमर्हयति। अत्रैव परममाहेश्वरं लंकेश्वरमभिनंद्य ब्रवीति। विदितमेतद्वो यदस्माभिर्दण्डकारण्यतीर्थोपासकेभ्यस्तपोधनेभ्य: प्रतिज्ञातमभयम्। तत्र विराधदनुकबन्धप्रभृतय: केप्यभिचरन्तीति श्रुतम्। तत्तान्प्रतिषिध्य सद्वृत्तिमस्मद्धितां च माहेश्वरप्रीतिमनुरुध्यंतां भवन्त:।

ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये।
जामदग्न्यश्च वो मित्रमन्यथा दुर्मनायते ॥ इति।

आधुनिक पत्रों की शैली में उपर्युक्त पत्र को इस प्रकार लिखा जायगा :—

प्रिय माल्यवद् महेन्द्रद्वीप

× × ×

भवदीय शुभेच्छु
परशुराम

लंका के स्वामी को मेरा अभिवादन कहिएगा।

सेवामें,

महामहिम श्री माल्यवत्,
लंकाधिपति रावण के महामात्य।

२. अधिक आधुनिक प्रणाली का एक दूसरा नमूना यह है :—

स्वस्ति। श्रीमत्संस्कृताद्यनेकविद्याविनयविराजमाना राजमान्याः श्रीयुत् गोखले उपनामधारिणः कृष्णरावाख्याः शतशः साष्टांगप्रणामपुरस्सरं विज्ञापयन्ते। यत्काशीतो भवदर्थे आनीतस्य मानवधर्मशास्त्रग्रन्थस्य वार्ताहरदेयभागेन सहितं मूल्यं सार्धदशरूपकपरिमितामिमां पत्रिकां भवद्धस्तं प्रापयतो गोविन्दस्य हस्ते दीयतामिति एषा विज्ञप्तिः।

पुण्यपत्तने मार्गशीर्षसुदी १५ } पटवर्धनकुलोत्पन्नस्य हरिसूनो-
१८०७ संवत्सरे } र्नारायणस्य

४२९. अब हम विद्यार्थियों का ध्यान निम्नलिखित विषयों पर आकृष्ट करते हैं :—

(१) प्रत्येक पत्र 'स्वस्ति' शब्द से प्रारम्भ होता है।

(२) जिस स्थान को पत्र लिखा जाता है उसका नाम पहले लिखा जाता है[२] और उसे पञ्चमी विभक्ति में रखा जाता है; उसका अन्वय विधेय के साथ

ये विशेषण पद केवल आदरसूचक हैं। एक या दो विशेषण पदों को रखना भूमिका को सुन्दर रूप प्रदान करता है। व्यापारिक पत्रों में उन्हें छोड़ा जा सकता है।

२. जब पत्र एक ही नगर में भेजे जाते हैं तो स्थान तथा तिथि का उल्लेख नहीं भी किया जाता है।

होता है। कभी-कभी इसे सप्तमीविभक्ति में रखते हैं जैसे ऊपर के पत्र २ में।

(३) सम्बोधन का शब्द (मेरे..., प्रिय श्री... आदि) वस्तुतः अभिव्यक्त नहीं होता किन्तु उसी संबन्ध के बताने वाले किसी शब्द द्वारा व्यक्त किये जाते हैं, जैसे आयुष्मत् (संबन्ध में छोटा होने का संकेत देता है) मित्र (मित्रता का बोध कराता है)।

(४) पत्रलेखक का नाम हिन्दी पत्रों में जिसके पास पत्र भेजा जाता है उसके साथ पत्रलेखक के सम्बन्ध के साथ लिखा जाता है किन्तु संस्कृत में उसे अन्त में नहीं रखा जाता परन्तु वाक्य के आरम्भ में रखा जाता है और वह पत्र के प्रथम वाक्य का कर्म होता है। जैसा सम्बन्ध होता है उसे प्रथम वाक्य के विधेय में व्यक्त करते हैं ('अभ्यर्हयति' सम्मान प्रकट करता है, इससे पता चलता है कि पत्रप्रेषक पत्रप्रापक का मित्र है; 'विज्ञाप्यन्ते' से यह बोध होता है कि पत्र भेजने वाले केवल परिचित व्यक्ति हैं, 'परिष्वज्य दर्शयति' से यह ज्ञात होता है कि लेखक निकट सम्बन्धी पिता, पति इत्यादि हैं)।

द्र०—आधुनिक प्रणाली के पत्रों में लेखक का नाम अन्त में रखा जाता है (जैसे ऊपर के दूसरे नमूने में) लेखक का नाम षष्ठी विभक्ति में रहता हैं जिसका अन्वय पत्र में आए हुए विज्ञप्तिः' 'प्रार्थना' जैसे शब्दों के साथ होता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि यह शैली अधिक औपचारिक है और इसका प्रयोग उस समय करना चाहिए जब लेखक उस व्यक्ति से परिचित न हो जिसके पास वह पत्र लिख रहा है।

(५) पत्र का आरम्भ या रूप अन्य (प्रथम) पुरुष में होता है, यद्यपि पत्र के भीतर दूसरे पुरुषों का प्रयोग हो सकता है।

(६) जिस व्यक्ति को पत्र लिखा जाता है उसका नाम अंग्रेजी शैली के पत्रों में अन्त में कागज के बायें किनारे पर लिखा जाता है और लिफाफे के ऊपर विस्तार के साथ लिखा जाता है; संस्कृत के पत्रों में पत्र के आरम्भिक वाक्य में ही पत्र पानेवाले का नाम निवासस्थान के नाम के साथ दे दिया जाता है और वह विधेय का कर्ता या कर्म होता है (जैसे ऊपर के पत्र २ में) या विधेय के साथ किसी अन्य प्रकार से संबद्ध होता है। यही पत्र का पता होता है।

(७) संस्कृत में पत्र लिखने की तिथि देने का प्रचलन नहीं है, किन्तु जब आवश्यकता पड़ती है तो तिथि को सामान्यतः सप्तमी विभक्ति में रखा जाता है और यह विधेय का क्रियाविशेषण विस्तार होता है, अथवा तिथि पत्र के बाएँ किनारे पर लिखते हैं; जैसे—सुभानुसंवत्सरे वैशाखवदि १३ भौमे।

४३०. सुविधा के लिये पत्रों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है :—

(१) **घरेलू-पत्र**—परिवार के सदस्यों के बीच लिखे जाने वाले पत्र।

(२) **अन्य-पत्र**—मित्र द्वारा मित्र को, शिष्य द्वारा गुरु को मन्त्री द्वारा राजा को, या सामान्यतः एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को लिखे गये पत्र। इन्हें हम 'विविध पत्र' कहेंगे।

१. घरेलू पत्र

१. पिता से पुत्र के पास, परिवार के बड़े सदस्य से छोटे के पास, पति से अपनी पत्नी के पास भेजे जाने वाले पत्रों में सम्बन्ध इस प्रकार के वाक्य द्वारा व्यक्त किया जाता है—स्नेहात्परिष्वज्य; उत्तमांगे चुंबन्, सस्नेहमालिंग्य इत्यादि।

कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं :—

(क) पिता द्वारा पुत्र को :—

स्वस्ति। यज्ञशरणात्सेनापतिः पुष्पमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्ममन्तमग्निमित्रं स्नेहात्परिष्वज्य अनुदर्शयति। विदितमस्तु। योसौ राजसूययज्ञे दीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्य निरर्गलस्तुरगो विसृष्टः स सिन्धोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनानां प्रार्थितः। ततः उभयोः सेनयोर्महानासीत्संमर्दः। किन्तु वसुमित्रेण प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निर्वर्तितः। सोहमिदानीं पौत्रेण प्रत्याहृताश्वो यक्ष्ये। तदिदानीमकालहीनं विगतरोषचेतसा भवता वधूजनेन सह यज्ञसन्दर्शनायागन्तव्यमिति।

(ख) स्वस्ति उज्जयिनीतः परममाहेश्वरो महाराजाधिराजो देवस्तारापीडः सर्वसंपदामायतनं चन्द्रापीडमुत्तमांगे चुंबन्नंदयति। कुशलिन्यः प्रजाः किन्तु कियानपि कालो भवतो न दृष्टस्य। बलवदुत्कंठितं नो हृदयम्। देवी च सहांतःपुरे म्लानिमुपनीता। अतो लेखवाचन विरतिरेव प्रयाणकालतां नेतव्येति।

(ग) अधिक आधुनिक शैलीका पत्र इस प्रकार का होगा :—

स्वस्ति! पंचवटीतो गोविन्दशर्मा पुण्यपत्तने पुत्रं विश्वनाथं (या आयुष्मन्तं विश्वनाथं) सोत्कठं निर्भरमालिंग्य कुशलं वार्तयति यथा। कार्यं च। कुशलमिहास्माकं सर्वेषाम्। भवदीया कुशलवती वार्ता सर्वदा प्रहेया। अद्यैव भवदर्थेऽस्मन्मित्रस्य परशुरामस्य हस्ते विंशती रूपका दत्ताः। विनियोगः कथं कृत इति यथावसरं निवेदनीयमिति।

शके १८०७ मार्गशीर्षवदि १४ भौमेऽहनि।

४३२. पिता पुत्र के पास, बड़े छोटे के पास, और सामान्यतः अधिक आयु के संवन्धी कम आयु वालों के पास पत्र लिखते समय निम्नलिखित प्रकार की शैली भी अपना सकते हैं :—

स्वस्ति। श्रीमच्चिरंजीविषु अमुकशर्मसु प्राणाधिकतरेषु अमुकस्य (पितुः, भ्रातुः' जैसा सम्बन्ध हो) सस्नेहा आशिषः कोटिशः स्फुरन्तु। विदितमस्तु···, या

स्वस्ति। अमुकस्थानात् अमुकस्थानवासिनं चिरंजीविनं या आयुष्मन्तं अमुकशर्माणं अमुकशर्मा सस्नेहमाशीसहस्रपूर्वकं कुशलं वार्तयति या सोत्कण्ठं सस्नेहं समालिंग्य कुशलं वार्तयति यथा।

(क) पति की ओर से पत्नी को—

स्वस्ति। अमुकस्थाने पालितपरमपतिव्रतागुणां सौभाग्यशालिनीं भार्याममुकनाम्नीम् अमुकः सस्नेहं समालिंग्य कुशलं वार्तयति यथा। कार्यं च। कुशलमिहास्माकं। तत्रत्यसमस्तमानुषाणां कुशलवती वार्ता प्रहेया। या एवंगुणासु प्राणेभ्योपि प्रियतरासु नितान्तालिंगनपूर्वकस्नेहसमूहाः।···

४३३. संबन्ध में छोटे को अपने बड़े संबन्धी के पास, अथवा पत्नी को पति के पास पत्र लिखने की निम्नलिखित शैलियों का व्यवहार करना चाहिए——

१. पुत्र की ओर से पिता को ;—

स्वस्ति। अमुकस्थाने अनेकगुणालंकृतस्नेहगुणभूषितपुत्रवत्सल पूज्यपितृपादारविन्दान् अमुकस्थानात्सदाविनीतः सुतः (या सदाज्ञाविधायी पितृभक्तितत्परः सुतः) अमुकी महाभक्त्या सबहुमानं क्षितितलनिहित-

मौलिना साष्टांगं प्रणम्य सविनयं विज्ञापयति। ××× सर्वाभ्यो मातृप्रभृतिभ्यो मदीयः प्रणामो वाच्यः। कार्यादिकं च सदादेष्टव्यमिति।

(२) स्वस्ति। श्रीमत्पितृचरणेषु अकिंचित्करकिंकरस्य सुतस्य (कभी कभी—मम) बद्धकरसंपुटं प्रणतिततिसहस्रमजस्रम्। कार्यं च।—

(३) स्वस्ति श्रीजन्मकर्मार्थयज्ञेषु जनकेष्वितः।
स्नेहार्द्रभावसहिताः स्फुरन्तु नतयः पराः॥

टिप्पणी—छोटे भाई द्वारा बड़े भाई के पास और पुत्र द्वारा अपनी माता के पास पत्र लिखते समय उपर्युक्त नमूने में आवश्यक सुधार कर लेना चाहिए—

२. पत्नी की ओर से पति को—

स्वस्ति यथास्थाने सकलपूज्यतमगुणगणालंकृतभर्तुः पादान् (कभी-कभी नाम दिया जाता है) अमुकस्थानात्सदाज्ञाविधायिनी अमुका पतिसेवा-तत्परा कण्ठाश्लेषपूर्वकं सस्नेहं सोत्कण्ठं सविनयं प्रणम्य विज्ञापयति यथा। कार्यं च।

२. विविध पत्र

४३४. अब हम ऐसे पत्रों पर आते हैं जिन्हें हमने विविधपत्र कहा है। मित्र को पत्र लिखते समय अभिवादन के शब्द लिखे जाते हैं, जैसे—अमुकं अर्हयति, अभिनन्दयति, अभिनन्द्य ब्रवीति, सस्नेहं अनुदर्शयति, प्रणतिपुरःसरं निवेदयति, इत्यादि।

विद्यार्थियों को एक प्राचीन विद्वान् लिखित इस प्रकार के पत्र का नमूना दिखाया जा चुका है (देखिए पत्र सं० १)। मित्र के पास पत्र लिखते समय उसे छात्र आदर्श मान सकते हैं।

यहाँ कुछ आधुनिक शैली के पत्र दिये जाते हैं :—

(१) स्वस्ति। यथास्थाने विद्वत्त्वदाक्षिण्यौदार्यादिगुणालंकृतशरीरं परमप्रेमनिधानं वयस्यं अमुकं अमुकस्थानादमुकः सोत्कंठं सस्नेहं गाढमालिंग्य कुशलं वार्तयति यथा। कार्यं च।

(२) स्वस्ति। अस्मदेकाश्रयीभूतेषु विद्याविनयादिमण्डितेषु पूज्यतमेषु अमुकस्थाननिवासिषु अमुकशर्मसु अमुकस्थानवासिनः अमुकस्य प्रणतिसहस्रमजस्रम्।

४३५. जो व्यक्ति एक दूसरे से परिचित नहीं हैं वे पत्र लिखते समय निम्न-लिखित पत्ररूप का प्रयोग कर सकते हैं :—

स्वस्ति । अमुकस्थाननिवासी अमुकनामकः श्रीमतः सकलविद्यावदात-चेतसः अमुकान् अनेकप्रणामपूर्वकं विज्ञापयति । या अमुकाः एवं गुणो-पेताः (कोई सम्मानसूचक विशेषण) अमुकेन प्रणामपुरःसरं विज्ञाप्यन्ते निवेद्यन्ते (इसका उपसंहार पत्र २ के समान होगा); या श्रीमतां अमुकनाम्नां-समक्षं (संनिधौ) अमुकस्थानवासिनः अमुकनाम्नः सविनया विज्ञप्तिः ।

इसे आदर्श मानकर, पुस्तक के लेखक के पास पुस्तक की एक प्रति डाक द्वारा भेजने के लिए इस प्रकार पत्र लिखा जा सकता है :—

स्वस्ति । आंग्लभौमगीर्वाणादिभाषासु परां प्रतिष्ठां गताः कलिकाता-नगरस्थमहापाठशालाधिकृताः श्रीतर्करत्नवागीशाख्याः प्रणामपुरःसरं विज्ञाप्यन्ते । यत् भवत्प्रणीतं अलंकारदर्पणाख्यं ग्रन्थं अधिकृत्य काचित् विज्ञप्तिपत्रिका मया मित्रहस्ते अद्य दृष्टा । तदवलोकनेन तं ग्रन्थं क्रेतुं मन्मनसि बलवतीच्छा प्रादुर्भवति । तदनुरोधात् राजशासनपत्रद्वारेण[1] वार्ताहरभागसहितं मूल्यं सार्धचतुष्टयरूपकं इतः प्रेषितम् । तद्यावच्छक्यं सत्वरं तद्ग्रन्थस्य प्रेषणेनानुग्राह्यमात्मानमिच्छामि । ग्रन्थश्च निम्नलिखित-बाह्यनामा प्रेषणीय इति विज्ञाप्तिः ।

पुण्यपत्तने संस्कृतपाठशालायां
संवत् १९३५ श्रावणवदि ११ शनौ } अभ्यंकरोपनामकस्य गोविंदसूनोः
रामशास्त्रिणः

टिप्पणी—इन सभी पत्रों में जिसके पास पत्र लिखा जाता है उसके स्वास्थ्य की कामना करते हुए कोई प्रार्थना अभिव्यक्त करने की भी प्रथा है। इसे अन्त में इस प्रकार रखते हैं :—शमिह भावत्कं भव्यमनुदिनमेधमानमाशा-स्महे' या संक्षेप में 'इति शम् ।'

४३६. शिष्य अपने गुरु के पास इस पत्र को लिख सकता है :—

स्वस्ति । अमुकस्थाने (यदि दूसरे स्थान को पत्र भेजा रहा हो) अनेकतीर्थावगाहनपवित्रीकृतमानसान् परमाराध्यपरमपूज्यश्रीगोविंदाचार्य-

---

१. मनी आर्डर द्वारा

पादारविन्दान् अमुकस्थानात्सदादेशवर्ती अमुकनामकः परमभक्त्या क्षितितलनिहितमौलिना साष्टांगं प्रणम्य सविनयं विज्ञापयति; या एवंगुणोपेताः श्री मदुपाध्यायपादा भक्तितत्परेण अमुकनाम्ना शिष्येण सविनय-प्रणामपूर्वकं विज्ञाप्यन्ते, या इति विज्ञप्तिः अमुकशर्मणः इत्यादि ।

पत्र की उपर्युक्त शैली के अनुसार छात्र गुरु के पास छुट्टी के लिए इस प्रकार पत्र लिख सकता है :—

स्वस्ति । सकलविद्यावगाहनविशदीकृतमानसाः परमपूज्याः गोपाल-रावाख्याः अनेकप्रणामपूर्वकं सविनयं विज्ञाप्यन्ते । यन्मम गेहेद्य माता-पितरावुभावपि ज्वरपीडितौ संतौ शय्याग्रस्तौ । तौ तथा परित्यज्य पाठशालां गन्तुं नाहमुत्सहे । मामपि च बलवती शिरोबाधा पीडयति । अतः अद्य मम अनुपस्थितिं मर्षयितुमर्हंति आचार्यपादाः इति सविनया विज्ञापना सदा भवदादेशवर्तिनः शिष्यस्य—

१८८५ ख्रिस्ताब्दे दशम मासस्य द्वादशवासरे ।	कालेकुलोत्पन्नस्य गोविन्द-सूनोर्हरेः

४३७. हम इस प्रकरण का उपसंहार कुछ अन्य उदाहरणों को देकर करेंगे (स्वस्ति' का प्रयोग सभी पत्ररूपों के साथ किया जा सकता है) ।

(१) मन्त्री या अन्य पदाधिकारी की ओर से राजा को—

श्रीसमस्तसामन्तसेनानिर्वाहकेषु परोपकारसत्कारनिपुणेषु निज-कीर्तिधवलितदिगन्तरेषु महाराजाधिराजचरणेषु आदेशवर्तिनो महाराज-किंकरस्य समस्ताशीराशीः सहस्रमजस्रम् या °काः, °णाः, °राः, °णाः, आशीःसहस्रपूर्वकं निवेद्यन्ते; या 'अमुकस्थाने देवं विनयनतशिरा अमुकः पादद्वन्द्वारविन्दे भक्त्या मूर्ध्नि अंजलिं रचयति । कार्यं च लिख्यते ।....

(२) बड़े से छोटे को :—

अमुकस्थानात् अमुकः अमुकस्थाने अमुकं सप्रसादं समादिशति यथा (कार्यं च)...

(३) छोटे से बड़े के पास :—

पूज्यपरमाराध्यस्वामि अमुकपादान् अमुकस्थानात्सदादेशकारी अमुकः साष्टांगप्रणामपूर्वकं विज्ञापयति ।

(४) संन्यासी को :—

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यदेवभूदेवनरदेवपूजितेषु श्रीपादेषु अमुकस्य प्रपंचविस्मरणपूर्वकं नारायणस्मरणप्रणामसहस्रमजस्रं विज्ञप्तिश्च।

४३८. अब हम विद्यार्थियों को ऊपर दिये गये नमूनों के आधार पर कुछ पत्र लिखने को कहेंगे। उपर्युक्त पत्रों के आधार पर विद्यार्थी एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के पास पत्र लिखने की योग्यता प्राप्त कर सकता है। पत्रों की शैली में पर्याप्त भेद हो सकता है परन्तु ऊपर दिये गये नमूनों से काम चल जायगा। (आधुनिक समय में हिन्दी में प्रचलित पत्रलेखन-प्रणाली का अनुसरण संस्कृत में पत्र लिखते समय करना वर्तमान समय के अनुकूल होगा अतएव उस प्रणाली के अभ्यास की सलाह दी जा सकती है—अनुवादक)

अभ्यास ४५–५२

१. अपने पिता के पास विद्यालय में अपनी प्रगति के विषय में एक पत्र लिखिए।

२. पिता की ओर से पुत्र को कुछ पुस्तकें उपहार भेजते हुए पत्र।

३. अपने मित्र को, उससे किसी धार्मिक संस्कार के अवसर पर उपस्थित होने की प्रार्थना करते हुए।

४. पुस्तकविक्रेता को, अपनी आवश्यकता की पुस्तकें भेजने का निवेदन करते हुए।

५. अपने अध्यापक को, व्यक्तिगत कार्यवश अवकाश माँगते हुए।

६. मित्र को, उससे कुछ आर्थिक सहायता की प्रार्थना करते हुए।

७. अपने सहपाठी को एक लघु पत्र, जिसमें कुछ दिनों के लिये 'संस्कृत व्याकरण' पुस्तक देने की प्रार्थना हो।

८. पाठशाला के प्रधानाध्यापक की ओर से जनपद शिक्षा अधिकारी को, सहायता माँगते हुए।

टिप्पणी

पाठ १

पृ० १० पंक्ति १० विदूषक के विषय में पुरूरवा की उस समय की उक्ति जब विदूषक ने चन्द्रमा की उपमा लड्डू से दी। पेटू व्यक्ति के लिए भोजन ही बात का विषय होता है उसकी उपमाएँ और उक्तियाँ भी भोजनविषयक होती हैं।

पं० ११ 'कौन यह विश्वास कर सकता है (कौन सत्य मानेगा) कि यह (कौसल्या) वही है। इसकी मुखाकृति इतनी अधिक बदल गई है।'

पं० १३ 'अर्थपति' एक व्यक्तिवाचक नाम है (धन का स्वामी) इसका अर्थ यह है कि विमर्दक मानो अर्थपति का बाहरी रूप है, वह उसे अपने जीवन के समान प्यारा मानता है जो 'अन्तश्चराः प्राणाः' हैं।

पं० १४ यह एक प्रश्न है: 'क्या पाण्डव भय की वस्तु हैं?'

पं० १६ भीष्म सहदेव से कहते हैं 'न तो मेरे योग्य भाई धर्म, न अर्जुन और न तुम कारण हो' इत्यादि, मम शिशोरेव मुझ बालक की भी, जब मैं एक बालक ही था।

पं० १८ द्वितीयं हृदयं—दूसरा हृदय, अभिन्न, अन्तरंग।

पं० २० निस्तेजाः उत्साहहीन; तेजरहित, जलाने की शक्ति न रखने वाला। इसका संबन्ध 'भस्मचय' से भी है जो बहुत बड़ा होते हुए भी आसानी से कुचला जाने योग्य होता है, क्योंकि उसमें आग नहीं होती।

पं० २३ आहितलक्षणः 'काकुत्स्थ' ऐसा विशिष्ट नाम पड़ा। अपने सद्गुणों के कारण (अमरकोश के अनुसार) वे 'काकुत्स्थ' नाम से विख्यात हुए।

पं० २५ 'जो तुम्हारे समान ही मेरे मन का दूसरा बन्धन है'। यह कामन्दकी की मालती के प्रति उस समय की उक्ति है, जब उसने मालती से माधव का वर्णन किय।

पं० २७ पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य—आखिरी अवस्था में, वृद्धावस्था में।

पृ० ११ पं० १ शुकमादाय 'अपने साथ एक तोता लेकर'। आश्चर्यभूतः अचम्भा की वस्तु, अनहोनी। इति कृत्वा ऐसा विचार कर, इस विचार से। आपके पैरों के निकट आया है।

पं० ५ गर्भस्थस्यैव—अभी गर्भ में होते हुए का अर्थात् ये सभी पाँचों उसके साथ ही उत्पन्न होते हैं।

पं० ८ भूपतेः=भूपतिना—उन्होंने केवल तीन वस्तुएँ नहीं दीं जो राजा होने का लक्षण थीं।

पं० ९ इस पंक्ति का अर्थ यह है कि यद्यपि धन और विद्या स्वभावतः एक स्थान पर नहीं पाये जाते, फिर भी इस राजा में वे एक साथ निवास करते हैं। विद्या और धन का इस प्रकार का संयोग बहुत कम मिलता हैं। एक-संस्थं=एका संस्था यस्य।

पं० १० व्यतिकरितदिगन्ताः, जिन्होंने दिशाओं के अन्तर्भाग को पूर्णरूप से व्याप्त कर लिया है। सुकृत इत्यादि जो सत्कर्मों के घर हैं अर्थात् सत्कर्म करते हैं, जिन्होंने अनेक पुण्य कर्म किये हैं।

पाठ २

पृ० १६ पं० ६ चन्द्रसरोरक्षकाः चन्द्रसरोवर की रक्षा करनेवाले खरगोश।

पं० ७ जिसके ऊपर राजा अधिक दृष्टि डालता है अर्थात् जिसके ऊपर औरों की अपेक्षा अधिक प्रेम से देखते हैं।

पं० ९ इसका अर्थ यह है, राक्षस आपके बाणों के उचित निशाना हैं, अत-एव अपने धनुष को उनके विपरीत चढ़ाए।

पं० ११ स सुहृद् व्यसने यः स्यात् वही मित्र है जो विपत्ति में साथ देता है।

पं० १८ उसी प्रकार राजा और मागधी (सुदक्षिणा) जो उन (शिव और उमा, तथा इन्द्र और शची) के समान थे अपने पुत्र से आनन्दित हुए (जो कार्तिकेय और जयन्त के तुल्य था)।

पं० २० बहुमन्यसे 'समादृत है' 'उसे बड़ा समझा जाता है' आशानि-बन्धनं सम्पूर्ण संसार की आशा के गाँठ बन गये। सीता के कहने का अर्थ

यह है : वस्तुतः वह स्त्री सुखी है, जिसने मेरे स्वामी का ध्यान आकृष्ट कर लोगों की आशाओं को अपने में बाँध लिया है।

पं० २२ राम ने सीता द्वारा स्नेहपूर्वक पाले गये गजशावक के विषय में यह कहा है। यत् कल्याणं इत्यादि। वह युवावस्था के सभी उत्तम गुणों का आश्रय बन गया है। अर्थात् युवावस्था के साहस और बल से युक्त हो गया है।

पं० २३ पृथ्वी के कहने का तात्पर्य यह है कि सीता का परित्याग करके राम इन विचारों से प्रभावित नहीं हुए, जिनमें कोई भी उनके विपरीत निर्णय पर पहुँचा सकता था।

पृ० १७ पं० २ दूषण, खर और त्रिमूर्ध्न राम द्वारा मारे गये राक्षसों के नाम हैं।

पं० ४ उसका जीवित रहना ही (वस्तुतः) मृत्यु है और मृत्यु उसके लिए विश्राम है। अर्थात् ऐसे व्यक्ति का जीवन मृत्युतुल्य हैं और वास्तविक मृत्यु अन्तिम विश्राम है।

पं० ६ यह पंक्ति कुछ अस्पष्ट है। इसका अर्थ ऐसा प्रतीत होता है जो आनन्द और शोक (समृद्धि और विपत्ति) दोनों में समान रूप से मित्र जैसा योग्य वस्तु हो सके वह पाना कठिन है, अर्थात् एक मित्र को छोड़कर कोई और भले और बुरे दिनों में साथ देने वाला नहीं होता। 'ये मिलन्ति' की तुलना सौम्सन एगोनिस्ट्स् के इन शब्दों से की जा सकती है; 'समृद्धि के दिनों में वे सभी घेरे रहते हैं विपत्ति के दिनों में वे अपना सिर छिपा लेते हैं और ढूँढने पर भी नहीं मिलते हैं।' तत्त्वनिकष विपत्ति ही उनकी कसौटी है, उसी पर उनके सच्चे रूप की परीक्षा होती है।

पं० ११ हिंसाशून्य 'हिंसारहित' बिना किसी को कष्ट पहुँचाकर पाया गया; तुलना गोल्डस्मिथ; पर्वत के हरे उपान्त भाग से मैं निर्दोष भोजन ले आ रहा हूँ ('And from the mountain's grassy side, a guiltless feast I bring.) 'अशनं' का सम्बन्ध 'व्यालानां समाप्तिं प्रयान्ति' है, जिसका अर्थ है 'समाप्त हो जाते हैं' अपनी जीविका कमाने में सभी शक्ति ही खो देते हैं।

भगवान् विष्णु के प्रति उक्ति। हमारे वचन आपकी स्तुति करके समाप्त हो जाते हैं (उनका अभाव हो जाता है) उसका कारण यह हमारी शक्ति-समाप्त होना या अवर्णनीयता है न कि आपके गुणों का सीमित होना।

पाठ ३

पृ० २३ पं० २९ बिन्दूत्क्षेपान्-घूमते हुए पहिए द्वारा वाहर फेंकी गई पानी की बूदें।

पृ० २४ पं० ४ प्रियंवदा के कहने का अर्थ यह है: दुष्यन्त को छोड़कर दूसरा कौन उसके प्राणों की रक्षा कर सकता है, जिसमें गम्भीर प्रेम के चिह्न प्रकट हो गये हैं।

पं० ९ प्रावृषा संभृतश्री=जिसकी शोभा वर्षा ऋतु में बढ़ जाती है।

पं० १० कृतकार्य, 'वनं' का विधेय है 'जिसके लक्ष्य पूरे हो गये हैं ? सुखी, 'यद्' अध्यास्ते का कर्म है।

पं० १३ अधिष्ठाय, 'स्वामी या निर्देशक होकर, पथप्रदर्शक वनकर।

पं० १८ 'अमी' का अन्वय' 'वह्नयः क्लृप्तधिष्ण्याः' के साथ होगा, जिसका अर्थ है 'जिसके स्थान नियत या निश्चित कर दिए गए हैं।'

पं० २१ मण्डप का विस्तार (लम्बाई-चौड़ाई) बताइए। शतमध्यर्द्धं 'एक सौ पचास।'

पं २३ रघुप्रतिनिधि--रघु के प्रतिनिधि अर्थात् अज। कामदेव के समान से भिन्न अवस्था धारण किये हुए।[1]

पं० २६ संप्रति आवसत्—हाल ही में निवास किया है।

उसके सोने के वाद वह सोया और सवेरे उसके जगने के वाद उठा।

पृ० २५ पं० २ अयं जनः सामान्यतः वक्ता का निर्देश करता है। दुष्यन्त के कहने का अर्थ यह है: "इस व्यक्ति ने (अर्थात् मैंने) एक वार उससे (हंसपादिका से) प्यार किया, इसलिए रानी वसुमती के सामने मेरी वड़ी हँसी होती है।"

---

१. अथवा बाल्यावस्था के बाद की अवस्था (युवावस्था) धारण किये हुए।

पं० ८ दोषं विवक्षता त्वया—दोष कहने की इच्छा रखने वाले आपके द्वारा।

पं० ११ क्रियान्तरान्तरायमन्तरेण—तुम्हारे अन्य कार्यों में विघ्न पहुँचाए विना, अर्थात् जिस समय तुम्हारे पास कोई और कार्य न हो।

पं० १६ कल्पितशस्त्रगर्भं—जिसके भीतर शस्त्र तैयार रखे गये थे।

पं० १७ चतुरस्त्रयानं—चार किनारों वाला वाहन, चतस्त्रः अस्त्रयो यस्य तत्, मंचान्तरराजमार्गं—मंचों की पंक्ति लगाकर निर्मित ऊँचा राजमार्ग।

क्लृप्तविवाहवेषा—विवाह के वस्त्रों को पहने हुए। दुलहिन बनी हुई।

रावण की सीता के प्रति उक्ति।

पं० २२ कष्टसंश्रयः विपत्तियों से युक्त।

'यत्' चूँकिः, इसका अर्थ यह है कि पागल कुत्ते के विष के समान सीता के विषय में यह लोकापवाद सभी जगह फैल गया, यद्यपि पहले दिव्यसाधनों द्वारा उसे दूर कर दिया गया था।

पृ० २६ पं० २ प्रियासहचरः मेरी प्रियतमा का सहचर, मेरी प्रिया के साथ।

पं० ४ गोदावरीपरिसरस्य—गोदावरी के निपट में, अड़ोस-पड़ोस में।

पं० ७ दंष्ट्रा इत्यादि—जिसके अस्त्र दाढ़, पंजे और पूँछ हैं; तृष्णां छिनत्ति 'प्यास बुझाता है।'

पं० ९ अजातशत्रुः—धर्म, जिसका कोई शत्रु नहीं था। लिखितैरिव—मानो चित्र में अंकित हो, मानों हम लोग निर्जीव चित्र हों।

पं० १३ जलानि सा···सरयू नदी, जिसके किनारे यज्ञों के यूप बने हुए हैं, अपना जल अयोध्या के निकट से प्रवाहित करती है।

पं० १४ वाच्यदर्शनात्—बदनामी देखने से (जिसका वह भागी हो सकता था) नृपति सन्—राजा होते हुए।

पाठ ४

पृ० ३० अचिरप्रवृत्तोपदेशं—जिसमें उपदेश दिये जाते हुए अधिक दिन नहीं हुए, क्योंकि उसे कुछ दिन पूर्व ही स्वामी के हाथों सौंपा गया था। कीदृशी मालविका—मालवी की कैसी हालत है? उसने कितना सीख लिया है? कैसी चल रही है?

सुखं प्रष्टुं—उसका सुख समाचार पूछने के लिए।

पृथूपदिष्टां—राजा पृथु द्वारा उपदेश दिये जाने पर, उचित रूप से दुहे जाने पर अनेक बहुमूल्य वस्तुओं को प्रदान करने में समर्थ।

जिसने इन्द्र द्वारा सोचे गये कार्य को कर दिखाने की शक्ति दिखलाई है, जिसने अभिलषित कार्य कर दिखाने की क्षमता प्रदर्शित की है।

सोऽहं—'वह मैं' 'अतएव मैं'।

कौत्स की उस समय की उक्ति जब उन्होंने देखा कि रघु ने कुवेर को धन की वृष्टि करने को वाध्य किया। **वृत्ते स्थितस्य**—राजाओं के कर्तव्य (सुनीति) के अनुसार कार्य करने वाले का। **मनीषितं**···स्वर्ग को भी वाध्य होकर आपको आपकी अभीष्ट वस्तु देनी पड़ी।

ज्येष्ठा—हिमालय की वड़ी पुत्री। **त्रिपथगा**—तीन धाराओं में स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल से होकर वहने वाली।

राज्याश्रममुनिं—राजा जो मानों राज्यरूपी आश्रम में एक मुनि के समान थे।

काकपक्षधरं—जिसकी सुन्दर केशों की लटें लटक रही थी, जो अभी वालक था; षष्ठी तत्पुरुष समास। **तेजसां**···उन लोगों के विषय में आयु का विचार नहीं किया जाता जो तेजस्वी होते हैं।' तुलना० भर्तृहरि–न खलु वयस्तेजसो हेतुः।

कृपयाविष्टं—दया से परिपूर्ण।

यहाँ शरद् ऋतु की तुलना एक चतुर दूती से की गई है जो अपनी सखी गंगा को उसके पति (समुद्र) के पास प्रसन्न अवस्था में (पवित्र जल के साथ) उसे वड़ी कठिनाई से सही मार्ग पर (नदी को उचित मार्ग से ले जाकर) ले चलकर पहुँचाती है। नदी जो दुवली-पतली हो गई है (उसका जल सूख गया है) और जो पति के अनेक सौतें रखने से कुपित थी (वर्षा ऋतु में जिसके जल में क्षोभ उत्पन्न हो रहा था) और समुद्र में भी अनेक नदियाँ मिलती हैं, जिन्हें उसकी पत्नियाँ वताया गया है।

पृ० ३१ मम वचनात्—मेरे वचन से, मेरे नाम से,। **पूर्वाभाष्यं**···यह (कुशलप्रश्न) केवल सम्बोधन का एक ढंग है जिसका प्रयोग वे लोग करते हैं जो सरलता से विपत्ति में पड़ जाते हैं।

सः=राम, **याचमानः शिवं सुरान्**—देवताओं से कल्याण की प्रार्थना करते हुए। देवताओं से सीता का कल्याण करने की प्रार्थना करते हुए। **यथास्थितं सर्वं**—जो चीज जैसे थी। **भिक्षमाणो वनं प्रियां**—वन से अपनी प्रियतमा की भीख माँगते हुए (उसके विषय में पूछते हुए)।

प्राणान् दुहन्निवात्मानम्—मानों उसके प्राणों को खींचते हुए, उसने दुःख अर्थात् अत्यधिक निराश हो गया, इस कारण वहुत दुःखी था ?

अनुमान करता है। 'आ' का अर्थ है 'हाँ' 'ऐसा हो सकता है।'

पाठ ९

पृ० ३७ **अनाययत्**···जब हारीत ने उस शुकशावक को असहाय अवस्था में देखा तो वे उसे उठा लाए। **मुक्तप्रयत्नं**—जिसने प्रयत्न करना छोड़ दिया है।

येन—जिसके द्वारा मेरी सखी ने उस झूठी प्रतिज्ञा करने वाले दगाबाज़ के वचनों पर विश्वास कर लिया है।

आसनं प्रतिग्राहितः—तुम्हें गुरु का आसन ढोना पड़ा।

धात्रीकर्म वस्तुतः परिगृह्य—धाय के कार्य से आरम्भ कर उनकी देखभाल करते हुए, जिन्हें कोई धाय उन्हीं स्थितियों में करती। संभवतः इस वाक्य को इस प्रकार भी पढ़ा जा सकता है :—धात्रीकर्म वस्तुतः परिगृह्य 'वास्तव में धाय का कर्म करके।'

वृत्तचूडौ—चूडाकरण संस्कार होने के उपरान्त। **त्रयीवर्जं**—तीन वेदों को छोड़कर।

ऐसा चन्द्रपीड ने शुकनास से उस समय कहा जब वे उनसे अपने पिता से वैशयम्पायन को ले आने जाने के लिये आज्ञा दिलाने की प्रार्थना कर रहे थे।

तौ दंपती बहुविलप्य शिशोः प्रहर्त्रा निखातमुदहारयतामुरस्तः—इस प्रकार विलाप करते हुए उन दोनों ने अपने पुत्र का वध करने वाले से उसको धँसा हुआ तीर निकलवाया।'

साङ्गं—अङ्गों सहित। अङ्ग छः हैं शिक्षा, छन्दस्, व्याकरण, निरुक्त, कल्प और ज्योतिष। **उत्क्रान्तशैशवौ**—जिन्होंने अपनी वाल्यावस्था विता ली थी। **कविप्रथमपद्धति**—कवि द्वारा अपनाया जाने वाला प्रथम मार्ग।

जिसने पहले कवियों को मार्ग दिखलाया। वे 'आद्यः कवि' हैं अतः, उनके लिए इस विशेषण का प्रयोग किया जाता है।

पृ० ३८ **भावेन**—'श्रीमान् द्वारा' सूत्रधार के लिए प्रयुक्त।

रजनीतिमिरावगुण्ठिते···कामदेव के शिव द्वारा भस्म किये जाने पर उनके (कामदेव के) प्रति रति की उक्ति। रजनी···मार्गे सामान्य सप्तमी विभक्ति हो सकती है 'रात्रि के अन्धकार से आच्छादित।

तां कुलप्रतिष्ठां प्रणमय्य—उसके द्वारा, जो कुल की प्रतिष्ठा थी, (स्थायित्व का स्रोत थी) इष्ट देवताओं को प्रणाम कराके। **कारयितव्यदक्षा**—दूसरे से क्या करवाया जाय इसे भलीभाँति जानने वाला। **सतीनां पादग्रहण-मकारयत्** 'उससे सतियों के चरण पकड़वाये।

उत्सवसंकेतान्, एक जनसमूह का नाम। **जयोदाहरणं**—विजय की घोषणा, अर्थात् उसके शस्त्रों की सफलता का वर्णन करने वाले श्लोक।

अथ—दशरथ की मृत्यु के वाद। **अनाथाः**—राजा की मृत्यु के कारण विना स्वामी के।

त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता—राम की सीता के प्रति उक्ति। **रक्षसा** रावण द्वारा।

गुणानुरक्ता० द्रौपदी की युधिष्ठिर के प्रति उक्ति। 'आपको छोड़कर कौन दूसरा राजा, जिसके पास सभी अनुकूल साधन विद्यमान हैं और जो अपने वंश का अभिमान रखता है, दूसरों को अपनी सम्पत्ति लेने देगा जो पत्नी के समान होती हैं, जो ऐसी पत्नी के समान होती है, जो सद्गुणों के कारण उससे अनुरक्त हो और उच्चकुल में उत्पन्न हो।

क इव—कौन ऐसा होगा !

यः पयो दोग्धि—ये चार पंक्तियाँ और आगे की दो पंक्तियाँ रावण ने सीता से कहीं हैं। जव वह उसके मन को अपनी ओर फेरने का प्रयत्न कर रहा था। **यः**—जो एक प्रस्तर से दूध निकालता है, वही राम से सुख को दूर कर सकता है उर्थात् ऐसा करना असंभव है। **बोधयन्तं हिताहितं**—जो तुमसे हित और अहित की वात कर रहा है। **किं विलापयसे**—मुझसे क्यों अधिक वोलवा रहे हो ?

आज्ञां कारय०—राक्षसों को और मुझे अपनी सेवा में लगाइए। कौन इन्द्र के भक्तिपूर्वक सिर पर हाथ जोड़कर किये गये प्रणाम की इच्छा नहीं करेगा

अर्थात् चूँकि मेरे अधीन रहने वाला इन्द्र मुझे प्रणाम करता है उसी प्रकार वह तुम्हें भी प्रणाम करेगा; मेरी प्रियतमे ! **मूर्धानमभिगतः या अधिगतो मूर्धा येन तमधिमूर्धानम्** ।

पृ० ३९ एनं अर्थात् रामं **रक्षोगणं क्षिप्तुं**—राक्षसों के समूह को भगाने में समर्थ । **गाधिसुतः**=विश्वामित्र ।

पाठ ६

पृ० ४३ **अधरोत्तर व्यक्तिर्भविष्यति**—कौन बड़ा है, कौन छोटा है इसका फैसला अभी हुआ जाता है ।

अहं अयं—गणदास, जिसने हरदत्त के विषय में राजा का साथ दिया ।

शापितासि—मैं जीवन की शपथ दिलाता हूँ कि तुम इसे शब्दों में न कहो । माधव की उस समय की उक्ति जब मालती उसके प्रश्नों का केवल सिर हिलाकर जवाब दे रही थी ।

पृ० ४४ **जरद्द्रविडधार्मिकः**—एक बूढ़ा द्रविड साधु । 'इच्छया' का अन्वय 'निःसृष्टः' के साथ होगा और इसका अर्थ है 'के सन्तोष के लिए' । 'अभिमत' अन्वय 'मनोरथं' के साथ होगा चाहा हुआ, अभीष्ट ।

किं बहुना—अधिक क्या कहा जाय, संक्षेप में ।

स्वहृदयेनापि०—यह सारी बात जानता है इससे मैं दिल से लज्जित हूँ ।

जनस्य—अस्ति, उसका है' 'उसके अधीन है' । सुन्दरता सचमुच ही वनलताएँ उद्यान की लताओं से बढ़कर होती हैं । बिना बनावट के प्रकृति की शोभा सबसे बढ़कर होती है ।

शरीरसादा०—सुदक्षिणा की गर्भकाल की अवस्था का वर्णन करते हैं ।

असमग्रभूषणा—अपने सभी आभूषणों को न धारण किये हुए । किन्तु कतिपय आवश्यक आभूषणों को ही धारण की हुई जैसे मंगलसूत्र, कंकण आदि । **मुखेन**=मुखेनोपलक्षिता । **तनुप्रकाश**=मन्द ज्योति वाले । **विचेयतारका**, रात्रि, जिसमें तारे ढूँढे जाते हैं', तड़का सवेरा जब इन गिने तारे दिखाई पड़ते है ।

मर्त्येषु असंमूढ=सभी मनुष्यों में वही है जो बिना मोहित हुए मुझे जानता है ।

अकथ्यमाने=पुण्डरीकवृत्तान्ते ।

पृ० ४५ अवधूतप्रणिपाता:०=मानिनी स्त्रियाँ, यद्यपि पहले पैरों पर गिरने पर भी ध्यान नहीं देतीं और बाद में कोप करती हैं, फिर भी अपने मन में अपने प्रियों को प्रसन्न करने में लज्जित होती हैं अर्थात् खुले रूप में उन्हें मनाना नहीं चाहतीं ।

कष्टं जन:० राम की सीता के प्रति उक्ति, जब लक्ष्मण ने कहा, यावदार्याया: हुताशने विशुद्धि 'सीता देवी की अग्नि द्वारा शुद्धि होने के समय तक' । राम के कहने का तात्पर्य है : दु:ख की बात है कि उन लोगों को प्रजा को प्रसन्न करना होता है जिनका धन कुल का कलंक रहित यश ही है और इसलिये यह मार्ग केवल प्रजा को सन्तुष्ट करने के लिये अपनाया गया था और इसलिये हमने आपकी जो बुराई की है वह आप के योग्य नहीं हैं ।

न:=अस्माभि: ।

प्रत्येक तृतीयान्त शब्दों का अन्वय उसके आगे के संज्ञा शब्द के साथ होगा ।

'अविनयबहुलतया' इत्यादि । क्योंकि चढ़ी जवानी में अनेक निर्लज्जता-पूर्ण कर्म हो जाते हैं ।

तमपि=पुण्डरीकम् ।

स्पृशति पदं—स्थान ग्रहण करता है । **गुण**····अनेक गुणों से सम्बद्ध (या उत्पन्न) जो कुत्ते में नही पाये जाते ।

इत:=मयि :

विनयप्रधानै:=विनय: प्रधान; येषां—जिनमें विनय प्रमुख है ।

'नन्दमौर्यनृपयो:' का अन्वय **'अस्तोदयौ'** के साथ होगा । **अविभिन्न-कालं**— साथ ही साथ । ये पंक्तियाँ चाणक्य की सूर्य से श्रेष्ठता बताती है । 'जो अपने तेज से सहस्र-किरणों वाले देवता के तेज से भी बढ़कर है, जो सर्वव्यापी नहीं है और क्रमश: शीत और गर्मी उत्पन्न करता है (और एक ही समय में ऐसा नहीं करता जैसा कि चाणक्य ने किया ।)

पृ० ४६ न तेन सज्जं० ये पंक्तियाँ दुर्योधन के गुणों का वर्णन करती हैं । **'उद्यतं'** उठा हुआ, शत्रु के विरुद्ध चढ़ाया गया । उसकी आज्ञाओं का राजा लोग श्रद्धा के साथ पालन नहीं करते हैं । । 'गुण' का अर्थ 'धनुष की डोरी' भी होता है ।

स बाल आसीद्० शिशुपाल के विषय में ये पंक्तियाँ कहीं गई हैं, जैसा कि नारद ने विष्णु से उसका वर्णन किया है । **बाल:**—बालक होते हुए भी ।

मुखेन--मुख से चन्द्रमा के समान होते हुए वह त्रिनेत्र भगवान् के समान था। चूँकि अब वह ऐसा युवक हो गया था, जिसने राजाओं को करद बना दिया था अतः वह सूर्य के समान हो गया था जो पर्वतों पर अपनी किरणें बिखेरता है)।

पाठ ७

पृ० ५३सर्वज्ञस्य का अर्थ भी तृतीया विभक्ति का है। केवल एक व्यक्ति निर्णय करना, चाहे वह व्यक्ति कितना भी सर्वज्ञ क्यों न हो, गलत हो सकता है। अस्मै—वालकाय' के लिये आया है।

साधोः सज्जन को दिया गया।

प्रसीद० गङ्गा ने पृथ्वी से उस समय कहा जब वह राम पर अपनी पुत्री सीता का त्याग करने के कारण कुपित थीं। शरीरमसि संसारस्य—तुम संसार के शरीर ही हो।

मिथ्या···निर्भर—झूठी महानता के गर्व से उन्मत्त। आत्मप्रज्ञा —वे मन्त्रियों के वचन से यह सोचकर घृणा करते हैं कि उनकी राय के अनुसार चलना उनकी वुद्धि का अपमान है।

महाश्वेताप्रणामपुरःसरं—पहले महाश्वेता को प्रणाम करके।

अवाङ्मनसगोचरं—जो वाणी और मन से परे हैं जिनका न तो वर्णन किया जा सकता हैं और न चिन्तन।

रविमावसते० यह चन्द्रमा के प्रति कहा गया है। अमवास्या उस समय होती है जब चन्द्रमा सूर्य के शरीर में प्रवेश करता है (आवसति) किन्तु दर्श का दिन न होने के कारण उसके लिये धार्मिक लोग कोई याज्ञिक कर्म नही करते हैं। सुधया—तुलना० पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः (रघु० ५।१६) चन्द्रमा का प्रतिदिन क्रमशः घटने का कारण उसका देवताओं और पितरों द्वारा प्रतिदिन एक कला का पान किया जाना है।

उमावधूर्भवान्—यह कथन सात ऋषियों का हिमालय के प्रति उस समय का है जब उन्होंने शिव के विवाह के लिये उमा को माँगा। त्वत्कुल···यह व्यवहार (ये स्थितियाँ) तुम्हारे कुल की मर्यादा बढ़ाने के लिये पर्याप्त हैं।

तृणबिन्दोः परिशंकितः—इन्द्र तृणविन्दु से भयभीत था जो उग्र तपस्या कर रहा था। देवता और विशेषतः इन्द्र दूसरों की तपस्याओं से सदैव सशंकित

रहते हैं। तुलना शाकुन्तल अंक १—'अस्त्येतदन्यसमाधिभीरुत्वं देवानां' हरिणी एक अप्सरा का नाम।

पृ० ५४ स्वस्त्यस्तु०—कौत्स की उस समय की उक्ति जब उन्होंने रघु को प्रायः अकिंचन पाया और लौटने की इच्छा करने लगे। निर्गलितांबुगर्भं—चातक भी विना जल वाले बादल से प्रार्थना नहीं करता है।

ताभ्यां तथा०—राजा उस अवस्था में पड़े हुए उनके एकमात्र पुत्र के समीप गये और उन दोनों को अज्ञान में किया गया अपना कर्म बतलाया। उपेत्य का अर्थ कुछ लोगों के अनुसार उद्दिश्य है।[1]

दण्डवत्प्रणम्य—पृथ्वी पर लेटकर प्रणाम करते हुए डंडे के समान जमीन पर फैलकर।

रामस्य दर्शनं सुहृदां—राम द्वारा मित्रों का देखा जाना। राम का अपने मित्रों को देखना।

कुलपांशवः—कुलकलंक, कुल के लिए अपमानजनक, जो कुल की कीर्ति में दाग लगाता है।

सः=दिलीपः यज्ञाय=यज्ञ का विधान करने के लिए जो यज्ञ देवताओं को सन्तुष्ट रखते हैं। इन्द्र ने वृष्टि की (शाब्दिक—स्वर्ग को दुहा) जिससे अन्न उत्पन्न हो; इस प्रकार वे दोनों एक दूसरे का उपकार करते थे और दोनों लोकों का पालन करते थे। गां दुदोह—पृथिवी को दुहा (कर लिया)।

ब्रह्मन् का सम्बोधन, केवलात्मन्—जो अकेला और अविभक्त है। गुणत्रयं रजस्, सत्व और तमस्। आगे चलकर सृष्टि के समय ब्रह्म का विभाजन हुआ। सृष्टि, प्रजापालन और विनाश के समय क्रमशः तीनों गुण प्रकट होते हैं।

दुःखात्सुखमुपनतं—वह सुख जो दुःख के बाद आता है, विरोधी अनुभवों के कारण उत्पन्न सुख।

पृ० ५५ अरुणाय कल्पते—अरुण को प्राप्त करने के लिये योग्य है। अरुण सूर्य के आगमन और रात्रि के अवसान की सूचना देता है।

---

१. इसका अच्छा अनुवाद यह होगा—'राजा ने उनके पास पहुँच कर उनसे वह दशा बताई जिस दशा में उनका एकलौता पुत्र था और अपनी करतूत कह डाली।

अनुहुंकुरुते--हुंकार के वदले हुंकार करता है।

तथेति 'ऐसा ही हो'। **सन्तानकामाय**–जो सन्तान की इच्छा करता था।

'तस्याः' का अन्वय **'प्रसादं'** के साथ होगा। अपनी प्रियतमा से गौ की कृपा का वर्णन किया, जिसका अनुमान उनके मुखमण्डल पर आनन्द के चिह्नों से उन शब्दों द्वारा हो रहा था जो मानों वेकार हो गये थे क्योंकि उनकी प्रसन्नता ने ही रानी को घटना की सूचना दे दी।

पुराणशोभां--उसे पहले की शोभा पुनः प्रदान की। **न स्पृहयांबभूव**—रंचमात्र भी उन में से किसी के सुख के प्रति ईर्ष्या नहीं रखता था, क्योंकि उन्होंने इस सुख का पहले ही अपनी राजधानी में भोग किया था।

सानुनीतिः--सानुनयः गिड़गिड़ाती हुई आवाज में।

दिदृक्षुं=त्वं शुभा न वेति द्रष्टुमिच्छन्तं यह तो राक्षसों का स्वभाव ही है कि वे दूसरे की पत्नियों की विषय में पूछताछ करें। **नमस्कुर्याः यदिः** के साथ।

पाठ ८

पृ० ६१ सत्क्रियाविशेषात्—विशेषप्रकार के आदर-सम्मान के कारण (इन्द्र की ओर से) राजा के कहने का यह तात्पर्य है कि उसने कोई ऐसा पुण्यकर्म नहीं किया था जिसके लिये इन्द्र ने इस प्रकार का भव्य स्वागत किया।

सूर्योपस्थानात् प्रतिनिवृत्तं—सेवा करने के उपरान्त लौटा हुआ, सूर्य।

उज्जिहानजीवितां—मरणासन्न, जिसके प्राण छूट रहे हैं।

पृ० ६२ उत्तरोत्तर--अधिकाधिक वढ़बढ़कर बात करना।

तासां—अप्सरसां

मातावद्०--ऐसा पुरूरवा ने हंस से कहा। **तावत्** 'पहले' कोई कार्य करने से पूर्व सज्जनों के लिये प्रार्थना करने वालों का हित अपने स्वार्थ से अधिक महत्वपूर्ण होता है।

तपसे कृतोद्यमां--तपस्या करने के लिये उद्यत। **मुनिव्रतम्**=तपश्चरण-रूपम्।

तदभावे—इत्यादि इसके अभाव में (रक्षा न होने पर) जिस वस्तु का अस्तित्व होता है, उसका भी अस्तित्व नष्ट हो जाता है। अर्थात् व्यक्ति या धन की सुरक्षा नहीं होती।

सः=रघुः **अस्त्रं**—युद्धविद्या। स्वयं उनके पिता उनके गुरु थे।

तस्मात्=विजेता रघु से। **आत्मा संरक्षितः** सुह्मों ने अपनी रक्षा की। **वैतसीं वृत्तिमाश्रित्य**—वेतों की वृत्ति का आश्रय करके, जो जल की धारा के साथ झुक जाता है; अतएव शक्तिशाली शत्रु के सामने झुकते हुए।

हिमवद्०—ये पक्तियाँ मध्यदेश की स्थिति का वर्णन करती हैं।

पृ० ६३ **जन्मकर्मतो मलिनतरजनं**—जिसके लोग अपने जन्म और कर्मों की अपेक्षा अधिक निम्न कोटि के थे।

निर्घृणतर=जिनकी सभी क्रियाएँ उनके दिलों से भी अधिक घृणास्पद थीं।

कुसुमघटित—वह केलि-उपवन को कामदेव के धनुष के समान मानती है, जो फूलों के वने वाणों के कारण सुन्दर लगता है और उपवन भी फूलों पर भौंरों के मँडराने के कारण सुन्दर लगता है। **शिलीमुख**=**बाण,** और भौंरा। **पीतरक्ताः** —पीताश्च ते रक्ताश्च चम्पक और अशोक क्रमशः पीले और लाल होते हैं। और पीतं रक्तं यैस्ते होगा जव इसका अन्वय रजनिचर के पक्ष में किया जायगा।

आत्मसंपद्=आत्मगौरव। **अभिजनात्प्रभृति**--ऊँचे कुल से प्रारम्भ करे।

लब्धप्रसरा—जिसका फैलाव निर्विघ्न या विस्तृत क्षेत्र में था, जो प्रभावशाली था। **दुःखोपचर्या**—जिसकी सेवा कठिनाई से की जा सके, जो कठिनाई से प्रसन्न किया जा सका

विनयाधानं—सदाचार की शिक्षा देते हुए।

नवः=अजः, **नवेतरः**=रघुः।

दृढप्रतिज्ञा वाले उसने उस समय तक योग की क्रियाओं से विराम नहीं लिया जब तक उसने परमात्मा का दर्शन नहीं कर लिया।

स्वनुष्ठित—अच्छी प्रकार संपादित।

वृक्षाद्वृक्षं० यह सीता की उस समय की उक्ति है जब उन्होंने अशोक वाटिका में मारुति को अपने निकट देखा। **पूर्वस्मात्**—वह पहले (रावण) से

भिन्न प्रतीत होता है क्योंकि वह भक्तिपूर्वक राम की स्तुति कर रहा है, या वह यहाँ मेरे अन्दर विश्वास जगाने के लिये मुझ सरलचित्त वाली के निकट आया है।

सः=मारुतिः । तां=सीतां प्रीतेः पराजयमानां-जिन्होंने सीता के संबोधन को असह्य समझा।

प्रभातात् प्राक्=दृष्टानि स्वप्नदर्शनादीनि शुभनिमित्तानि ।

एकाक्षरं एक अक्षर का 'ओंकार'। ओम् सावित्र्यास्तु परं नास्ति=सावित्री से बढ़कर कुछ भी नहीं है, वही प्रसिद्ध गायत्रीमन्त्र है। (इसका चुपचाप जप किया जाता है)।

पाठ ६

पृ० ७० वर्तमानः कविः——=जीवित या समकालीन कवि ।

बद्धभावा=अपना प्रेम तुम्हीं में लगा रखी है। इतोगतं--त्वयि आहितं। लव की कुश के प्रति उक्ति ।

पृ० ७१ संसर्गमुक्तिः खलेषु=खलसंसर्गमुक्ति=दुष्टों की संगति से दूर रहते हुए।

सन्तानार्थाय विधये=कुछ ऐसे कर्मों के विधान के लिये जो सन्तान प्रदान करने वाले होते हैं।

इन्द्र की कामदेव के प्रति उस समय की उक्ति जब वे उसको अपने कार्य के लिए भेज रहे थे। आत्मसमं--तुम जो मेरे समान ही हो ।

भूधरतामवेक्ष्य-पृथ्वी को धारण करने की उसकी सामर्थ्य को देखकर।

कृत्स्नं गोत्रमंगलं=सीता जो मंगल की मूर्ति थी दोनों कुलों के सौख्य का साक्षात् रूप थीं ।

ईशं उनको, स्वामी राम । नितान्त०--जो सीता के विषय में क्रूर विचार रखते थे, अर्थात् उन्हें त्यागने का विचार ।

परकर्मापह=अपने शत्रुओं के कार्यों को समाप्त करते हुए ।

आवृणो०—शत्रुओं के दुर्बल स्थानों पर आघात करके उसने अपनी दुर्बलताओं को छिपा लिया ।

भगवति कमला०--राक्षस ने लक्ष्मी से नन्द को छोड़कर चन्द्रगुप्त से अनुराग करने के कारण उसकी गुणग्राहकता के अभाव के विषय में कहा है।

साक्षात् प्रिया०--यह विदूषक के प्रति दुष्यन्त की उक्ति है जो शकुन्तला के चित्र से आनन्दित हुआ था यद्यपि उसने स्वयं पहले उसके सशरीर उपस्थित होने पर उसकी हँसी उड़ाई थी ।

पृ० ७२ चिरेणानुगुणं० यह सीता के प्रति रावण की उस समय की उक्ति है जब उसने घृणा के साथ उसकी सभी प्रार्थनाओं को ठुकरा दिया । **प्रतिपत्ति-पराङ्मुखी**--मुझे अपना स्वामी मानने के लिये तैयार नहीं ।

स=जनक: आप्तवचनात्--विश्वसनीय मुनियों के शब्दों के अनुसार । मुनि के इन वचनों को सुनकर जनक राघव के पौरुष के विषय में आश्वस्त हो गये, यद्यपि वे एक बालक दिखाई पड़ते थे ।

त्रिदशगोपमात्रके=इन्द्रगोप कीड़े के आकार का ।

पाठ १०

पृ० ८२ विश्रंभातिशयप्रसंग साक्षिण्य:=मानी हुई घटना का प्रमाण प्रस्तुत करने वाले हम दोनों के बीच ।

एवमवस्थिते--इन स्थितियों में ।

पृ० ८३ तत्र प्रभवति देवी—देवी को ऐसा करने का पूरा अधिकार है ।

अयं जन:=मालती, **न खलु**—वह व्यक्ति निश्चय ही मरा नहीं है जिसकी याद उसकी प्रियतमा कर रही है ।

समरशिरसि=युद्ध के मोर्चे पर घमासान युद्ध में ।

सर्वदेवमयस्य=वह नारायण के समान था, जो सभी देवताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, क्योंकि सभी देवता उनमें निवास करते हैं । धर्म मन में निवास करता था अर्थात् वह धर्म के समान न्यायी था ।

नियतमिह०--निश्चय ही इसमें सम्पूर्ण रूप में निवास करता हुआ धर्म कलियुग की क्रीडाओं को भंग करता हुआ (कलियुग के प्रभाव से व्याप्त न होकर प्राचीन) कृतयुग को ध्यान नहीं रखता जो धर्म का अपना युग है । इस आश्रम में निवास करने वालों का जीवन इतना उत्तम है ।

तव प्रसादस्य—किन्तु तुम्हारे विषय में तो तुम्हारी कृपा के पहले ही आशीर्वाद दिखाई पड़ते हैं जो कारण के बाद कार्य की उत्पत्ति के सामान्य नियम के विपरीत है ।

शीर्षच्छेद्यः=सिर काटना। ते=त्वया।

अकामयेतां = कौसल्या और सुमित्रा दोनों माताओं के लिये आया है।

यह सीता की लक्ष्मण के प्रति उस समय की उक्ति है जब उनका परित्याग कर दिया गया था। तद्वचनात्—मेरे नाम से।

द्वादशः परिवत्सरः लोक में रानी के अभाव के १२ वर्ष व्यतीत हो गये।

पृ ८४ मैथिल्यभिज्ञानं—मैथिलि अभिज्ञानं

सा=सीता। पुरः...अगम्य लंका में वानर के प्रवेश को अनहोनी घटना मानते हुए।

सीता का प्रतिबिम्ब। पहली बार मारुति के वाटिका में उतरते हुए देखते समय पहले वह उन्हें रावण समझती हैं; ये पंक्तियाँ इस बात का उल्लेख करती हैं कि वह व्यक्ति राम द्वारा भेजा गया है। इस समुद्र के उत्तर में निवास करते हुए राम भला कैसे सागर के दक्षिण स्थित इस नगर के विषय में जान सकते हैं?

पाठ ११

पृ ६० अलमल० यह परिव्राजिका की उस समय की उक्ति है जब उससे दोनों नर्तकियों के विवाद का फैसला करने के लिये कहा गया। 'पत्तने' इत्यादि एक प्रश्न है। नगर के निकट में ही होने पर क्या कभी रत्न की परीक्षा गाँव में होती है? इसका तात्पर्य यह है कि उसके द्वारा बताये गये कर्तव्य को करने के लिये केवल राजा ही योग्य थे।

मा तावत्—अरे, ऐसा मत करो। रुको, रुको।

किं दीपिकापौनरुक्त्येन—बेकार, दूसरे दीपक से क्या प्रयोजन है? इन दीपकों की क्या जरूरत थी? ये बेकार हैं।

किं वृत्तं—उसका क्या हुआ? उसके साथ क्या बीती?

पृ० ६० रघुकदम्बकेषु—रघुओं में श्रेष्ठ

स्मर्तव्यशेषं नयामि :—केवल उसकी याद भर बाकी छोड़ देता हूँ। उसका वध कर देता हूँ।

बीज—स्वयं सीता भी जब गर्भिणी थी तो उसका परित्याग किया गया था।

सा=पृथिवी। मा मेति व्याहरत्येव—जिस समय वे (स्वामी) अरे ऐसा मत करो, उसे मत ले जाओ' कह रहे थे।

पृ० ६१ पतनाय वल्लरी—(एक वृक्ष पर आश्रित) लता निश्चित रूप में गिरती है।

मनस्वी व्यक्ति भय उपस्थित होने पर घबड़ाते नहीं है।

सन्तानवाहिनी—निकट में बहती हुई, निरन्तर कार्यरत।

स्रोत: सहस्रैरिव संप्लवन्ते—एक साथ मानों सहस्रों धाराओं में बहती हैं; अपने को प्रवाहित करने के लिए सहस्रों धाराएँ बना लेती हैं।

पंचभि: पाँच तत्व, **पञ्चत्वं गते**—पाँच तत्त्वों की दशा में पहुँच जाने पर अपने मौलिक रूप में आ जाने पर।

तस्मिन्=अस्त्रे; कुशने अपना सोने का कंगन प्राप्त करने के लिए वासुकि पर जिस अस्त्र का प्रयोग किया। **समाविद्ध**—लहरों के समान हाथों के लहराते रहने पर। **रोधांसि निघ्नन्**—उग्ररूप में टकराते हुए।

राक्षस मलयकेतु से कहता है कि हरएक वस्तु तैयार है और सभी स्थितियाँ उनके अनुकूल हैं **त्वद्वांछान्तरितानि** आपकी इच्छा से अवरुद्ध। अर्थात् आप केवल आगे बढ़ने की इच्छा करें सभी चीजें तैयार हैं, (आपके इच्छा करने भर की देरी है) यहाँ प्रयुक्त अनेक भावे विभक्तियाँ अनुकूल स्थितियों का निर्देश करती हैं। **चलिताधिकारविमुखे**—उदासीन, अपने अधिकार-पद से च्युत। **मार्ग···योग** व्यर्थ है। जिसका कार्य केवल पथप्रदर्शन करना है।

अस्त्रज्वाला०—ये अश्वत्थामा के शब्द हैं 'जिसने शत्रुसेनारूपी समुद्र में, जो उन पर छोड़े गये वाणों से अग्नि की ज्वालाओं से युक्त था, वाडवाग्नि का कार्य किया।'

पाठ १२

पृ० ६८ श्रीशस्त्वाऽवतु० इन चारों पंक्तियों में तृतीया विभक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले सभी संक्षिप्त रूपों 'व-न:' का प्रयोग दिया गया है। मेरे या तुम्हारे द्वारा सेव्य'

कार्यवशात् 'अपने प्रयोजन से' जिससे मैं उस समय की घटनाओं को समझ सकूँ और उनका अनुमान कर सकूँ।

तदेव पञ्चवटी० ये सीता के वचन हैं। **जातनिर्विशेषा:** अपने बच्चों के समान।

वाग्विषयीभूतः—जो हमारी बातचीत का विषय बना।

सन्दिशन्ति प्रेमसन्देश भेजती हैं। समुपसर्पन्ति—अपने प्रियों के समीप आती हैं।

एकः—अपरः अज और रघु। प्रभुशक्ति--संपदाः—उसकी प्रभुसत्ता के वैभव द्वारा। प्रभुशक्ति के अन्तर्गत कोष, दण्ड और बल आते हैं। प्रणिधान-योग्या=योग के अभ्यास द्वारा। शरीरगोचरान्=शरीर में दिखाई पड़ने वाला।

कामैस्तै०—कृष्ण अर्जुन से कहते हैं: 'जो अनेक इच्छाओं से विवेकशून्य हो जाते हैं' दूसरे देवताओं की पूजा करते हैं, जो अनेक क्रियाएँ करते हैं और स्वयं अपने स्वभाव से नियंत्रित रहते हैं।'

पृ० ६६ लक्ष्म्योन्मादिता—ये पक्तियाँ उन लोगों का वर्णन करती हैं जो धन पाकर मदोन्मत्त हो जाते हैं। व्यसनशत्···'यद्यपि सैकड़ों विपत्तियों के शिकार बनते हैं, यद्यपि वे अनेक संकटों से घिरे होते हैं तथापि वे यह नहीं देखते कि उनका नाश वैसे ही निश्चित है जैसे चींटी की बाँबी के ऊपर उगी हुई घास के ऊपर जल की बूंदे।

मणिदर्पणमिव—स्वच्छ और पारदर्शी जल के कारण यह मानों सौन्दर्य की देवियों के लिये दर्पण का काम करता था।

नरपतिः—चेदिराज। आविश्चकार—प्रस्तुत किया, प्रदर्शित किया।

अर्थोष्मणा विरहितः—धन की गर्मी शान्त होने पर धन-मद से शून्य।

काप्यभिख्या···कुहरे से मुक्त होने पर जैसे चित्रा और चन्द्रमा का संयोग होने पर दिखाई पड़ता है।

कोप्येष एव० निन्दा करने वाले की यह विशेषता होती है कि वह एक के कान में विष भरता है और (पीठ पीछे निन्दा करके) दूसरे का नाश करता है, जबकि औरों के काटने पर जिसे काटा जाता है उसी का नाश होता है।

रूपं तदोजस्वि०···ये पंक्तियाँ अज के गुणों का वर्णन करती हैं। राजकुमार अपने (उत्पन्नकर्ता कारण) पिता से भिन्न नहीं था जैसे कि एक दिये से जलाये गये दूसरे दिये (की रोशनी या प्रकाश) में कोई अन्तर नहीं होता।

पाठ १३

पृ० १०५ ते गतिं ज्ञास्यन्--'तुम्हारा भाग्य जानने की इच्छा करते हुए'। तुम्हारा क्या हाल है ?

वारितप्रसरः—जिसका विकास अवरुद्ध हो गया है।

श्रुतमृषेः ऋषि से सुना गया, जिसके विषय में उसने ऋषि से सुना था। राघव उत्तेजित हो गये यद्यपि उन्हें अपने पूर्वजन्म के कर्मों का ध्यान नहीं रहा (जबकि उन्होंने वामन अवतार लिया था)।

आसीच्च मे मनसि···· यह महाश्वेता की उस समय की उक्ति है जब उसका मन काम के वशीभूत होकर पुण्डरीक की ओर आकृष्ट हो गया था।

विवादे दर्श०—यह गणदास की उस समय की उक्ति है जब धारिणी उसे अपनी शिष्या मालविका के रूप में कला प्रदर्शित करने के लिये आज्ञा नहीं दे रही थी।

क्रियासंक्रान्ति--अपनी विद्या या क्षमता को दूसरे को हस्तान्तरित कर देने की शक्ति।

क्षेमाय—सुरक्षा के लिए। शत्रून् हन्तीति शत्रुघ्नः और यही उनके नाम की सार्थकता है।

पृ० १०६ **क्रथकैशिकेन्द्रः**=भोजः, वैदर्भों के राजा। चन्द्र····समुद्र के समान, जिसकी उठती हुई लहरें चन्द्रमा से मिलने का प्रयत्न करती हैं। ऐसी घटना ज्वार के समय होती है।

पाठ १४

पृ० १११ **अत्रभवतोः**--हरदत्त और गणदास का।

ज्ञानसंघर्षः=शास्त्रार्थ, ज्ञान के विषय में प्रतिद्वन्द्विता।

तयोर्बद्धयोः परस्परेण--यह विदूषक के प्रति अग्निमित्र की उस समय की उक्ति है जब विदूषक ने उनसे बताया कि किस प्रकार उसने मालविका और बकुलविका को मुक्त करने के लिए माधविका को प्रेरित किया।

नास्मि भवत्योरीश्वर० यह पुरूरवा चित्रलेखा और उर्वशी के प्रति उस समय की उक्ति है, जब ये दोनों अप्सराएँ इन्द्र का कार्य करने इन्द्र के समीप गयीं थीं।

पृ० ११२ अवश्यकर्तव्यतामापतितं—ऐसा हो गया है कि उसे जरूर कर डालना चाहिए। अत्यन्त आवश्यक कार्य हो गया है।

दक्षिणाक्षि—दाहिनी आँख को दबाकर किये गये इशारे को समझने के लिये कह देना चाहिए। तुम उनके ऊपर इस तरह देखो कि वे तुरत तुम्हारा भाव समझ लें।

आपदि येनोपकृतं० मैं ऐसे व्यक्ति को सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ जो विपत्ति में सहायता करने वाले और हँसने वाले का क्रमशः कृतज्ञ होता है और प्रतिकार करता है।

आपन्नस्य० राजा को ऐसे व्यक्ति का दुःख दूर करना चाहिए जो पीड़ित है और उसके राज्य में निवास करता है।

उत्क्रान्तमिवासुभिः—मानों उनके प्राण निकले जा रहे थे।

कार्यव्यग्रत्वात्…यह राक्षस की उस समय की उक्ति है जब उससे बताया गया कि कोई व्यक्ति उससे आवश्यक कार्य से मिलना चाहता है।

आः दुरात्मन्…इस प्रकार जब तुम अपने पाप का घड़ा पूरी तरह से भर लोगे तो पाण्डवों का क्रोध तुम्हारे नाश के लिए एक छोटा निमित्त-मात्र बनेगा।

शोकं क्षोभं…धार्यते—शोक से व्याकुल हृदय को रोने से ही शान्ति मिलती है।

पृ० ११३ पृष्ठतः कृत्वा—पीछे करके, अभिभूत करके।

आरूढमद्रीन्…यह रघु के यश का वर्णन है। अनुबन्धिशाश्वत, सदैव चलता रहने वाला। इयत्तया परिच्छेत्तुं नालं—उसे किसी सीमा से नहीं घेरा जा सकता, उसे सीमा नहीं दी जा सकती।

हसितं मुद्रा प्रसितं—आनन्द के साथ हँसी चलती रही। विलसितं—आनन्दपूर्ण क्रीड़ाएँ जो प्रेम से सजीव थीं समाप्त हो गईं। हतसंमदा जिसका मद समाप्त हो गया। पुरहितं…जो नगर के लिये हितकारी था और जो पुरवासियों को अभीष्ट था वह नहीं किया गया।

शार्ङ्गरव—दुष्यन्त को सन्देश भेजते समय कण्व ने ऐसा कहा है। संयमधनान्—वासनाओं का दमन ही जिनकी एकमात्र सम्पत्ति है। कथमप्य-बान्धवकृतां—किसी भी प्रकार अपने बन्धुओं से न पाली गई। उसके ऊपर

आप अपनी पत्नियों के समान ही उसी सम्मान के साथ मानेंगे जिस सम्मान के साथ सबको मानते हैं। इसके आगे तो भाग्य पर है, उसके विषय में कन्या के घर के लोगों को कुछ नहीं कहना चाहिए।'

पाठ १५

पृ० १२० मिथ्यावार्तासन्देशकैः—झूठे वर्णनों और सन्देशों द्वारा।

इष्टिपशुमारं मारितः—यज्ञ के वध्य पशु के समान मार डाला गया।

पृ० १२१ चित्रलेखाद्वितीया—चित्रलेखा को अपने साथ लेकर।

क्रोधविह्वला'शूर्पणखा के लिये आया है। **भ्रातरौ**=खर और दूषण।

लतानुपातं—बार-बार लताओं को झुकाकर।

नद्यवस्कन्द नदी के जल का मन्थन करके जल पीता है।

चारुशिलोपवेषं—किसी सुन्दर शिला पर बैठकर।

विश्वासप्रतिपन्नानां—जिसने विश्वास कर लिया है। विश्वास में पड़े हुए।

पृ० १२२ लज्जां...उन्मथ्य—लज्जा की सभी भावनाओं को जीत कर। सभ्यता का परित्याग करके और मन की शक्ति का समूल नाश करके। **मन्थर-विवेकं**—निर्णय करने में मन्द।

अमन्दलीलया—चंचल क्रीडा के साथ।

स्थिते अर्धरात्रे—आधी रात होने पर।

विप्रदर्शं···यत्ना—जिसने ऐसे सभी व्यक्ति का वध कर डालने का प्रयत्न किया जिसे वह ब्राह्मण समझ लेती थी।

जिघांसुवेद···स्त्र: जिसको घातक समझता था उसके वध के लिये उसने तेजपूर्ण अस्त्र ले लिया।

विद्युतप्रणाशं···गुरूणाम्—उसका मर जाना या सूख जाना अच्छा है जो कठिन कार्य में अपने से बड़ों की आज्ञा का अनुसरण नहीं करता; जब उसे दूर जाने के लिये कहा जाता है (जो अधिक कठिन होता है) तब की बात ही क्या कहनी?

यो नष्टानपि···राक्षस मलयकेतु अकारण उसके चरित्र पर सन्देह करने का दोष लगाता है। वह कहता है: 'यह बात उसके दिमाग में क्यों नहीं आई कि

जिसने अपनी स्वामियों की मृत्यु के बाद भी उनका हित ही किया वह कभी उस समय तक अपने शत्रुओं से सन्धि नहीं कर सकता जब तक कि वह सुरक्षित और स्वस्थ होकर जीवित है।'

———

पाठ १६

पृ० १२८ **नौ गुणदोषतः परिच्छेत्तुं**—हमारे गुणों और दोषों की परीक्षा करने के लिए। हमारी अच्छाइयों और बुराइयों को जानने के लिये।

समयपूर्वं—प्रतिज्ञा करके, शर्त करके।

नार्हति तातो—यह पुरुरवा के पुत्र की उस समय की उक्ति है जब उसके पिता राज्य का शासन करने का महान् उत्तरदायित्व उसे सौंप रहे थे।

का गणना—क्या कहना? यह तो इस संबन्ध में और भी सही उतरती है।

अचिराधिष्ठितराज्य—जिसने हाल ही में राज्यसत्ता प्राप्त की है। जिसकी सम्प्रभुता कुछ ही दिन पहले स्थापित हुई है।

अरूढमूलत्वात्—प्रजा के मन में जिसकी जड़ें अभी गहरी नहीं जम पाई हैं और जो इस कारण एक नये लगाये गये वृक्ष के समान है जिसकी जड़ें जमीन में नीचे नहीं गई हैं।

पृ० १२९ **'वृत्तं रामस्य···शृण्वताम्'**—राम के जीवन का वर्णन किया गया था। रचना वाल्मीकि की थी और उन कुश लव की वाणी किन्नरों की सी थी अतएव उसमें कौन सी ऐसी बात थी जो सुनने वाले के मन को मुग्ध कर लेने वाली नहीं थी?

अनुभवसमां वेदनां—अनुभूत वेदना के समान कष्ट। वैसा ही कष्ट जैसा सचमुच विपत्ति आने पर होता है। **स्मरण**—अतएव प्रसन्न होइए, अपने जीवन को बीती बातों की याद द्वारा शोक की अग्नि में इंधन मत बनाइए।

न खलु० भीम ने व्यंग्यपूर्वक ऐसा कहा है।

वेगोदग्रं—वेग के कारण भयानक। भयानक प्रभाव वाला। **अयं···भरः** यह श्रेष्ठता या प्रधानता उनमें स्वाभाविकरूप में विद्यमान है (जात्या)।

अतोऽत्र···यह ब्रह्मचारी वेषधारी शिव की उक्ति है।

बहुक्षमा—अपारधैर्य धारण करने वाली ।

तमर्थमिव···सप्तर्षियों की हिमालय के प्रति उक्ति : अपनी पुत्री का उनके साथ संयोग कीजिए जैसे शब्दों का अर्थ के साथ संयोग होता है

शुचो वशं गन्तुं नार्हसि—शोक के वश न होवें ।

पृ० १३० **यमौ**=जुड़वा, अर्थात् नकुल और सहदेव ।

कथैव नास्ति—इसकी वात ही नहीं उठती । **विस्फुरति**—जिसने अपना धनुष चढ़ा लिया है या उसने अपने धनुष और चक्र को उठाया ।

पाठ १७

पृ० १३७. **'भर्तुः'** का अन्वय 'प्रतीप' के साथ होगा ।

इस प्रकार युवतियाँ गृहिणियों का पद प्राप्त करती हैं, इसके विपरीत स्वभाव वाली परिवार के लिए अभिशाप ही होती हैं ।

अनन्यभाजं—किसी दूसरे में अनुरक्त नहीं । **तथ्यमेव**—क्योंकि आगे चलकर हर के रूप में उसने इसी प्रकार का पति प्राप्त किया । महापुरुषों के वचन इस संसार में कभी मिथ्या नहीं होते ।

पुरीमवस्कन्द ० यहाँ रावण की शक्ति का वर्णन किया गया है । जो रात-दिन नमुचि के शत्रु (इन्द्र) से लड़ते हुए स्वर्ग को व्याकुल किये रहता था । **पुरी**=अमरावती ।

घनबद्ध ···लोग अपने मित्रों और सम्बन्धियों के साथ गुप्त वार्ता करके आनन्दित होवे ।

पृ० १३८ **नीचैर्गच्छति**···मनुष्य के जीवन में उसी प्रकार उत्थान-पतन होता है जिस प्रकार पहिए के चलने में ।

पाठ १८

पृ० १४४ **देव यदि**....चन्द्रापीड़ के चरित्र की प्रशंसा में यह शुकनास की उक्ति है ।

लभेत वा....जो श्री को प्राप्त करने की इच्छा करता है वह उसे पा सकता है और नहीं भी पा सकता है, किन्तु जिस व्यक्ति को लक्ष्मी चाहती है वह उसे क्यों नहीं मिल सकती ?

कार्यहन्तारं—काम बिगाड़ने वाले।

उत्सीदेयु...यहाँ कृष्ण धार्मिक क्रियाओं के महत्त्व का वर्णन करते हैं।

कथं भवेत्=इसकी क्या हालत होगी? तत्तुल्य=भीष्मद्रोणतुल्य।

गूढा नूपुर....राजा उन अनेक पदार्थों का नाम लेते हैं जिनके उर्वशी द्वारा किये जाने की उन्हें आशा है गूढा—स्वयं गुप्त रहकर, छिपी रहकर। बलादानीयेत पदात्पदं—एक-एक पद करके बलपूर्वक लायी जा सकती है, वह आगे बढ़ने में बहुत डर रही है।

पृ० १४५ ध्रुवेच्छाम्=दृढ विचार वाली। कौन उस मन को जो अभीष्ट फल की प्राप्ति में दृढता से लगा हुआ है और नीचे की ओर बहते हुए जल को विपरीत दिशा में मोड़ सकता है।

किं वा...यह सीता की उक्ति है; अथवा मैं अपने इस दुःखपूर्ण जीवन की उपेक्षा करूँ जो तुमसे सदैव के लिये वियुक्त हो जाने से व्यर्थ का बोझ है (अर्थात् मैं खुशी खुशी इस जीवन को त्याग दूँगी), यदि आप द्वारा दिया गया गर्भ, जिसकी रक्षा अवश्य की जानी चाहिए, मेरे मार्ग में विघ्न न होता।

दंष्ट्रान्तरात्—पैने दाँतों से।

'भूतये' का अन्वय अगली पंक्ति में आये हुए 'नृपतेः' के साथ होगा।

वे ही राजा के सच्चे सेवक हैं; और लोग तो पत्नियों के समान हैं जो अपने हित के लिये पतियों का अनुगमन करती हैं।

जीवितापहा—घातक। प्राण ले लेने वाला।

——

पाठ १९

पृ० १५० आविर्भूतज्योतिषां—जिसको अध्यात्मज्ञान का परम प्रकाश प्राप्त हुआ है।

प्राणैः—उसे प्राणों से हीन नहीं किया। अपि तु किन्तु उसने जिसका विचार अज्ञेय था, उसके सभी घावों के अच्छे हो जाने पर उसी वन्दीगृह में डाल दिया और इसकी ज्योतिषियों से गणना करवाई।

प्रसेदुः—चमक उठे। प्रदक्षिणार्चिः—अग्नि ने दाहिनी ओर अपनी लपट निकालकर उस आहुति को स्वीकार किया।

परिमेयपुरःसरौ––थोड़े से सेवकों के साथ (जिन्हें गिना जा सके)

अनुभावविशेषात्––अपने उत्कृष्ट प्रकाश के कारण ।

अत्यगादाश्रमं––मुनि की तपस्या में विघ्न पड़ने के भय से न रुककर आश्रम के निकट से चले गये ।

पाठ २०

पृ० १६२ तौ चेद्राजपुत्रौ––यदि वे दोनों राजकुमार विना किसी वाधा के बढ़े होंगे तो वे इस समय तक तुम्हारी आयु के हो गये होंगे ।

नामधास्यत्० यह हिमालय के प्रति सप्तर्षियों की उक्ति है । यदि आपने पृथ्वी को समूल नहीं संभाला होता तो शेषनाग अपने कोमल फणों पर उसका बोझ कैसे संभालते ।

पृ० १६३ असौ=कपालकुण्डला । पापं=मालती का वध ।

सिध्यन्ति––सेवक वड़े-वड़े कार्यों में भी सफल हो जाते हैं वह उनके स्वामियों द्वारा कार्यनिर्धारण में उनके प्रति प्रदर्शित प्रतिष्ठा के कारण ही होता है ।

अन्यल्लिखितं––उसके द्वारा लिखा गया कोई और पत्र ।

स्पृहणीयशोभं––जिसकी सुन्दरता चाहने योग्य थी । परस्परेण का अन्वय 'द्वन्द्वं' के साथ होगा इन दोनों को जोड़े के रूप में नहीं माना है ।

मोहकलिलं––अज्ञान के कारण बुद्धिभ्रम या व्याकुलता । निर्वेदं गन्तासि... जो कुछ तुमने सुना है या सुनोगे उसके प्रति उदासीन हो जाओगे । श्रुतिविप्रतिपन्ना––तुम्हारे कथन से भ्रम में पड़ा हुआ ।

भयाद्रणादुपरतः...महारथी और महायोद्धा यह सोचेंगे कि भय के कारण तुम युद्ध से विरत हो गये हो तव तुम जो उनके द्वारा महान् समझे जाते थे, तुच्छ और नगण्य हो जाओगे ।

पाठ २१

पृ० १६६ कान्तमात्मीयं पश्यति––अपनी वस्तु को सभी सुन्दर समझते हैं ।

पृ० १७० द्वंद्वसंप्रहारं—पारस्परिक संघर्ष । प्रत्युपस्थिते—जब यह सब हो गया ।

अल्पप्रभुः—अत्यन्त शक्तिहीन । अन्धकारतामुपयाति मन्द हो जाता है ।

उत्कर्षनिकषः—श्रेष्ठता की कसौटी या मानदण्ड । ताः स्वचारित्र्य०—राम की वाल्मीकि के प्रति उक्ति । ताः=प्रजाः ।

सभाजनाक्षराणि पातयिष्यामि—मैं तुम्हारी ओर से कुछ बधाई (अभिनन्दन) के शब्द कहलाऊँगा ।

पृ० १७१ अथ धर्मा०—महाश्वेता के कहने का यह तात्पर्य है कि यदि वह धर्म की आज्ञा के अनुसार कार्य करते हुए मरने के लिये तैयार होती तो वह कपिञ्जल की प्रार्थना को ठुकरा देती और साथ ही साथ उसे पुण्डरीक की मृत्यु का पाप भी लगता ।

अगृहीते राक्षसे—जब तक राक्षस जीत नहीं लिये जाते ।

यदि यथा वदति—यह क्रुद्ध शार्ङ्गरव की शकुन्तला के प्रति उस समय की उक्ति है जब राजा ने उससे विवाह करने की बात अस्वीकार कर दी । तथा त्वमसि=जारिणी ।

क्रियार्थं=धार्मिक अनुष्ठान के लिए ।

एनं=आत्मा । नित्यजातं—नित्यं-मृतं—रोज जन्म लेने वाले और रोज मरने वाले ।

लक्ष्मीं तनोति=शोभा की वृद्धि करता है ।

पाठ २२

पृ० १७८ स्वरसंयोगः—स्वरों का मेल । ध्वनि ।

अतिभूमिं गतेन=चरमसीमा पर पहुँचे हुए, नितान्त ।

पृ० १७९ अहो जाने—ऐसा लगता है ।

संतः परीक्ष्य०—बुद्धिमान् व्यक्ति सोच समझ कर एक या दूसरे पक्ष का आश्रय लेते हैं और मूर्ख व्यक्ति दूसरे के विचारों से ही प्रभावित होकर कोई कार्य करता है ।

चिन्ताविषघ्नः—चिन्ता रूपी विष का नाश करने वाला ।

लिम्पतीव···घोर अन्धकार के कारण कोई वस्तु वैसे ही नहीं दिखाई पड़ रही थी जैसे दुष्ट व्यक्ति की सेवा व्यर्थ होती है ।

न वेद्मि—वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, प्रेमाधिक्य के कारण अथवा···मैं नहीं जानता। **सद्योविपाकस्य**—जिसका फल तत्काल मिल गया।

पात्रविशेषन्यस्तं—किसी उत्तम, योग्य पात्र या व्यक्ति में रखा गया या दिया गया। **गुणान्तरं**—उत्कृष्ट गुण।

पृ० १८० **स सखा**, तुम्हारा मित्र कामदेव। **दीप इव**···मैं उस दीपशिखा की भाँति हूँ जो असह्य विपत्तिरूपी धुएँ से घिरा हुआ होता है।
स्वशरीर···चूँकि मनुष्य का शरीर ही वियोग प्राप्त करता है (अथवा शरीर का भी संयोग और वियोग होता है) तो बताए कि सांसारिक विषयों से वियोग बुद्धिमान् व्यक्ति को कष्टकारक क्यों होगा (जैसी पत्नी पुत्र से वियोग)।

किमात्मनिर्वा···यह राम की उस समय की उक्ति है जब उनका मन इस दुविधा में पड़ा हुआ था कि वे सीता का परित्याग कर दें या अपनी निन्दा को सुनी अनसुनी कर दें। **एकपक्षाश्रय**—कोई एक मार्ग अपनाने का निर्णय कर सकने में असमर्थ। उनका मन झूले के समान आगे-पीछे डोल रहा था।

पाठ २३

पृ० १८५ **भर्तृगतया**=पति के संबन्ध में। **गतया**=विषय में।
उन्नमितोपदेशः गणदासः—गणदास के उपदेश सबसे उत्कृष्ट पाये गये।
देवस्य=दुष्यन्त का। यह द्वारपाल की उस समय की उक्ति है जब वह कण्व के शिष्यों के आगमन की सूचना राजा को देने जा रहा था।
उपरोधकारि—व्याकुलता या परेशानी उत्पन्न करने वाला।

निवार्यतामालि···यह पार्वती की अपनी सखी के प्रति उक्ति है। **स्फुरितोत्तराधरः**=स्फुरणभूयिष्ठः अधरो यस्या सा, जिसके ओंठ फड़क रहे थे; बोलने का प्रयत्न कर रहे थे अथवा जिसके ऊपर और नीचे के ओठ चल रहे थे।

तस्मात्=महतोऽपभाषमाणात्।

पृ० १८६ **परोक्षमन्मथ**—जिसे प्रेम का कोई अनुभव न हो। जो प्रेम के प्रभाव से दूर हो। **परिहासः**—मित्र! जो कुछ मैंने हंसी में कहा उसे गम्भीरता के साथ मत समझो।

आजन्मनः शाठ्य···यह शार्ङ्गरव की दुष्यन्त के प्रति उस समय की उक्ति है जब राजा ने यह कहा कि उन्हें शकुन्तला के वचनों पर विश्वास नहीं था। **शाठ्यमशिक्षितः**—धूर्तता न जानने वाला। **अप्रमाणं**=उसे प्रमाण नहीं माना जाता है। **विद्या इति**—इसे विद्या की नियमित शाखा मानकर।

त्वं यस्य नेत्रयोः पथि स्थिता—जिसकी निगाह में तुम अकस्मात् आईं हों और इस कारण आँखें **अवंध्य**—(व्यर्थ नहीं, अपना फल प्राप्त करना) हो गईं।

रूढसौहृद—गाढ़ी मित्रता।

न केवलं दरीसंस्थं—यह हिमालय की सप्तर्षियों के प्रति उक्ति है।

रजसोपि परं—रजस् गुण से भी बढ़कर।

न केवलं तद्गुरु०—रघु के पिता न केवल सम्प्रभु थे किन्तु भूमि पर अद्वितीय धनुर्धारी भी थे।

सुखश्रव=सुनने में सुखकारी।

दिवौकसां पथि=आकाशी।

अन्यथावृत्ति=परिवर्तित, व्याकुल।

कंठश्लेषप्रणयिनि—कण्ठ का आलिगन करने की इच्छा करते हुए।

पृ० १८७ अशिक्षितपटुत्वं=अशिक्षित, अपटु।

क्व रुजा···अग्निमित्र के कहने का तात्पर्य यह है कि कामदेव के बाणों की कष्टदायी चोट का उनके कोमल और पुष्परचित बाणों से साम्य नहीं बैठता। अतएव कहा गया है कि वे जितने ही कोमल होते हैं उनकी चोट उतनी ही करारी होती है।

दर्शनाश्वासि—उसके प्रेम का प्रदर्शन देखकर सन्तोष या आश्वासन प्राप्र करता है।

रति···हम दोनों की इच्छाएँ सन्तोष प्रदान करती हैं। हम एक दूसरे से प्यार करते हैं यह विचार ही हमें सुखी बनाता हैं।

पाठ २४

पृ० १९४ आर्ये कृतपरिश्रमोस्मि—वह सूत्रधार की अपनी पत्नी के प्रति उस समय की उक्ति है जब वह ग्रहण के अवसर पर ब्राह्मणों के सम्मान मे

भोज का प्रवन्ध कर रही थी किन्तु सूत्रधार के विचार में यह उस समय उचित न था।

पृ० १९५ तिष्ठतु पुरस्तात्=थोड़ी देर तक रुके।

भवितव्यं च--और उष्णता के अभाव में दिन निश्चय ही सुखदायी होगा।

प्रणयिप्रियत्वात्--अपने भक्तों या पूजकों के प्रति अपने प्रेम के कारण। तां=मालां।

अत्रभवत्या···जब राजा ने शकुन्तला को अपनी पत्नी स्वीकार नहीं किया तब कुलपुरोहित ने यह परामर्श दिया। अत्रभवती=शकुन्तला, उपदिष्ट, कही गई, भविष्यवाणी की गई। तल्लक्षणोपपन्न:—चिन्हों से युक्त। विपर्यये—यदि परिणाम विपरीत हो।

लब्धान्तरा सावरणे...यह कुश जी अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी के प्रति उस समय की उक्ति है जब वह राजमहल को बन्द रहते हुए भी अयोध्या में प्रविष्ट हो गई।

लब्धान्तरा--प्रवेश प्राप्त कर।

बाहूत्क्षेप--अपनी बाहों को फेंककर, ऊपर उठाकर।

स्त्रीसंस्थानं ज्योति:—स्त्री के रूप में ज्योति की की चमक।

अप्सरस्तीर्थं—एक पवित्र स्थान का नाम।

पृ० १९६ निशितनिपाता:—तीक्ष्णवेग का; तेजी से गिरने वाला।

च-च—प्रत्येक पंक्ति में इसका अर्थ है "ज्योंही"। घनाघन:—घने, ठोस।

पाठ २५

पृ० २०२ ज्ञानवृद्धभाव :—ज्ञान में वढ़ा हुआ। यद्यपि दोनों ज्ञान में वढ़े हुए थे। पुरस्कारमर्हति—प्रधानता दिये जाने योग्य हैं।

मया नाम मुग्ध०···यह विदूषक की उक्ति है जो नृत्य के शिक्षक से 'वायन' प्राप्त करने की आशा रखता था।

अनियन्त्रणानुयोग:—विना किसी हिचक के पूछा जा सकता है।

तत्पाटवात्——काममंजरी की कला, जिसने उसके मन को पूर्ण-रूप से मोहित कर लिया था।

वृद्धकलकले—जिसने जोर की आवाज की थी। **प्रदीप्तशिरसि**—अपना फण निकालकर। **भीतो नाम**—डरा हुआ होने का बहाना करते हुए। 'भयभीत व्यक्ति के समान।'

घुणाक्षरं—लकड़ी या पुस्तक के पन्ने पर दीमकों का काटा हुआ जो संयोग-वश किसी अक्षर आदि के रूप में दिखाई पड़ता हो।

घुणाक्षरन्यायेन—विना आशा के, संयोगवश।

पश्चोतनं नु०···यह राम की उस समय की उक्ति है जब उन्होंने सीता के हाथ के शीतल स्पर्श का असुभव किया।

पृ० २०३ **प्रयोगेणाधिक्रियतां**—प्रयोग किया जाय अर्थात् रंगमंच पर उसका अभिनय किया जाय।

ननु रामभद्र इत्येव···यह राम की उस समय की उक्ति है जब वृद्ध कंचुकी हाल ही राज्याविष्ठित राजा रामचन्द्र को पूर्व अभ्यास के कारण 'रामभद्र' कहकर अपनी गलती समझकर रुक गया। **तातपरिजनस्य**—मेरे पिता के सेवक। अतएव वह राम को महाराज की जगह रामभद्र कह सकता था क्योंकि वह काफी वयोवृद्ध था। **यथाभ्यस्तं**—जैसी आदत पड़ी है; जैसा अभ्यास है।

अष्टादशवर्षदेशीय :—लगभग १८ वर्ष का। जिसकी आयु १८ तक हो रही थी।

अनुज्झितक्रम :——उचित व्यवहार का परित्याग न करते हुए।

आर्तदण्ड :—राजदण्ड धारण कर। **अतनुषु**···समृद्धि के दिनों में वन्धु-वान्धव हो सकते हैं, किन्तु तुम में प्रजा के प्रति वन्धु के सभी कर्त्तव्य विद्यमान हैं। अर्थात् समृद्धि के दिनों में मौज उड़ाने वाले अनेक मिल सकते हैं किन्तु आप सुख और दु:ख दोनों में ही प्रजाओं के सच्चे वन्धु हैं।

करणोज्झितेन—इन्द्रियों से वियुक्त (चेतनाहीन) स्पर्श, दृष्टि आदि क्रियाओं के प्रति असमर्थ।

तैलनिषेकबिन्दुना——टपकते हुए तेल की बूँदों से।

कान्तिप्रदः—प्रकाशयुक्त। **मासो**–वैशाख के महीने में। वसन्त ऋतु में, जब वृक्ष फूलों में लदे होते हैं।

पाठ २६

पृ० २०७ कुब्जलीला--कुबड़े की चाल, कुब्जवृक्ष की गति या टेढ़ी चाल; झुककर चलना।

प्रत्युत्पन्नमति--तुरतबुद्धि, प्रतिभासम्पन्न।

खलीकरोति—दुष्टता के साथ कार्य करता है।

यदणीयसि···थोड़े से कार्य या कारण के लिये भी अधिक सम्मान प्रदान किया जाता है।

पृ० २०८ अलमन्यथा गृहीत्वा—मुझे गलत न समझें।

सामान्यत: समान रूप से विद्वान् पुरुष एक दूसरे के यश के प्रति ईर्ष्यालु होते हैं।

चीयते--फल से युक्त होती है; सफल होती है।

कल्याणी--पवित्र गौ।

अदूरवर्तिनी···यह अज की उस समय की उक्ति है, जब दिव्य माला ने इन्दुमती के वक्षस्थल पर गिरकर उसके प्राण हर लिये किन्तु उन्हें (अज को) हानि नहीं पहुँचाई।

पाठ २७

पृ० २१४ अभिनिवेश्य--मन को विषयों की ओर लगाकर।

कालान्तरक्षमो न भवति--विलम्ब सहन करने में असमर्थ है।

ईदृशः--तुम्हारी सृष्टि का ऐसा ही भाग्य है।

यथा यथेयं चपला···इसका अर्थ यह है कि जितना ही धन प्राप्त करने की इच्छा की जाती है उतना ही मनुष्य दुष्कर्म करता है। इसकी उपमा दीपक से दी गई है जिसकी बत्ती को जितना ही अधिक बढ़ाया जाता है उतनी ही धुँआ और कालिख निकलती है।

भष्मावशेषं चकार--राख कर दिया।

यथैव···जिस प्रकार गंगा विष्णु के पैरों से उत्पन्न होने के कारण स्तुत्य हैं उसी प्रकार वह आपके सिर से दूसरी बार निकलने के कारण भी पूज्य हैं। यह शरीरधारी हिमालय पर्वत के विषय में कहा गया है।

उच्छिरसा--जिसका सिर ऊपर आकाश में उठा हुआ है।

अभिषेकान्ते--अभिषेक के अन्त में। जितने से उनका दक्षिणा के साथ किये गये यज्ञ पूरे हो गये-अर्थात् यज्ञ को पूरा करने के लिये पर्याप्त धन।

विरलजनसंपाते--जहाँ थोड़े लोग जाते हों।

विमानोत्संग--राजा के महल का नाम।

पृ० २१६ लोकयात्रासिद्धा--जीवन का यह मार्ग व्यवस्थित है।

क्रोडीकरोति प्रथमं···चूँकि उत्पन्न होते ही मर्त्यता मनुष्य के साथ चिपक जाती है और तब माता एक धाय के समान रहती है इसमें शोक करने की क्या आवश्यकता ?

उभयो:--कुशलवो: लोगों ने उनके गीत पर उतना आश्चर्य नहीं किया जितना राजा द्वारा दिये गये उपहार की उपेक्षा करने पर।

यावत्स्वस्थमिदं०--इस श्लोक में ऐसे लोगों को शिक्षा दी गई है जो आखिरी समय में कार्य करने दौड़ते हैं अर्थात् आग लगने पर कुँआ खोदते हैं।

पाठ २८

पृ० २२३ भवादृशा एव...शुकनास की चन्द्रापीड के प्रति उक्ति है।

सुखं विशन्ति--सुखपूर्वक प्रवेश करता है।

सर्वतोमुखी--प्रत्येक दृष्टि से असीमित, पूर्ण।

यस्य=हिमालय के लिये आया है।

इस पंक्ति का भाव है 'एकता में शक्ति है।'

वरमावाभ्यां० यह चन्द्रापीड की माता की मनोरमा के प्रति उस समय की उक्ति है जब उन्होंने उसे वैशम्पायन को बुलाने के लिये भेजा।

पृ० २२४ असंशयं—शकुन्तला। इसका अर्थ यह है कि सज्जनों का मन गुप्त रूप से उन्हें जो प्रेरणा प्रदान करता है, वही उत्तम पथप्रदर्शक होता है, क्योंकि उनके मन में बुरे विचार आ ही नहीं सकते। अर्थात् सन्देह के स्थान पर सज्जनों का अन्तःकरण ही पथप्रदर्शक होता है।

सुतनु हृदयात्०--दुष्यन्त की शकुन्तला के प्रति उक्ति। एवं प्राया...क्योंकि अधिकांशत: मोह में पड़े व्यक्तियों का ऐसा ही व्यवहार होता है जिन्हें शुभ कार्य्यों में भी अज्ञान अपना प्रभाव नहीं छोड़ता।

एवमादिभिः=उपायैः । सा=उर्वशी तदाश्रयिणी--उससे संबद्ध ।

स्थाने त्वां...वे आपको दूसरा स्थावर विष्णु बताते हैं क्योंकि आपका उदर (भीतरी भाग) विष्णु के समान ही चराचर जीवों को धारण करने वाला है, आश्रयस्थान है ।

आलोके ते···ये पंक्तियाँ यक्षिणी की उस दशा का वर्णन करती हैं जिस दशा में मेघ उसे वहाँ पायेगा ।

भावगम्यं—मन से पहुँचा जाने योग्य, चिन्तनीय ।

मखजं—महान् विश्वजित् यज्ञ से उत्पन्न, 'जिस यज्ञ में रघु ने अपना सर्वस्व दान दे दिया था ।'

इयं=मालविका प्रेष्यभावेन=सेवक के रूप में । वा=समान ।

पंक्तिरथः=दशरथः, पंक्ति का अर्थ है 'दस' । दशरथ ने नियमों का उल्लंघन करके जो किया वह वस्तुतः राजा के लिये निषिद्ध था । (तब उस बुद्धिमान् राजा ने ऐसा क्यों किया ?) क्योंकि विद्वान् पुरुष भी जब तमोगुण से अन्धे हो जाते हैं तो कुमार्ग में पैर डाल देते हैं ।

पृ० २२५ राक्षसः--यह राक्षस की उस समय उक्ति है जब उसने अपने विरुद्ध चाणक्य द्वारा चतुराई से बिछाये गये जाल में फँसा हुआ पाया । शकटेन= शकटदासेन । शकटदास उसका प्रियमित्र था ।

उचितः प्रणय···ऐसा अग्निमित्र ने उस समय कहा जब वह इरावती से मालविका के प्रति अपने प्रणयव्यापार को छिपाने में असमर्थ हो गया । खण्डनहेतवः उसे निराश करने का कारण बनता है ।

किन्तु मानिनी या मनस्विनी स्त्रियों के प्रति नम्रता का व्यवहार नहीं, यद्यपि यह पहले अधिक है, पर स्नेहरहित है ।

पाठ २९

पृ० २३५ शक्तिः—राजशक्ति जिसके तीन अंग होते हैं:—

(१) प्रभावशक्तिः स्वयं राजा का अपना प्रभुत्व (२) मन्त्रशक्ति मन्त्रणा देने वालों की शक्ति । (२) उत्साहशक्ति, बुद्धि-वैभव, शौर्य ।

एवं भो=सन्तानरहित पुरुषों की सम्पत्ति मूल पुरुष के नाश हो जाने पर दूसरे की हो जाती है ।

बलिबंबन्धे जलधि...ये पंक्तियाँ विष्णु के प्रति कही गई हैं। कल्पान्त-दुःस्था=कल्प के अन्त में दुःखपूर्ण दशा में पड़े हुए।

ऊहे=ऊपर उठाया गया या खींचा गया।

परः=शत्रु, क्योंकि वह (शत्रु) और रोग जब बढ़ते हैं तो विद्वान् उन्हें एक समान ही देखते हैं। अपने अन्तिम स्वभाव में (यदि उनकी वृद्धि समय पर न रोकी जाय तो वे अत्यन्त घातक सिद्ध होंगे।

अयमपि च···ऐसा चारणगण अज से उन्हें जगाते समय कहते हैं। त्वत्प्रबोधप्रयुक्तां--तुम्हें निद्रा से जगाने के लिये प्रयुक्त।

सर्वतोमुखं--जिसका मुँह सभी दिशाओं में हो। क्योंकि वे चतुर्मुख थे।

सः=हिमालयः, पितॄणां मानसीं कन्यां—वह बालिका पितरों के मन से उत्पन्न हुई थी (उनकी इच्छा मात्र से उत्पन्न हुई थी, साधारण मनुष्यों के समान नहीं)।

पृ० २३६ नव इव चिरेणापि--मेरा शोक मानो नया हो गया है यद्यपि इतने (१२) वर्ष बीत गये हैं।

असौ=हनुमद्।

एते भगवत्यौ···चूँकि यमुना और गंगा का जल क्रमशः श्याम और श्वेत है इससे वे एक दूसरे को कृष्ण और श्वेत अंगराग प्रदान करती हुई प्रतीत होती हैं।

स्फुटन्निव--आन्तरिक उद्वेगों की प्रबलता के कारण मानों फूटती हुई।

तयोः--राम और उन दोनों (लव और कुश) के बीच अन्तर केवल आयु और वस्त्र का है अर्थात् वस्त्र और आयु को छोड़कर वे दोनों राम से एक दम मिलते रहे। नाक्षिकंपं व्यतिष्ठत—बिना पलके गिराये हुए, उनके ऊपर एकटक देखते हुए।

मरुतः सुत—भीम। दर्शितविक्रियं—जिसने मन का विकार प्रदर्शित किया है अर्थात् क्रोध दिखाया है।

तद्योधाः उसके वीर, योद्धा। उस भूमि पर जो सुन्दर मृगचर्म और सुरा से आच्छादित थी।

श्रुतमधिगम्य—गहरा ज्ञान प्राप्त करके।

शरीरजन्मनः रिपून्--इच्छा, क्रोध, लोभ, इत्यादि छः विकार।

वे शीघ्र ही धन पर चंचल होने का कलंक लगा देते हैं अर्थात् धन ऐसे व्यक्ति को छोड़ देता है और समृद्धि, या लक्ष्मी 'चपला' कहलाने योग्य हो जाती है।

प्रियप्राया--सदैव दया से पूर्ण। जिसका रस पहले या बाद को अपरिवर्तित रहता है। जो सदैव समान रूप से प्रिय रहती है।

न संस्थायते--नहीं रुकेगी, पूरी होगी।

पृ० २३७ सीतां, द्रष्टुं का कर्म। **उपाक्रंस्त**=समुद्रतट की ओर बढ़ा।

यहाँ कृदन्तों का प्रयोग भाववाचक संज्ञाओं के रूप में किया गया है। लंका इन सभी ध्वनियों के साथ इन्द्र की नगरी से निकलने वाली ध्वनि के समान ध्वनि उत्पन्न कर रही थी।

व्यरमत्प्रधाना०—वायुपुत्र कुछ समय के लिए भयभीत रावण को देखकर प्रसन्न हुए, जिससे भयभीत होकर सहस्राक्ष इन्द्र ने युद्ध बन्द कर दिया था।

यावदर्थपदां अर्थ को व्यक्त करने भर के लिए शब्द। अधिक शब्दों का प्रयोग न करके।

अखिलीकृत्य—विना शक्तिहीन बनाए हुए।

नोपयध्वं भयं—डरो मत। महेन्द्रं-एक पर्वत का नाम धैर्यमाधिपत-उनके हृदयों ने धैर्य धारण किया।

पाठ ३०

पृ० २४४ नरपतिप्रबोधनार्थं—राजा की ओर दृष्टि लगाकर बैठे हुए राजाओं का ध्यान आई हुई चाण्डालकन्या की ओर आकृष्ट करने के लिए।

पृ० २४५ अनश्रयैवासीत्—ध्यान नहीं दिया। सुनी अनसुनी कर दी।

समगिरेतां—प्रतिज्ञा की।

प्रतिविधाय तिष्ठत्सु—राजा की संभाव्य योजना के विपरीत कार्य करके, कदम उठाकर।

वर्तयते—अपना जीवन-निर्वाह करता है स्वयं मारे हुए हाथियों को खाकर जीवित रहता है। महापुरुष, जो अपनी शक्ति से संसार को अभिभूत करता है वह अपनी जीविका के लिए दूसरे के ऊपर आश्रित नहीं रहता।

अस्तसंख्य—अगणित, असंख्य । अत्र=इस युद्ध में ।

मृदुव्यवहितं तेजो···इसका अर्थ यह है कि राजा को नम्रता का व्यवहार अपनाकर अपना कार्य सिद्ध करना चाहिए जिस प्रकार दीपक बीच में पड़े हुए कोमल बत्ती से तेल खींचता है किन्तु उस बत्ती के बिना उसकी ज्योति बुझ जाती है ।

'शक्ति' 'बल' और तीन राजशक्तियाँ । षाड्गुण्यं—सन्धिविग्रह आदि छः गुण । अंगानि—अवयव या राज्य के अंग ।

मा कस्यचिदुपस्कृथाः—मेरे लिए किसी भी प्रकार का भोजन न बनावें । (दृश्यपेयभोज्यादिकं किमपि मा कुरु) ।

पृ० २४६ वदमानः—चमकता हुआ (भासमानः)

व्यवहर्तुमभियोक्ष्यते—मुकद्दमा करने के लिये न्यायालय जायगा ।

कौपीनावशेष—दरिद्र बना देना, भिखमंगा ।

सभाजने मे···वह अपने बाएँ हाथ को सदैव उठाए हुए दाहिने हाथ को इस दिशा में उठाकर प्रेमपूर्वक अभिवादन करता है ।

सखीनिव प्रीति० निरभिमान होकर सदैव अपने सेवकों के प्रति मित्र जैसा व्यवहार करता है अपने मित्रों के साथ निकट संबन्धियों जैसा आदरपूर्ण व्यवहार करता है और सम्बन्धियों को इस प्रकार देखता है, मानों वे महत्वपूर्ण अधिकार से युक्त हों ।

कृतपूर्वसंविद्—जिसने पहले ही अपनी योजना सिद्ध करने के लिये षड्यन्त्र बना लिया था ।

समयोपलभ्यं—अज के प्रस्थान के समय मिलने वाला ।

असंविदानस्य···यह अर्जुन की शिव के प्रति उक्ति है ।

संविदामीशं—शक्तियों के स्वामी ।

विरोध्य—उनका, जो मूर्खतावश शत्रुता दिखाते हैं, परन्तु वाद में विनम्र हो जाते हैं ।

शान्तिमधिकृत्य=दुष्कर्मों के पाप को दूर करने के लिये गुरु से प्रायश्चित्त कर्म करने के लिए कहा ।

स्वन्त—जिसका अन्त भला हो । सुखद परिणाम वाला ।

पृ० २४७ भूपतिः—चेदिराज 'यह सम्भव नहीं कि सिंह (कृष्ण) आक्रमण के भय से आसानी से झुक जाँय।'

न्यस्ताक्षरामक्षरभूमिकायां···उन्होंने लेखपट पर लिखे हुए वर्णमाला के अक्षरों का अभी ज्ञान प्राप्त नहीं किया था कि उन्होंने ज्ञानियों की सत्संगति से राजनीतिविषयक शिक्षा के सभी फल प्राप्त कर लिये।

उदधिश्यामसीमां—जिसकी सीमा समुद्र ही था। जहाँ तक समुद्र है।

नगर···उनकी भुजाएँ उतनी लम्बी थी जितनी नगर-द्वार की अर्गला। जो उनके लम्बे और विशाल होने के साथ मांसल थीं।

अवाद्वायु···बुद्धिमानपि—ये पंक्तियाँ रावण की अशोकवाटिका का वर्णन करती हैं।

लतां नर्तयमानवत्—मानों लताओं को मन्दवायु के साथ नचा रही थी।

संत्रस्ताः—रावण से डरा हुआ।

नायासयन्त—इस्तक्षेप नहीं किया। सभी क्रमशः आती जाती थीं।

स्मरात्—कामपीड़ा से।

उत्क्षिप्तगात्रः···अपने शरीर को ऊपर उछालकर हाथी ने मानों पर्वतराज के समान ऊपर आकाश में उठने का अनुकरण करते हुए अपने पैर को थोड़ा झुकाकर महावत को ऊपर चढ़ा लिया।

———

चुनी हुई उक्तियाँ और मुहावरे

स दैवाधीनः कृतः, यद्भावि यद्भवतु इत्युक्त्वा परित्यक्तः—वह भाग्य पर छोड़ दिया गया।

तव निर्णये स्थास्यामि, तव निर्णयः प्रमाणं—मैं तुम्हारा निर्णय मानूँगा।

प्रतिज्ञा—अभिसन्धां पालयति—अपनी प्रतिज्ञा का पालन करता है।

यथाशक्ति, यावच्छक्यं—अपनी शक्ति भर जितना करना संभव हो।

बहुकौतुकः स देशः—वह देश कुतूहलों से भरा है।

पंचवर्षदेशीयः—लगभग पाँच वर्ष का।

मध्याह्नप्रायः—कल्पः; समयः—लगभग दोपहर का समय है।

किं कर्तुमुद्यतोसि, किंकार्य्यव्यग्रोसिं, किमारंभस्त्वं—किस कार्य में लगे हो ?

स सर्वेषां मूर्ध्नि तिष्ठति—वह सबके ऊपर है।

अदत्तावकाशो मत्सरस्य—ईर्ष्या से परे हैं।

सा दारुणा प्रतिज्ञा लोके प्रकाशतां गता प्रकाशीभूता—उसकी वह भीषण प्रतिज्ञा चारों ओर फैल गई।

शून्यमनस्क, शून्यहृदय, हृदयेनासन्निहित विगतचेतन—अन्यमनस्क, खोया खोया।

कृतमेतादृशेन असंगतेन प्रलापेन—ऐसी बकवाद मत करो।

मनोरथानामगतिर्न विद्यते—इच्छाओं के लिए कोई स्थान अगम्य नहीं है।

मरणं प्रकृतिः विकृतिर्जीवितमुच्यते—मरना स्वभाव है, जीवन एक संयोगमात्र है।

भावमनुप्रविश्—स्वयं को किसी की इच्छा के अनुसार ढालना।

एकचित्तीभूय—एक होकर।

यदृच्छया स्वयं स्वेच्छातः—अपनी इच्छा के मुताबिक।

तद्वचनानुसारेण—नानुरोधेन—उनके वचन के अनुसार।

अनुज्येष्ठं—ज्येष्ठता के अनुसार।

राजेति का मात्रा-गणना मम—मेरे लिए राजा कौन सी चीज है अर्थात् मैं राजा की कोई चिन्ता नहीं करता।

दैवहतकं, दग्धदैवं हतदैवं—दुर्भाग्य।

बलवती शिरोवेदना मां बाधते—मेरे सिर में बहुत दर्द है, मैं सिरदर्द से पीड़ित हूँ।

भवतोऽविनयमन्तरेण परिगृहीतार्था कृता देवी—रानी को तुम्हारी उद्दण्डता के विषय में बता दिया।

ते स्वकर्म साधु निरवाहयन्—आचरन—उन लोगों ने भलीभाँति आचरण किया।

शासने तिष्ठ भर्तुः—अपने स्वामी की आज्ञा के अनुसार कार्य करो।

लक्ष्मीभूमिकायां वर्तमाना—लक्ष्मी का पाठ करते हुए।

कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने—अपनी सौतों के प्रति प्यारी सखी जैसा व्यवहार करो।

मनोवाक्कायकर्मभिः—मन से, वाणी से और कर्म से।

कुशाग्रबुद्धिः—तेज बुद्धि वाला।

यथाकालं व्यवहरत—समय के अनुसार व्यवहार करो।

तस्यैकदेशः अभिनेयार्थः कृतः—इसका एक अंश अभिनय के योग्य बना दिया गया है।

लक्ष्मीं तनोति—समृद्धि को बढ़ाती है।

गण्डस्योपरि पिटिका संवृता, अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः—एक अनर्थ के ऊपर दूसरा अनर्थ हो गया। एक तो करैला दूसरा नीम चढ़ा।

मधुरालाप, प्रियंवद—मधुर बोलने वाला।

अदत्तबाह्यनामा लेखः—बिना पते का पत्र।

दत्त-लिखित-मद्बाह्यनाम पत्रं प्रेषय—मेरे पते पर पत्र भेजना।

आमंत्रयस्व-आपृच्छस्व सहचरं—अपने मित्र से विदा ले लो, मिल लो

सर्वविश्रंभेष्वभ्यंतरीकरणीया—उसे सभी गोपनीय विषयों में शामिल करना चाहिए।

तस्याविकारो बलंबाक्षमः—उनके रोग में अब विलम्ब करने की गुंजाईश नहीं है।

वयोवृद्ध, प्रवयस्—बूढ़ा, अधिक उम्र का ।

ज्ञानवृद्ध--ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा ।

मम छिद्रेण लब्धावकाश:--मेरी कमजोरी का फायदा उठाकर ।

वसन्तसमयावतार: मधुप्रवृत्ति:—वसन्त का आगमन या अवसान ।

क्लेशलेशैरभिन्न—थोड़ी भी थकावट से प्रभावित न होने वाला ।

वेतालोपहत—पिशाच द्वारा पीडित ।

अनेकव्याध्युपसृष्ट—कई रोगों से पीडित ।

न न: किंचिच्छिद्यते—हमारी दशा पर इससे रत्ती भर भी प्रभाव नहीं पड़ा है ।

कृतककलहं कृत्वा--झगड़े का स्वांग बनाकर ।

मम वचसा तस्य हृदयं द्रवीभूतं, मम वचस्तस्य हृदये दृढं पदं लेभे मेरी बातों से उसका दिल पिघल गया ।

पण्डितंमन्योसौ—वह अपने को विद्वान् लगाता है ।

द्वौ नञौ प्रकृतार्थं गमयत:--दो निषेधवाचक पदों से स्वीकारात्मक अर्थ निकलता है ।

इति वार्ता प्रसृता--यह अफवाह फैल गई ।

अनुपूर्वंश:—एक-एक पेड़ को सींचता है ।

स पितामहनाम्नाऽभिधीयते-आहूयते—वहअपने बाबा के नाम से पुकारा जाता है ।

प्राप्तव्यवहारदश—वयस्क ।

षोडशवर्षवयोवस्थामस्पृशत्—सोलह वर्ष की आयु पूरी कर ली ।

अस्मिन्विषये सर्वेषां तेषामैकमत्यम्—इस विषय में उन सबकी एक राय है ।

शरसन्धानं कुर्वन्--वाण से निशाना बनाते हुए ।

क्वानिर्दिष्टकारणं गम्यते—विना किसी प्रयोजन के किधर जा रहे हो ?

वातमासेव्—हवाखोरी करना, वायु-सेवन ।

प्रकाशतां गतम्—प्रकट होना ।

अवलेपमुद्रा—अहंकार का दंभ ।

निकृतमिवात्मानं संदर्श्य—क्रुद्ध व्यक्तिसा-रुख बनाकर ।

गगनकुसुमानि-खपुष्पाणि-चि, मनोराज्यविजृंभणं कृतम्—मन के लड्डू खाना, हवाई पुल बाँधना ।

अकस्मात्, सहसा, एकपदे—अचानक ।

एतावान्मे विभवो भवन्तं सेवितुं—मैं आपकी इतनी ही सेवा कर सकता हूँ ।

जीवितसर्वस्वं—जीवन का सबकुछ ।

एवं पिण्डीकृत्य मह्यं विंशति रूपकान्देहि—इस तरह कुछ मिलाकर मुझे बीस रुपये दीजिए ।

सर्वे मिलित्वा सप्त वयं—हम सब मिलकर सात हैं ।

इयं कथा मामेव लक्ष्यीकरोति—यह कथा मेरी ही ओर संकेत करती है ।

क्षीणभूयिष्ठायां क्षपायां—रात्रि लगभग समाप्त हो चुकने पर ।

अधुना प्रभातप्राया-कल्पा रजनी—अब लगभग सवेरा हो चुका है ।

मृतप्राय-कल्प—मरा हुआ जैसा, मरणासन्न ।

अन्या गतिर्नास्ति, अन्यच्छरणं नालोक्यते—कोई दूसरा रास्ता नहीं है । और कोई चारा नहीं है ।

एष तव वचसो निष्कर्षः–पिण्डितोऽर्थः–यह तुम्हारे भाषण का सारांश है ।

अराजके जनपदे—जब देश में अराजकता फैली हो ।

जन्मदिवसः—जन्म की वर्षगाँठ

मृततिथिः—मरण-दिन ।

भवतु (तथा) इति स प्रत्युवाच—"बहुत अच्छा" उसने उत्तर दिया ।

इदं मे इष्टसिद्धये कल्पेत—इससे मेरा काम चल जायेगा ।

चिन्ताविषघ्नोऽगदः—चिन्ता की दवा है ।

विषवैद्यः, जांगुलिकः—विष दूर करने वाली दवाओं को बेचने वाला ।

व्याजस्तुति—निन्दात्मक प्रशंसा ।

अस्मिन्नर्थेऽत्रभवन्तं प्रमाणीकरोमि, अत्र भवान् प्रमाणं—इस मामले में मैं आपके विचार को ही मान्य ठहराता हूँ ।

साक्षी नोपतस्थौ—गवाह उपस्थित नहीं हुआ ।

शोभनाकृति, सुभगाकृति, चारुदर्शन, प्रेक्षणीय—देखने में सुन्दर ।

तव कथा सत्येव प्रतिभाति (अवभासते)—तुम्हारी कथा सच्ची प्रतीत होती है।

सुखार्थे विषयशब्दं न प्रयुंजते—'सुख' के लिये 'विषय' शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता।

द्वितीयगामी न हिं शब्द एष नः—हमारी यह उपाधि किसी दूसरे व्यक्ति पर नहीं होती।

कोऽपरो नियोगोनुष्ठीयतामिति प्रार्थयामास—उसने उसके आगे दूसरी आज्ञा के लिए प्रार्थना की।

वयं स्वकर्मण्यभियुज्यामहे—हम अपने-अपने काम में लग रहे हैं।

संकेतं (समयं) अनुरुध्यस्व (अनुपालय)—अपने समय का पालन करो, काम में लगे रहो।

देवि सामयिका भवामः—हे देवि ! हमें अपने समय का पालन करना चाहिए। हम समय के पावन्द हों।

तीक्ष्णमति —तेज वुद्धि वाला।

मन्दधी, स्थूलबुद्धि—कमजोर बुद्धि वाला।

प्रस्तावसदृशं, प्राप्तकालं, कालोचितं, समयानुरूपं—समय के अनुसार।

न ते वचोऽभिनन्दामि—मैं तुम्हारी बात से सहमत नहीं हूँ।

युवानो विस्मरणशीलाः—युवक भुलक्कड़ होते हैं।

अतिस्नेह पापशंकीः—अत्यन्त स्नेह से पाप की शंका उत्पन्न होती है।

लोके गुरुत्वं विपरीततां वा स्वचेष्टितान्येव नरं नयन्ति—मनुष्य स्वयं ही अपने भाग्य का निर्माता होता है।

वध्नाति मे चक्षुश्चित्रकूटः—चित्रकूट पर्वत मेरी आँखों को खीच लेता है।

अव्याजमनोहरं (अकृत्रिमलावण्यं, निसर्गरमणीयं) वपुः—अकृत्रिम और प्राकृतिकरूप से सुन्दर शरीर।

गुणास्तावत्तस्य नैव विद्यन्ते—गुण तो उसमें एकदम नहीं हैं।

शीघ्रमिति सुकरं—इसे शीघ्र करने की बात तो सरल है।

पितेति मां स मानयति—वह मुझे पिता के समान मानकर मेरा आदर करता है।

वेलोपलक्षणार्थं—समय जानने के लिए।

कस्मिन् दोषं निक्षिपामि, कं दोषपक्षे स्थापयामि—मैं किसको दोष दूँ ? किसे दोषी ठहराऊँ ?

पापकर्म तस्य संभाव्यते—उसे पाप का दोषी ठहराया गया है।

भस्मी (भस्मसात्) कृ—राख कर देना।

भस्मीभू—राख हो जाना।

तस्य वदनं हर्षोत्फुल्लं बभौ—उसका मुख खुशी से चमक उठा।

सर्वं विपर्यासं यातं—सभी वस्तुएँ बदल गईं थी।

उदगभिमुखं मे गृहं—मेरा घर उत्तर रुख है, उसका द्वार उत्तर को है।

कवियशःप्रार्थी—कवियों जैसा यश चाहने वाला।

दूरारूढाः (दूराधिरोहिणः) उत्सर्पिण खलु एते मनोरथाः—सचमुच ये अभिलाषाएँ बड़ी ऊँची हैं।

मृगा मृगैः संगमनुव्रजन्ति—सब अपने वर्ग के लोगों से ही सम्पर्क बढ़ते हैं।

कृतकं (मिथ्या) मौनं—बनावटी शान्ति।

इति मे निश्चयः दृढं मन्ये—ऐसा मेरा विश्वास है।

उपचारातिक्रमं (प्रणिपातलंघनं) प्रमार्ष्टुमयमारंभः—प्रमाण का तिरस्कार करने का यह प्रायश्चित्त है।

लोकापवादो बलवान्मतो मे—मैं लोकनिन्दा का ध्यान रखता हूँ।

नृपे सुदृढमनुरक्ता प्रजाः—प्रजा राजा दृढ अनुराग रखती हैं।

युवतयो गृहिणीपदं यान्ति—युवतियाँ गृहिणी का पद प्राप्त करती हैं।

उदार (आर्यं) नेपथ्यभृत्—कीमती वस्त्रों से सुसज्जित, सुन्दर वेषभूषा धारण किये हुए।

वैरभावः विपक्षवृत्तिः—शत्रुता का भाव।

आत्मन्यारोपितालोकाभिमानाः—स्वयं को झूठा गौरव देते हुए।

राजदर्शनं लेभे—मैंने राजा से भेंट की।

दर्शनानुग्रहमिच्छामि—दर्शन करना चाहता हूँ।

विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता, जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः—जो जन्म लेते हैं उनकी मृत्यु निश्चित होती है।

चकितं नृपस्य पार्श्वमुपैमि—चकित होकर मैं राजा के निकट आता हूँ।

परोक्षे, परोक्षं--पीठ-पीछे, अनुपस्थिति में ।

उर्वशी प्रत्यादेश: श्रिय:उर्वशी लक्ष्मी को भी मात कर देती है ।

सकलवचनानामविषयं (वर्णनविषयातिक्रान्तं, मोघवर्णनप्रयत्नं) तत्स्थानं—वह स्थान वर्णन के बाहर का विषय है ।

ते कुलस्याधय:—वे कुल के लिये अभिशाप होते हैं ।

इति समय कृत:—ऐसी शर्त हुई है ।

अपि च, अपरं च—इसके अतिरिक्त ।

तस्मिन्नवसरे तेन धीरं विक्रान्तं—उस समय उसने वीरता से सामना किया ।

चित्ते अवधृ, मनसिकृ, अनुस्मृ–मन में रखना ।

शोकवशं मा गम:—शोक मत करो ।

सीतादेव्या: किं वृत्तं—देवी सीता का क्या हुआ ?

आपतन्ति हि संसारपथमवतीर्णानामेते वृत्तान्ता:—ऐसी घटनाएँ संसार के लोगों पर घटती है ।

अश्रुतपूर्व—जैसा पहले न सुना गया हो ।

लतान्तरित (लताव्यवहित) विग्रह:—लताओं की आड़ में अपने शरीर को छिपाते हुए ।

भ्रूभंग कृ—भौहें टेढी करना ।

स पुनरपि स्वकार्ये मनो बबन्ध, न्यवेशयत्—उससे पुन: अपने कार्य में मन लगाया ।

भवन्ति नम्रास्तरवफलागमै:—पेड़ फलों के बोझ से झुक जाते हैं ।

कृतनिश्चय, दृढनिश्चय,कृतसंकल्प, विहितप्रतिज्ञ—तत्पर, कटिबद्ध ।

परस्परवधोद्यतौ—एक दूसरे को मारने के लिये उद्यत ।

आनन्दपरवश:, आनन्देन विगतचेतन इव भूत्वा--खुशी से फूला न समाता ।

अप्रास्ताविकं, अप्रस्तुतं, अप्रासंगिकं अप्रकृतं एतत्--यह अप्रासंगिक है ।

अस्ति मे विशेषोऽद्य—आज मेरी तबीअत अच्छी है ।

अभिभू-अति रिच्--बढ़कर होना।

दुर्गम, दुर्ज्ञेय, दुर्बोध--समझ के बाहर।

आयाधिकं व्ययं करोति--अस्सी की आमद चौरासी का खर्च।

स श्रुतिपथं अतिक्रान्तः (व्यतीतः)--वह इतनी दूर चला गया है कि यहाँ की बात सुन नहीं सकता।

गर्भेश्वरः--जन्म से ही धनी।

न मनसापि न स्तोकेनांशेनापि--थोडा भी नहीं, रंचमात्र भी नहीं।

मृत्पिण्डबुद्धि--काठ का उल्लू, मूर्ख, गोबर-गणेश।

समेत, संहत--सामूहिक रूप में।

आसन्नपरिचारकः--अंगरक्षक।

भिन्नोऽष्टधा विप्रससार वंशः--परिवार आठ भागों में बँट गया।

साहसे श्रीः प्रतिवसति--साहसी व्यक्ति को लक्ष्मी करण करती है।

प्रभाता रजनी--दिन हुआ, सवेरा हुआ।

विच्छेदमाप कथाप्रबन्धः--कथा में विघ्न आ पड़ा।

सभ्याः स्वं स्वं स्थानं प्रतिजग्मुः--सभा विसर्जित हुई।

तस्याक्ष्णोः प्रभातमासीत्--उसकी आँखों के सामने प्रातःकाल हुआ।

किं बहुना--अधिक क्या कहें ! संक्षेप में।

हर्षरोमांचित (पुलकित, कण्टकित) तनुः--उसका शरीर आनन्द से रोमांचित हो गया।

तस्याः सहसा प्रावर्तताश्रुधारा--वह फूट पड़ा, आँसू बह चले।

संभूय प्रशंसागिर उदतिष्ठन्--लोग वाह-वाह करने लगे।

अप्रस्तुत किमिति अनुसन्धीयते--व्यर्थ की बात क्यों करते हो।

ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवनिषेवणं नेष्टं, अध्रुवाद् ध्रुवं वरं; वरमद्य कपोतो न श्वो मयूरः, वरे तत्कालोपनता तित्तिरी न पुनर्दिवसान्तरिता मयूरी--नौ नगद न तेरह उधार।

अनुदिवसं-अनुदिनं दिने-दिने--दिन ब दिन।

शतशः--सैकड़ों।

एकैकशः आनुपूर्व्येण--एक एक करके।

प्रयत्नसंवर्धितः—यत्न से पाला-पोसा गया।

निपुणमन्विष्य—अच्छी तरह ढूँढकर।

अधुनाहं वीतचिन्तः—अब मैं निश्चिन्त हो गया।

न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते—स्वेच्छाचारी व्यक्ति निन्दा की परवाह नहीं करता।

प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः—एक एक का ध्यान रखो।

प्रस्तुतविषये, प्रकृते—इस विषय में।

तेन हि,—यदि ऐसी बात है, अच्छा तो।

किं मिष्टमन्नं खरसूकराणां—भैंस के आगे बीन बजावे, वह बैठि पगुराय।

ज्वलनमुपगत (अग्निदीप्तं) गेहं—घर में आग लग गई।

कर्मगृहीत, रूपाभिग्राहित, लोप्त्रेण गृहीत—रंगे हाथों पकड़ा गया।

किन्नरमिथुनं यदृच्छयाद्राक्षीत्—दो किन्नरों पर निगाह पड़ी।

घुणाक्षरन्यायेन—शुभ संयोग से।

स मया समापत्तिदृष्टः—संयोगवश उस पर मेरी निगाह पड़ी।

स्वभावो दुरतिक्रमः—स्वभाव बदलता नहीं।

क्षीरं दधिभावेन परिणमते, दधिभावमापद्यते—दूध बदलकर दही बन जाता है।

हस्ते निक्षिप् या समर्पय्—हाथ में देना, सौंपना।

अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः, निक्षिप्तः—इस व्यक्ति को किसके हाथ में सौंपा गया है।

समाश्वसिहि, धैर्यं निधेहि हृदये—धैर्य धारण करो।

इत्थं या एवं गते सति—इन स्थितियों में, ऐसी बात होने पर।

दुर्गत, दुर्दशापन्न, दुःस्थित—बुरे दिन, विपत्ति।

येन केनापि प्रकारेण...किसी प्रकार।

यथावसरं यथाकालं—समय के अनुसार, परिस्थिति के अनुसार।

अतिभूमिं गतो रणरणकोऽस्याः—उसकी चिन्ता चरम सीमा पर पहुँच गई थी।

निमिमील नरोत्तमप्रिया—राजा की प्रियतमा ने सदा के लिये अपनी आँखें मूँद लीं।

अद्य निर्वातं नभः—आज समाप्ति हो गई।

मृत्युमुखान्मुक्तः—मृत्यु के मुख से बचाया गया।

यद्भावि तद्भवतु—जो भी हो, चाहें अब जो हो।

यद्भावि तद्भवतु शुभमशुभं वा–चाहे भला हो या बुरा।

प्रकृतिमापद्, संज्ञा–चेतनां लभ् या प्रतिपद्, प्रकृतौ स्था–होश में आना।

आगामिनि सोमवासरे—अगले सोमवार को।

तां सुखशयितं पृच्छ—उससे पूछा कि रात को अच्छी नींद तो आई।

रात्रावपि निकामं शयितव्यं नास्ति—मैं रात को भी सुख से नहीं सो सकता।

दीर्घिकावलोकनगवाक्षगता=एक बावली की ओर खुलने वाली खिड़की पर बैठकर।

आकृतिविशेषेष्वादरः पदं करोति—विशेष आकृति से आदर होता है।

पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते—गुणों की ओर सर्वत्र लोग आकृष्ट होते हैं।

तनुवाग्विभवोऽपि सन्—यद्यपि मेरे पास शब्दों का अभाव है टूटी-फूटी भाषा में।

तं वाग्वश्येवानुवर्तते—वाणी उसके पीछे पीछे चलती है।

इदं वृत्तं लेख्यं (पत्रं) आरोपय, पत्रे निवेशय—इसको लिख दो।

अस्माभिः सहैककार्याणां—हमने अपना एक ही ध्येय बना रखा है।

सहाध्यायिन्—सहपाठी।

समदुःखसुखः—सुख-दुःख का साथी।

अहमहमिकया प्रणामलालसा—होड़ करके प्रणाम करते हुए।

अभिनन्द्य ब्रवीति—अभिनन्दन करके कहता है।

च्यवनाय प्रणिपातय, मदीयो नमस्कारो वाच्यः—महानुभाव च्यवन को मेरा प्रणाम कहेंगे।

उपचारपदं—शिष्टाचार के शब्द।

स नाद्यापि पर्यवस्थापयति (संस्तंभयति) आत्मानं—वह अब भी अपने को संभल नहीं पाया है।

महदपि राज्यं मे सौख्यमावहति—यह मेरा विशाल राज्य भी मुझे सुख नहीं देता।

अपि रक्ष्यते त्वया रहस्यनिक्षेपः—क्या यह बात तुमने अपने तक सीमित रखी है ?

विश्वास (विश्रंभ) भूमिः स मम—वह मेरा विश्वासपात्र है।

विश्रम्भस्थाने मम—विश्वास दिलाना।

प्रसवकालः, प्रसवावस्था—सन्तान उत्पन्न करने के निकट।

प्रसूता, प्राप्तप्रसवा तदभार्या—उसकी पत्नी प्रसूतिगृह में है।

दिष्ट्या सुतमुखदर्शनेन आयुष्मान्वर्धते—पुत्र का मुख देखने के लिये बधाई है। मैं आपको···बधाई देता हूँ।

प्रसन्नः (उपपन्नः) ते तर्कः—तुम्हारा अनुमान सही है।

अग्निसात्कुरु, ज्वलनाय समर्पय—आग में झोंकना।

तस्याचरणं वचसा न विसंवदन्ति=उसका आचरण उसके वचनों के विपरीत है।

स्वार्थाविरोधेन=उनके अपने हितों के अनुकूल।

अभिरूपभूयिष्ठा परिषद्=एक ऐसी सभा जिसमें अधिकांश शिक्षित मनुष्य हों।

तस्य वचसि दुराशयं मा कल्पय (आरोपय)—उसकी बात का बुरा मत मानें।

तत्परतयैव वेदान्तवाक्यानि योजयन्ति—इसी से वेदान्तवाक्यों को संबद्ध बताते हैं।

जनहितमपि तावत् त्वया चिन्तनीयं, मनसि कार्यमेव अवेक्षणीयः—तुमको जनहित का भी ध्यान रखना चाहिए।

स्वहितपरायणो मा भूः—अपने स्वार्थ में मत लगे रहो।

सांवत्सरिकैः संपाद्यताम्—ज्योतिषियों से राय ले लेनी चाहिए।

गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि वपुषि न ममौ–वह आनन्द से विभोर था।

तेन ह्यस्य गृहीतार्था भवामि—यदि ऐसी बात है तो तो मैं इस बात को समझूंगी।

यथावकाशं कार्यान्तरायमन्तरेण—जब सुविधाजनक हो।

अन्यकार्यातिपातमन्तरेण (कार्यान्तरविरोधेन) भवान् कदा मया द्रष्टव्य:—आपको मुझसे मिलने के लिए कब सुविधा होगी ?

अनभ्यन्तरा वयं मदनगतस्य वृत्तान्तस्य-—हम लोग काम-संबन्धी बातों से अपरिचित हैं।

प्राणव्ययेनापि—अपने प्राणों के मूल्य पर भी।

त्वद्वचनप्रत्ययात्—तुम्हारे वचन पर विश्वास करके।

आ-समा-श्वस्—धैर्य धारण करके।

धैर्यं आस्था,धैर्यं अवलंब्, अवष्टंभ्, धैर्यावष्टंभं कृ—हिम्मत बाँधना।

कथाप्रसंगेन, कथायोगेन—बातचीत के बीच।

कालक्रमेण, गच्छता कालेन, दिनेषु गच्छत्सु, गच्छति काले—समय बीतने के साथ।

गत्यन्तराभावात, अनन्यगतिकत्वात्—और कोई चारा न था।

स त्वत्तो लब्धोदय:- उसके अभ्युदय के कारण आपही हैं।

एते संकल्पा मम प्रादुरासन्, आसीत्-समभूत् मे मनसि—ये विचार मेरे दिमाग में आये।

मम दर्शनपथमागत:, नयनविषयमवतीर्ण:—वह मेरी आँखों के सामने आया।

व्यत्यस्तभुज:—भुजाओं को एक दूसरे के ऊपर तिरछा रखे हुए।

व्यत्यस्तपाद:—पैरों को एक दूसरे पर तिरछा रखे हुए।

सर्वेऽस्य प्रयत्ना: सफलतां ययु:-फलिता:-उसके सभी प्रयत्न सफल हुए।

आचारपुष्पग्रहणार्थं—आचार के अनुसार फूलों को ग्रहण करने के लिए।

आचारं प्रतिपद्यस्व—आचार के अनुसार प्रणाम करो।

मर्मच्छिद्-भिद्, मर्माणि कृन्तत्—मर्मस्पर्शी।

मद्वचनमाक्षिप्य—मेरे वचन को बीच में काटकर।

तस्योत्साहभंगं मा कृथा:—उसका उत्साह भङ्ग मत करो।

आतुरो जीवितसंशये वर्तते—रोगी की हालत शोचनीय है ?

अन्धं तम:, सूचिभेद्यं तम:—घोर अन्धकार।

सन्तमसं—चारों ओर फैला हुआ अन्धकार।

हाहानिनादेन दिशो बधिरयन्त:—हा-हाकार की ध्वनि से दिशाओं को बहरा बनाते हुए।

स्वासुभिर्भर्तुरानृण्यं गतः—उसने अपने प्राण देकर स्वामी का ऋण चुका दिया।

पश्चिमे वयसि, परिणतवयसि—वृद्धावस्था में।

दूरगतमन्मथा सा, अतिभूमिं गतोस्या अनुरागः—उसका प्रेम बहुत बढ़ गया है, गहरा हो चला है।

मम विकारः परिच्छेदातीतः—मेरे मन की व्यथा बताने लायक नहीं है।

एकस्य मूल्येन व्ययः शुध्यति, सर्वा व्ययशुद्धिः संपद्यते—सभी व्यय एक ही आय से पूरा हो जाता है।

वैद्ययत्नपरिभावा गदः—असाध्य रोग।

दीर्घसूत्री विनश्यति—आलस्य विनाश का कारण होता है।

वसुधां तस्य हस्तगामिनीमकरोत्—उसे पृथ्वी प्रदान कर दी।

लेखं तस्य हस्तं प्रापयिष्यामि—मैं पत्र उनके हाथ में दे दूँगा।

सर्वं दैवाधीनं (आयत्तं)—सभी कुछ भाग्य के हाथ है।

मया प्रायोपवेशनं कृतं विद्धि—यह सही जानिये कि मैं उपवास करके प्राण त्याग दूँगा।

असंशयं, नियतं, नूनं, खलु—इसे मान लीजिए, निश्चित रूप से।

निमित्तसव्यपेक्ष—किसी प्रयोजन पर आश्रित।

विषण्ण, मुक्तावयव—खिन्न, उदास।

सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति—हँसी का पात्र बनते हैं।

तस्याः श्रीर्वचनानामविषया—उसकी सुन्दरता अवर्णनीय है।

सविस्तरं, सविस्तरेण, विस्तरतः—शः, सुविस्तरं—विस्तार में।

सा पुपोष लावण्यमयान् विशेषान् या मनोहरं वपुः, प्रचीयमानावयवा—उसके मोहक अंग बढ़ गए।

क्षुण्णाद्वर्त्मनो रेखामात्रमपि न व्यतीयुः=लकीर का फकीर। पुराने मार्ग से बालभर भी दूर नहीं होते थे।

नाहमात्मविनाशाय वेतालोत्थापनं करिष्यामि+मैं अपने हाथों अपने पैर में कुल्हाड़ी नहीं मारूँगा।

पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकाः-गुणवत्सुतरोपितश्रियः—अपने पुत्रों को सम्पूर्ण सम्पत्ति सौंपकर।

लुप्तार्थं वचनं—वे-सिरपैर की वात, बिना पते का पत्र।

अशाम्यं वैरं—जानी दुश्मनी, घोर शत्रुता।

स लोष्टघातं हतः—वह ढेला मारकर ही मार डाला गया।

अव्यतिरिक्तेयमस्मच्छरीरात—वह मेरे शरीर से अलग नहीं हैं।

विषमपदविमर्शिनी टीका—कठिन शब्दों को स्पष्ट करने वाली टीका।

आत्मन्यप्रत्ययं चेतः—मन का अपने-आप में विश्वास नहीं है।

अलमप्रासंगिकेन, अप्रसंगेन, प्रकृतमेवानुसन्धीयतां–विषय से असम्बद्ध वातें बहुत हो चुकीं।

चक्षुर्विषयातिक्रान्तेषु (नयनपथातीतेषु, अन्तरितेषु, अदृष्टिगोचरेषु अन्तर्हितेषु) कपोतेषु–कबूतरों के आँखों से ओझल होने पर।

कर्त्तव्यानि दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि–दुःखियों को अपना दुःख दूर करना चाहिए।

शिष्य उपदेशं मलिनयति–बिगड़ा हुआ शिष्य उपदेश की बदनामी करता है।

प्रकृतं–प्रस्तुतं अनुसृ या अनुसन्धा–विचारणीय विषय पर आना।

प्रस्तावः, प्रस्तुत–प्रकृत विषयः,प्रस्तुतं, प्रकृतं–विवादास्पद विषय।

तपस्विव्यंजनोपेताः तापसच्छद्मना, तापसरूपधारिणः+तपस्वी के वेष में।

निष्कारणो बन्धुः–विना स्वार्थ के हित करने वाला।

मम द्रव्यस्य कथं त्वया विनियोगः कृतः–मेरे धन को आपने किस प्रकार व्यय किया ?

अहं त्वदधीनोऽस्मि–मैं आपके वश में हूँ।

अयमर्थस्त्वदायत्तः, अत्र भवान् प्रभवति–यह विषय आपके अधीन है।

कलहशील, कलहकाम–झगड़ालू।

किं वो विवादवस्तु–तुम लोगों में किस बात पर विवाद है ?

वादग्रस्तोर्थः—विवादास्पद विषय।

अतिथिविशेषः—सम्माननीय अतिथि।

एवं तावदाक्षिपामि, अन्यतः संचारयामि—इस प्रकार मैं उसके विचारों को दूसरी ओर मोड़ूँगा।

अन्तर्भेदाकुलं गृहं—घरेलू फूट ।

अपि कुशलं–शिवं भवतः—आप कुशल से तो हैं ?

त्वां सुखं-कुशलं पृच्छति—आपका कुशल पूछता है ।

देवीं सुखं प्रष्टुमागता—देवी से कुशल पूछने आई है ।

अलं निर्वन्धेन—हठ मत करो ।

किमस्माकं स्वामिचेष्टानिरूपणेन—स्वामी की चेष्टाओं को देखने से हमें क्या प्रयोजन ?

मनो मे संशयमेव गाहते, आशंकते+मेरे मन में शंका बैठी हुई है ।

नतोन्नतभूमिभागः=उत्खातिनी भूमिः—ऊँची-नीची भूमि ।

पतोत्पातः—उत्थान-पतन ।

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण—गाड़ी के चक्के की तरह आदमी के जीवन की दशा में उत्थान-पतन होता है ।

निपात्यतां=उच्छेद्यतां–असौ प्रजापीडकः- इस अत्याचारी को मार डालो

परिणतप्रायमहः—दिन की समाप्ति हो रही है ।

त्वया स्वहस्तेनांगाराः कर्षिताः—तुमने खुद अपने हाथों अपनी मौत बुलाई है ।

द्वीपिचर्मपरिच्छन्नः गर्दभः—सिंह के चमड़े से आच्छादित गदहा ।

चापलाय प्रचोदितः—चपलता करने के लिये प्रेरित ।

अविरलवारिधारासंपातः, पटुधारासारः—तेज जल की धारा ।

किमुद्दिश्य भवान्भाषते—आप किस बात को लक्ष्य करके कह रहे हैं ।

मा भवानंगानि मुंचतु—आपका उत्साह भंग न हो, निराश मत होओ ।

मुक्तैरवयवैरशयिषि—मैं अंगों को शिथिल करके सो गया ।

स्रंसते देहबन्धः—सारी देह शिथिल हो रही है ।

जलविन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः—बूँद-बूँद से घड़ा भरता है ।

संह्रियतामियं कथा—अब इस विषय को यहीं रहने दीजिए ।

अवसन्नप्रायाणि मे गात्राणि, सीदन्ति मे अंगानि—मैं गिरने गिरने हो रहा हूँ ।

शिखी केकाभिस्तिरयति मे वचनं—मयूर अपनी वाणी से मेरे शब्द को अभिभूत कर देता है ।

श्रवणगोचरे तिष्ठ—जहाँ तक सुनाई पड़ता है उसके अन्दर रहो।

महति प्रत्यूषे—तड़के। ब्राह्ममुहूर्त्त में।

न परिहसामि, नायं परिहासस्य समय:—मैं हँसी नहीं कर रहा हूँ।

परमार्थेन ग्रह—सही मानना।

लब्धं स्वास्थ्यं मया, अहं निर्वृत: वीतचिन्त:—मैं आराम से हूँ, निश्चिन्त हूँ।

जातो ममायं विशद: प्रकामं अन्तरात्मा—मेरी आत्मा पूर्णत: स्वस्थ है।

यथाकामं, पर्याप्तं, प्रकामं—इच्छानुसार।

सुखसुप्त—सुख से सोया हुआ।

दन्तहर्ष:—खीस निपोरना, हँसना।

फल-मूर्च्छं (भ्वादि, परस्मै०) प्रभाव दिखाना।

मारुतस्य रंह: शिलोच्चये न मूर्च्छति—वायु का पर्वत पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ता।

मूर्च्छंत्यमी विकारा ऐश्वर्यमत्तेषु—ऐश्वर्य से मत्त पुरुष में इस प्रकार के परिवर्तन होते हैं।

निशि मूर्च्छंतां तमसां—रात्रि में अन्धकार घना होने पर।

वज्रं तपोवीर्यमहत्सु कुण्ठं—जिन्होंने कठिन तपस्याएँ की हैं उनपर वज्र का कोई प्रभाव नहीं होता।

इति, एतदभिप्राय—यह इसका अभिप्राय है।

अर्थ वस्तुत:—सचमुच, असल में।

नृपस्तस्यां बद्धभाव:, कृतानुराग:, प्रीतिं भावं बबन्ध—राजा उस पर मोहित हो गया, उससे प्रेम करने लगा।

श्रृणु मे सावशेषं वच:—मेरी बात अन्त तक सुन लीजिए।

कल्याणोदर्क-सन्तं-भविष्यति—इसका अन्त अच्छा होता।

अलमतिविस्तरेण—विस्तार की आवश्यकता नहीं।

अलं-कृतं-परिहासेन—बहुत हँसी हो चुकी।

कुतूहलेन तस्य चेतसि पदं कृतं—उसका मन उत्सुकता से भर गया।

मानमर्हति, मान्य:, पूज्य:—वह आदर के योग्य है।

स पुरस्कारमर्हति—उसे प्रधानता देनी चाहिए।

परसुखासहिष्णु—दूसरे के सुख से जलने वाला ।

ते परस्परयशःपुरोभागाः—वे एक दूसरे के यश से ईर्ष्या रखते हैं ।

तुलया धृ—बराबर समझना ।

तत्कार्यं साधयितुमलं सः—वह उस कार्य को करने में समर्थ है ।

प्रतिशासनं—सन्देश भेजना ।

बन्धभ्रष्टो गृहकपोतश्श्येनमुखे पतितः—आसमान से उतरी बबूल में उलझी । एक विपत्ति से निकलकर दूसरी विपत्ति में जा गिरा ।

कथं कथमपि मुक्तः—बाल बाल बच गया ।

सुरक्षितां तां प्रेषय —उसे सुरक्षित करके भेजो ।

अत्यन्तविलुप्तदर्शन—सदैव के लिए लुप्त हो गया ।

एकान्तनष्ट—सदैव के लिए नष्ट हो गया ।

असन्निवृत्त्यै गत, अत्यन्तगत—सदा के लिए चला गया ।

अप्रबोधाय सा सुष्वाप—वह कभी न जगने के लिए सो गई, चिरनिद्रा में सो गई ।

अब्रह्मण्यं, अत्याहितं—हाय ! बुरा हुआ । अनर्थ हो गया ।

स सत्कारो मम मनोरथानामप्यभूमिः -आशातीत स्वागत हुआ ।

उत्सर्गाः सापवादाः—नियमों के भी अपवाद होते हैं ।

अपवादैरिवोत्सर्गाः कृतव्यावृत्तयः—सामान्य नियम भी अपवादों से सीमित होते हैं ।

अव्यभिचारी तद्वचः, इति लोकवादः न विसंवादमासादयति -इस कथन का अपवाद नहीं है ।

प्रतिप्रसवः-अपवाद का अपवाद ।

शिरःशूलस्पर्शनमपदिशन्-सिर दर्द का बहाना करना ।

अनामयापदेशेन-बीमारी का बहाना करके ।

स्वनियोगमशून्यं कुरु, अनुतिष्ठात्मनो नियोगं-अपना कार्य करो ।

असौ क्रमाद्यौवनभिन्नशैशवः-धीरे-धीरे बालक से युवा हुए ।

हर्षोत्फुल्लनयनः-आनन्द से आँखे खिल गईं ।

भवतात्माक्लेशस्य पदमुपनीतः-आपने अपने को विपत्ति में डाल दिया ।

स कातर इति वाच्यतां गतः—'वह कायर है' ऐसी बात फैल गई ।

सा तण्डुलान् सूर्यातपे दत्तवती, आतपायोज्झितवती–उसने धूल में चावल सुखाए।

कियताप्यंशेन, ईषत्, मनाक्—कुछ सीमा तक।

सर्वथा—सब प्रकार के।

लोकदृष्ट्या—जनता की आँखों में।

अक्षिगतोऽहं तस्य—मैं उसके आँख की किरकिरी हूँ।

मुखामुखि, संमुखं—आमने-सामने।

पूर्वाभिमुखं गृहं—पूर्व की ओर द्वार वाला घर।

वस्तुतः, तत्त्वतः—वास्तव में।

वस्तुवृत्तेन, परमार्थतः, तत्त्वतः—वास्तव में, सच पूछिए तो।

संकटेष्वविषण्णधीः—उसकी बुद्धि विपत्ति में भी कुण्ठित नहीं होती।

फले विसंवदति—फल नहीं देना।

रमणीयोऽवधिर्विधिना विसंवादितः—भाग्य ने सुअवसर को विफल बना दिया।

तस्य धैर्यं न हीयते, न स्खलति—उसका धीरज नष्ट नहीं होता।

पुत्राभावे–पुत्र न होने पर।

तस्य स्मृतिलोपः संजातः–उसकी स्मरणशक्ति का लोप हो गया।

सन्ततिविच्छेदः–लोपः–सन्तानहीनता।

अनिर्वेदः श्रियो मूलं–उद्योगी को लक्ष्मी प्राप्त होती है।

सुदिनं–अच्छे दिन।

पातोत्पातौ, व्यसनोदयौ—उत्थान-पतन।

स लक्ष्यच्युतसायकोऽभूत्—उसका बाण लक्ष्य चूक गया।

तव महिमानमुत्कीर्य वचः संह्रियते–तुम्हारी महिमा का वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता।

लुप्तप्रतिज्ञ, असत्यसंध, भग्नप्रतिज्ञ—वचनच्युत।

अतिपरिचयादवज्ञा—अधिक परिचय से अपमान होता है।

को वृत्तान्तस्तत्रभवत्याः—उन श्रीमती का क्या हाल है ?

नात्र मुनिर्दोषं ग्रहीष्यति—मुनि इसमें दोष नहीं ढूँढेंगे।

दृष्टदोषा मृगया—शिकार खेलने का दोष मालूम है।

सहृदय:, सचेता:—विचारवान् व्यक्ति ।

सचेतस: कस्य मनो न दूयते-किस सहृदय का मन दुःखी नही होगा ?

आत्मानं मृतवत्सन्दर्शयामास—उसने मरने का नाटक रचा ।

कृतकं कोपं कृत्वा—झूठा क्रोध करके ।

प्रसुप्तलक्षण, व्याजसुप्त, लक्षसुप्त,—सोने का बहाना करके ।

पर्याप्तमाचामति—छककर पीता है ।

तै: सोपराधी स्थापित:—उन्होंने उसे अपराधी ठहराया ।

उदार:—प्रथम: कल्प:—उत्तम प्रस्ताव ।

सुश्लिष्टमेतत्—यह जँचता है ।

मन्मुखासक्तदृष्टि:—मेरे चेहरे पर आँखें गड़ाकर ।

आसक्त-बद्ध—दृष्टि--एक टक देखते हुए ।

स्तिमित—अनिमेष—लोचन -विना पलक गिराये हुए ।

मनो निष्ठाशून्यं भ्रमति—निष्ठहीन मन भटकता रहता है ।

रन्ध्रान्वेषिन्, छिद्रान्वेषिन् -दोष देखनेवाला ।

सप्तभूमिका: प्रासाद:—सातमंजिला मकान ।

हस्तौ समानीय, अंजलिं वद्ध्वा, कृताञ्जलि:, सां (प्रां) कलि:—हाथ जोड़कर ।

भुजाभ्यां तामापीड्य—दोनों बाहों में बाँधकर, आलिंगन करके ।

महतां पदमनुविधेयं—श्रेष्ठजनों के मार्ग का अनुसरण करता है ।

पदवीं प्रतिपद्य-मार्ग का अनुसरण करते हुए ।

पुरस्कृतमध्यमक्रम:—मध्यम मार्ग अपनाकर

दु:खं दु:खानुबन्धि, विपद्विपदमनुबध्नाति—एक विपत्ति के बाद दूसरी विपत्ति उत्पन्न होती है ।

अत: किं प्राप्नोति—इससे क्या निष्कर्ष निकलता है ।

परस्तादवगम्यते—आगे की बात समझ ली गई है ।

ततस्तत—इसके बाद ।

तद्यथा—वह इस प्रकार है

शान्तं पापं, प्रतिहतं अमंगलं—ईश्वर ऐसा न करे ।

स्वनामत्यागं करोमि—मैं अपना नाम छोड़ दूंगा ।

तीर्ण-पूर्ण-प्रतिज्ञः, पालितसंगरः, सत्यप्रतिज्ञः, सत्यव्रतः-संधः ।

अधुना मुंच शय्यां—शय्या छोड़ो, उठो ।

युद्धाय संनद्धा, बद्धपरिकरास्ते—वे युद्ध के लिये तैयार हैं ।

शुचो वशं मा गमः, शोकाधीनः मा भूः, वैक्लव्यं मावलंबस्व—शोक मत करो ।

ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा—ब्रह्मतेज से जलता हुआ ।

इति ख्यातः, कृतनामधेयः, दत्तसंज्ञः—वह इस नाम से विख्यात है ।

उमाख्यां सा जगाम—उसका नाम उमा पड़ गया ।

किं तया दृष्टया, कोऽर्थस्तस्या दर्शनेन—उसका दर्शन करने से क्या प्रयोजन !

अलं परिदेवनेन—रोने से क्या लाभ ? मत रोओ ।

मृत्योर्मुखे वर्तते, कालालीढः, मृत्युगोचरं गतः-वह मृत्यु के मुख में हैं ।

इदं च अशेषविद्याग्रहणसामर्थ्यं—सभी विद्याओं को ग्रहण करने की यह शक्ति ।

ममाशयं सम्यग्गृहीतवानसि—आपने मेरी बात पूरी तरह से समझ ली है ।

आनन्दस्य परां कोटिं-काष्ठां-अधिगतः—आनन्द की चरमसीमा पर पहुँचा हुआ ।

रोषात् दन्तैर्दन्तान्निष्पिष्य—क्रोध से दाँत पीसकर ।

यौवनपदवीमारूढः, प्राप्तयौवनः, यौवनदशामापेदे-जवान, युवावस्था में पहुँचा हुआ ।

वत्सतरः महोक्षतां स्पृशति, महोक्षभावं श्रयति—बछड़ा साँड़ हो जाता है ।

तस्याः आवद्धधारमश्रु प्रावर्तत, उद्बाष्पे नयने जाते-उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली ।

चौर्यवृत्ति—चोरों की वृत्ति ।

ज्ञातदुःख, दुःखशील, परिचितक्लेश-दुख सहने का अभ्यस्त ।

रेखामात्रमपि—बालभर भी ।

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः—जब सभी नष्ट होने वाला हो तो आधा छोड़ना चाहिए।

नियुद्धं, बाहुयुद्धं—मल्लयुद्ध।

एकतः—अन्यतः, एकं च-अपरं च तु तावत्—दूसरी ओर।

सर्वथा, सर्वत्र—सब प्रकार से।

दत्तहस्तावलंब—सहायता देना।

परंपरया आगम्—परम्परा से प्राप्त।

त्रिशंकुरिवांतरा तिष्ठ—बीच में लटका हुआ, न इधर के न उधर के। धोबी का कुत्ता न घरका न घाट का।

आवेदयन्ति प्रत्यासन्नमानन्दं अग्रजातानि शुभानि निमित्तानि—शुभ शकुन प्रसन्नता सूचित करते हैं।

अहो दारुणो दैवदुर्विपाकः—हाय रे दुर्भाग्य !

प्रबलक्षुधावसन्न—भूख से व्याकुल।

तव मुखं कमलश्रियमुद्वहति, आहरति—तुम्हारा मुख कमल के समान सुन्दर है।

संशयितजीवितः—जीवन को संकट में डालने वाला।

धुरि कीर्तनीयः—प्रतिष्ठापयितव्यः—अग्रगण्य।

स सर्वेषां धुरि (मूर्ध्नि) तिष्ठति—वह सर्वोपरि है।

वसिष्ठाधिष्ठिताः, वसिष्ठपुरःसराः, प्रमुखाः, पुरोगमाः—जिसके नेता वसिष्ठ हैं।

व्रणविरोपणं तैलं—घाव भरने वाला तेल।

सुस्थोसौ कुशलमस्य—वह कुशल से है।

पूर्ववत् (प्रकृतिस्थः) समजायत—पहले के समान स्वस्थ हो गया।

किमस्मान् संभृतदोषैरधिक्षिपथ—हम लोगों को दोष क्यों देते हो ?

इति कर्णपरंपरया श्रुतमस्माभिः—हमने लोगों से ऐसा सुना है।

सोत्साहं, सर्वात्मना—पूरे दिल से।

सर्वात्मना तस्मिन्कर्मणि स व्यापृतः—वह जी-जान से उस काम में लगा है।

यथेच्छं, पर्याप्तं, प्रकामं, निकामं—इच्छानुसार।

दीर्घ-स्थूलस्थूलं निःश्वस्य–गहरी साँस भरकर ।

भूस्वर्गायमाणमेतत्स्थलं, भूलोकगतः स्वर्गः–पृथ्वी का स्वर्ग है ।

अहमनुपदमागत एव–मैं तुम्हारे पीछे पीछे ही आता हूँ ।

जंघामवलंब्=नौ दो ग्यारह होना, चम्पत होना ।

विना पुरुषकारेण दैवं न सिध्यति—विना परिश्रम किये भाग्य भी साथ नहीं देता ।

का गतिः किमन्यच्छरणं—कोई चारा नहीं, मैं विवश हूँ ।

हन्त बीभत्समेवाग्रतो वर्तते–सामने सचमुच ही एक बीभत्स दृश्य है ।

स त्वां बहुमन्यते–वह तुमको बहुत मानता है ।

इषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले–बाण चलते हुए लक्ष्य को बेंधते हैं ।

का कियती मात्रा तेषां, मम, तानहं तृणाय मन्ये–तृणीकरोमि–मैं उन्हें कुछ भी नहीं समझता ।

वाचंयमो भव, वाचं नियच्छ, तूष्णीं जोषं आस्स्व–जबान बन्द करो, चुप रहो ।

सर्वगामी—अव्यभिचारी अयं नियमः–यह नियम सभी जगह लागू होता है ।

मुक्तग्रह पकड़ को छोड़ते हुए ।

रागः शुक्लपटे स्थायी भवति-सफेद कपड़े पर लाल रंग खूब चटक लगता है ।

स लोकस्य मन आददे–उसने लोगों के मन पर अधिकार कर लिया है ।

लेभेन्तरं चेतसि नोपदेशः, अपलब्धपदो हृदि–उसके ऊपर उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।

तद्वचोः तस्य हृदयमर्मास्पृशत्- इस बात ने उसके ऊपर बहुत प्रभाव डाला ।

चतुरः शशकान् विश्वासस्थाने धृत्वा–चार खरगोशों की जमानत देकर ।

मानुषीं गिरमुदीरयामास–मनुष्य की भाषा में बोला ।

इति राज्ञां शिरसि वामपादमाधाय–इस प्रकार राजाओं को नीचा दिखाकर ।

ब्रह्मसायुज्यं प्राप्तः, ब्रह्मलीनः ब्रह्मभूयं गतः–ब्रह्मलीन हो गया ।

दुर्दैवं, दुर्भाग्यं, मन्दभाग्यं, दैवविपर्यासः–दुर्विपाक, दुर्भाग्य ।

अस्मार्तकालात्–बहुत दिनों से, प्राचीन काल से।

स महति जीवितसंशये अवर्तत—वह मृत्यु के भयंकर खतरे में था।

अलं सेवया (स्नेहभणितेन) मध्यस्थतां गृहीत्वा भण—चाटुकारिता करने की आवश्यकता नहीं। निष्पक्ष होकर बोलो।

उन्नमत्यकालदुर्दिनं—विना समय के तूफान घहरा रहा है।

अनावृष्टिः संपद्यते लग्ना—अकाल पड़ने वाला है।

निर्बन्धपृष्टः पुनः पुनश्चानुबध्यमानःस जगाद सर्वं–अनुनय करने पर उसने सारी बातें बता दीं।

जानकी करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव-जानकी साक्षात् करुणा की मूर्ति या देहधारी विरह हैं।

वाच्यतां याति, दोषभाजनं–दोषभाक्–दोषपात्रं भवति—वह अपराध का पात्र बना।

किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य—उन दोनों की सुन्दरता का क्या कहना!

संभावनीयानुभावस्याकृतिः–उसकी आकृति से उसके प्रताप का पता चलता है।

आकृतिरेवानुमापयत्यमानुषतां–इस आकृति से ही उसके मनुष्येतर होने का अनुमान होता है।

अधरोत्तरव्यक्तिर्भिविष्यति–बड़े-छोटे का फैसला अभी हुआ जाता है।

ओजस्वितया सा न परिहीयते शच्याः–तेज में वह शची से कम नहीं है।

न प्रतिच्छन्दात्परिहीयते मधुरता–उसकी सुन्दरता चित्र में अंकित सुन्दरता से कम नहीं है।

अमी विनोदनोपायाः संदीपना एव दुःखस्य–इन आमोद प्रमोदों से दुःख ही बढ़ेगा।

दर्पाध्मात, मदोद्धत, उत्सिक्त–गर्व से फूला हुआ।

निद्रावश–विधेय–निद्रा के वशीभूत होकर।

मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः–मूर्ख का मन दूसरों के विचारों से प्रभावित होता है।

पुरुषोत्तम इति भणितव्ये—पुरुषोत्तम कहने के बदले।

अध्ययने आरब्धव्ये किमिति क्रीडसि- पढ़ने के समय पर क्यों खेलते हो ?

हर्षस्थाने अलं विषादेन—हर्ष के समय शोक न करो ।

परोपकरणीकृत--भूत—दूसरों का सावधान बनकर ।

उपकरणीभावमायात्येवंविधो जनः—ऐसे लोग सहायक होते हैं ।

चक्रवृद्धिः—सूद दर सूद । सरला वृद्धिः—साधारण व्याज ।

पंचकेन शतेन, पंचोत्तरं शतं—पाँच प्रतिशत की दर से ।

दृष्टं युष्माभिः कथारसस्याक्षेपसामर्थ्यं—आप लोगों ने देखा कि कथा की रुचि ने किस प्रकार मुझे मोड़ लिया है ।

स्वार्थपर, स्वार्थदृष्टि—अपना मतलब साधना ।

अतिरमणीयं कथावस्तु-यह कथा बहुत ही रोचक है ।

पक्षपातिनौ आवामनयोः हम दोनों (क्रमशः) इन दोनों में अनुरक्त है ।

न चेदन्यकार्यातिपातः—यदि इससे अन्य कार्यों में विघ्न न पड़े ।

अव्यापारेषु व्यापारं स करोति—वह बेकार की बातों में टाँग अड़ाता है।

मैनमन्तारा प्रतिबध्नीत—उसे मत टोको ।

काले काले, अन्तरा अन्तारा-समय-समय पर ।

श्रमसहिष्णुः, जितश्रमः—श्रम करने वाला ।

नायमेकान्तो नियमः- यह नियम सभी जगह लागू होने वाला नहीं है ।

रामस्य दैवदुर्नियोगः कोपि-राम के साथ यह भाग्य की विडम्बना ही थी ।

परिहासविजल्पित, नर्मभाषित—हँसी में कहा गया ।

अध्वसंजातखेदात्- मार्ग चलने की थकान से ।

उत्थाय पुनरवहत्—उसने आगे की राह ली ।

सप्ताहगम्योऽध्वा—एक हफ्ते की यात्रा है ।

स्वगृहनिर्विशेषमत्र वस—यहाँ अपना घर समझ कर रहो ।

स्वपुत्रनिर्विशेषं संवर्धितं—अपने पुत्र के समान पाला पोसा गया ।

जानुभ्यां अवनौ गम् या पत्—घुटने टेक कर ।

जानुदघ्न--द्वयस--मात्र—घुटनों तक गहरा ।

भ्रुकुटिं बन्ध् या रच्, भ्रुवौ संकुच् या भिद्—भौंहें टेढ़ी की ।

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य—जिसके पास बुद्धि होती है, उसी के पास बल होता है। ज्ञान ही शक्ति है।

तदाख्यया भुवि पप्रथे, तदाख्यां जगाम—उस नाम से पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुआ।

चिन्ताशतैर्बाध्यमानः-अभिभूतः-अनेक चिन्ताओं में पड़ा हुआ।

प्रतस्थे स्थलमार्गेण वर्त्मना—स्थल मार्ग से चल पड़ा।

अलसेक्षण—अलसाई आँखों से।

एष ते जीवितावधि प्रवादः—यह बदनामी तुम्हारे जीवन भर रहेगी।

कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्रीः--युवावस्था थोड़े दिन तक टिकती है।

कालान्तरक्षमा माला--बहुत दिनों तक बनी रहने वाली माला।

अर्गलानिरुद्धं पक्षद्वारं—किनारे का द्वार बन्द था।

किमिति चिरायितं त्वया, वेलातिक्रमः कृतः—देर क्यों कर रहे हो ?

मुहूर्तं तत् आस्तां, तिष्ठतु तावत्—थोड़ी देर तक इसे अलग रखो।

विषयसुखनिरतो जीवितमत्यवाहयत्—विषय-वासना से हीन जीवन व्यतीत किया।

चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि—चित्रकूट को जाने वाले रास्ते में।

अयं पन्था नदीमुपतिष्ठते—यह रास्ता नदी को जाता है।

अनुदिवसं परिहीयसेऽङ्गैः—तुम दिन व दिन दुबले होते जा रहे हो।

मदलेखया दत्तहस्तावलंबा—मदलेखा की बाहों का सहारा लेकर।

वामहस्तोपहितवदना—अपने बाएँ हाथ पर गाल टिकाकर।

त्र्यवराः साक्षिणो ज्ञेयाः–कम से कम तीन गवाह होने चाहिए।

अस्मास्ववहीनेषु–हमारे पीछे रहने पर।

शान्ते पानीयवर्षे–वर्षा बन्द होने पर।

सुखमुपदिश्यते परस्य—दूसरों को उपदेश देना सरल है।

लब्धावकाश, प्राप्तावकाश, निर्व्यापार, लब्धक्षण—अवकाश प्राप्त कर।

परित्रायस्वैनां मा कस्यापि तपस्विनो हस्ते पतिष्यति—उसे बचाओ नहीं तो वह किसी तपस्वी के हाथ में पड़ जायगी।

भूमिसात्कृत्वा—मिट्टी में मिला देना।

दरिद्रसमतां नीतं–गमित—दरिद्र बना दिया गया।

मनुष्याः स्खलनशीलाः—गल्ती करना मनुष्य का स्वभाव है।

यदत्रावसरप्राप्तं तत्र प्रभवति भवती–आप अवसर के अनुसार करने के लिये स्वतन्त्र हैं।

बन्धे मोक्षे चाधुना सा ते प्रभवति—वह तुम्हें रोकने या मुक्त करने के लिए स्वतन्त्र है।

सर्वथा त्वमेवात्र दोषभाक्–समूचा दोष तुम्हारा है।

सखीगामी अयं दोषः—यह दोष मेरी सखी का है।

प्राणयात्रा–धारणं–रक्षणं—जीवन का सहारा,।

साधुवृत्तं—सदाचार का जीवन व्यतीत करते हुए।

दशान्तराणि—जीवन की विषम दशाएँ।

अनया दृष्ट्या—इस प्रकार विचार करने पर।

एवमादि—यह और इस प्रकार की वस्तुएँ।

यस्ते छन्दः, यद् भवते रोचते—जैसी आपकी इच्छा।

कामचार, स्वच्छन्दः, स्वैरिन्, कामवृत्ति—अपनी इच्छानुसार कार्य करता हुआ।

कामरूपः—अपनी इच्छानुसार रूप धारण करने वाला।

यथाभिलषितं क्रियतां—जैसा चाहें वैसा करें।

स न तस्या रुचये बभूव–वह उसकी रुचि के अनुसार नहीं है।

अल्पविषय—संकुचित क्षेत्र का।

तस्य यश इयत्तया परिक्षेत्तुं नालं–उसकी कीर्त्ति की कोई सीमा नहीं है।

न गुणानामियत्तया-गुणों के सीमित होने के कारण नहीं।

यावदहं ध्रियेे—जब तक मैं जीवित हूँ।

वन्यफलैः शरीरवृत्तिं निर्वर्तयति-जंगली फलों का आहार करके जीवित रहता है।

स्मार्ते काले–जहाँ तक याद है।

राजकुले–राज्ञे–निविद्–शिकायत करना, मुकदमा करना।

नयनैः–दृष्टिभिः- पा, निध्यै–ध्यान पूर्वक देखना।

तत्साहसाभासं-वह साहस का कार्य प्रतीत होता है।

जनन्या मे योगक्षेमं वहस्व, जननीमवेक्षस्व चिन्तय–मेरी माँ की देख-भाल करो ।

विगतासुर्बभूव, प्राणैरहीयत–उसने अपने प्राण त्याग दिए ।

मित्रैर्वियुज्यते–वह मित्रों से वियुक्त होता है ।

उन्मार्गगामी अभूत्–वह कुमार्ग में पड़ गया ।

च्युताधिकार–अधिकारभ्रष्ट, अधिकारहीन, पदच्युत ।

किंकर्तव्यता-प्रतिपत्ति-मूढ–चकराया हुआ ।

उपनम्, उपस्था,–भाग्य में बदा होना ।

तव दुःखमुपनमेत्–तुम्हारे भाग्य में विपत्ति ही पड़ी है ।

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं–किस के भाग्य में सुख बदा है ।

दोषमपि गुणत्वमुपपादयितुं–दोष को भी गुण में परिवर्तित करना ।

लक्ष्यभेदः–लक्ष्य को बेंधना ।

अप्रभुरस्मि आत्मनः, न प्रभवाम्यात्मनः, गात्राणामनीशोस्मि संवृत्तः–मैं अपने वश में नहीं हूँ ।

सकलशास्त्रपारंगतः, शास्त्रपारदृश्वा–जिसने सभी शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।

गतोसि सर्वास्वायुधविद्यासु परां प्रतिष्ठां–तुमने सभी शास्त्रों की पूरी जानकारी प्राप्त कर ली है ।

आवां प्रतिद्वन्द्विनौ भवाव–आओ हम दोनों का जोड़ हो ।

दैत्येभ्यो हरिरलं–हरि दैत्यों के जोड़ है ।

अतीत्य–अतिक्रम्य–वृत्–काफी बढ़कर होना ।

तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम्–बराबर का युद्ध हुआ ।

यत्किंचित्करमेतत्–कोई हर्ज नहीं ।

किं तस्या वृत्तं, कस्तस्या वृत्तान्तः–उसका क्या हाल है ?

किं मम तेन कार्यं–कोर्थः–इससे मुझे क्या मतलब ?

सन्निधानस्य अकिंचित्करत्वात्–निकट होने से कोई प्रयोजन नहीं ।

परिणतप्रज्ञ, कठोरधी–परिपक्व बुद्धि वाला ।

साकूतं मां निर्वर्ण्य–मेरी ओर अर्थभरी दृष्टि डालकर ।

प्रत्युद्-या-व्रज्-गम्-इ–मिलने जाना ।

प्रत्युत्था, अभ्युत्था–अगवानी करने के लिए उठना ।

आपः संप्लवन्ते–संभिद्यन्ते- जल बहता है ।

तस्य हृदयं स्नेहार्द्रीभूतं, स्नेहेनाभ्यषन्दत–उसका हृदय स्नेह से भर गया ।

मेधाविन्, धारणावत्–प्रतिभाशाली ।

स्मृतिविषयतां–स्मृतिपथं- स्मर्तव्यशेषं–कथावशेषं गम्--या--नी —केवल याद भर बच गयी ।

एको दोषो गुणसन्निपाते निमज्जति–अनेक गुणों में एक दोष छिप जाता है ।

चित्त–मनो–व्यापारः–वृत्तिः–मन की गति ।

मनसि उत्–इ, या, उद्भू बुद्धौ संजन्–मन में आना ।

आस्तां–तिष्ठतु--तावत्–प्रथमः प्रश्नः–पहले प्रश्न पर ध्यान न दें ।

उत्कंठासाधारणं परितोषमनुभवामि–मुझे पश्चात्ताप के साथ प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है ।

मार्गात् भ्रष्टः–मार्ग से च्युत, पथभ्रष्ट ।

गोत्रस्खलितं–नाम पुकारने में गलती ।

तस्माद् गर्दभाद् व्याघ्रधिया बुद्धया पशवः पलायन्ते–पशु गदहे को बाघ समझकर भाग रहे हैं ।

आपातरमणीय–तत्काल सुन्दर लगने वाला ।

खलु सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति । आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति–दुष्ट व्यक्ति दूसरे का छोटा दोष भी देखता है किन्तु अपने बड़े दोष को देखकर भी अनजान बना रहता है ।

तिले तालं पश्यति, अणुं पर्वतीकरोति–राई का पर्वत बनाना ।

अस्मात्स्थानात्पदात्पदमपि न गंतव्यं–एक पग भी आगे मत बढ़ो ।

कर्मणो गहना गतिः—भाग्य की गति रहस्यपूर्ण होती है ।

अपि ज्ञायन्ते ते नामधेयतः—क्या तुम उनके नाम जानते हो ।

अस्य मातरं नामतः पृच्छेयं—मैं उसकी माता का नाम पूछूँगा ।

नामग्राहं मामाह्वयति—वह मुझे नाम लेकर बुलाता है ।

वचनेन, वचनात्—किसी के नाम से ।

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा—मेरा नाम लेकर राजा से कहना ।

मामुद्दिश्य तस्मै सभाजनाक्षराणि पातय—मेरी ओर से उसे नमस्कार कहना।

मानुषतासुलभो लघिमा—मनुष्य की स्वाभाविक कमजोरी।

दुर्जातबन्धुः—विपत्ति का साथी।

स सुहृद् व्यसने यः स्यात्—जो विपत्ति में साथ दे वही मित्र है।

मालती मूर्धानं चालयति—मालती अपना सिर हिलाती है!

ननु शब्दपतिः क्षितेरहं—मैं नाम मात्र को ही पृथ्वी का स्वामी हूँ।

बहुलीभूतमेतद् वृत्तं—यह बात काफी फैल गई है।

यत्नादुपचर्यतामसौ—उसकी सावधानी से सेवा की जाय।

स्नेहस्यैकायनीभूता—किसी के स्नेह का एकमात्र पात्र।

किमुद्दिश्य, किंनिमित्तं, किमपेक्ष्य फलं—किस विचार को ध्यान में रखकर।

प्रत्यर्थिभूता सा समाधेः—वह ध्यान में विघ्न के समान थी।

श्लाघ्ये गृहिणीपदे स्थिता—गृहिणी का सम्मानपूर्ण पद प्राप्तकर।

इति तस्य बुद्धौ न संजातं, इति तस्य हृदये नापतितं—यह उसके मन में नहीं आया।

स्मृत्युपस्थितौ इमौ द्वौ श्लोकौ—ये दोनों श्लोक मेरे मन में आए।

कस्मिन्नपि पूजार्हे अपराद्धा शकुन्तला—शकुन्तला ने किसी आदरयोग्य व्यक्ति का अपमान कर दिया है।

तव न कदापि मया विप्रियं कृतं प्रतिकूलमाचरितं—मैंने तुम्हें कभी एक बार भी कष्ट नहीं दिया है।

शीघ्रकोपिन्, सुलभकोप—शीघ्र क्रोध करने वाला।

च्युत, भ्रष्ट,-अधिकार—पदच्युत।

प्रकाशं निर्गतः—खुलने पर, प्रकट होने पर।

तवोपालंभे पतितास्मि, उपलंभपात्रं जाता-मैंने स्वयं को तुम्हारे व्यंग्यों का लक्ष्य बना दिया।

गृहीतावसर, लब्धावकाश—अवसर पाकर।

लोकाचारविरुद्ध लोकविद्विष्ट—लोकाचार के विपरीत।

अत्र स्वरुच्या वर्ततां भवान्, यथाभिलाषं क्रियतां—यह तुम्हारे ऊपर है, जैसा चाहो वैसा करो।

यथाज्ञापयति देवः—आप की जैसी आज्ञा।

आनुलोम्यं—स्वाभाविक क्रम से।

प्रातिलोम्यं व्युत्क्रमः, विपर्ययः, व्यत्यासः—उलटे क्रम से।

अपह्रिये परिश्रमजनितया निद्रया-थकावट की नींद से मैं अभिभूत हूँ।

आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा—प्रसन्नता से चमकती हुई आँख द्वारा।

प्रथमं कुतूहलं सपरिवाहमासीत्—पहले मेरा कुतूहल बढ़ा।

विवर्णभावं प्रपेदे—पीली पड़ गई।

शरीरभूता मे शकुन्तला—शकुन्तला मेरे शरीर का अंग है।

भूमिकाकल्पनं—पाठ देना, अंश देना।

तस्य नरस्य विशेषं ब्रूहि—उस व्यक्ति के विषय में विशेष बातें बताओ।

तेनाष्टौ परिगमिताः समाः कथंचित्-बड़ी कठिनाई से उसने आठ वर्ष बिताये।

इदं धियः पथि न वर्तते—यह बुद्धि से परे है।

आस्तां-तिष्ठतु तदधुना, यातु किमनेन,—अब इसे रहने दें।

किमर्थमगृहीतमुद्रः कटकान्निष्क्रामसि-बिना मुहर लिये शिविर से बाहर क्यों जाते हो?

अमुद्रालांक्षित—बिना मुहर के।

तया हृदयवल्लभोऽभिलिख्य कामदेवव्यपदेशेन सखीपुरतोऽपह्नुतः-उसने अपने प्रियतम के चित्र को कामदेव का चित्र बताकर सखी से छिपा लिया।

मध्यमांबावृत्तान्तोऽन्तरित आर्येण-मझली माता के समाचार को आपने छिपा लिया है।

जालान्तरप्रेषितदृष्टिरन्या-जाली से झाँकती हुई।

आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया-बड़ों की आज्ञा पर विचार नहीं किया जाता।

नाटकं न प्रयोगतो दृष्टं, प्रयोगेणाधिकृतं न दृष्टं-नाटक का मंच पर अभिनय नहीं देखा गया है।

स्थिरप्रतिबन्धो भव-विरोध का सामना धैर्य के साथ करो।

आसन्न-शरीर-परिचायक:—व्यक्तिगत सहायक, अंगरक्षक।

स्वानुभव:—व्यक्तिगत अनुभव।

यौवनमंगेषु सन्नद्धं—युवावस्था अंगों में लहरा रही है।

ज्ञायतां क: कार्यार्थीति—पता चलाओ कि प्रार्थी कौन लोग है।

विरहोत्कंठं हृदयं—विरह से व्याकुल हृदय।

स गृहं गन्तुमुदताम्यत्—वह घर जाने के लिए उत्सुक था।

अन्त:पुरविरहपर्युत्सुको राजर्षि:—राजर्षि रानियों के विरह के कारण कृशकाय होते जा रहे है।

पितृस्थाने-भूमौ—पिता के स्थान पर।

प्रथमं, प्रथमत:, प्रथमं-तावत्—पहले।

अपरं च, पुन:, पुनश्च—इसके बाद।

अर्थिन्, वादिन्, अभियोक्तृ—प्रार्थी, वादी।

प्रत्यर्थिन्, अभियुक्त, प्रतिवादिन्—प्रतिवादी।

द्वित्राण्यहान्यर्हसि सोढुमर्हन्—श्रीमान्, कृपया दो-तीन दिन प्रतीक्षा करें।

यदभिरोचते वयस्याय—मेरे मित्र को जो अच्छा लगे।

हृदयंगम: परिहास:—आनन्द देने वाला परिहास।

सुखश्रव, श्रुतिसुख श्रवणसुभग, मंजुलस्वन—कानों को मधुर लगनेवाला।

विहितप्रतिज्ञ गृहीतक्षण,—अहं—मैंने प्रतिज्ञा की है।

अनयोर्वृत्तेयं प्रतिज्ञा—उन दोनों ने इस प्रकार प्रतिज्ञा की।

तव विरूपकरणे तेन सुकृतमन्तरे धृतं—उसने अपने सदाचार की शपथ लेकर कही है कि वह तुम्हें हानि नहीं पहुँचावेगा।

मरणोन्मुख, आसन्नमृत्यु, मुमूर्षु—मृत्यु के निकट।

प्रसवोन्मुखी, आसन्नप्रसवा—प्रसव के निकट।

दासी महिषीपदं ग्राहिता, देवीभावं गमिता—दासी को रानी का पद दिया गया।

तदुभयथापि घटते—यह दोनों प्रकार से संभव है।

चिरप्रवृत्त—बहुत दिनों से अभ्यास में होने वाला।

सदाचार, सद्वृत्त, साधुवृत्त—अच्छे आचरण का अनुसरण करते हुए।

कां वृत्तिमुपजीवत्यार्यः—आप कौन सा कार्य करते हैं ? आपका व्यवसाय क्या है ?

प्रयोगः—व्यवहार सिद्धान्त के विपरीत ।

शास्त्रं-आगम—सिद्धान्त ।

शासनात् करणं श्रेयः, वाचः कर्मातिरिच्यते—कथनी से करनी भली ।

स कथयत्यागामिनमप्यर्थं—वह भविष्य की घटनाओं को बता देता है ।

वरं मृत्युः न पुनरपमानः—अपमान से मृत्यु भली होती है ।

दौर्हृदलक्षणं दधौ—उसमें गर्भ के चिह्न प्रकट हुए ।

कठोरगर्भा—पूरे दिनों का गर्भ ।

त्वयोपस्थातव्यं सन्निहितेन भाव्यं—आपको उपस्थित होना चाहिए ।

समतीतं च भवच्च भावि च—भूत, वर्तमान और भविष्यत् ।

अग्निं साक्ष्ये आधाय—अग्नि को साक्षी बनाकर ।

तं वक्षसा परिरभ्य, क्रोडीकृत्य–उसका आलिंगन करके ।

भक्तिविषवेगः—विष खाने की नकल करते हुए ।

अश्रुतिमभिनयति—बहरा होने का बहाना करता है ।

आर्यध्वजिन्-लिंगिन्—न्यायपूर्ण होने का बहाना करता है ।

साक्षी वाक्यभेदान् बहूनकथयत्–गवाह ने कई विरोधी बातें कहीं ।

प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरं—कीचड़ को धोने की अपेक्षा उससे दूर रहना अच्छा है ।

द्विषामामिषतां ययौ—शत्रुओं का शिकार बना ।

प्रथमवयः, नवयौवनं, अक्षतयौवनं—पूरी जवानी ।

ततस्ततः, ततः परं कथय—आगे की कथा कहो ।

प्रस्तूयतां विवादवस्तु—इस विवाद को आगे बढ़ाओ ।

प्रवर्त्यतां भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाकः—श्रेष्ठ ब्राह्मणों के सम्मान में दिये जाने वाले भोज की तैयारी करो ।

किंनिमित्तं ते सन्तापः—तुम्हें किस कारण से सन्ताप होता है ?

क्षुद्रबोधित—भूख से पीडित ।

स सदा प्रत्युत्पन्नमति, प्रबोधननिरपेक्ष—उसे बताने को जरूरत नहीं होती ।

एष सनिकारं नगरान्निर्वास्यते—यह वह व्यक्ति है जिसका अपमान करके नगर से निकाल दिया गया है।

ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कंठेन निजोपयोगितां—सज्जन अपनी योग्यता अपने कार्य द्वारा प्रमाणित करते हैं, बातों द्वारा नहीं।

अनागतविधातृ—भविष्य की व्यवस्था रखने वाला।

आपदर्थे धनं रक्षेत्—विपत्ति के लिए धन जोड़ रखना चाहिए।

स्तूयमाना नोत्सिच्यन्ते या अनुद्धृताः—प्रशंसा से फूलकर कुप्पा नहीं होता।

दर्पाध्मात, उत्सिक्त, अवलिप्त, उद्धत—घमण्ड से चूर।

चौरदण्डेन दण्डयेत्—उसे चोर के समान दण्ड देना चाहिए।

अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनः—तपस्वियों से विना संकोच के प्रश्न करना चाहिए।

मन्दोऽप्यविरतोद्योगः सदा विजयभाग्भवेत्—धीरे-धीरे किन्तु निरन्तर कार्य में लगा रहने वाला सफल होता है।

तद्वचो मम हृदये शल्यं जातं—उसके वचन मेरे हृदय में काँटे की तरह चुभते हैं।

स प्रहारः करालतां गतः—वह प्रहार भयंकर बन गया।

वृत्तान्तेन श्रवणविषयप्रापिणा—उसके कानों तक पहुँचने वाली बातों से।

इदं प्रायेण तव कर्णपथमायातं, श्रुतिविषयमापतितमेव—शायद यह आपके कानों तक पहुँच गई है।

प्रत्युत्पन्नमति—हाजिर जबाब तुरत बुद्धि, प्रतिभाशाली।

परमार्थतः प्रेम—वास्तविक प्रेम।

धनी उपगतं दद्यात् (धनं) स्वहस्तपरिचिह्नितं—साहूकार को अपने हाथ से लिखी हुई रसीद देनी चाहिए।

दर्शनप्रतिभुवं ददौ—उसने पहचान करवाई।

तदहं विदधे तव स्तवं दमयन्त्याः सविधे—अतएव मैं दमयन्ती से तुम्हें वरण करने के लिए कहूँगा।

नाद्यापि प्रसादं गृह्णासि, प्रसन्ना न भवसि—अब भी आप प्रसन्न नहीं हुए।

वाक्यानि प्रतिसमादधाति—कथनों का समाधान करता है।

कृतकालोपनेयः आधिः—निश्चित समय पर पूरी की जाने वाली प्रतिज्ञा।

आत्मवशं नी, वशी कृ—अपने वश में करना।

अस्थिमात्रावशेष, कंकालशेष—जिसकी केवल हड्डियाँ शेष हो।

अपचितं गात्रं—क्षीण शरीर वाला।

अत्र पुरावृत्तकथा अनुसन्धेया—यहाँ पौराणिक कथा देखनी चाहिए।

भर्तुः प्रतीपं मास्म गमः—पति के विरुद्ध मत होना।

नार्हसि मे प्रणयं विहन्तुं—मेरी प्रार्थना मत ठुकराइएगा।

तस्य मनो मार्दवमभजत, कठिनतामजहात्—उसका हृदय पिघल गया।

स चानुनीतो मृदुतामगच्छत्—अनुनय विनय करने पर उसका हृदय पिघला।

किमपि सानुक्रोशः कृतः—वह कुछ-कुछ कोमल पड़ा।

दुःखविश्रामं ददाति—दुःख विश्राम देता है।

हृदि एनां भारतीं उपधातुमर्हसि—कृपया इन बातों को भलीभाँति हृदय में रखिएगा।

पातालं मामद्य संस्मरयतीव भुजंगलोकः—वीरों का यह समूह मुझे पाताल की याद दिलाता है।

अये सम्यगनुबोधितोस्मि—मुझे अच्छा याद आया।

इति जनप्रवादः, किंवदन्ती-श्रूयते, इति प्रवादः—ऐसी किंवदन्ती सुनी जाती है।

विश्वासप्रतिपन्नं—विश्वस्त।

दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयन्ति, गुणपक्षे स्थापयन्ति—दोषों को भी गुण बताते हैं।

संवदन्त्यक्षराणि—अक्षर मिलते-जुलते हैं।

सागरे नद्यो विलीयन्ते—नदियाँ समुद्र में मिलती हैं।

वामहस्तोपविहितवदना—अपने बाएँ हाथ पर मुँह लटका कर।

खुरत्रये भरं कृत्वा—तीन पैरों पर भार रोक कर।

भाग्यायत्तमतः परं—इसके आगे की बात भाग्य के अधीन है।

सकलरिपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते—जिसके ऊपर आपके पुत्र शत्रुओं को पराजित करने की उम्मीद रखते है।

हरः स्मरं स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति—हर कामदेव को उसका शरीर लौटा देंगे।

एवं सर्वतो निरुद्धचेष्टाप्रसरस्य मे–इस प्रकार सभी ओर से मेरे रास्ते वन्द हो जाने पर।

अपवादः उत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः—अपवाद किसी भी नियम को सीमित कर देता है।

अतः परं पुनः कथयिष्यामि—इसके आगे फिर कहूँगा।

तस्य चार्थस्य सततं मनसि विपरिवर्तमानत्वात्—यह बात बराबर उसके मन में नाच रही थी।

गमिष्याम्युपहास्यतां—मैं हँसी का पात्र बनूंगा।

अवितथमाह प्रियंवदा—प्रियंवदा ने ठीक कहा है।

न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति—स्त्रियां स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं होतीं।

तत् देवीहस्ते निक्षिपता मया युक्तमेवानुष्ठितं—मैंने उसे महारानी के हाथों में सौंप कर ठीक ही किया।

ते नाभ्युपतिष्ठन्ति गुरून्—वे अपने गुरुजनों का स्वागत करने के लिए नहीं उठते है।

उत्तिष्ठमानः शत्रुः–उभड़ता हुआ शत्रु।

स्थाने खलु सज्यते दृष्टिः–नेत्र ठीक जगह पर लगे हैं।

प्रथमं गणितमिव तवोत्तरं—इस उत्तर को मानों तुमने जबानी याद किया है।

प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा—अपनी सन्तान के समान प्रजा का शासन करके।

कियदवशिष्टं रजन्याः—अभी रात कितनी बीती है?

सफलीकृतभर्तृपिण्डः–उसने स्वामी की नमकहलाली नहीं की है।

का कथा गणना (सप्तमी के साथ) कथैव नास्ति–(प्रति के साथ), इन विषयों में क्या कहना ?

जनप्रवादः—लोकनिन्दा।

तथा च लौकिकानामाभाणकः—लोग इस प्रकार कहते हैं।

मुद्रां परिपालयन् उद्घाट्य दर्शय—मुहर को बिना तोड़े इसे खोलकर मुझे दिखाओ।

प्रत्यक्षीकृत—अपनी आँखों से देखना।

क्रय्य, क्रयार्थं प्रसारित—बिक्री के लिए रखना।

कृतज्ञता, कृतवेदित्वं—आभार।

जराप्लुतमानावमानचिन्तः—वृद्धावस्था के कारण सभी आदर-अनादर का विचार छोड़कर।

यौगिकार्थः—व्युत्पत्तिसंबन्धी अर्थ।

रूढार्थ—प्रचलित अर्थ।

अन्वर्थ, यथार्थ, परमार्थतः—सच्चे अर्थों में।

अन्यथा ऐषा वीप्सा न चरितार्था भवति—अन्यथा इस आवृत्ति का कोई मतलब नहीं।

एकैक, व्यस्त—एक-एक करके।

सर्वाविनयानामेकैकमप्येषामायतनं, तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने कोपोद्दीपनाय अलं या पर्याप्तमिदं—यह उसका क्रोध उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त होगा।

उपयोगं व्रज, स्थाने-भूमौ भू—काम में आने, स्थान पर होना।

मरुतः परिवेष्टारः आसन्—देवता भोजन परसने वाले थे।

इदं पादोदकं भविष्यति—इससे पैर धोया जायगा।

सर्वांगिका आभरणसंयोगा—अंग-अंग में शोभा देने वाला आभूषण।

रत्नानुविद्ध, मणिप्रत्युप्त, रत्नखचित—रत्न जड़ा हुआ।

पदं कृ—पैर रखना, जगह बनाना।

मनः-धियं चितं बन्ध् या आधा, या सन्निधि, (प्रेरणार्थक) या युज—मन रखना, मन लगाना।

अनेन समयेन परिणतो दिवसः—इस समय तक सूर्य डूब गया है।

आधीयतां धर्मे धीः—धार्मिक कर्मों में मन लगाओ।

विनाशधर्मसु विषयेषु मनो मा संनिवेशय—नश्वर वस्तुओं पर मनन लगाओ।

अचिरप्रवृत्तो ग्रीष्मसमयः—ग्रीष्म का समय अभी शुरू हुआ है।

गुणा विनयेन शोभन्ते—गुण विनय के साथ सुशोभित होता है।

व्यवस्थापितवाक्, वाचं व्यवस्थाप्य—यह कथन के अनुसार करना।

इति प्रतिपादितमाकुलीभवेत्—यह स्थिति डँवाडोल हो जायगी।

स्निग्धजनसंविभक्तं दुःखं—मित्रों द्वारा बँटाया गया दुःख।

केन वान्येन सह साधरणीकरोमि दुःखं—किस दूसरे के साथ अपना दुःख बटाऊँ।

चर्मिन्, फलकपाणि—ढाल से सुसज्जित।

खड्गचर्मधर—ढाल और तलवार से युक्त।

नयनोपान्तविलोकितं, साचिवीक्षणं, अपांगदृष्टिः, कटाक्षः–तिरछी दृष्टि।

विदूषकं संज्ञां लंभयति—विदूषक को इशारा करता है।

अर्थवत्, सार्थं, चरितार्थं, अर्थयुक्त, अन्वर्थ—अर्थ से युक्त।

सीदति मे हृदयं—मेरा दिल बैठा जा रहा है।

प्रबलपिपासावसन्नानि अंगकानि—जोर की प्यास से मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं।

तस्य धैर्यमहीयत, स लुप्तस्खलितधैर्यः—उसका धीरज टूट गया।

मया रथस्य मन्दीकृतो वेगः—मैंने रथ को धीमा किया।

शिथिलितप्रयत्नाः, श्लथोद्यमाः—प्रयत्न करने में शिथिल।

मन्थरविवेकं चेतः—समझने में मन्दबुद्धि।

प्रत्यभिज्ञानमन्थर—पहचानने में मन्द।

पराभवो मम हृदि प्रत्युप्तं शल्यमिव, न्यक्कारो हृदि वज्रकील इव मे-

तीव्रं परिस्पदन्ते—यह पराजय मेरे हृदय को व्याकुल बना रहा है, छेद रहा है।

बधिरान्मन्दकर्णः श्रेयान्—नहीं से कुछ भी भला।

वक्तुं सुकरमिदमध्यवसातुं तु दुष्करं—करने से कहना आसान होता है।

तन्तुनाभः स्वत एव तन्तून् सृजति—मकड़ी अपना जाला अपने से ही बनाती हैं।

सोल्लास, प्रमुदितचित्त—उत्फुल्ल।

मिषतां नः आमिषं आच्छिनत्ति—देखते रहने पर भी शिकार झपट लेता है।

चारचक्षुर्महीपालः—राजा के नेत्र दूत ही होते हैं।

उपक्रोशमलीमसैः प्राणैः किं—बदनाम जीवन का क्या लाभ ?

संशयस्थं जीवितं तस्य, स संशयितजीवितं आसीत्, जीवितं संशयदोलाधिरूढं—उसके प्राण संकट में पड़ गये हैं।

वचनीयमिदं व्यवस्थितं—यह हमेशा के लिए कलंक बना रहेगा।

कुण्ठित प्रतिहत रुद्ध-गति—शान्त, समाप्त।

इदं सोपपत्तिकं न भाति—यह तर्क के सामने नहीं टिकता।

लब्धप्रतिष्ठः—जिसने प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

पुलकित, रोमांचित—रोंगटे खड़े हो गये।

यात्राभिमुखं प्रवृत्—यात्रा पर आगे बढ़ना।

अभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगाः—मृग सामान्य गति में भी शब्द सुन लेते हैं।

सचकित—विस्मित।

अविदितगतयामा रात्रिः—रात्रि ऐसी बीती कि मालूम ही नहीं पड़ी।

शनैर्निद्रानिमीलितलोचनं मामकार्षीत्—धीरे-धीरे मेरी आँखें लग गईं।

ज्वलति चलितेन्धनोग्निः—जब इन्धन हिलाया डुलाया जाता है तो आग जल उठती है।

नैतावता पीडा निष्क्रामति—कष्ट यहीं समाप्त नहीं होता।

मुखे चपेटां दा—मुँह पर चाँटा मारना।

चित्ते भयं जनयति—मन में भय उत्पन्न करता है।

बद्ध-प्ररूढ-मूल—जड़ बाँधना।

तस्य हृदयं पस्पर्श विस्मयः—उसके मन में आश्चर्य भर गया।

तद्धि प्रसिद्धतरेण प्रयोगेण शीघ्रं बुद्धिमारोहति, प्रसिद्धिबलेन प्रथमतरं प्रतीयते—सामान्य अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण इसे आसानी से समझा जा सकता है।

जर्जरितकर्णविवरः—जर्जरीकृतकर्णपटुः—नाद—कान का पर्दा फाड़ने वाली आवाज।

सा देवीशब्देनोपचर्यते–उसे देवी कहकर पुकारा जाता है।

पितुरनन्तरमुत्तरकोशलान्समधिगम्य–पिता के बाद उत्तरकोशल देश का अधिकार पाकर।

यदि नावसीदति गुरुप्रयोजनं–यदि कोई बड़ा नुकसान न हो।

खलः करोति दुर्वृत्तं तद्धि फलति साधुषु–एक मछली सारे तालाब को गन्दा करती है। दुष्ट व्यक्ति बुराई करते हैं सज्जनों को भोगना पड़ता है।

आतपलंघनात्–लू लगने से।

पुनरुक्ततां नी-अर्थहीन करना।

अभिव्यक्तायां चन्द्रिकायां किं दीपिकापौनरुक्त्येन–जब रात साफ होती है तो मशाल बेकार हो जाते हैं।

अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते–विशिष्यते—सत्य सहस्रों अश्वमेधयज्ञों से बढ़कर होता है।

कथं जीवितं धारयिष्यामि—मैं जीवन कैसे धारण करूँगा।

न ह्ययं मन्त्रः स्वातन्त्र्येण कंचिदपि वादं समर्थयितुमुत्सहते—यह मन्त्र स्वतः किसी सिद्धान्त की पुष्टि नहीं करता।

नियम्य शोकावेगं–शोक के वेग को दबाकर।

विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता–मैं विकार से प्रभावित होने वाली बन गई हूँ।

विकारि यौवनं—युवावस्था विकारों का घर है।

धृतद्वैधीभावकातरं मे मनः—मेरा मन दुविधा में पड़ गया है। साँप-छछुन्दर की गति।

विहगाः समदुःखा इव चुक्रुशुः—पक्षियों ने मानों सहानुभूति में चीख की।

भिन्नरुचिर्हि लोकः—सबकी अपनी-अपनी पसन्द होती है।

निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्तोस्मि—मैं सहसा वेत की झाड़ी से निकलने में असमर्थ हूँ।

विललाप विकीर्णमूर्धजा—वह शोक में बाल नोंचने लगी।

गमयन्ति रजनीं विषाददीर्घतरां—विषाद के कारण पहाड़ हुई रात्रि काटता है।

शास्त्रे प्रयोगे च मां विमृश—सिद्धान्त और व्यवहार में मेरी परीक्षा लो।

अनुगृहीतोऽस्मि, महानयं प्रसादः—धन्यवाद।

द्वावप्यागामिनौ प्रयोगनिपुणौ च—दोनों व्यवहार और सिद्धान्त में निपुण हैं।

नगरगमनाय मतिं न करोति—वह राजधानी जाने का विचार नहीं करता।

सखीमुखेनोचे—सखी से कहलवाया।

अपत्यमन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः—सन्तान माता-पिता के पारस्परिक प्रेम की गाँठ होती है।

अतिपिनद्धेन वल्कलेन नियन्त्रितास्मि—चुस्त वल्कल वस्त्र से मैं जकड़ गई हूँ।

समयः स्नानभोजनं सेवितुं—यह स्नान और भोजन करने का ठीक समय हो गया है।

कालानुवर्तिन्—समय के अनुसार काम करने वाला। समय का पाबन्द।

नैव वारान्तरं विधास्यामि—मैं आइन्दा ऐसा नहीं करूँगा।

अनवसरग्रस्तोऽर्थिभावः—अब भीख माँगने का समय नहीं रह गया।

अकालक्षेपेण, अवलंबितं, अकालहीनं—बिना समय खोए।

अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी, समस्ता एव जिह्वाग्रेऽभवन्—विद्याएँ उसकी जीभ पर नाचती थीं।

धारासारैर्महती वृष्टिर्बभूव—मूसलाधार वर्षा हुई।

शतसंख्या मामियं स्पृशति—सौ की संख्या छूती है।

हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया—मन में चिन्ता हो गई है।

मित्राणां तत्त्वनिकषग्रावा विपत्—विपत्ति ही मित्रों की कसौटी है।

ग्राहकैर्गृह्यते चौरः पदेन—पैर के चिह्न से चोर पकड़ा जाता है।

ब्रह्मशब्दस्य व्युत्पाद्यमानस्य—जब ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है।

क्षुण्णाद्वर्त्मनः—पुराने मार्ग पर।

परन्तपोनामा-यथार्थनाम्नः—वह परन्तप नाम को सार्थक बनाता है।

ध्रुवसिद्धेरपि यथार्थनाम्नः—अपने नाम को सार्थक करने वाले ध्रुव-सिद्धि का।

उपकारः प्रत्युपकारेण निर्यातयितव्यः—भलाई का बदला भलाई से।

असमर्थित, अतर्कित, अतर्कितोपनत—अप्रत्याशित, जिसकी कल्पना पहले न की गई हो।

समवायो हि दुस्तरः, संहतिः कार्यसाधिका—संघ में शक्ति है।

ज्योतिः शब्दतेजसि प्रयुज्यते—ज्योति शब्द प्रकाश के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

ज्योतिः शब्दो ज्वलन एव रूढः—'ज्योति' शब्द प्रकाश के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

अनुपभुक्तभूषण—गहने का शौकीन नहीं।

रणधुरां वह्, समरशिरसि वृत—सेना का नेता।

वाचिकं, शब्दाख्येयं—जबानी सन्देश।

वाग्व्यवहारः—मौखिक वादविवाद।

लोक-व्यवहार-दृष्ट्या—सांसारिक दृष्टि से।

निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेहः—तुम्हारा वात्सल्य काफी प्रकट हो चुका है।

कालः कश्चित् प्रतीक्ष्यतां—कुछ समय प्रतीक्षा कीजिए।

सहस्व मासद्वयं—दो महीने और काट लो।

स्फुलिंगावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थितः—चिनगारी की अवस्था में पड़ी आग को ईंधन की जरूरत होती है।

त्वत्तो न कमपि परिहास्यते—आपको किसी चीज की कमी नहीं रहेगी।

न कामचारो मयि शंकनीयः—मुझे स्वेच्छाचारी मत जानें।

सूर्यातपं सेव्—धूप लेना।

अग्न्यातपं सेव्—आग तापना।

वृद्धिक्षयौ—उन्नति, अवनति।

अन्तरा—बीच में, मार्ग में।

परिपन्थीभू—रास्ते में आना, रोड़ा अटकाना।

किं स्वातन्त्र्यमवलंबसे—क्या मनमानी कर रहे हो।

सर्वत्र नो वार्तमवेहि—हमारी कुशल ही समझिए।

युज्यते,बाढं, तथेति उक्त्वा—ठीक है, बहुत अच्छा, ऐसा कहकर।

छन्दोनुवृत्तिः–दूसरे के मन मुताबिक चलने वाला, दूसरे का मुँह ताकने वाला।

ईश्वरेच्छा बलीयसी, प्रभवति भगवान् विधिः–ईश्वर जो चाहता है वही होता है। होइहैं सोइ जो राम रचि राखा।

बलात्, हठात्, अकामतः—इच्छा के विपरीत।

अयशः प्रमृष्टं—कलंक मिट गया।

कुण्ठितमतिः आसीत्, निरुत्तरीकृत,—दिमाग चकरा गया।

कष्टमभ्यापन्नः–वह बुरी दशा में था।

नैतच्चित्रं-किमत्र चित्रं–आश्चर्य की बात नहीं है।

सत्य-पालित-संगर-सन्धः—प्रतिज्ञापालक।

लघुसन्देशपदा सरस्वती—छोटा सन्देश।

सम्यग्ग्रथित, साधुविन्यस्त-पद–सुष्ठु।

करुणार्थग्रथित–करुणा से युक्त, करुणार्द्र।

त्वं मम जीवितसर्वस्वीभूतः—तुम मेरे जीवन के सब कुछ हो।

लौकिकज्ञः–व्यवहारकुशल।

न तर्हि प्रागवस्थायाः परिहीयसे–तो तुम पहले से बुरी दशा में नहीं हो।

अनुरूपभर्तृगामिनी–अपने योग्य पति वाली।

वैर-साधनं, निर्यातनं–बदला लेना, वैर निकालना।

बाढं, अथ किं—हाँ।

तथेति उक्त्वा—'ऐसा ही सही' कह कर।

वैतसीं वृत्तिं आश्रि—बलवान् शत्रु के सामने दब जाना।

———

शुद्ध करने के लिए वाक्य

१. अरण्येऽधिवस्तुं यतय इच्छन्ति ।
२. संन्यासी बहवो दिनान्येकस्थाने नावसेत् ।
३. यद्रामादन्तरेणायोध्या शून्या दृश्यते तत्कैकेयीवचनस्य परिणामः ।
४. अस्य गिरेरभितो बहवोऽश्मानः सन्ति ।
५. अस्य वर्त्मनः परितः पलाशवृक्षा दृश्यन्ते ।
६. हा धिङ्, मेऽन्यायाचरणं कुर्वते ।
७. स एवं विचारयन् सकला रात्रीर्व्यतीयाय ।
८. दुर्योधनः पाण्डवान्नास्निह्यत् ।
९. शत्रवे बाणानहं क्षिपामि स तु मह्यं दृशदो मुञ्चति ।
१०. मम वचनं स न विश्वसिति ।
११. सर्वेभ्यः पुत्रेभ्यो गोपालः पितुः प्रेष्ठः ।
१२. सर्वाभ्यो नदीभ्यो भागीरथी द्राघिष्ठा ।
१३. स भोजनादनु बहिरगच्छत् ।
१४. संसारसुखानि केवलं दुःखस्थानमस्तीति साधोरन्तरेण को जानाति ।
१५. इयं नगरी त्रयः क्रोशा आयता ।
१६. धनिनं द्रव्यं याचितं भिक्षुकैः ।
१७. अम्भोनिधिं सुधा ममन्थे देवैः ।
१८. तेषां मे च सख्यमस्ति ।
१९. अयं वित्तसंचयस्त एव ।
२०. तां वात्रानय मां वा तत्र नय ।
२१. हे जगन्नाथ मे सर्वाणि पापानि क्षमस्व ।
२२. ताः स्त्रिय आत्मनो निन्दन्ति ।
२३. सा युवतिर्नात्मानं हतप्रायाममन्यत ।
२४. क्रुद्धः पुरुषः शिलामप्यधिशेते ।
२५. गोपालो वा रामोऽहं वा त्वं तत्कार्यं करिष्यथेति मां भाति ।

२६. पथिक उत्थिते सति तस्य सार्धमहगच्छम् ।

२७. समागतेषु बालेषु तान्फलानि दातुमारभस्व ।

२८. तस्मिन् राजनि वसुधामीशाने न कोऽपि सामन्तस्तमभिभवितुं यतते ।

२९. अजासु क्षेत्रं नीयमानासु ताः शस्यमखादयत् ।

३०. भार्याया आक्रोशन्त्याः सा भर्त्रा प्रतिषिद्धा ।

३१. दम्भश्च पैशुन्यं च सदा गर्हणीयो ।

३२. रूपवती भार्या सदा प्रीतिपात्रा भवति ।

३३. पिता च माता च वार्द्धक्ये परिपालनीयः ।

३४. यत्स एवमुवाच तत्तस्य दोष एव ।

३५. यत्क्रौर्यमित्याचक्षते तत्प्रकृतिरेव खलानाम् ।

३६. अन्येषां पुत्राणां राम एव पितुः प्रेयानासीत् ।

३७. त्वं मम प्राणानामपि प्रियतरा अतस्त्वां सर्वं कथयामि ।

३८. अहं तत्र गन्तुं न शक्नोमि हि मध्ये नद्यायातवती ।

३९. वरं भिक्षां याचितं न तु परसेवाविधिम् ।

४०. अहं वा त्वं तच्चकार ।

४१. स गृहं प्रत्यागतो वा नेति मां सत्वरं निवेदय ।

४२. राज्ञापराधिनं शता रूपका दण्ड्याः ।

४३. इन्द्रः स्वयशः किन्नरमिथुनैर्गापयामास ।

४४. प्रासादस्य परितोऽमात्यं भिक्षुकान् स्थापयति राजा ।

४५. क्षुधितेन वत्सेन पयः पायय तमन्नं वा खादय ।

४६. राज्ञी वनात्पुष्पाणि दासीरानाययत् ।

४७. अहं मम मित्रं मा पारितोषिकमदापयम् ।

४८. गुणिषु पूजास्थानं गुणा एवास्ति न लिंगं वा न वयः ।

४९. तस्या नार्या अवलोकनस्य पात्रं ते नरा बभूवुः ।

५०. अत्र विषये ईश्वरो न दोषास्पदः ।

५१. सा तपस्विनी मत्कृपापात्रं जातम् ।

५२. गोविन्दस्तस्य भार्या च स्तुत्यचरिते स्तः ।

५३. तपो दमो निःस्पृहत च सर्वे अभी यतिषु प्रशस्याः ।

५४. ऋते रामं जनकः कमपि नृपं शिवधनुर्भंजयितुं न शशाक ।

५५. अयं पर्वतोऽस्य ग्रामस्योत्तरः।
५६. रामस्य पूर्वं गोविन्द आगच्छतु।
५७. तं दिवसमारभ्य मम मनः पर्याकुलं जातम्।
५८. पुत्रविवाहस्यानन्तरं पिता ग्रामस्य बहिरावसथेऽध्युवास।
५९. स शिष्येणोपनिषदं वेदयामास।
६०. स्वामिना भृत्येन धेनुं पयो दोह्यते।
६१. भिक्षुकं श्रेष्ठिनं धनं याचयति।
६२. स नरः पादस्य खंजः अयं तु नयनस्य काणः।
६३. स जंबुद्वीपं नावि गतः शकटे च प्रत्यागतः।
६४. यज्ञदत्तः कुण्डिनपुराय प्रेषितः स मासद्वये प्रत्यागमिष्यति।
६५. रथस्य एव बहु शोभते तत्कृतमत्यादरस्य।
६६. हिरण्यकशिपुश्चित्रग्रीवस्य प्राणा आसन्।
६७. गोविन्दो यूयं चैतद् कुरुताम्।
६८. अहं ते वीराश्च शत्रून् पराजयन्।
६९. त्वमहं गोपालसूनवश्च तत्कृत्यं कुर्युः।
७०. अयं बटुस्ते ब्राह्मणा वा ग्रामं गच्छतु।
७१. यूयं वयं वा नदीं गमिष्यथ।
७२. अतस्त्वां दूरादेव नमः।
७३. इमां वार्तामहं वयस्यं कथयामि।
७४. यदि स त्वया पाठं नाध्यापयति तर्हि मा तन्निवेदय।
७५. देवाः स्वभयकारणं ब्राह्मणमाचख्युः।
७६. तस्मै अहं दूतं प्रहितवान्, किन्तु पाटलीपुत्राय न कोप्यद्यापि विसृष्टः।
७७. अयं नरश्चौराणामतीव बिभेति।
७८. मम गमनस्य प्रागेव स गतः।
७९. अलं तं बहु ताडयितुं सोऽत्यशक्तः।
८०. अस्य पुस्तकस्य रामाय प्रयोजनं नास्ति।
८१. ये यतयोऽरण्येऽधिवसन्ति तेभ्यो नृपानुग्रहस्य कः उपयोगः।
८२. भक्ति देवो रोचते।
८३. अहं देवदत्तस्य शत रूपकं धारयामि।

८४. स मयि द्रुह्यति नाहं तस्मात् अधिद्रुह्यामि ।

८५. न किमपि त्वामधुना प्रत्याश्रृगोमि ।

८६. राजस्योपरि चण्डवर्मा शास्ति ।

८७. अहं शत्रुं हत्वा स प्रत्याजगाम।

८८. रामो रावणं हत्वा बिभीषणो लंकाराज्ये स्थापितः ।

८९. त्वया प्रातरेव गां पयो दोग्धव्यमिति तमादिशन् रामोऽत्रागतवान् ।

९०. गौतमीं वर्ज सर्वे निष्क्रान्ताः ।

९१. अश्मभिर्घातं स शत्रुभिर्हतः ।

९२. रामाय द्वौ पुत्रावास्ताम् ।

९३. प्रभवति निजाय कन्यकाजनाय महाराजः ।

९४. वासुकिः पातालतलस्येष्टे ।

९५. मामग्रे किं तिष्ठसि ।

९६. अस्य पर्वतस्य पूर्वं महावापी वर्तते ।

९७. अस्मादुत्तरतरस्तु रौद्रं श्मशानम् ।

९८. दिवसे त्रिः सन्ध्यामुपासीत् ।

९९. वर्षत्रये दशकृत्वोऽपि मम गृहे त्वं नागच्छः ।

१००. उपवनाद्दक्षिणेनार्त्तरवं श्रुत्वा दुःखितान् शरणं प्रत्यश्रृणोत् ।

१०१. अधुना सुवृष्टिर्भवति चेत्सुभिक्षं सर्वत्राजनिष्ट ।

१०२. अपि नाम स राजास्मत्समीहितं संपादयिता ।

१०३. अहं ह्यः पथि महान्तं भुजंगं ददर्श ।

१०४. अत्र विषये तव सन्देहो माऽभूत् ।

१०५. मा चौरानभैष्ट ।

१०६. यद्यहं तत्र बभूव तदा त्वं भ्रातुः सार्धं मा कहलमकृथा इति तमख्यम् ।

१०७. स्वपुत्रं यथा अन्येषां पुत्रेभ्योऽपि प्रीतिः कर्तव्या ।

१०८. अशीतिदिवसा यावत्स भृत्यो मामसेविष्ट ।

१०९. यावद्धनमीश्वरेणास्मान् दीयते तस्मिन्सन्तोषो मान्य; ।

११०. ते रथे कुसुमपुराय यातवन्तः ।

१११. सा मृतवतीत्याकर्ण्याहं दुःखितो जातवान् ।

११२. शिशुना मासिकं स्थितं न किशोराज्जलोत्पादकम् ।

११३. अयं मम चिरन्तनो वयस्यो भवितव्यः ।
११४. त्वय्यस्मान्शासति कथमस्माभिरभिभूतं भाव्यम् ।
११५. कुमन्त्रिणा नृपसभा न प्रवेष्टव्यम् ।
११६. गोपालो नाम वयस्येन सहागच्छम् ।
११७. जितोसौ मया षोडशसहस्राणां रूपकाणाम् ।
११८. कांची नाम नगर्यां धनमित्रनामा वणिगवसत् ।
११९. सुवर्णपुरं नाम नगरे द्वौ कौलिकौ वयस्यभावेन आवसतः ।
१२०. चन्दनमिव शीतले कदलीगृहेऽपि सा निर्वृत्ति नालभत ।
१२१. रामेतिनामा दशरथस्य पुत्र आसीत् ।
१२२. उपला इव शत्रुष्वस्मानवस्कन्दस्तु वयं किं कुर्यानेति न जज्ञिम ।
१२३. सुरगुरुमिव प्रज्ञस्यास्य ब्राह्मणस्य दक्षिणां किं न दत्से ।
१२४. तव च मे च सख्यमस्ति ।
१२५. चेत्त्वं मम कार्यं करोषि त्वामहं मुद्रिकाशतं दास्यामि ।
१२६. सा नारी रविरिव भ्राजमानं सुतमलब्धं तु इयं बहुकुरूपम् ।
१२७. अश्वमारोढुं मे रोचते ।
१२८. त्वामावस्थातुं कथममहनुमंस्ये ।
१२९. अहं त्वामेतत्कर्तुमिच्छामि ।
१३०. इमं ग्रंथं वाचयितुं न शक्यते ।
१३१. इममाम्रवृक्षमधः पातयितुं न सांप्रतम् ।
१३२. वरं देशमपि त्यक्तुं न तु नीचसेवां विधातुम् ।
१३३. दशरथाय त्रिभार्याभ्यः पुत्रचतुष्टयमुदपादि ।
१३४. विजयतु भवान् य एवं जनानानन्दयः ।
१३५. एनां भवतेऽनुरक्तां किं निष्कारणेन त्यजसि ।
१३६. इमं दिवसमारभ्य मासाद्विजयादशमी भवति ।

—:०:—

शब्द-कोश

संस्कृत-हिन्दी

अ

अंशुमालिन् (पुंल्लिग)—सूर्य ।

अकलित (विशेषण)-अगम्य, अज्ञात ।

अकिंचनत्वम्—निर्धनता ।

अक्षयत्वं—अमरत्व ।

अगुण: (वि०)—दुर्गुण ।

अगृध्नु (वि०)—लोभरहित ।

अग्निसात्कृ (तनादि, उभयपद)—आग में झोकना, जलाना ।

अग्रजन्मन् (पु०)—ब्राह्मण ।

अग्रणी—नेता ।

अग्र्य (वि०)—सर्वोत्तम ।

अघं—पाप ।

अंक:-कलंक ।

अंकुर:-अंकुर ।

अंग:-भाग, अवयव ।

अंगराग:—सुगन्धित लेप ।

अंगुलि (स्त्री०) अँगुलि ।

अंगुलीयक:-कं-अँगूठी ।

अचिन्तनीय (वि०)-जो सोचा न जा सके । अगम्य ।

अज (वि०)-नहीं उत्पन्न हुआ ।

अंजनं-आंजन ।

अतिक्रान्त-बीता हुआ ।

अतिगर्हित-अत्यन्त निन्दनीय ।

अतिप्रसंग:-अधिक अभद्रता ।

अतिभूमि:-आधिक्य, चरम सीमा ।

अतिमात्रं (क्रियावि०)-अत्यन्त ।

अतिमुक्तलता-माघवी लता ।

अतियन्त्रणा-अधिक कष्ट ।

अतिलोल (वि०)-अत्यन्त कोमल ।

अतिलोहित (वि०)-अधिक लाल ।

अतिह्रेपण (वि०)-अधिक लज्जायुक्त ।

अत्यादर:-अधिक आदर ।

अत्रान्तरे (क्रया वि०)-इसी बीच ।

अदूरवर्तिन् (वि०)-दूर नहीं ।

अधिक्षिप्त-तिरस्कृत ।

अधिज्य (वि०)—अच्छी प्रकार चढ़ा हुआ ।

अधिराज:-सम्राट् ।

अध्वर:-यज्ञ ।

अनंग:-कामदेव ।

अनतिपात्य (वि०)-देरी न करने योग्य ।

अननुदार (वि०)—जिसके पास योग्य पत्नी न हो ।

अनन्तर (वि०)—निकट समीप ।

अनपायिन् (वि०)-नष्ट न होने वाला

अनम्र (वि०)-विनयरहित, उद्धत ।
अनर्घत्वं—अमूल्य ।
अनवगीत—निन्दारहित ।
अनातप (वि०)—शीतल, धूप से रक्षित ।
अनातुर (वि०) स्वस्थ, थका हुआ नहीं ।
अनात्मज्ञ (वि०)—मूर्ख ।
अनादि (वि०)—विना आरम्भ के ।
अनामयं—स्वास्थ्य ।
अनायास (वि०)—सरल ।
अनिर्वृत (वि०)—दुःखी ।
अनीश (वि०)—अधिकारहीन, स्वामित्वरहित ।
अनुगुणं (क्रिया वि०)-सन्तोषदायक ढंग से ।
अनुचरः—सेवक ।
अनुजः—छोटा भाई ।
अनुत्तम—(वि०)-अद्वितीय ।
अनुत्सेकः-अभिमानहीनता ।
अनुत्सेकिन् (वि०)—जो गर्व से फूला न हो ।
अनुपक्रम्य (वि०)-असाध्य ।
अनुपधि (वि०)—निष्कपट ।
अनुबन्धः-मार्ग, बहाव, निरन्तरता ।
अनुमित—अनुमान किया गया ।
अनुविद्ध-परस्पर मिला हुआ । ऊपर फैला हुआ ।
अनुवृत्ति (स्त्री०)—आज्ञाकारिता, अतीत का अनुभव ।
अनृतं—असत्य ।
अन्तरात्मन् (पु०)—आत्मा ।
अन्तरायः—विघ्न ।
अन्तरिक्षं—आकाश ।
अन्तरित—लुप्त, दूर, ओझल ।
अन्तर्लीन—छिपा हुआ ।
अन्तर्वेदिः—द्वाबा—गंगा और यमुना के बीच की भूमि ।
अपकारिन्—अहित करने वाला ।
अपचारः—बुरा आचरण ।
अपदेशः—बहाना ।
अपयशस्—बदनामी ।
अपरिसमाप्त (भूत कृदन्त)—समाप्त नहीं, विना अन्त के ।
अपवादः—निन्दा ।
अपहस्तित (वि०)—छोड़ा हुआ, फेंका हुआ ।
अपुनरुक्त (वि०)—न दुहराया गया, नया, प्रतिदिन नवीन ।
अपूर्व (वि०)—नया, जैसा पहले न रहा हो ।
अपोहनं—तर्क बुद्धि ।
अप्रतिभट (वि०)—अद्वितीय, जिसका प्रतिद्वन्द्वी न हो ।
अप्रतिविधेय (वि०)—जिसकी ओषधि न हो ।

अप्रतिहत (भू० कृ०)—अक्षत, हानि-रहित ।
अप्रत्यय (वि०)—विश्वास के अयोग्य ।
अप्रमेय (वि०)—असंख्य ।
अबला स्त्री ।
अब्जभूः—ब्रह्मा ।
अभिख्या—सुन्दरता, शोभा ।
अभिगमनं—मैथुन ।
अभिजनः—उच्चवंश का ।
अभिज्ञानं—पहचान की निशानी ।
अभिनव (वि०)—नया, खिला हुआ
अभिनिवेशः—भक्ति, तत्परता ।
अभिमत-(कृ०)—अभीष्ट, प्रिय ।
अभियुक्तः—विद्वान् ।
अभियोक्तृ (पु०)—आक्रमणकारी ।
अभिरमणीय (वि०)—अत्यन्त सुन्दर ।
अभिलाषः—इच्छा ।
अभिव्यक्त (कृ०)—स्पष्ट ।
अभिषेणय—(नामधातु)—सेना का सामना करना ।
अभि (ति)सन्धानं घोखा, छल ।
अभ्यवहार्यं—भोजन, खाद्य, जो खाने योग्य हो ।
अभ्यागत (कृद०)—अतिथि ।
अभ्युपेत (कृ०)—लिया गया ।
अमंगलं—अशुभ ।
अमर्षित (वि०)—क्रुद्ध ।
अमल (वि०)—पवित्र, श्वेत ।
अमानुष (वि०)—मनुष्य से बढ़कर ।
अमानुषी—विवेकहीना स्त्री ।
अमोघ(वि०)—अचूक ।
अंबुवाहः—बादल ।
अयस् (सं०)—लोहा ।
अरुणः—सूर्य का सारथि ।
अरुन्धती—वशिष्ठ की पत्नी ।
अर्जनं—प्राप्ति ।
अर्थ, 'सं' पूर्वक (चुरादि-आत्मने०)—सोचना समझना ।
प्र—अर्थ—अनुसरण करना ।
अर्थ्य (वि०)—अर्थयुक्त, महत्त्वपूर्ण ।
अर्हत (वि०)—योग्य ।
अल्पमेधस् (वि०)—मूर्ख, मन्द बुद्धिवाला
अवकल्प्य (वि०)—विचारने योग्य ।
अवकाश—स्थान, क्षेत्र ।
अवक्षयः—नाश, डूबना, गिरना ।
अवताडनं—दबाना, कुचलना ।
अवद्य (वि०)—निन्दनीय ।
अवधूत (कृ०)—तिरस्कृत ।
अवपातः—शिकार पकड़ने का गड्ढा ।
अवमानिन् (वि०)—अपमान करने वाला ।
अवयवः—अंग, हिस्सा ।
अवलोकिता—एक दासी ।
अवसन्न—खत्म कर दिया गया ।
अवसानं—अन्त ।

अवस्थित (क्त०)—रुका हुआ, पड़ा हुआ ।

अविक्षत (क्त०)—बिना चोट के, सकुशल ।

अविधवा—जो विधवा न हो, सौभाग्यशालिनी ।

अविनीत—अनम्र, उद्दण्ड ।

अव्यापन्न (क्त०)—जीवित ।

अव्याहत (क्त०)=विघ्नरहित, विरोध-हीन ।

अशनं—भोजन ।

अशनि:—वज्र ।

अशरण (वि०)—नि:सहाय ।

अशुभं—आपत्ति ।

अशेषत: (क्रियावि०)–पूर्णरूपसे ।

अश्वमुख:–घोड़े के मुंहवाला जानवर ।

अश्वमेध:–एक यज्ञ ।

'अस्'-उत् पूर्वक–दूर होना विपरि+अस् दिवादि, परस्मै० परिवर्तित होना ।

असंविदान (वि०)-अज्ञान ।

असक्त (वि०)–जो अधिक प्रेम न रखता हो ।

असदृश (वि०)-असमान, असंगत ।

असार (वि०)–व्यर्थ, दुर्बल ।

असारता–नश्वरता ।

असित (वि०)—काला ।

असिपत्र–तलवार का फलक ।

अस्ताचल,–अस्त होने का (पश्चिमी) पर्वत ।

अहंकार:–घमण्ड ।

अह्नाय (क्रिया वि०) शीघ्र ।

आ

आकर:–भण्डार, खान ।

आकार:—रूप ।

आकुल: (वि०) भरा हुआ, व्याप्त ।

आक्रन्दितं–फूट फूट कर रोना ।

आखण्डल:—इन्द्र ।

आखु:–चूहा ।

आख्यात—कहा गया ।

आगन्तुक:—अतिथि ।

आगन्तुकता–अतिथि होना ।

आगम:—स्वरूप, फूट पड़ना, वेद ।

आगमिन्–सिद्धान्तशास्त्री ।

आतंक:—कष्ट, दु:ख ।

आतप:–गर्मी, उष्णता ।

आतप्त–गर्म, गर्मी से व्याकुल ।

आतिथ्यं–मेहमानी, आवभगत ।

आतिथ्यक्रिया–स्वागत की विधि ।

आतुर (वि०) दु:खी, व्याकुल ।

आत्मवत् (वि०) बुद्धिमान् ।

आत्मीकृ—(उभय) जीतना, प्राप्त करना ।

आदर:—प्रेम, सम्मान ।

आदित:—प्रारम्भ में ही ।

आधातृ (स्त्री०)–देने वाला ।

आधिः–दुःख ।
आधिपत्यं–अधिकार ।
आनन्दनं–आनन्द ।
आन्तर (वि०)–भीतरी ।
आपणः—णं–दूकान, बाजार ।
आपतित -घटित हुआ ।
आपन्न–दुःखी ।
आप्तः–विश्वसनीय ।
आप्यायमाना–मोटी होती हुई ।
आभोगः–निकटवर्ती भाग ।
आमंजु (वि०)–सुन्दर ।
आमिषं–लोभ, मांस ।
आयः–प्राप्ति ।
आयत–लम्बा ।
आयतनं–स्थान, घर ।
आयासयितृ (वि०)–कष्ट देना ।
आयुष्मत् (वि०) दीर्घजीवी ।
आयोध्यिकः–अयोध्या का निवासी ।
आरंभः–कार्य ।
आराधनं–प्रसन्न करना ।
आर्य (वि०)–नम्र, सभ्य, योग्य ।
आर्यपुत्रः–पति के लिये सम्बोधन का शब्द ।
आर्यमिश्राः–श्रेष्ठ या पूज्य जन ।
आलर्कः (वि०) पागल कुत्ते का ।
आली–सखी ।
आलोकः–दृश्य, दृष्टि ।
आलोचित–सोचा गया ।
आवरणं–आच्छादन ।
आवलित (कृ०)–थोड़ा मुड़ा हुआ ।
आवसथः–घर ।
आविल (वि०)–गंदा, कीचड़वाला ।
आविलय (नामधातु)–गंदा करना ।
आवृत् (कृ०)–घिरा हुआ ।
आवेशः–प्रभाव ।
आशीविषः–सांप ।
आशु (क्रियावि०)–शीघ्र ।
आश्रमः–जीवन की एक अवस्था ।
आस्–'अनु' पूर्वक (अदादि-आत्मने०) सेवा करना ।
आसक्त (कृ०) लगा हुआ ।
आसक्ति (स्त्री०)–प्रेम लगाव ।
आस्तरणं -विस्तार ।
आस्थानं–सभा-आस्थानमण्डप, सभा-भवन ।
आहवः–युद्ध ।
आहारः–भोजन ।
आहितुंडिकः–जादूगर ।

इ

'इ' 'प्रति'पूर्वक–प्रभावित करना ।
'व्यप'पूर्वक -अलग करना ।
इक्ष्वाकुः–सूर्यवंशी राजा, रघु के पूर्वज ।
इन्द्रियं–ज्ञान प्राप्त करने के अंग ।
इन्धनं–ईंधन ।
इरावती–एक स्त्री का नाम ।

ई

ईक्ष 'अनु'पूर्वक भ्वादि-आत्मने—निगरानी करना, देखभाल करना ।

ईक्षणं–आँख, दृष्टि ।
ईप्सित–चाहा गया, अभीष्ट ।
ईशः–स्वामी, शिव ।
ईश्वर (वि०)–योग्य, रः–स्वामी ।
ईह् (भ्वादि आत्मने०)- इच्छा करना ।

उ

उचित–(वि०)–ठीक ।
उच्छ्रित–ऊँचा, उठा हुआ ।
उत्कर्षः–चरमसीमा, श्रेष्ठता ।
उत्कुल (वि०)–कुल में कलंक लगाने वाला ।
उत्क्रुष्टं–चीख ।
उत्खात–खोदा गया, नष्ट किया गया ।
उत्खातिन् (वि०)–गड्ढों से भरा ।
उत्तंसय (नामधातु)–सुसज्जित करना ।
उत्तर (वि०) बाद का ।
उत्तरा–अभिमन्यु की पत्नी ।
उत्तरोत्तर (वि०)–सदैव बढ़ने वाला ।
उत्तान (वि०)–खुला हुआ, निष्कपट ।
उत्तानित–फैला हुआ, खुला हुआ ।
उत्पलिनी- कमल ।
उत्पीडः–माला, लट ।
उत्सवः–आनन्द का अवसर ।
उदन्तः–कथा, इतिहास ।
उदयः–दिखाई पड़ना ।
उद्दामं (क्रियावि०)–विना नियंत्रण के ।
उद्धत (वि०)- घमंडी ।
उद्बाष्प (वि०)- आँसू गिराते हुए ।
उद्यत- तत्पर, लगा हुआ ।
उद्यमः–परिश्रम, निश्चय ।
उन्नतत्वं–उच्चता श्रेष्ठता ।
उन्नति (स्त्री०)–प्रधानता, श्रेष्ठता ।
उन्मुख–(वि०)–तत्पर ।
उपकण्ठः–पड़ोस ।
उपकारः–भलाई ।
उपकारिन् (पु०) उपकार करने वाला ।
उपकार्या–राजकीय शिविर ।
उपघातः–नाश, आघात ।
उपचारः – दिखावा वाह्यरूप ।
उपदेशः – शिक्षा ।
उपद्रवः – हानि, चोट ।
उपनत – होना, घटित होना ।
उपनिपातः – घटना ।
उपपन्न (वि०)–योग्य उचित ।
उपमा – तुलना ।
उपरत—मरा हुआ ।
उपरागः—क्षय ।
उपरोधः–विघ्न क्षति ।
उपलक्षणं–विशेष चिह्न ।
उपलंभः—निर्धारण ।
उपवासः–व्रत ।
उपस्थितः—जो निकट आया है ।
उपहत—मारा गया ।
उपहास्यता–हँसी ।
उपाधिः–दशा, स्थिति ।
उपाध्यायः—गुरु, शिक्षक ।
उपालंभ—व्यंग्य ।
उपांशु (क्रिया वि०)—एकान्त में ।

उपाश्रयः—आश्रय लेना ।
उषस्—उषा, प्रातः काल ।
उष्मन् (पु०)—गर्मी ।
उष्णिमन् (पु०)—उष्णता ।

ऊ

ऊरीकृत्—ग्रहण किया गया ।
ऊरुः—जंघा ।
ऊर्जस्वलः (वि०)—महान्, शक्तिशाली ।
ऊर्मि (स्त्री०)—लहर ।
ऊह्—'अप्' पूर्वक (भ्वादि, परस्मै०) हटाना, नष्ट करना ।

ऋ

ऋजु (वि०)—सरल, निश्छल ।
ऋषिकल्प (वि०)—ऋषि के समान ।
ऋषिकुमार—ऋषि का बालक ।
ऋष्यशृङ्ग—दशरथ के जामाता ।

ए

एकपदे (क्रियावि०)—अचानक ।
एकाग्र (त्रि०)—एक विषय में लगा हुआ ।
एकान्त (वि०)—अत्यन्त, चिरस्थायी, विशेषण के साथ-अत्यन्त ।
एकैकशः (क्रियावि०)—एक-एक करके ।
एधित—बढ़ाया गया, पाला गया ।
एनस् (नपुं०) पाप ।

ऐ

ऐक्ष्वक (वि०) इक्ष्वाकु से उत्पन्न ।
ऐरावत—इन्द्र का हाथी ।

ओ

ओजस्विन् (वि०)—भव्य ।

औ

औदरिकः—पेटू, अधिक भोजन करने वाला ।
औदासीन्यं—अनासक्त ।

क

ककुदं—कूबड़, प्रधान, सर्वोपरि ।
कचः—केश ।
कज्जलं—काजल ।
कंठ्—'उत्' पूर्वक (भ्वादि आत्मने०) उत्सुक होना ।
कतिपय (वि०)—कुछ थोड़ा ।
कथमपि (क्रियावि०) किसी प्रकार, कठिनाई से ।
कदली—केले का वृक्ष ।
कनकं—सोना ।
कन्दरः—रं—गुफा ।
कन्दलः—समूह ।
कमलयोनिः—ब्रह्मा ।
कंप्—अनुपूर्वक-दया करना ।
कर्ण्—आ—कर्ण (चुरादि-उभय०) सुनना ।
कर्णधारः—खेने वाला ।
कलकलः—जोर की आवाज ।
कलभः—हाथी का बच्चा ।
कलहंसः—हंसः ।
कला—चन्द्रमा की कला ।

कलिका-कली ।
कलेवरं-शरीर ।
कल्प:-रूप, विधि ।
कल्पान्त:-संसार का अन्त ।
कल्य (वि०)-आरम्भ में ।
कल्याण (वि०)-शुभ, भला, सुख ।
कल्याणिन् (वि०)-सुखी ।
कष्ट (वि०)-कठिन ।
काकपक्ष:-क्षक:-बालों की लटें ।
कांचनं—सोना ।
काम:—इच्छा, कामदेव ।
कामगम (वि०)—इच्छानुसार घूमने वाले ।
कामत: (क्रिया वि०)—कामवश ।
कामसू (वि०)—इच्छा को पूरी करने वाला ।
कामिन् (पु०)—प्रेमी, ।
कार्तान्तिक:—ज्योतिषी ।
काषायं—गेरुआ वस्त्र ।
किन्नर:-स्वर्गीय गायकों का एक वर्ग ।
किंवदन्ती—अफवाह ।
किरीटिन्—अर्जुन ।
कुटिल (वि०)—टेढ़ा, धूर्त ।
कुटुंबिन् (पु०)—परिवार का व्यक्ति ।
कुट्टिम:—मार्ग ।
कुतूहलं—उत्सुकता ।
कुधी (वि०)—मूर्ख, मन्दबुद्धि ।
कुमुदं—कमल ।
कुमुदिनी—कमल का पौधा ।
कुशलं—सुख का समाचार ।
कुशलिन् (वि०)—सुखी ।
कुशाग्रबुद्धि (वि०)—प्रतिभाशाली ।
कुसरित् (स्त्री०)—झरना ।
कृ पुर् पूर्वक (तदानि उ०)—आगे करना ।
अपा+कृ—दूर करना. निषेध करना ।
उप+कृ—भला करना, विप्र+कृ बदलना, परिवर्तित होना ।
विप्र+कृ—चिढ़ाना, क्षति पहुँचाना, जिसके साथ दुर्व्यवहार किया हो ।
कृतघी (वि०)—बुद्धिमान् ।
कृत्स्न (वि०)—सम्पूर्ण ।
कृपण (वि०)—कंजूस ।
कृश् (वि०) दुर्बल ।
कृष् (भ्वादि परस्मै०)—वि+कृष् झुकाना ।
कृषि (स्त्री०)-खेती
क्लृप—परि+क्लृप् (णिजन्त)—रखना, बनाना, सं+क्लृप् (णिजत्) तत्पर ।
कृष्णवर्त्मन् (पु०)—अग्नि ।
केतनं—निवासस्थान, घर ।
केशीन् (पु०)—राक्षस का नाम ।
केसरिन् (पु०)—सिंह ।
कोटर:—रं—खोखला ।
कोटि (स्त्री०)-श्रेणी, उत्कर्ष, अन्त ।
परा कोटि—चरम उत्कर्ष ।

कोश-ष:-कली ।
कौतूहलं—उत्सुकता ।
कौपीनं—लंगोटी ।
कौबेरी-उत्तर दिशा ।
कौरव्य:-कुरुओं के वंशज ।
कौर्मं-(वि०) कछुए से संबन्धित ।
कौलीनं-बुरा समाचार, अपकीर्ति ।
कौशिक:—विश्वामित्र कुशिक के पुत्र, कौशिकी-एक स्त्री का नाम ।
क्रकच:-आरी ।
क्रम्-आ+क्रम-हमला करना ।
क्रिया-कार्य, रचना ।
क्रीडनीयं-खिलौना ।
क्लैब्यं-दुर्बलता, कायरता, पौरुषहीनता, नपुंसकत्व ।
क्षणिक (वि०)-अस्थायी, क्षणभर रहनेवाला ।
क्षत्रं—क्षत्रिय वर्ण ।
क्षपा-रात्रि ।
क्षपति-नष्ट ।
क्षम (वि०)-योग्य, उचित ।
क्षय:-नाश, दुर्बलता ।
क्षात्र (वि०)—क्षत्रिय वर्ण से संबद्ध ।
क्षारांबुधि:—नमकका समुद्र ।
क्षितिप:-राजा, पृथ्वी का ।
क्षितीश्वर:-स्वामी ।
क्षिप्-आ+क्षिप् (तुदादि, परस्मै०) टकराना, पटकना, लुभाना, नि+क्षिप्, देना, ।
क्षुद्र (वि०)-नीच, व्यर्थ ।
क्षेत्रं-खेत ।
क्षोभ:-धक्का, उथल-पुथल ।

ख

खं-आकाश ।
खण्ड:-तोड़ना, टुकड़ा ।
खल्वाट:—गंजे सिरवाला व्यक्ति ।
खिन्न (वि०)-थका हुआ ।

ग

गणक-ज्योतिषी ।
गणिका-वेश्या ।
गति: (स्त्री०)—मार्ग, सहायता ।
गद्गदं (क्रियावि०)—लड़खड़ाती आवाज में ।
गन्ध:—महक ।
गन्धद्विप:—उत्तम हाथी (जिससे मधुर गन्ध निकल रही हो) ।
गभस्ति:—किरण ।
गम्—प्रत्युद्+गम् मिलने जाना, अगवानी करना ।
गर्भेश्वरत्वं-धनी कुल में उत्पन्नहोना ।
गांभीर्य—गहराई ।
गाह् (आत्मने०)—प्रवेश करना ।
गिरीश:—शिव ।
गुण:—अच्छा परिणाम ।
गुरु (वि०)—अग्रणी प्रमुख (पुंल्लिग) (एक०) पिता (बहु०) अग्रज ।
गृहमेधिन् (पुं०)—गृहस्थ ।

गृहिणी—घरनी ।
गोत्रं—कुल ।
गोमायु:—सियार ।
गौरवं—श्रेष्ठता ।
ग्रह:—पकड़ ।
ग्राम्य: (वि०)—गाँव का गँवार ।

घ

घट्–सं.+घट् (प्रेरणार्थक) मिलाना, जोड़ना ।
घर्मांशु:—सूर्य ।
घातक:—वध करने वाला, जल्लाद ।

च

चक्रवर्तिन् (पु०)—सम्राट् ।
चक्रवालं—क्षितिज ।
चक्ष् 'प्रत्या' पूर्वक—(अदादि आत्मने०) फेंकना, अस्वीकार करना ।
चंचत् (वि०)—हिलता हुआ ।
चंचु:—चोंच ।
चन्द्रकान्त:—एक प्रकार की मणि ।
चपल (वि०)—चंचल ।
चमू (स्त्री०)—सेना ।
चय:—ढेर, समूह ।
चर्—(भ्वादि, परस्मै०) वि+चर् घूमना, भटकना ।
चर:–गुप्तचर ।
चल (वि०)–दुर्बल, चलचित्तता, चंचल विचार वाला ।
चलितं–एक प्रकार का नृत्य ।
चातक:–चातक पक्षी ।
चापलं–विवेकहीन व्यवहार ।
चामरं–चमरी ।
चारित्र्यं–पवित्रता, सदाचार ।
चारुता–सुन्दरता ।
चि, प्र पूर्वक (कर्मवाच्य)–बढ़ना, परि+चि, पाना ।
चिकीर्षा–करने की इच्छा ।
चित्र (वि०) अनोखा ।
चित्रार्पित (वि०)–चित्र में बनाये गये के समान ।
चूडा–चोटी, शिखा ।
चूडामणि–शिर की चोटी पर रखी जाने वाली मणि ।
चूतं—आम का वृक्ष ।
चेष्टा—कार्य ।
चेष्टितं–आचरण ।
च्युतात्मन् (वि०) नीच, अधम ।

छ

छद्मन् (सं०)–बहानेबाज, धोखा देनेवाला ।

ज

जड (वि०) मन्द ।
जनता–प्रजा, जनसमुदाय ।
जन्तु:—प्राणी ।
जयन्त—इन्द्र का पुत्र ।
जलचर:—जल में रहने वाला जीव ।

जलदः }
जलमुच् } बादल ।

जलयन्त्रं–कृत्रिम जलाशय, फव्वारा ।

जलाशयः—जल की बावली ।

जातं—बालक, बच्चों का समूह ।

जाति (स्त्री०)—वर्ण ।

जाल्मः—दुष्ट ।

जीव=अनु+जीव (भ्वादि, परस्मै०) बचना, जीवित रहना ।

जीवन-जीवन ।

जीवलोकः-संसार, विश्व ।

जृंभ—'समुत् पूर्वक' (भ्वादि, आत्मने०) प्रयत्न करना, वि+जृंभ्—प्रकट होना, फैलना ।

ज्ञातिः=कुटुम्बी (बहुवचन)—जाति वाले ।

ज्ञापय=('ज्ञा' का प्रेरणार्थक) वि+ज्ञापय–आदर के साथ कहना, प्रार्थना करना, आ+ज्ञापय, आज्ञा देना ।

ज्या=धनुष की डोरी ।

ज्योतिःशास्त्रं-ज्योतिष ।

ज्योतिष्मत् (वि०)—प्रकाशपूर्ण ।

ट

टिट्टिभी–एक मादा पक्षी ।

ढ

ढौक– (भ्वादि, आत्मने०) पहुँचना, निकट आना ।

त

तटिनी—नदी ।

तदानीन्तन—उस समय का ।

तनु (वि०)—दुर्बल ।

तपनः—सूर्य ।

तप्त—गर्मी से व्याकुल ।

तमसा—एक नदी का नाम ।

तमिस्रा—अन्धकार ।

तरंगः—लहर ।

तरलता—कोमलता, इन्द्रियों के वश में होना ।

तातः—पिता, प्रेमपूर्ण संबोधन ।

तापसः—तपस्वी ।

तालः—ताड़ का वृक्ष ।

तितिक्ष्—भ्वादि आत्मने० (तिज् से सन्नन्त)—क्षमा करना ।

तिमिर-रं—अन्धकार ।

तीक्ष्ण—तेज, कठोर ।

तीर्थं—पवित्र स्थान ।

तीर्थोदकं—पवित्र जल ।

तुषारः (वि०)—शीतल ।

तूर्यः-र्यं—एक वाद्ययन्त्र ।

तूलः-रूई ।

तूष्णीं—चुपचाप (क्रियावि०) ।

तृ—(भ्वादि, परस्मै०) अव+तृ-कार्य समाप्त करना, भूमिका

तेजस्विन् (वि०)=वीरता से युक्त, योद्धा ।

त्रयं—तीन का समूह ।

त्रिपुरहर:—तीन नगरों का विध्वंस करने वाले।
त्रिमूर्ति (वि०)—तीन रूपों वाले
त्वच् (स्त्री०)—चमड़ी।

द

दक्ष् (वि०)–चतुर।
दक्षिण (वि०)—सभ्य।
दण्ड: (कमलों का)—डंठल।
दम्–'प्र' पूर्वक—(प्रेरणा०) मोड़ना, दवाना।
दमनं–नियंत्रण।
दम्य:—वच्छा, जिसे अभी 'निकाला' नहीं गया है।
दयित (वि०)—प्रिय, स्वामी।
दरी– घाटी।
दर्प:—गर्व, उद्धता।
दर्पण:—शीशा।
दर्भ:—कुश-घास।
दलं—टुकड़ा, अंश, पत्ती।
दवाग्नि:—वन की अग्नि।
दशनं—दाँत, सूँड़।
दार—(पु०)—(बहुवचन) पत्नी।
दारुण (वि०)—कष्टपूर्ण।
दिवसेश्वर:—दिन का स्वामी, सूर्य।
दिव्य (वि०)—स्वर्गीय।
दीक्षित—योग्य बनाया गया, धर्म में प्रविष्ट।
दीन (वि०)—दया का पात्र, दुःखी।
दीप् (दिवादि–आत्मने०) चमकना, जलना।
दीपक:—दिया रोशनी।
दीप्तिमत् (वि०)–ज्योतिपूर्ण।
दुःस्मर (वि०)—स्मरण करने पर कष्ट देने वाला।
दुराराध्य–(वि०) जिसे सरलता से प्रसन्न न किया जा सके।
दुरितं–पाप।
दुर्ग (वि०) – जिसमें प्रवेश न किया जा सके, (सं०) कठिनाई।
दुर्जनत्वं–दुष्टता।
दुर्जय (वि०)–जो जीता न जा सके।
दुर्धर्ष (वि०)–भयंकर, अजेय।
दुर्निवार (वि०)–जिसे कठिनाई से रोका जा सके।
दुर्भिक्षं–अकाल, अन्न का अभाव।
दुर्लंघ्य (वि०)–कठिनाई से पार किया जाने योग्य।
दुर्ललित (वि०)–आवारा, जो वश में न रह सके।
दुश्चर (वि०)–कठोर, जिसका अभ्यास करना कठिन हो।
दुष्कर (वि०)–जिसका करना कठिन हो।
दुष्कृत (पु०)–बुरे आचरण वाला।

दुष्कृतं–दुष्कर्म ।

दुष्टाशय, दुरात्मन् (वि०)–बुरे विचार वाला ।

दूरीकृ—तनादि, उभय०–दूर करना, पार करना ।

दूषणं—दोष, कमजोरी ।

देवरात—माधव के पिता का नाम ।

देवी—रानी ।

देहभृत् (पु०), देहिन् (पु०) व्यक्ति, शरीरधारी जीव ।

दैवदुर्विपाकः—दुर्भाग्य, भाग्य की विपरीतता ।

द्युतिः (स्त्री)—ज्योति, शोभा

द्रढय (नामधातु)—मजबूत करना ।

द्रव्यं—भौतिक पदार्थ ।

द्रु—(भ्वादि, परस्मै०) चूना, उड़ना ।

द्रुमः—वृक्ष ।

द्विगुणित (वि०)—दुगुना, बढ़ा हुआ ।

द्विजः—पक्षी, ब्राह्मण ।

द्विजातिः–ब्राह्मण ।

द्विपः–हाथी ।

द्विरदः—हाथी ।

द्विरेफः—भौंरा ।

द्वीपः—संसार का एक भाग ।

ध

धनंजयः–अर्जुन का नाम ।

धनेशः—धन के स्वामी कुबेर ।

धन्य (वि०)—सुखी, सौभाग्य शाली ।

धन्विन् (पु०)—धनुष धारण करने वाला ।

धर्मः—कर्तव्य, पुण्य, सदाचार ।

धर्मक्रिया (वि०)–धर्मविहित कार्य ।

धर्मपत्नी, धर्मदाराः विवाहिता पत्नी ।

धर्मारण्यं—तपस्या की भूमि ।

धर्मासनं–न्यायपीठ ।

धा (जुहोत्यादि, उभय०)–अतिसं+धा—धोखा देना, अन्तर्+धा–छिपना, अभि+धा—कहना, बोलना, सं+धा—व्यवहार करना, सन्धि करना, बाण चढ़ाना ।

धातृ (पु०)—सृष्टि करने वाला ।

धामन् (नपुं०)—ज्योति, प्रभा ।

धारणा—मन का दृढ चिन्तन ।

धारवाहिन् (वि०)–निरन्तर ।

धारिणी—एक रानी का नाम ।

धीर (वि०)—दृढ विचार वाला, साहसी, सहनशील ।

धीरता–मानसिक बल, सहनशीलता ।

धुर्यः–नायक, प्रमुख ।

धुक्ष्—सं.+धुक्ष् (भ्वादि–आत्मने०)–जलाना ।

धू–उत्+धू क्र्यादि उभय० – हिलना, हिलते रहने देना।
धूर्तः–धोखेबाज।
धृ (भ्वादि, चुरादि, परस्मै०)= सहायता देना, पालन करना, उत्+धृ, या समुत्+धृ--बचाना, मुक्त करना, उखाड़ना, जड़ खोदना, नष्ट करना, उठाना, लेना, उद्धृत करना।
ध्याम (वि०)—गंदा,।
ध्वनत् (त्रि०)—गरजता हुआ, कड़कता हुआ।

न

नकुलः–नेवला।
नक्षत्रः—तारा।
नगः--पर्वत।
नन्द् (भ्वादि, परस्मै०)—प्रसन्न होना, आनन्द मनाना, अभि+नंद – स्वागत करना, नमस्कार।
नन्दन—इन्द्र का बगीचा।
नलिनिका--एक दासी का नाम।
नलिनी—कमल का पौधा।
नवीकृ (तनादि–उभय०)—नया करना।
नह–सं+नह (दिवादि-आत्मने०) तैयार होना।
नाट्यं—नृत्य, नाटक का अभिनय।
नामग्रहणं—नाम याद करना।
निःश्रेयसं–अन्तिम मोक्ष।
निःसत्यता – झूठ बोलना।
निःस्नेह (वि०)–क्रूर पर्याप्त।
निकषः (ग्रावन्)–कसौटी का पत्थर, मिलाने का चूर्ण।
निकाम (वि०) – पर्याप्त।
निखिल (वि०) – सम्पूर्ण, पूरा।
निगाद्य (वि०)–कहने योग्य।
निग्रहः–दण्ड।
निचुलः – एक प्रकार का वृक्ष।
निज (वि०) – अपना।
नितरां (क्रियावि०) – अत्यधिक।
नितान्त (क्रियावि०) – अत्यधिक।
निदाघः–ग्रीष्मऋतु।
निदानं – प्रथम या मूल कारण।
निधनं—मृत्यु।
निबन्धनं—बांधना, बाँधने वाली लड़ी।
निमित्तं–अच्छा शकुन, कारण।
निमिषः–पलक का गिरना।
नियमः—एक धार्मिक क्रिया।
नियमेन (क्रियावि०)—नियम रूप में।
नियोगः—नियम, कर्तव्य, आदेश।
निरत—लगा हुआ।
निरतिशय (वि०)—अद्वितीय।
निरपेक्ष (वि०) } उदासीन
निरभिलाष (वि०) } उदासीन

निरस्त—नष्ट किया गया।
निराकरणं—दूर करना, छोड़ना।
निर्गमः—निकलने का मार्ग।
निर्गुणः (वि०)—व्यर्थ।
निर्झरः—झरना, स्रोत।
निर्बन्धः—आग्रह।
निर्वाणं—पूर्ण सन्तोष, मोक्ष, ताप को कम करना।
निर्वातः—शान्त या ठंडी वायु।
निर्वादः—बदनामी।
निर्वापणं—कम करना, अभाव।
निर्वृत्ति (स्त्री.)—सन्तोष, सुख।
निर्वृत्त—होना।
निशाचर—राक्षस, प्रेतात्मा।
निषेवित—निवास किया गया, आश्रय लिया गया।
निष्कंप—दृढ, गतिरहित।
निष्पीडित—दबाया गया, पीसा गया।
निष्प्रतीकार (वि०)—जिसका प्रतीकार न हो।
निसर्गः—स्वभाव।
निसृष्ट—दिया गया।
निस्त्रिंश (वि०)—क्रूर, दुष्ट।
निस्पंद (वि०)—बिना हिले-डुले, चुपचाप।
निस्वनः—ध्वनि।
नी (भ्वादि परस्मै०)—अनु+नी, इच्छा करना, प्रेम करना, उप+नी—जनेऊ करना, समा+नी—एकत्र करना, जोड़ना।
नीरंध्र (वि०)—घना, मोटा।
नील (वि०)—नीला।
नुद्—'वि' पूर्वक (प्रेरणा०)—मोड़ना, आनन्दित करना।
नूपुरं—नूपुर।
नैमित्तिकं—प्रभाव, कार्य।
नैषधः—नल का नाम, निषध देश का राजा।
नैष्ठुर्यं—क्रूरता, कठोरता।
नैसर्गिक (वि०)—स्वाभाविक, जन्मजात।

प

पक्कणं (पक्कणः)=चाण्डाल की कुटिया।
पक्षः—किनारा।
पंकच्छिद् (वि०)—गंदगी या कीचड़ दूर करने वाला।
पंचालः—पञ्चालों के राजा।
पंजरः—पिंजड़ा।
पटु (वि०)—तीव्र, कुशल।
पठ्—'परि' पूर्वक (प्रेरणा)—पढ़ाना।
पत् (भ्वादि, परस्मै०)—परि+पत्-मँडराना, चक्कर मारना, परा+पत्=लौटना, आना, प्रणि+पत्+प्रणाम करना, झुकना।
पतंग—कीड़ा, सूर्य।

पतिंवरा (स्त्री०)—पति को चुनने जाने वाली ।
पत्रपुटं—पत्ते का दोना ।
पत्रलेखा—एक स्त्री का नाम ।
पत्रोर्णं—रेशमी परिधान ।
पथ्यं—कुशल, सुख, भोजन ।
पद्--'व्या' पूर्वक (प्रेरणा०)--मारना, प्रति+पद्=स्वीकार करना, दिखाना, देना, लेना, पाना, मानना, दोष स्वीकार करना । उप+पद् (प्रेरणा०) घटित होना, करना ।
पदवी—मार्ग, पदचिह्नों की पंक्ति ।
पन्नगः—सर्प ।
पयस्विनी—गाय ।
पयोदः—बादल ।
परंतपः (वि०)—शत्रुओं को पीड़ित करने वाला ।
परभृतः (वि०)–कोयल ।
परमप्रख्यं (वि०)—विस्तृत कीर्ति वाला, यशस्वी ।
परमार्थः—परम सत्य ।
परमार्थतः (क्रिया वि०)–असल में ।
परंपरा—श्रेणी ।
पराक्रमः—बल, तेज ।
परागत—लौटा हुआ ।
परावृत्त—मुड़ा हुआ, लौटा हुआ ।
परिगृहीत—कृपापात्र, जिसके ऊपर कृपा की जाय ।
परिग्रहः—विवाह ।
परितर्पण (त्रि०)—सन्तोष देना ।
परिदेवना—विलाप ।
परिपन्थिन् (वि०)—मार्ग में आने वाला ।
परिभवः—पराजय, पतन, अपमान ।
परिभाविन्–अनादर करने वाला ।
परिवारः, परिजनः—सेवकों का समूह, परिचारक ।
परिवाहः, परीवाहः—जल का मार्ग, नाली ।
परिव्राजिका—तपस्विनी ।
परिषद् (स्त्री०)–सभा, श्रोतागण ।
परीक्षित् (पु०)–एक राजा का नाम ।
परीत–अभिभूत करना ।
परोक्षे (क्रिया वि०)–अनुपस्थिति में ।
पर्यटनं–भ्रमण, यात्रा करना ।
प्रर्याप्त (वि०)–योग्य ।
पर्यायः—बारी, क्रम से ।
पल्लवः–कोपल, टहनी ।
पल्लविका–एक दासी का नाम ।
पल्लवित (त्रि०)–जिसमें पल्लव निकल रहे हों ।
पवनः–वायु ।
पांसुल (वि०)–कलंक लगाने वाले, पांसुल-कुल–कुल में कलंक लगाने वाला ।
पाणिग्रहः—विवाह ।
पाण्डु (वि०)–पीला ।

पाताल:–लं–पृथ्वी के नीचे का लोक ।
पात्रं-वस्तु योग्य ।
पापभाज् (वि०)–पापी ।
पानीयं—पानी ।
पारक्य (वि०) – शत्रुतापूर्ण ।
पारग्रामिक (वि०)–शत्रुपक्षीय ।
पारसीक:—पारसी ।
पार्श्वं – किनारा ।
पावक:—आग ।
पावन (वि०)–पवित्र करने वाला ।
पिंगल (वि०)-पीले रंग का, लाल और भूरे रंग का मिश्रण ।
पिट:—टोकरी ।
पिठरं—एक वर्तन ।
पिपासु: (वि०)–'पा' से सन्नन्त-प्यासा हुआ ।
पिशुन (वि०)—चुगलखोर ।
पिशुनता–चुगलखोरी, परनिन्दा ।
पीठं (वि०)—स्थान, आसन ।
पीडित—विवाह किया गया, जिसका हाथ पकड़ लिया गया हो ।
पीवर (वि०)—मोटा, स्थूल ।
पुंगव:—साँड़, (समास के अन्त में) सर्वश्रेष्ठ ।
पुण्य (वि०)—पवित्र ।
पुण्यभाज् (वि०) सदाचारी, सुखी ।
पुरन्दर—इन्द्र का नाम ।
पुरस्कृत—आगे किया गया ।
पुराण (वि०)—पुराना ।
पुष् (दिवादि, परस्मै०)–दिखाना ।
पुष्पित (वि०)–जिसमें फूल खिले हों ।
पुष्पेषु:—कामदेव ।
पूरोत्पीड:–जल का आधिक्य, वाढ़ ।
पूर्ववत् (क्रियावि०)–पहले के समान ।
पृथग्जन:–असभ्य या गँवार व्यक्ति, अशिक्षित ।
पृष्ठं–धरातल, पीठ ।
पेशल (वि०)–चतुर, प्रवीण ।
पोत:–नाव, वालक, जैसे–वीरपोत:= वालक, योद्धा ।
पौरु (वि०)–पूरु से उत्पन्न ।
पौरुषं-पुरुषत्व, वल ।
पौरुहूत (वि०)—इन्द्र से संवद्ध ।
प्रकीर्ति (स्त्री०)–नाम का कथन ।
प्रकीर्तित-कहा गया ।
प्रकृति: (स्त्री०)–मन्त्रियों का समूह ।
प्रकोप–क्रोध, उत्तेजना ।
प्रकोष्ठ:–घर की कोठरी ।
प्रक्रान्तं–वीरतापूर्ण कार्य ।
प्रक्षीण–नष्ट ।
प्रगल्भ (वि०)—वीर, साहसी ।
प्रजागर:–रात्रिजागरण ।
प्रजापति:–सृष्टि की रचना करने वाले ।
प्रणय:–प्रेम, निवेदन, प्रार्थना ।
प्रणयिता—प्रेम ।

प्रणयिनी—सखी ।
प्रणिधि:—गुप्तचर ।
प्रतनु (वि०)–बहुत छोटा ।
प्रताप:—शक्ति, वीरता, तेज ।
प्रतिनिविष्ट (वि०)–जिद्दी ।
प्रतिपादित (कृद०)–दिया गया, किया गया ।
प्रतिबन्धवत् (वि०)—कठिनाइयों या विघ्नों से पूर्ण ।
प्रतिबुद्ध (कृद०)—जगा हुआ ।
प्रतिबोधवत् (वि०)—तर्कयुक्त, बुद्धिमान् ।
प्रतिम (वि०)—समान ।
प्रतिवाच् (स्त्री०)–उत्तर ।
प्रतिष्ठा—पद की सुरक्षा, स्थायित्व ।
प्रतिसक्त—जुड़ा हुआ, लगा हुआ ।
प्रतीकार: } उपचार, उपाय ।
प्रतिक्रिया }
प्रतीत–विश्वास करता हुआ, विश्वस्त ।
प्रतीप (वि०)—विपरीत ।
प्रत्यक् (क्रिया वि०)—पश्चिम में ।
प्रत्यग्र (वि०)–ताजा, नवीन ।
प्रत्यर्थिन् (वि०)–विरोधी, शत्रु, मार्ग में विघ्न रूप में आने वाला ।
प्रत्यादेश:–प्रतिद्वन्द्वी, आक्रान्त करना, आच्छादित करना ।
प्रत्युत्पन्नमति—तीव्र बुद्धिवाला, हाजिरजवाब ।

प्रथित–प्रसिद्ध, प्रख्यात ।
प्रदानं–देना, विवाह में देना ।
प्रदोष:—सन्ध्या ।
प्रद्रुत—भागा हुआ ।
प्रबन्ध:–रचना ।
प्रभव:–स्रोत ।
प्रभाव:—शक्ति ।
प्रभुत्वं–स्वामित्व, अधिकार ।
प्रमदवनं–क्रीडा का उपवन ।
प्रमाणं–सीमा, अधिकारपूर्ण नाप ।
प्रमाणीकृ (तनादि उभय०)अधिकारी मानना, प्रमाण देना ।
प्रमाथिन् (वि०)—कष्ट देने वाला ।
प्रयत–पवित्र, तपस्याओं द्वारा पवित्र ।
प्रयाणं–आगे बढ़ना ।
प्रयुक्त—लगाया गया, प्रयोग में लाया गया ।
प्रयोग:—अभ्यास ।
प्रलाप:—दु:खभरी आवाज़ ।
प्रवणीकृत—उन्मुख ।
प्रवयस् (वि०)–वृद्ध, अधिक आयु वाला ।
प्रवातं—वायु का झोंका, तूफान ।
प्रवातशयनं —हवा को आने-जाने के स्थान पर रखी हुई शय्या ।
प्रवृत्ति (स्त्री०)–आरम्भ ।
प्रव्रज्या—संन्यासी होना ।
प्रशमित—शान्त किया गया, शुद्ध ।

प्रश्चोतनं—छिड़कना, छिड़काव ।
प्रसंगतः-गेन (क्रिया वि०) संयोग से ।
प्रसन्न—खुश ।
प्रसह्य (क्रिया वि०)-हठात् ।
प्रसूति (स्त्री०)—सन्तान ।
प्रसूनं—फूल ।
प्रस्तावः—उल्लेख, निर्देश ।
प्रस्तुतं—विद्यमान वस्तु ।
प्रस्यः—एक प्रकार की नाप ।
प्रहरणं—अस्त्र ।
प्रहसनं—हँसी, व्यंग्य ।
प्राक् (क्रिया वि०)—पूर्व में ।
प्राकारः—चहारदीवारी ।
प्राग्रसर (वि०)-सबसे आगे, प्रथम
प्राङ्मुख (वि०)-पूर्व दिशा की ओर मुख किये हुए, पूर्व दिशा में ।
प्राणायाम—साँस को रोकने का अभ्यास ।
प्रातराशः-प्रातःकाल का जलपान ।
प्रांतः—किनारा ।
प्राप्तप्रसव (वि०)-जिसने अभी सन्तान जन्म दिया है ।
प्रार्थना--इच्छा, प्रेम-निवेदन ।
प्रावृष् (स्त्री०)-वर्षा ॠतु ।
प्राश्निक—न्यायाधीश ।
प्रिय (वि०)-प्यारा ।
प्रेषित—भेजा गया, हटाया गया ।
प्रोद्दीप्त-अग्नि में डाला गया, जलता हुआ ।

प्लव (वं०) गः—वन्दर ।

फ

फणः-णाः—साँप का फण ।
फलं—परिणाम ।
फलेग्रहि (वि०)—मौसम में फल देने वाला ।

ब

बकः -वगुला ।
बटुः-बालक, लड़का ।
बन्दी—कैदी ।
बंधुलः—जारज, वेश्याओं के घर में काम करने वाला पुरुष ।
बलं—सेना, शक्ति ।
बलिः—पूजा ।
बलीवर्द—बैल, साँड़ ।
बान्धवः—सम्बधी, जाति-भाई ।
बालिश-(वि० या विशेष्य०) मूर्ख ।
बिंबं—प्रतिमा ।
बीभत्समान—दूर होते हुए, भयभीत होता हुआ ।
बुद्धिजीविन् (वि०)-तर्क को काम में लाने वाला बुद्धिमान् ।

भ

भग्नोद्यम—जिसका प्रयत्न विफल हो गया हो ।
भज्-(भ्वादि, उभय०) सेवा करना, प्रसन्न करना, अभ्यास करना ।
भक्तिमत्—भक्त, रत रहने वाला ।

भद्र:—संबोधन का शब्द श्रीमन्, भद्रा–सभ्य स्त्री (विशे०), शुभ, कल्याणकारक।
भरणं—पालन, पोषण।
भरतर्षभ:—भरत वंश में सर्वश्रेष्ठ।
भर्तृ-दारिका—राजकुमारी।
भव:—जन्म, शिव।
भवनं—घर, निवास स्थान।
भवितव्यता—होनी, भाग्य।
भागधेयं-भाग्य।
भाग्यं–समृद्धि, अच्छे दिन।
भाजनं-पात्र, स्थान, आश्रय।
भाव:—विचार, प्रेम का प्रदर्शन, घटना, विद्वान् पुरुष, पूज्य, श्रीमान्।
भाष्–'अप+भाष्' (भ्वादि,आत्मने०)-दुर्वचन कहना, निन्दा करना।
भासुर् (वि०) तेजयुक्त, प्रकाशमय।
भास्वत् (वि०)चमकनेवाला(विशेष्य), सूर्य।
भिक्षाशित्वं—भिक्षा माँगकर जीवन बिताना।
भीम–(वि०) भयंकर।
भुजंग: (वि०)–सर्प।
भुवनं—संसार।
भू– 'वि' पूर्वक—(प्रेरणाय०) सोचना, विचार करना, निर्णय करना, देखना, अगवत होना, सं० भू—उत्पन्न होना।
भूतं—रचित प्राणी।
भूतधारिणी–पृथ्वी, जीवों को धारण करने वाली।
भूमिका-चरित्र, पात्र (नाटक में)।
भूमिदेव:—ब्राह्मण।
भूय: (क्रियावि०)–पुन:।
भूयिष्ठ (क्रियावि०)—अधिकांश।
भूरिवसु:—एक व्यक्ति का नाम, मालती के पिता।
भैक्ष्यं—भिक्षाटन।
भोग:—सुख, आनन्द।
भ्रंश:—हानि।
भ्रान्तिमत् (वि०)—घूमता हुआ, चक्कर काटता हुआ।

म

मंगलं—शुभ, शुभकर्म (समास में) शुभ, जैसे मंगलतूर्य-शुभावसर का वाद्य, मगलस्नानं-शुभस्नान।
मंजु (वि०)–मधुर।
मंजुल–एक प्रकार की लता।
मण्डनं–आभूषण, शोभा।
मद्–उद्+मद् – मतवाला पेय बनाना।
मद:—प्रेम, उत्कट इच्छा, मत्त करने वाला पेय।
मदमुच् (वि०)–मद गिराता हुआ।
मधु (सं०)—शहद।
मधुमास:–वसन्त ऋतु।

मधुर (वि०) सुन्दर, सुस्वादु ।
मधुसूदनः कृष्ण (मधु को मारने वाला) ।
मध्यस्थ (वि०)—बीचबिचाव करने वाला, न्यायकर्ता ।
मनस्विन् (वि०)—बुद्धिमान्, उच्च-विचार वाला । मनस्विनी--बुद्धि-मती स्त्री ।
मनीषिन्–मेधावी, महात्मा ।
मनोभूः
मनसिजः } कामदेव ।
'मन्त्र्' 'आ' पूर्वक—(चुरादि, आत्मने०) विदा--लेना ।
मन्त्रकृत् (वि०)—मंत्र की रचना करने वाला ।
मन्त्रवत् (वि०)–मन्त्र से युक्त, मन्त्रसहित ।
मन्थर (वि०)–धीमा ।
मन्द (वि०)-जड, मूर्ख ।
मन्दभाग्य (वि०)–अभागा । दुर्भाग्य वाला व्यक्ति ।
मन्दायमान (वि०)–पिछड़ना, देर करना ।
मन्दीकृत–धीमा करना । मन्दीत्सुक्य--जिसका उत्साह धीमा पड़ गया हो, दुःखी ।
मन्मन्थः–कामदेव ।
मन्युः—शोक, दुःख ।
मरिचः—मरिच ।
मरीचिः—किरण ।
मर्त्यः–मनुष्य ।
मलयजं–चन्दन का रस ।
महाजनः–जनसमुदाय ।
महातेजस्—तेजस्वी, वीर ।
महाभागः–सौभाग्यशाली ।
महार्हः (वि०)–मूल्यवान् ।
महीपालः–राजा ।
महेन्द्रः—इन्द्र ।
महेश्वरः–शिव ।
महोक्षः–बैल ।
महौषधिः (स्त्री०)–दवा ।
मागधी-मगध के राजा की पुत्री--सुदक्षिणा ।
मातः–प्रेमसूचक संबन्ध पद ।
मानः–गर्व ।
मानिनी—गर्वीली स्त्री ।
मानुष्यकं–मानव स्वभाव ।
मारुतः–वायु ।
मालाकारः–माली ।
माल्यं–माला ।
मिश्र (वि०)—सम्मानसूचक पद, योग्य, आदरणीय ।
मुक्ताफलं—मोती ।
मुग्ध (वि०)–निश्छल, निर्दोष ।
मुद्—अनुपूर्वक (भ्वादि, आत्मने०) समर्थन करना ।

मुद्रा—मुहर।
मुरारिः—विष्णु।
मुर्छ् (भ्वादि, परस्मै०)–प्रभाव डालना अधिक तीव्र होना, कठोर होना। बल प्राप्त करना।
मुसलं—मूसल।
मुहुं (क्रिया०)—प्रायः।
मूर्तिमत् (वि०)—साक्षात्।
मूर्धजः—केश।
मृगतृष्णिका—मृगतृष्णा, मिथ्या आशा।
मृणालं—कमल का तन्तु।
मृणालिनी–कमल।
मृद् (स्त्री०)–मिट्टी।
मृदु (वि०)–कोमल मन वाला, दुर्बल।
मृष् (चुरादि, परस्मै०)–सहन करना।
मृषा (क्रिया वि०)--गलती से, व्यर्थ।
मृषोद्यं–झूठ।
मेखला—करधनी।
मेघनादः—एक व्यक्ति का नाम।
मेधा—बुद्धि, स्मरणशक्ति।
मेध्य—(वि०)-पवित्र।
मैथिलेयः–मैथिलि के पुत्र, कुश।
मोक्षः—मुक्ति।
मौल (वि० या विशेष्य)—पीढ़ियों से किसी की सेवा में पाला-पोसा गया, पुराना सेवक (मंत्री आदि)
म्लेच्छ–अनार्य मनुष्य, असभ्य।

य

यजनं—यज्ञ।
यत्किंचनकारिता–व्यर्थं कार्य करना।
यथार्थं (वि०)–महत्त्वपूर्ण, सत्य।
यथावत्-(क्रि० वि०)–उचित ढंग से, उचित रूप में।
यदृच्छया–(क्रियावि०) अचानक, संयोगवश।
'यम्-नि' पूर्वक–(भ्वादि, परस्मै०)-रोकना, (प्रेरणा०) नियमित करना, नियन्त्रित करना।
यम (वि०)–जुड़वाँ।
यष्टि (स्त्री०)–हार।
यस्–'आ' पूर्वक (प्रेरणा०)कष्ट देना।
या-प्र+या (अदादि, परस्मै०)-आगे बढ़ना, चलना।
याञ्चा—नम्र प्रार्थना।
यातुधानः-दुष्टात्मा, राक्षस।
यादृच्छिक (वि०)—आकस्मिक।
यावदर्थं—सभी अर्थों में।
युज्—(रुधादि, उभय०)—योजना बनाना, विचार करना, भाग्य में होना नि+युज् (प्रेरणा०) लगाना, जोतना, मिलाना, प्र+युज् (आत्मने०) कार्य करना, प्रतिनिधित्व करना (अभिनय), संप्र+युज—लगा होना, किसी कार्यं में। स्वयं में लगा होना।

युध् (स्त्री०) — लड़ाई ।
युवराजः–राजपद का उत्तराधिकारी ।
योगः–मन को स्थिर करने की विद्या ।
योजनं – ८ मील की दूरी ।
योनिः–स्रोत, उत्पत्तिस्थान ।

र

रंहस् (सं०) — वेग, तीव्रता ।
रजनिचर—दुष्टात्मा ।
रंज 'अप'पूर्वक—असन्तुष्ट होना ।
रणधुरा–युद्ध की अग्र पंक्ति-रांवह–युद्ध की अग्रिम पंक्ति का नेता ।
रणरणकं – चिन्ता ।
रणशिक्षा–युद्ध की शिक्षा या कला ।
रत्नाकर – समुद्र ।
रंध्रं—छिद्र ।
'रभ्' 'परि'पूर्वक–(भ्वादि,आत्मने०) आलिंगन करना ।
रयः – धारा, वेग ।
रश्मिः—लगाम ।
रस् (भ्वादि, परस्मै०)–शोर करना ।
रसः—भाव ।
रसवत्तर—अधिक रसवाला, अधिक सुस्वादु ।
रसातलं—पाताल ।
रसायनं – रस का स्रोत ।
रसालः – आम्रवृक्ष ।
रसिक (वि०) – सुन्दर, आकर्षक ।
रहस्यं—गुप्त बात, आचरण संबन्धी गुप्त बातें ।
रहस्यभेद – गुप्त बात को खोल देना ।
राक्षसः–नन्दवंश के मन्त्री का नाम ।
रागः – प्रेम ।
राजवन्त (वि०)–न्यायप्रिय राजा द्वारा शासित ।
राजर्षिः – क्षत्रिय ऋषि ।
राजतन्त्रं–राज्यशासन का सिद्धान्त ।
रात्रिचरी–राक्षसी ।
राध् 'आ' पूर्वक (प्रेरणा०)–प्रसन्न करना, अनुकूल बनाना ।
रामगिरिः–एक पर्वत का नाम ।
रुजा–ज्. (स्त्री०)–कष्ट ।
रुधिरं—खून ।
रोगिन्–रोगी ।
रोषण (वि०) -क्रोधी ।
रोषणता–क्रोध ।
रौरव—रुरु नाम के मृग के चमड़े से निर्मित ।

ल

लक्ष्मन् (नपुं०)–चिह्न, दाग ।
लक्ष्मीः—सुन्दरता, शोभा ।
लघय(नामधातु)-कम करना, घटाना ।
'लप्'–'प्र' पूर्वक (भ्वादि, परस्मै०)--बकवाद करना ।
लभ्–'उपा' पूर्वक (भ्वादि, आत्मने०) व्यंग्य करना, दोष देना ।
ललाम या-मन् (नपुं०)–आभूषण ।
लवंगिका–मालती की सौतेली बहन ।

लवणंभस् (पु०)–समुद्र (जिसका जल खारा होता है) ।
लाघवं–तुच्छता; हीनता ।
लांछनं=विशेष चिह्न, श्रीकंठपदलांछन, श्रीकण्ठ नाम से ज्ञेय ।
लिख्+वि—(तुदादि, परस्मै०) लगाना, रोपना ।
लिखित—लेख ।
लुभ्–'प्र' पूर्वक (प्रेरणा०) फँसाना, लुभाना । वि+लुभ् (प्रेरणा०)--किसी के मन को विचलित करना, पथभ्रष्ट करना ।
लोध्र:—ध्रं–एक वृक्ष या फूल ।
लोल (वि०)=उत्सुक, इच्छुक ।

व

वंश्य:–वंशज ।
वत्स:–बछड़ा ।
वत्सतरी–बछिया
वध्यस्थानं–फाँसी की जगह ।
वनज्योत्स्ना–माधवी लता ।
वनदेवता-वन की देवता ।
वनस्पति–वृक्ष ।
वन्य–जंगली ।
वप्–'निर्' पूर्वक (भ्वादि, परस्मै०) देना, उपहार देना ।
वप्तृ (पुल्लिं०)–बोने वाला ।
वम्-'उत्' पूर्वक--कै करना, उडेलना
वयस् (नपुं०)–कौआ, पक्षी ।
वर (वि०)—सर्वोत्तम, दुलहा ।
वराक (वि०)–गरीव, दया का पात्र ।
वरीयस् (त्रि०)--अधिक अच्छा, बढ़कर ।
वर्ग्य: -एक वर्ग से संबद्ध (बहुव०) अभिनय करने वालों का समूह ।
वर्ण:–जाति ।
वर्णिन् (पु०)--युवा ब्रह्मचारी (विद्वान्) ।
वल्कलं—वृक्ष की छाल का वस्त्र ।
वल्गितं-कूद, छलांग ।
वल्मिक:—कं–चीटियों की बाँवी ।
वल्लभ (वि०)—प्रिय, प्रेमपात्र । वल्लभा=पत्नी ।
वश:—अधीनता ।
वशिन् (वि०)—इन्द्रियों को वश में रखने वाला मुनि ।
वश्या—आज्ञाकारिणी पत्नी ।
वस्–अध्या+वस् (भ्वादि, परस्मै०) निवास करना, प्रवेश करना ।
वसति (स्त्री०)–निवासस्थान ।
वसन्तोत्सव:—वसन्त का त्योहार ।
वह् (प्रेरणा०)—कुचलना, ऊपर चलना, निस्+वह् (प्रेरणा०) करना, व्यवस्था करना ।
वाच्यं—निन्दा, अपवाद ।
वाजिन् (पु०)—घोड़ा ।
वाद:—कथन, वक्तव्य ।

वाम (वि०)–विपरीत स्वभाव वाला।
वायसः—कौआ।
वारणः—हाथी।
वारयोषित् (स्त्री०)—वेश्या।
वारिधरः—बादल।
वारियन्त्रं—पानी चढ़ाने का यन्त्र, फव्वारा।
वार्तं—कुशल, शुभ समाचार।
वार्धकं—वृद्धावस्था।
वासगृहं—घर का भीतरी भाग, शय्या गृह।
विकसित—फैला हुआ, खिला हुआ, बढ़ा हुआ।
विकारः–रोग, पीडा, क्षति।
विकारहेतुः–लोभ की वस्तु, लालच।
विक्रमः–शक्ति, वीरता।
विक्लव (वि०)—व्याकुल, दुःखी।
विगुण (वि०)—बुरा, बेकार।
विग्रहः–शत्रुता, युद्ध, शरीर, रूप।
विघातः–विघ्न।
विचक्षण (वि०)–बुद्धिमान्, विद्वान्, प्रवीण।
विजया–(और जया) एक प्रकार का मन्त्र जो भूख और प्यास मिटाकर विलक्षण शक्ति देता है।
विजिह्म (वि०)–कुटिल।
विज्ञापन–प्रार्थना।
विटपः–शाखा।
विडंब्–(चुरादि-परस्मै०) नकल करना।
वितथ–(वि०) झूठ, असत्य।
वितीर्ण—उत्पन्न हुआ, दिया गया।
विदग्धता—दक्षता, चतुराई।
विदेशः—दूसरा देश।
विद्युत्वत् (पु०)—बादल।
विद्विष् (पु०)—शत्रु।
विधातृ (पु०)—सृष्टि करने वाला।
विधृत—रखा हुआ, सुरक्षित।
विधेयः—सेवक।
विधेयज्ञ (वि०)—कर्त्तव्य को जानने वाला, आज्ञाकारी।
विनशन – दिल्ली से उत्तर-पश्चिम में एक देश।
विनिमयः—लेन-देन।
विपक्षः–शत्रु, विरोधी।
विपश्चित् (वि०)–बुद्धिमान्, विद्वान्।
विपिनं–वन।
विप्रलब्ध—धोखा दिया गया।
विप्लवः—विपरीतता, विपत्ति।
विभवः—धन, समृद्धि।
विभावरी—रात्रि।
विभुः – स्वामी।
विभ्रमः – अस्तव्यस्तता, हानि।
विमनस् (वि०)—उदास, निराश।
विमानित – अपमान का भागी।
विमार्गः—गलत मार्ग।

विद्युक्त—अलग किया गया, प्रेम के वियोग में पड़ा हुआ।
विरत—रुका हुआ, अन्तर पर आया हुआ।
विरागः—असन्तोष।
विरामः—रुकना, समाप्ति।
विरोधः—विपक्ष, शाश्वत—स्वाभाविक बैर।
विलासः—कामुकतापूर्ण सुखों का भोग
विवृत—खुला हुआ।
विवेकः—सही-गलत का ज्ञान।
विश्—अभिनिविश् (तुदादि,आत्मने०) प्रवेश करना, सं+विश्—सोना
विशुद्धि (स्त्री०)—पवित्रता।
विशेषः—भिन्नता, भिन्नता बताने वाला चिह्न।
विश्रब्ध (क्रियावि०)—विश्वास के साथ, स्वतन्त्र रूप में।
विश्रंभः—विश्वास, विश्रंभस्थान, विश्वासपात्र।
विश्रामः—आराम।
विश्वंभरा—पृथ्वी।
विश्वसनीयता—विश्वास उत्पन्न करने की क्षमता।
विषण्ण—दुःखी, निराश।
विषम—विपरीत, कठिन।
विषयः—क्षेत्र, प्रदेश, राज्य, इन्द्रिय द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तु।
विषाणः—णं—सींग।
विषादः—दुःख, निराशा।
विष्टरः—बैठने का स्थान।।
विसरः—ढेर, समूह।
विसृष्ट—हटाया गया, भेजा गया।
विस्तीर्ण—फैला हुआ।
विस्तारित—खुला हुआ, फूला हुआ।
विहितं—आदेश, वचन।
विह्वल—व्याकुल, दुःखी, शोकमग्न, विह्वलता, दुःख।
वीज्—(चुरादि, परस्मै०) पंखा करना।
वीरसूः—वीर की माता।
वृ (चुरादि, परस्मै०)—माँगना, प्रार्थना।
वृकोदरः—भीम।
वृज्—(चुरादि, परस्मै०) अलग करना आ+वृज०—झुकाना, वि+वृज्—रहित, शून्य।
वृत्—'निर्' पूर्वक—(प्रेरणा०) समाप्त करना,परि+वृत्—घुमाना, चक्कर लगाना, प्र+वृत्—उछलना, उठना, आरम्भ करना।
वृत्ति (स्त्री०)—जीविका, स्वभाव, आचरण।
वृद्धि (स्त्री०)—बढ़ना।
वृध् (प्रेरणा०)—बढ़ाना।
वृषलः—शूद्र, चन्द्रगुप्त का विशेषण।

वृषांक:–जिसकी पताका पर सांड़ बना हो, शिव ।
वृष्टि:—(स्त्री०) वर्षा ।
वेग:—प्रवाह, शक्ति ।
वेगानिल:–झोंका ।
वेणुलता–बांस की छड़ी ।
वेतस:–बेंत ।
वेदि-दी: (स्त्री०)–पूजास्थान ।
वेधस् (पु०)–सृष्टि करने वाले ।
वेशवनिता–वेश्या ।
वेश्मन् (न०)–घर, निवासस्थान ।
वेष्टनं–पगड़ी ।
वैकृतं–अपशकुन ।
वैतान (वि०)–यज्ञसंबन्धी, पवित्र ।
वैतानिक (वि०)—पवित्र, यज्ञ में दीक्षित ।
वैतालिक–भाट, चारण ।
वैदेही–सीता ।
वैद्युतानल:–बिजली की आग ।
वैरिन् (पु०)–शत्रु ।
वैहायस (वि०)–आकाश में स्थित ।
व्यक्ति (स्त्री०)–प्रदर्शन ।
व्यक्तं (क्रियावि०)–स्पष्टरूपमें ।
व्यग्रत्वं–लगा होना ।
व्यजनं–पंखा ।
व्यतिकर:–घटना ।
व्यपदेश:–परिवार, नाम, जाति ।
व्यय:–खर्च, विघ्न, क्षति ।
व्यलीकं–दु:ख, शोक ।
व्यवहार:–मुकद्दमे की सुनवाई, न्याय-कर्म ।
व्यवहारासनं–न्यायाधीशों का दल ।
व्यवहित–अलग किया गया ।
व्यसनं–विपत्ति, आवश्यकता, कठिनाई, तत्पर ।
व्याकुल (वि०)–भली भांति लगा हुआ ।
व्याध:–बहेलिया ।
व्याल:–सर्प, क्रूर, दुष्ट पशु ।
व्याहार: } शब्द, वाणी ।
व्याहृति }
व्रतं–आचरण ।
व्रीडित (त्रि०)–लज्जित, लज्जा से अभिभूत ।

श

शकलं–टुकड़ा ।
शक्ति–दिव्य अस्त्र जो शत्रु पर छोड़ा जाता है ।
शक्र:–इन्द्र का नाम ।
शंकु:–तीर, बाण ।
शची–इन्द्र की पत्नी ।
शप्–(भ्वादि, उभय०) अपशब्द कहना ।
शबर:–एक जंगली पर्वतीय जाति ।
शब्द:–नाम, उपाधि ।

शम्–नि + शम् (दिवादि, परस्मै०) सुनना, पाना, (प्रेरणा०), पराजित करना, दबाना, प्र + शम् (प्रेरणा०) स्थिर करना ।
शमयितृ (पु०)–नष्ट करने वाला ।
शरजन्मन् (पु०)–कार्तिकेय का नाम ।
शरणं–घर, निवास स्थान ।
शरणागत–शरण में आया हुआ ।
शरद् (स्त्री०)–वर्ष ।
शरव्यं–लक्ष्य ।
शरासनं–धनुष ।
शरीरिन् (पु०)–देहधारी जीव ।
शर्मन् (नं०)–प्रसन्नता, सुख ।
शर्वरी–रात्रि ।
शल्यं–तीर ।
शशः–खरगोश ।
शश्वत् (क्रियावि०)–सदैव, निरन्तर ।
शस्त्रभृत् (फ०)–शस्त्रधारण करने वाला, योद्धा ।
शाखामृगः–बन्दर ।
शान्त–काम किया गया, क्षोभरहित ।
शान्ति (स्त्री०)–दूर करना, विनाश, शुद्धि, शान्ति, उदक–शीतलता प्रदान करने वाला जल ।
शालिः–एक प्रकार का चावल ।
शालिन् (वि०)–युक्त ।
शावः, शावकः–बालक ।

शाश्वत् (वि०)–स्थायी, सदैव रहने वाला ।
शास्, अनु + शास्—(अदादि, परस्मै०) राय देना, प्रभावशाली होना ।
शासनं–आज्ञा, आदेश ।
शिक्षा–उपदेश, राय ।
शिखा–अग्नि की लपट ।
शिखिन् (पु०)–मोर, मयूर ।
शिथिलय – (नामधातु) – शिथिल करना ।
शिरोधरः–गर्दन ।
शिलापदः–पत्थर की पटिया ।
शिलोच्चयः–पर्वत, पत्थरों का समूह ।
शिल्पं–कला, दक्षता ।
शिवं–कल्याण, सुख ।
शिष्–वि + शिष् (प्रेरणा०)–पार करना, बढ़कर होना ।
शुक्तिः–सीप ।
शुच (स्त्री०)–शोक, दुःख ।
शुद्धान्तः–अन्तःपुर की रानियाँ ।
शुभशंसिन्–शुभशकुन वाला, शुभ बातें कहने वाला ।
शुश्रूष् (सन्नन्त 'श्रु' से)–सेवा करना ।
शूलिन् (पु०)–शिव ।
शृणि (पु०)–कोड़ा ।
शैलः–पर्वत ।

शैवलं–सेवार ।
शोण (वि०)–लाल ।
शोणितं–खून ।
शोभा–सुन्दरता ।
श्रीशः–विष्णु, श्री के स्वामी ।
श्रुत–प्रसिद्ध, यशस्वी ।
श्रुति–(स्त्री०)–कान ।
श्रेयस् (नं०)–सुख, सौभाग्य, भला, (वि०) उससे अच्छा, अधिक प्रशंसनीय ।
श्रेष्ठिन् (पु०)–सेठ, वणिक् ।
श्रोत्रियः–विद्वान् ब्राह्मण ।
श्वापदः–शिकार का पक्षी, जंगली जानवर ।
श्वेतमान (वि०)–सफेद ।

ष

षण्डः–समूह, ढेर ।

स

संयमनं–खिचाव, रोक ।
संयोगः—मिलन ।
संरंभः—उग्र स्वभाव ।
संवादः–पहिचान ।
संविभक्तः–बाँटा गया ।
संव्यवहारः–क्रय-विक्रय ।
संश्रयः–आश्रयस्थान ।
संसर्गः–साथ, सम्पर्क ।
संसारः–सांसारिक स्थिति ।
संस्तीर्ण–बिछा हुआ, फैला हुआ ।
संस्थापनं–नींव डालना ।
संस्थित–मरा हुआ, समाप्त ।
संहारः–संसार का नाश ।
सकल–(वि०)–सम्पूर्ण ।
सकाम (वि०)–सन्तुष्ट, जिसकी इच्छाएँ पूरी हो गई हों ।
सक्त–लगा हुआ, आरम्भ ।
संकर–वर्णों का मिश्रण ।
संकल्पः—निश्चय, विचार ।
संकल्पयोनिः—मन से उत्पन्न होने वाला, कामदेव ।
संकुल (वि०)—भरा हुआ, व्याप्त ।
संकोच–अंगों की सिकुड़न ।
संग—साथ, सम्पर्क ।
संघः—समुदाय, समूह ।
सचकित् (वि०)—अचरज में पड़ा हुआ ।
संज्ज—तैयार ।
संज्, प्र+संज् (भ्वादि, परस्मै०)= लगा होना, सम्बन्ध होना, व्यति+संज्—जोड़ना ।
संजीवनौषधि (स्त्री०)—जीवन प्रदान करने वाला पौधा ।
सत्केतुः—अच्छी ध्वजा ।
सत्क्रिया—गुण, अच्छाई, आतिथ्य ।
सत्त्वं—जीव, प्राणी ।

सद् (भ्वादि, परस्मै०)–डूबना, गिरना, वि+सद्–निराश होना, उत्+सद्–डूबना, नष्ट होना।

सदस्य:–यज्ञ कर्म में सहायक।

सन्तति–सन्तान, बच्चे, सन्तान।

सन्दिष्ट–आज्ञा दिया गया।

सन्धानं–रखना, लक्ष्य बनाना।

सन्धि:–जोड़, बिन्दु।

सन्निकर्ष:–निकटता।

सन्निपात:–समूह।

सपत्नी–सौत।

सफल (वि०)–फलयुक्त।

सभाज् (चुरादि, परस्मै०)–आदर प्रकट करना।

समक्षं (क्रियावि०)–उपस्थिति में, सामने।

समरं—युद्ध।

समवस्था–दशा।

समवाय:–समूह।

समाधि:—मन को एक जगह केन्द्रित करना।

समापत्ति (स्त्री०) घटना, अवसर।

समाश्रय:–आश्रय लेना, शरण लेना।

समिति (स्त्री०)–युद्ध।

समिद्धत् (वि०)–यज्ञ के इन्धन से हवन किया गया।

समीपं (क्रियावि०)—निकट।

समुच्चय:–समूह।

समुत्सुक (वि०)–अत्यन्त उत्सुक।

समुन्नति (स्त्री०)–ऊँचाई।

समृद्ध–बढ़ा हुआ।

समृद्धि (स्त्री०)–ऐश्वर्य, धन का प्राचुर्य।

संपत्ति (स्त्री०)–गुणों की अधिकता।

संपन्न–युक्त, तैयार, बना हुआ।

संप्रतिपत्ति (स्त्री०)—मानना, अपराध स्वीकार करना।

संबन्ध–बन्धन।

संबन्धिन् (पु०)–बन्धु, नातेदार।

संभृत–एकत्र, इकट्ठा किया गया।

संभोग:–आनन्द, सुख।

संभ्रम:–भय, व्याकुलता।

संमोह:–ज्ञान का नाश।

सम्राज्- (पु०)–सर्वोच्च शासक।

सरणि (स्त्री०)–विधि, मार्ग।

सरसिजं–कमल।

सरोषं (क्रिया वि०)–क्रोध के साथ।

सर्ग:–सृष्टि, रचना।

सर्वथा (क्रिया वि०)–सब प्रकार से, पूर्णरूप से।

सर्वदमन:–सब को दबाने वाला।

सर्वांगीण (वि०)–सम्पूर्ण शरीर पर लिप्त।

सलिलं–पानी।

सशब्दं (क्रिया वि०)–शब्द के साथ।

सस्यं–अन्न, खेती।

सह-उत्+सह् (भ्वादि, परस्मै०)-
साहस करना ।

सहकारः-आम का वृक्ष ।

सहज (वि०)-प्राकृतिक ।

सहस्रकिरणः, सहस्रधामन् } सूर्य (एक सहस्र किरणों वाला)

सहायः-साथी, मित्र ।

सहोदर-सगा भाई ।

साक्ष्यं-प्रमाण ।

सादः-दुर्बलता, पतन ।

सादृश्यं-समानता, प्रतिमा ।

साध्, प्र+साध् (प्रेरणा०)-उत्साहित करना, आगे बढ़ना ।

साधन-सेना ।

साध्वसं-भय, कायरता ।

सानु (पुं०)-चोटी ।

सानुमत् (पु०)-एक पर्वत ।

सानुराग (वि०)-भक्त, लगा हुआ ।

सांप्रतिक (वि०)-उचित, सही ।

सारः-बल, शक्ति ।

सारिका-एक प्रकार की पक्षी ।

सार्थः-समूह, झुण्ड ।

सार्थवाहः-समूह का नेता ।

सावधान (वि०)-होशियार ।

साहसकारिन् (वि०)-साहसी ।

साहित्यं-रचना ।

सित (वि०)-सफेद ।

सिध्-नि+सिध्-(भ्वादि, परस्मै०)
मना करना, रोकना ।

सिद्धः-अर्ध-देवता ।

सिन्धु-समुद्र ।

सीरध्वजः-जनक का नाम ।

सुख (वि०)-आनन्द ।

सुतीक्ष्णः-एक मुनि का नाम ।

सुधा-अमृत बरसाने वाला, मधुर ।

सुधास्यन्दिन्-मधु बरसाने वाला, मधुर ।

सुभगं-(क्रियावि०) आकर्षक, सुन्दर ।

सुयोधनः-दुर्योधन का एक नाम ।

सुरद्विष् (पु०)-देवताओं का शत्रु ।

सुश्लिष्ट-सजाया गया, अच्छी प्रकार रखा गया ।

सुहृद्भेदः-मित्रों का अलगाव, हितोपदेश के द्वितीय खण्ड का शीर्षक ।

सूक्तं-भले शब्द ।

सूत्रधारः-बढ़ई ।

सृ-(भ्वादि, जुहोत्यादि, परस्मै०)
उप+सृ-जाना, निकट होना ।

सेतुः-पुल ।

सैंह-(वि०)-सिंह का ।

सोव्यव+सो-(दिवादि, परस्मै०)
प्रयत्न करना, सोचना ।

सोदर्यः—सगा भाई, एक ही खून का भाई।

सौजन्य—भलाई, दयालुता।

सौदामिनी—बिजली।

सौभाग्यविलोपिन्—सुन्दरता को नष्ट करने वाला।

सौहार्दं—मित्रता।

स्कन्धावारः—सेना का एक भाग।

स्तनितं—बादलों की गरज।

स्तम्बकरिता—गट्ठर या ढेर बनाना।

स्त्रैणं—स्त्रीजाति।

स्थलवर्त्मन्—भूमि का मार्ग।

स्थली—भूमि।

स्था,-'आ+स्था'—आश्रय लेना।

स्थाणुः—शिव का नाम।

स्थायिन् (वि०)—दीर्घकाल तक रहने वाला।

स्थास्नु (वि०)—कठोर, दृढ।

स्थिति (स्त्री०)—स्थायित्व, उपयुक्तता।

स्थिर (वि०)—दृढ।

स्थिरीकृ (तनादि, उभय०)—धैर्य देना, उत्साहित करना।

स्थैर्यं+स्थायित्व।

स्नातकः—दीक्षाप्राप्त, ब्राह्मण गृहस्थ।

स्नानीयवस्त्रं+स्नान के समय पहना जाने वाला वस्त्र।

स्निग्ध—मित्रतापूर्ण, स्नेहपूर्ण।

स्निग्धदृष्टि (वि०)—एकटक देखता हुआ।

स्फटिकमणिः—चमकीला, मूल्यवान् पत्थर।

स्फुट (वि०)—स्पष्ट रूप से, देखा जाने योग्य।

स्मयः+गर्व, उद्दण्डता।

स्यंद्-अभि+स्यंद् (भ्वादि, उभय०)—चूना, पिघलना।

स्रोतोवहा—नदी।

स्वच्छन्द (क्रिया वि०) स्वतन्त्र रूप से, इच्छानुसार।

स्वद् (भ्वादि, आत्मने०) पसन्द करना।

स्वभावज (वि०)—प्राकृतिक।

स्वस्थ (वि०) सुरक्षित।

स्वाधीन (वि०)—आज्ञा के अनुकूल।

स्वास्थ्यं—आराम, शान्ति।

स्वेच्छया (क्रिया वि०)—अपनी इच्छा से, अपनी पसन्द के अनुसार।

ह

हतक (वि०)—दुष्ट।

हन्—अप+हन् (अदादि परस्मै०)—नष्ट करना, प्रति+हन्—प्रतिकार करना, विरोध करना।

हरिः+इन्द्र।

हरिचन्दनं—पीले रंग का चन्दन।

हरिणीदृश् (वि०)—मृगनयनी।

हव्यं—आहुति ।

हस्—(भ्वादि, परस्मै०) साफ करना, चमकना ।

हारीतः—एक पक्षी ।

हार्धिक्यः—योद्धा का नाम ।

हितः—भला चाहने वाला ।

हितवादिन् (वि०)—(संज्ञा) भला कहने वाला ।

हिमं+वर्फ ।

हिमरश्मिः } शीतल किरणों वाला
हिमांशुः } चन्द्रमा ।

हिमवत् (पु०)—हिमालय पर्वत ।

हुकारः+'हुं' का शब्द ।

हृ, अभ्यव+हृ (भ्वादि, परस्मै०)—खाना, उत्+हृ—जड़ से उखाड़ना, निकालना ।

निर्+हृ—निकालना, लेना, सं०+हृ—गिराना, काटना, छोटा करना, मोड़ना, रोकना, व्य+हृ—बोलना ।

हृषीकेशः—कृष्ण का नाम ।

हेमन्त (वि०) शीतल, ठंडा ।

हैम (वि०)—बर्फ से बना ।

ह्लदः—पानी का कुण्ड ।

—:०:—

शब्दानुक्रमणिका

अंक अधिकरणों का निर्देश करते हैं, पृष्ठ का नहीं।

--:o:--